हमारे संगीत रत्न

[प्रथम भाग]

★

लक्ष्मीनारायण गर्ग

★

प्रकाशक—
संगीत कार्यालय
हाथरस

★

प्रथम आवृत्ति
जून १९५७ ई०

मूल्य सजिल्द
पन्द्रह रुपया

उन्हीं की रचना उन्हीं को समर्पित

रचयिता—

लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रस्तावना

"हमारे संगीत रत्न" इस शीर्षक को लेकर संगीत कार्यालय हाथरस के सञ्चालक श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग ने भारतवर्ष के संगीतज्ञों का चरित्र देने वाला ग्रन्थ तैयार किया है। मैं इस प्रयत्न का स्वागत करता हूं। यद्यपि मेरी राय में यह अच्छा होता, अगर इस ग्रन्थ में केवल प्रसिद्ध संगीत शास्त्रज्ञों और कलाकारों का ही विशद वर्णन होता; तब भी यह पहला प्रयत्न है और इसमें प्राचीन व आधुनिक भिन्न-भिन्न संगीत कलाकार हैं, उनके बारे में इस ग्रन्थ से बहुत कुछ जानकारी मिलती है। इस प्रयत्न का स्वागत करना ही चाहिये।
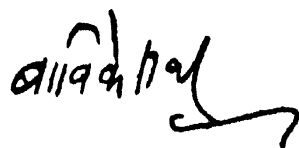
अगर आज भारतीय संगीत में कोई बड़ा दोष है तो वह संगीत के ज्ञान का अभाव है। इसके माने यह हैं कि हमारे यहां केवल रियाज़ या प्रत्यक्ष संगीत के ज्ञान पर ज़ोर दिया गया है। संगीत शास्त्र की विवेचना, संगीत के इतिहास का ज्ञान, संगीत के बड़े शास्त्रज्ञों का चरित्र और कार्य, इसकी जानकारी आदि महत्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक विषयों की उपेक्षा की जाती है। यही कारण है कि वर्तमान संगीत कुछ अधूरा सा है। कोई भी कलाकार पूर्ण संगीतज्ञ और कलाकार उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक कि उसे संगीत की भूमिका या पूर्व पीठिका अच्छी तरह मालूम न हो। सम्पूर्ण संगीत केवल इसी में नहीं है कि गुरु से कुछ गाना या बजाना सीख लिया, बल्कि गाने बजाने के बारे में जो और आवश्यक बातें हैं और उसका जो वातावरण है उसे मालूम करना भी बहुत ज़रूरी है। यह सब बातें संगीत का विषय जानने के लिये अनिवार्य हैं, अन्यथा संगीत केवल तोते की तरह रियाज़ ही रह जायेगा।

अगर इस दृष्टि से हम देखें तो संगीत का इतिहास, संगीत के बड़े कलाकारों और शास्त्रज्ञों के चरित्र और ऐसे ही सम्बद्ध विषयों पर उपयुक्त पुस्तकें तैयार करना बहुत ज़रूरी है। बिना उसके संगीत की प्रगति नहीं हो सकती।

मैं बहुत दिनों से हाथरस के संगीत कार्यालय के काम को देख रहा हूँ, उन्होंने संगीत की अच्छी सेवा की है और सङ्गीत संसार में इस प्रकार का कोई प्रकाशन केन्द्र देश भर में नहीं है। यह उनके लिये गर्व की बात है।

मुझे पूरा विश्वास है कि इस प्रकार की संगीतज्ञों के बारे में उपयोगी पुस्तकें निकालने से संगीत के विद्यार्थियों को लाभ पहुंचेगा। संगीत कार्यालय के इस प्रयत्न की मैं सराहना करता हूं।

(बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर)
सूचना व प्रसार मन्त्री, भारत सरकार

नई दिल्ली
२८ अप्रैल, १९५७

★

अर्चना

शुभ्रवसना भगवती के वरदान से "हमारे संगीत रत्न" ग्रंथ का प्रथम भाग संगीत जगत में पयाग्ग कर रहा है।

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय कला मन्दिरों में व्यक्त हुई है, उसी प्रकार हमारे संगीत रत्नों की चरित्र आभा प्रस्तुत ग्रंथ में प्रदीप्त हुई है। यह श्रुति-हस्ता की कृपा का उच्छिष्ट है किन्तु फल यथार्थ तत्व को प्राप्त कर लेना ही है। श्रुतियों द्वारा वाग्देवी की स्तुति कर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है; उसी प्रकार नाद पुत्रों की अर्चना कर मैंने यह ग्रन्थ पा लिया है। जिसमें कि प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक संगीत रत्नों का जीवन चरित्र उपलब्ध सामग्री, तथ्यों, धारणाओं, किंवदन्तियों एवं भ्रमण-साक्षात्कार द्वारा संकलित किया गया है। आनुवंशिक संस्कारों की प्रेरणा इसमें सहायक है।

भारत में संगीतकार के जीवन की प्रतिभा और साधना उसके साथ ही समाप्त होती चली गई, यह इतिहास प्रगट है। यही कारण है कि सङ्गीत क्षेत्र के विराट कार्य क्षुद्र किंवदन्ती के अतिरिक्त शेष कुछ नहीं रह गये। सङ्गीत और सङ्गीतकार निर्वाण की ओर जा रहे हैं। स्पष्ट है कि प्राचीन संस्कृति और उसके अधिष्ठाताओं से हम विमुख होते जा रहे हैं। कलाकार के विलुप्त आदर्श को अक्षुण्य बनाये रखना ही प्रस्तुत ग्रन्थ का लक्ष्य है। मेधावी संगीत प्रवरों की आरती उतार कर मैं उनके नाद तत्व में विलीन होने की कल्पना करता हूं।

इस ग्रन्थ का निर्माणकार्य गत दस वर्षो से निरंतर हो रहा था और पाठक वर्ग फूत्कारी सांस लेकर इसकी प्रतीक्षा में लगा रहा, जिसके लिये क्षमा याचना के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नही। फिर भी बिना स्पष्टीकरण के मेरा अंतर सुखी न होगा।

प्रथम, मैं ग्रंथ के अवलोकनोपरान्त उत्पन्न हुई शंकाओं को क्रम बद्ध लिखूंगा, तत्पश्चात् यथाशक्ति उनका निवारण करने की चेष्टा करूंगा ताकि दोषारोपण की धधकती ज्वाल को शांत कर सकूं।

[स] ग्रन्थ का इतनी लम्बी अवधि के पश्चात् प्रकाश में आना।
[रे] अनेक सङ्गीत रत्नों की संक्षिप्त जीवनी।

[ग] अनेक जीवनियों पर वर्तमान घरानेदारों की आपत्ति और मतभेद ।
[म] अनेक कलारत्नों की मूर्धन्य प्रशंसा ।
[प] अनेक कलाविदों के चित्र अस्पष्ट होना ।
[ध] अनेक जीवनियों में किंवदन्तियों का बाहुल्य ।
[नि] अनेक प्रमुख सङ्गीत रत्नों की जीवनी का न होना ।

'स'

प्रारम्भ में इस ग्रन्थ के प्रणयन का विचार उठा तो लगभग एक सौ सङ्गीतकारों की जीवनी देने का ही संकल्प किया गया। किन्तु ऐसा करने से ग्रन्थ में कोई जान न आती, अतः इसकी विस्तारवृद्धि की कल्पना से कार्य बढ़ता गया। एक-एक कलारत्न की जीवनी संकलित करने तथा उसके प्रमाण उपलब्ध करने में परिश्रम की वृद्धि होती गई और ग्रन्थ की प्रकाशन अवधि आगे बढ़ती गई। फलस्वरूप पाठकवर्ग ने धैर्य खो दिया, जो कि स्वाभाविक था। जीवनी उपलब्ध होने पर चित्र की समस्या उलझ जाती और कार्य पुष्ट होते-होते अधिक समय ले लेता।

'रे'

वर्तमान संगीत में जिस प्रकार संगीत के अनेक मूलभूत सिद्धांत हमसे विलग हो गये हैं, उसी प्रकार प्राचीन संगीत साधुओं का अस्तित्व भी अविच्छिन्न है जिसके बारे में खोज करने पर एक दो वाक्यों से अधिक प्राप्त होना असम्भव है। सैंकड़ों वर्ष व्यतीत होने के बाद उनकी जीवनी का पता लगाना कुएँ से मोती निकालने के समान ही है। फिर भी यथासम्भव जानकारी उपलब्ध करने का प्रयास मैंने किया है।

'ग'

बहुधा ऐसा होता है कि हमारे कुछ अशिक्षित कलाकार स्थान-स्थान पर अपनी चारित्रिक घटनाओं को अतिशयोक्ति से परिपूर्ण करने पर तुल जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपनी-अपनी परम्परा बैजू, हरिदास या तानसेन से जोड़कर अपने को एकमात्र सुशिक्षित प्रतिनिधि घोषित कर देते हैं। फलस्वरूप उनके बारे में भ्रांतिदायक पंक्तियां प्रकाशित हो जाती हैं। किन्तु किसी अन्य स्थान पर बोलते समय वे पिछले वार्तालाप को स्वाभाविकतः विस्मित कर बैठते हैं और वहां उनकी सूचना अन्य प्रकार से प्रकाशित हो जाती है। इसके पश्चात् शोध करने वाला मनुष्य किसी भी एक समाचार को लेकर प्रामाणिक

समझ बैठता है और जब सत्य की कसौटी सामने आती है तो कलाकार अथवा उसके अनुयायी शोधकर्ता लेखक को दोषी ठहरा देते हैं, जिसका कोई उपाय नहीं।

'म'

लेखक को जिन कलारत्नों की कला पर दृढ़ आस्था होती है अथवा जो उसको अपने गुणों से विमोहित करने में अधिक सफल होते हैं, उन सबकी अधिक प्रशंसा अन्य कलारत्नों के समक्ष मूधर्न्य स्वतः बन जाती है। हाँ, पक्षपात की भावना से निकले उद्गार भ्रांति के उन्मूलन में निश्चय रूप से सहायक सिद्ध होते हैं।

'प'

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक चित्र अस्पष्ट हैं। उनका कारण यही है कि वे जैसी दशा में प्राप्त हुए हैं वैसे ही छापे गये हैं और स्पष्ट करने पर भी उनका पूर्व रूप नहीं आ पाया है। किन्तु वे प्राप्त हो गये हैं और उनकी एक धुंधली झलक निराकार दर्शन से अधिक महत्व रखती है, इसी में हमारी सफलता है। जिन संगीताचार्यों के वंशजों अथवा पुत्रों द्वारा, उनके चित्र धुंधले होकर भी अत्यधिक पुरस्कार राशि देकर मिले हैं, उनको भी धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है। किन्तु जिन प्रतिनिधियों ने, अपने संगीत व्यवसाय की तल्लीनता में, चित्र होते हुए भी न भेजे, वे दया के पात्र घोषित नहीं किये जा सकते।

,ध'

किंवदन्तियों के साथ व्यक्ति विशेष का मूल्यांकन करना हमारे यहां पुरातन काल से चला आया है। हनूमान का समुद्र लांघना, वामन का तीन डग में सृष्टि नापना तथा तानसेन द्वारा दीपक राग से दिये जलवाना, मेघ राग से वृष्टि कराना अथवा भैरव द्वारा कोल्हू चलवा देना हमारे यहां सरल किंवदन्तियां हैं। इसी प्रकार सरस्वती के शरीर से वीणा का निकालना, शंकर से ताल का निकालना तथा धरती के भगवानों की अन्य अलौकिक लीलाओं का वर्णन किस युग तक चलेगा, कहा नहीं जा सकता। किन्तु आज का विज्ञान इन तर्कों को उखाड़ने में असमर्थ है यह निश्चित बात है। फिर भी ये कल्पनायें मानव को अन्धविश्वास के साथ एक प्रकार का चेतन देती हैं। तथापि, संगीतज्ञों से सम्बद्ध किंवदन्तियां श्रद्धा में परिवर्तित होकर विज्ञान

को बल ही प्रदान करती हैं। कला की श्रेष्ठता के मानदण्ड का अभाव होने पर हर युग और हर देश में चमत्कार प्रधान किंवदन्तियों की सृष्टि होती है, चाहे सत्य का लोप भले होजाय।

'नि'

प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन संगीत रत्नों का समावेश किया गया है, उनकी संख्या बहुत कम है। अभी सहस्रों संगीत देवता ऐसे हैं, जिनके बारे में अनुसंधान अपेक्षित है। लगभग दो हज़ार संगीतज्ञों व आचार्यों का परिचयात्मक ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। दुख तो इस बात का है कि जीवित वंशजों को कई मास तक पत्र डालने पर भी उनके पूर्वजों की जीवनी प्राप्त न हो सकी। किन्तु ग्रन्थ देखकर उनको भी पश्चाताप होगा, इसमें सन्देह नहीं। आशा है सम्पूर्ण ग्रन्थ भावी अनुसन्धान और विचार का आधार बनेगा। प्रकाशित भूलों का संशोधन, कलाकारों का सहयोग प्राप्त होने पर आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा।

कुछ व्यक्ति सचमुच महान होते हैं और कुछ नरेशों के अनुग्रह से महान हो जाते हैं। महाराणा प्रताप का अश्व होने के कारण चेतक इतिहास अमर हो गया, इसके जाति–बान्धवों का कोई नाम भी नहीं जानता। नरेशों की कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिये कुशलता की अधिक आवश्यकता होती है; इस कुशलता के अभाव में अच्छे गुणियों का स्थान भी पीछे पड़ जाता है। राज्य का अनुग्रह प्राप्त करना एक अलग कला है।

अत्यन्त मामूली संगीतज्ञ भी तीन–चार पीढ़ियों के पश्चात् अपने वंशजों द्वारा नायक, गायक, वादक, पंडित और न जाने क्या–क्या बना दिये जाते हैं और बनाये जा रहे हैं। हरिदास जी एवं तानसेन आदि गुणियों के नवीन वंशजों की सृष्टि भी बढ़ रही है, जो उनके यथार्थ महत्व को गर्त में ले जाने की भागी होगी। वश चले तो भरत और शार्ङ्गदेव प्रभृत्ति ऋषियों की सन्तान भी बेतादाद दृष्टिगोचर होने लगे।

गड्डलिका प्रवाह के परिणाम भयानक होते हैं, यह फिर भी नहीं भूलना चाहिए। संगीत कला एवं तत्सम्बन्धी व्यक्तियों का क्रम बद्ध इतिहास, संगीत विषयक विभिन्न प्रवृत्तियों, उनके कारणों तथा परिणामों का विवेचन अथवा चिरकाल से सर्वदा स्वतन्त्र संगीत शैलियों या विचारधाराओं का

विश्लेषण प्रस्तुत ग्रन्थ का लक्ष्य नहीं और न ऐसी अपेक्षा करना न्याय माना जायेगा।
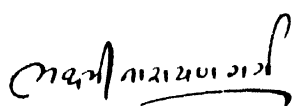
प्राचीन संगीत मनीषियों के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री का मंथन कर सत्यामृत की प्राप्ति के चिरन्तन एवं गम्भीर प्रयत्न अपेक्षित हैं। यदि यह ग्रंथ भावी अनुसन्धान का आधार बना तो मेरा परिश्रम सार्थक होगा। निगूढ़ चिन्तन का कार्य पाठकों पर छोड़ मैं मुक्त होता हूँ, सहायक स्रोतों और सदभावों का आभार मैं नहीं भावी संगीत-पीढ़ी मानेगी, मैं तो उनका अभिवादन ही कर सकता हूं।

सूचना व प्रसार मन्त्री डा० बी० वी० केसकर ने कृपा करके इस ग्रंथ की जो प्रस्तावना लिखी है उसके लिए मैं उनका चिर कृतज्ञ हूं।

संगीत कार्यालय
हाथरस
१-६-५७

लक्ष्मीनारायण गर्ग

★

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

तंतकार, सुषिरवाद्य वादक

चतुर्थ अध्याय

पखावज और तबलावादक

पंचम अध्याय

नृत्यकार

परिशिष्ट—

हमारे संगीत रत्न

(............प्राचीन व अर्वाचीन संगीत रत्नों की सचित्र जीवनी)

प्रथम अध्याय

संगीत शास्त्रकार

अहोबल

संगीत के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'संगीत पारिजात:' के रचयिता पं० अहोबल १७ वीं शताब्दि के प्रारम्भ में हुए हैं। विद्वानों के मतानुसार पं० अहोबल दक्षिण के रहने वाले द्रविड़ ब्राह्मण थे। आपके पिता श्री कृष्ण पंडित संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान थे, अत: उन्होंने अपने पुत्र अहोबल को प्रारम्भ में संस्कृत की शिक्षा दी। तत्पश्चात् इन्होंने संगीत की शास्त्रीय एवं क्रियात्मक शिक्षा प्राप्त की। भलीभांति प्रवीण होने के पश्चात् आप उत्तर भारत की ओर बढ़े। मार्ग में आप 'घनबड़' नामक नगर में ठहर गये। इस नगर का राजा बड़ा लोकप्रिय, विद्वानों का सम्मान करने वाला और कला प्रेमी था, अत: अहोबल ने इसी नगर में रहना पसन्द किया। यहाँ रहकर आपने उत्तर भारतीय संगीत में दक्षता प्राप्त करने के लिये कठोर परिश्रम किया तथा संगीत शास्त्र में जानकारी प्राप्त करने के लिये लोचन के ग्रन्थों का गहन अध्ययन भी किया।

परिश्रम से सब कुछ साध्य होता है, इसलिये पं० अहोबल भी अल्पकाल में उत्तर भारतीय संगीत में पूर्णरूपेण दक्ष होगये। अब आकर इन्होंने धनबड़–नगर के राजा से भेंट की और उसके दर्बार में अपना गायन–प्रदर्शन किया। राजा और राजा के दर्बारी इस प्रतिभाशील कलाकार को मान गये और इसी राज दर्बार में पं० अहोबल की नियुक्ति होगई। यहीं आपने सन् १६५० ई० के लगभग "संगीत पारिजात:" ग्रन्थ की रचना का कार्य सम्पन्न किया। यह ग्रन्थ उत्तरीय पद्धति पर लिखा गया है और उत्तर भारत के सांगीतिक क्षेत्रों में सर्वमान्य है। अहोबल ने वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से १२ स्वरों के स्वरस्थान सर्व प्रथम निश्चित किये और बाद के संगीतज्ञों ने भी इसी आधार को मान्य किया। १६ वीं सदी में गणितज्ञों एवं पदार्थ शास्त्र वेत्ताओं की सहायता लेकर इसी कार्य की शोध पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है। परन्तु पं० अहोबल ने वर्तमान साधनों के अभाव में भी इसी कार्य को २०० वर्ष पूर्व करडाला, यह आश्चर्य की बात है !

✶

आप्पा तुलसी

आप प्रसिद्ध संगीताचार्य स्वर्गीय भातखण्डे के समकालीन तथा मित्र थे। उच्चकोटि के गायक होने के साथ-साथ आप्पा तुलसी संस्कृतके उद्भट विद्वान तथा कवि भी थे। आपने अपने जीवन में संगीत के कई प्रसिद्ध ग्रन्थ— 'संगीत सुधाकर', 'राग कल्पद्रुमांकुर', 'रागचंद्रिका', 'अभिनव ताल मंजरी', तथा 'रागचंद्रिकासार' आदि की रचना की। इनमें से 'रागचंद्रिकासार' पुस्तक हिन्दी में तथा अन्य सब ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं। आपकी कृतियों का अध्ययन करने से विश्वास होता है कि आपने पूर्वकालीन संगीत ग्रंथों का बड़ा गहन अध्ययन किया होगा। आपके द्वारा लिखे हुए लगभग सभी ग्रंथ वर्तमान हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति के आधारग्रंथ माने जाते हैं। आपकी लेखन शैली बड़ी सरल तथा स्पष्ट है।

श्री आप्पा तुलसी हैदराबाद दक्षिण के निवासी और निज़ाम हैदराबाद के दर्बारी गायक थे। आप अधिकांश ध्रुपद गाते थे। प्रभु कृपा से आपने दीर्घ आयु प्राप्त की। सन् १६२० ई० के लगभग हैदराबाद में ही आपका स्वर्गवास होगया।

★

ऐलेन डिनायलू

ऐलेन डिनायलू उन गिने–चुने प्रख्यात ग्रंथकारों में से एक हैं, जिन्होंने विदेशी होते हुए भी भारतीय संस्कृति तथा संगीत का अध्ययन करके उस पर ग्रंथ रचना की।

आपका जन्म ४ अक्टूबर सन् १६०७ को पैरिस में फ्रांस के एक ख्याति प्राप्त फ्रांसीसी मन्त्रि परिषद के एक सदस्य के घर हुआ। आपकी माताजी अति उदार, सुशील एवं विदुषी हैं, और आजकल फ्रांसीसी महिलाओं के एक मात्र विश्वविद्यालय का प्रबन्ध कर रही हैं। आपके ज्येष्ठ भ्राता एक महान दार्शनिक तथा विचारक हैं।

डिनायलू महोदय ने संगीत का अध्ययन ६ वर्ष की अल्पायु में ही आरंभ कर दिया था। पियानो उनका प्रिय वाद्य है, जिसे वे बजाते हैं। उन्होंने

गायन कला फ्रांस के एक लोकप्रिय गायक के साथ सीखी। धीरे-धीरे आपकी रुचि संगीत शास्त्र एवं उसके तुलनात्मक अध्ययन में बढ़ती गई। अमेरिकन तथा फ्रांसीसी विश्वविद्यालयों में दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत आपने पेरिस में शिल्प कला के राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की। किन्तु वे इन गति विधियों में अधिक समय तक नहीं रह सके, और अपना शेष जीवन उन्होंने संगीत के पठन-पाठन में लगा दिया। उत्तरी अफ्रीका में संगीत के क्षेत्र में कुछ समय कार्य करने के पश्चात् आपने भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, हिन्देशिया, चीन, जापान आदि देशों में भ्रमण किया, और फिर भारत लौटकर कुछ दिन "शांति-निकेतन" में व्यतीत किये। तत्पश्चात् बनारस में रहे, यहां आपने प्रसिद्ध संगीतकार श्री शिवेन्द्रनाथ बसु के द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा वीणा-वादन की शिक्षा ग्रहण की।

इसी समय काशी के पंडितों से आपने संस्कृत, हिन्दी, हिन्दू-दर्शन तथा भारतीय धर्मशास्त्र का अध्ययन किया। फिर सन् १९४१ में प्रयाग में आयोजित एक विशेष समारोह में आपने हिन्दू-धर्म स्वीकार किया, तथा अपना नाम "शिव शरण" रखा। डिनायलू महोदय ने संस्कृत भाषा के संगीत-संबन्धी ग्रंथों का संग्रह भी किया, जो अपने विषय का सबसे बड़ा संग्रह है और "अड्यार-लाइब्रेरी" में आज भी सुरक्षित है। सन् १९४९ में आप काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के संगीत-कालेज में एक रिसर्च प्रोफेसर नियुक्त हुए, १९५२ में आप मद्रास चले गये।

आजकल आप "अड्यार-लाइब्रेरी" के डाइरेक्टर हैं और मद्रास में एक शोध-केन्द्र का संचालन कर रहे हैं, जिसमें संस्कृत भाषा के संगीत संबन्धी साहित्य में शोध कार्य होता है, यहां पर आपने कितने ही ग्रंथों की रचना की है। आपके द्वारा लिखे गये अंग्रेजी भाषा के ग्रंथों में "इन्ट्रोडक्शन टु म्यूज़िकल स्केल्स", "नार्दर्न इण्डियन म्यूज़िक" तथा "यूनेस्को कैटेलॉग आव ट्रैडीशनल एण्ड क्लासीकल रिकॉर्डेड म्यूज़िक" के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

कल्लिनाथ

'संगीत रत्नाकर' नामक संस्कृत ग्रन्थ के टीकाकार पंडित कल्लिनाथ ही थे। यह विजयनगर के राजा प्रतापदेव के आश्रय में रहते थे, इसी राजा की आज्ञानुसार इन्होंने इस ग्रन्थ की टीका की। इस कार्य द्वारा "संगीत-रत्नाकर" जैसे क्लिष्ट संस्कृत ग्रन्थ को समझने का कार्य सरल होगया। राजा प्रतापदेव ने सन् १४५६ से सन् १४७७ ई० तक राज्य किया था, अतः कल्लिनाथ का भी यही काल मानना चाहिये। इस विद्वान को 'चतुर' नाम की पदवी (खिताब) प्राप्त थी इसलिये यह चतुर कल्लिनाथ के नाम से विख्यात हुआ। इससे यह भी विदित होता है कि यह सङ्गीत विद्या का पूर्ण पंडित रहा होगा।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चतुर कल्लिनाथ ने 'सङ्गीत रत्नाकर' की टीका के अतिरिक्त सङ्गीत विषय पर कोई न कोई अन्य पुस्तक भी अवश्य लिखी होगी; परन्तु अब तक की खोज में तो इनकी कोई अन्य कृति उपलब्ध हुई नहीं है।

★

कुम्भकर्ण महाराणा

महाराणा कुम्भ बीकानेर के राज-घराने में जन्मे थे। स्वर्गीय महाराना मोकल के इस अद्भुत सुपुत्र की विलक्षण प्रतिभा अनेक वर्षों तक अछोप रही। जब बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइ-ब्रेरी में इस वरद् पुत्र की अमर कृति कागज़ के ढेरों में छुपी हुई मिली, तब इसके बारे में कुछ ज्ञात हो सका।

संगीत के उक्त विलक्षण विद्वान के बारे में संगीतजगत अभी तक अनभिज्ञ है। महाराना कुम्भ ने अपने जीवन काल में "संगीत राज" जैसे अपूर्व ग्रन्थ का निर्माण स्वयं किया था। उसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त होने पर ही हम कुम्भ के बारे में जान सके।

'संगीत राज' में संगीत के प्रत्येक अंग पर अनुभव तथा अध्ययनपूर्ण विवेचन संस्कृत भाषा की ऐसी काव्यमय शैली में दिया गया है जिसे यदि अद्वितीय कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

महाराना कुम्भ राजपूतों का सबसे बड़ा राजा हुआ है। संगीत शास्त्र तथा क्रियात्मक संगीत का कुम्भ को अपूर्व ज्ञान था। इसके अतिरिक्त काव्य तथा कई अन्य कलाओं में भी कुम्भ को दक्षता प्राप्त की। महाराना कुम्भ

१४३३ ई० में गद्दी पर बैठे और ३५ वर्ष तक राज्य किया। उनकी दादी हंसाबाई मारवाड़ के रणमल राठौर की बहन थीं। कुम्भ ने बहुत से मंदिर बनवाये जिनमें कि चित्तौड़ का भगवान कृष्ण का मंदिर प्रमुख है। अबुल फ़ज़ल ने 'अकबर नामा' में 'कुम्भ श्याम' के नाम से इसका उल्लेख भी किया है। कुम्भ धर्म के प्रति सदैव जागरूक रहते थे। विविध शास्त्रों का अध्ययन और उनमें पारंगत होने की अभिलाषा इन्हें सदैव रहती थी। वीणा-वादन में कुम्भ बहुत दक्ष थे और "अभिनव भरताचार्य" (आधुनिक भरत-संगीत और नृत्य के प्रणेता) कहे जाते थे। उन्होंने विविध छन्द, धुन और तालों की रचना की थी। दुर्भाग्य से उनकी रची हुई अनेक चीजों के बारे में कालचक्र की लुका-छिपी के कारण अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होसकी है।

कुम्भ के 'संगीत राज' का दूसरा नाम 'संगीत मीमांसा' भी है। एक बार जब 'संगीत राज' की हस्तलिखित प्रति से दूसरी प्रतिलिपि करने की आवश्यकता हुई तो उसमें कुम्भ के नाम के स्थान पर कल्पित नाम कालसेन रख दिया गया। यह कल्पित नाम महाराणा कुम्भ अथवा कुम्भकर्ण का ही उपनाम है, ऐसा खोज के आधार पर निश्चित किया जा चुका है।

★

कृष्णधन बनर्जी

आपने संगीत–विषय पर 'गीत सूत्र' नामक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ बंगला भाषा में है। इस ग्रंथ में अनेक ध्रुपद और ख्याल स्टाफ नोटेशन पद्धति से प्रकाशित किए हैं। मूर्छना, ग्राम राग आदि का विस्तारपूर्वक विवेचन, इस पुस्तक में बड़े स्पष्ट रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत के विभिन्न अङ्गों पर भी इस पुस्तक में काफी लिखा गया है। वर्तमान संगीत सम्बन्धी ग्रंथों में इस ग्रंथ को उच्चकोटि के ग्रंथों की श्रेणी में गिना जाता है। श्री भातखंडे लिखित 'हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति' में भी कहीं–कहीं उक्त विद्वान के मत का उल्लेख मिलता है।

१९वी सदी के प्रारम्भ में, बंगाल प्रांत संगीत के विकास का केन्द्र बना हुआ था। उस समय कलकत्ते में अनेक विद्वान तथा कीर्तिवान विभूतियां प्रगट हुई थीं; उन्हीं में से कृष्णधन बनर्जी भी थे। यह अपने समय के बहुत लोकप्रिय एवं प्रतिभाशाली विद्वान हुए हैं। इन्होंने कुछ दिनों सरकारी नौकरी भी की। संगीत का अध्ययन अधिकांश स्वतंत्र रूप से ही किया था। अंतिम दिनों में आप कूचबिहार जाकर रहने लगे और वहीं आपका भौतिक शरीर इस मृत्यु–लोक से विदा होगया।

★

कृष्णराव गणेश मुले

स्वर्गीय पं० कृष्णराव जी मुले संगीत शास्त्रकारों की श्रेणी में ही आते हैं। संगीत साहित्य का गहन अध्ययन, परम्परागत विद्या, परिश्रमी और चिकित्सक बुद्धि इन विशेषताओं के कारण आपने संगीत के क्षेत्र में ख्याति पाई। एक उच्चकोटि के विद्वान एवं महान् कलाकार के लिए जो गुण अपेक्षित हैं, वे सभी गुण पं० कृष्णराव मुले में पाये जाते थे। संगीत और रसिकता का सम्मिश्रण उनके जीवन में भली प्रकार पाया जाता था। आप महाराष्ट्रीय विद्वान थे।

१६ दिसम्बर १८६४ ई० आपका जन्म दिवस बताया जाता है। प्रारम्भ में आप श्री अन्ना साहेब के संरक्षण में रहे किन्तु संगीत की शिक्षा आपको स्व० गणपतराव जी आप्टे द्वारा प्राप्त हुई, जिनकी १२ वर्ष तक सेवा करके आपने संगीत कला अर्जित की। आपके गुरुदेव गणपतराव जी संगीत जगत के अनमोल रत्न स्व० बाबा दीक्षित के शिष्य थे। इस प्रकार पं० कृष्णराव एक सुयोग्य गुरु द्वारा शिक्षा पाकर, संगीत कला में प्रवीण होकर "दादा बीनकार" के नाम से विख्यात हुए।

कुछ समय बाद संगीत शास्त्र का गहन अध्ययन करके आपने संगीत संबंधी विभिन्न लेख तैयार किये। आपका कहना था कि ताल के कारण ही भारत में राग-रचना सम्भव हुई, एवं आप यह भी पूर्ण विश्वास के साथ कहा करते थे कि "हमारा भारतीय संगीत साहित्य अरब या ईरान से नहीं आया, अपितु वह मूल रूप से भारतीय ही है।" आपने एक पुस्तक 'भारतीय-संगीत' नाम से लिखी जिसे यशोधर चिंतामणि ट्रस्ट ने पुरस्कृत करके आपको सम्मानित किया। इस ग्रंथ में सामवेदकालीन संगीत से लेकर भरत मुनि के

संगीत काल तक का विशद विवरण प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत पर भी आपने अपने इस ग्रंथ में यथेष्ट प्रकाश डाला है। इसी ग्रंथ के दूसरे भाग में भरत के पश्चात का वह विवरण पाया जाता है, जिसमें संगीत को एक क्रांतिकारी वातावरण में होकर गुजरना पड़ा था। इस दूसरे भाग में अर्वाचीन और तत्कालीन संगीत की व्याख्या की गई है। तीसरे भाग की सामिग्री भी आपने बहुत कुछ तैयार कर डाली थी किन्तु आपके जीवनकाल में वह भाग प्रकाशित न हो सका।

स्वयं गुणी और कलाकार होने के कारण आपका सम्पर्क उत्तमोत्तम गुणी जनों से रहता था। लगभग दो साल तक प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खां और चुन्ना बाई के साथ आपका सम्पर्क रहा। मियां निसार हुसेन, श्री एकनाथ पंडित और शंकर पंडित जैसे गुणीजनों के सत्संग का आपने यथेष्ट लाभ प्राप्त किया था। आपका कंठ मधुर, सुरीला और रसीला था। एक पेशेवर संगीतज्ञ की तरह आपने बैठकों में भाग लेकर पैसा कमाने को विशेष महत्व नहीं दिया। अपितु आप अपने समय का अधिक भाग भारतीय संगीत के अध्ययन और संगीत शास्त्रों के स्वाध्याय में ही गाया करते थे। आपकी संक्षिप्त जीवनी अमेरिका की "एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ग्रेट पीपुल ऑफ दि वर्ल्ड" नामक ग्रंथ में प्रकाशित होने से पाश्चात्य जगत में भी आपका महत्व बढ़ गया।

मृत्यु शैया पर आप जब अंतिम श्वासें ले रहे थे तब आपके अन्दर कुछ ऐसी प्रक्रिया देखने में आई कि आप अपनी किसी इच्छा को व्यक्त करना चाहते हैं किन्तु बोल बन्द था, उङ्गलियों में कुछ कंपन और हलचल होकर ही रह गई। तब श्री जोगेलकर ने आपके कान में कहा कि आपकी पुस्तक 'भारतीय संगीत' के तीसरे भाग का जो मैटर पड़ा हुआ है उसे प्रकाशित करने की व्यवस्था हम करेंगे। आप अपने हृदय में शांति प्राप्त कीजिये! यह सुनते ही उनके चेहरे पर कुछ प्रसन्नता की झलक दिखाई दी तथा उङ्गलियों की हलचल भी बन्द होगई और थोड़ी देर बाद ही आप इस दुनियां से सदैव के लिये प्रस्थान कर गये।

★

जयदेव

'गीतगोविन्द' के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत जगत में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आपको उच्च स्थान प्राप्त है।

जयदेव कवि का जन्म बंगाल के केन्दुला ग्राम में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री मजीयदेव था। उस युग के वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध महात्मा श्री यशोदानन्दन के आप शिष्य थे। आपके गुरुजी व्रज में निवास करते थे।

बाल्यकाल में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण, अल्पायु में ही जयदेव घर-बार छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गये और वहां के पुरुषोत्तमधाम में निवास करने लगे। इसके पश्चात् आपने अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की और कुछ समय व्रजभूमि में भी भ्रमण किया। कुछ समय बाद आपका विवाह होगया और पत्नी के साथ आपने समस्त भारत का पर्यटन किया। तत्पश्चात् आपने 'गीत गोविन्द' नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ की रचना की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एक अमर कलाकृति है। इसके अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो हो ही चुके हैं; साथ ही, लेटिन, जर्मन और अँग्रेज़ी भाषाओं में भी इसके भाषान्तर हो चुके हैं। इससे भलीभांति विदित होता है कि यह ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण है।

जयदेव कवि गायन एवं नृत्य के भी प्रेमी थे, इसलिये 'गीतगोविन्द' में प्रत्येक अष्टपदी पर राग व ताल का निर्देश मिलता है। उनकी कविताएं आज भी वैष्णव मंदिरों में राग और ताल सहित गायी जाती हैं। दक्षिण के कुछ मन्दिरों में तो नृत्य के साथ आपकी अष्टपदी अभिनीत की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ-साथ भाव प्रदर्शन भी होता है। 'गीतगोविन्द' की मूल रचना संस्कृत में करके आपने कुछ सङ्गीत प्रबन्ध हिन्दी भाषा में भी रचे। इसका प्रमाण आपके बनाये हुए कुछ ध्रुवपदों द्वारा अब भी मिलता है।

कहा जाता है कि आप एक राज दर्बार में सम्मानपूर्वक रहते थे; किन्तु अपनी पत्नी (पद्मावती) के स्वर्गवास हो जाने के बाद, राजाश्रय छोड़कर अपने गांव में चले आये और कुछ समय तक साधु जीवन व्यतीत करते-करते अपनी जन्मभूमि में ही परलोकवासी होगये। उस गांव में आपकी एक समाधि है, जहाँ प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के दिन अब तक मेला लगता है।

★

जी० एच० रानडे

पूना के श्री गरणेश हरि रानडे अँग्रेज़ी और मराठी साहित्य के विद्वान होने के साथ साथ सङ्गीत कला के भी एक माने हुए कलाकार, लेखक तथा शास्त्रज्ञ हैं।

१ अक्टूबर १८९७ ई० को सांगली में आपका जन्म हुआ। आरम्भ में आपको अच्छी तरह से उच्चकोटि की स्कूली तालीम प्राप्त हुई, फलस्वरूप आपने बी० एस० सी० की परीक्षा पास करली और विलिंगटन कॉलेज सांगली में फ़िजिक्स के लैक्चरर नियुक्त होगये, फिर सन् १९४० के पश्चात् अब तक फर्गुसन कॉलेज पूना में यही कार्य कर रहे हैं। आपकी गायकी ग्वालियर घराने की है। आरम्भ में गायनाचार्य बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के शिष्य पं० गरणपतिबुआ भिलवडीकर तथा पं० गुंडोबुआ इंगले द्वारा आपको संगीत शिक्षा प्राप्त हुई।

मौखिक गायन के अतिरिक्त संगीत के शास्त्रीय ज्ञान में भी आप भली प्रकार पारंगत हैं। बम्बई सरकार ने १९४८-४९ में आपकी म्यूजिक एज़ूकेशन कमेटी के सैक्रेटरी पद पर नियुक्ति की। सन् १९५१ में ऑल इण्डिया कल्चरल कान्फ्रेंस के सङ्गीत विभाग के आप सदस्य नियुक्त हुए। "सङ्गीत नाटक अकादमी" के दस सदस्यों में आपका भी नाम है तथा इसी अकादमी द्वारा निर्मित "म्यूज़िक नोटशन कमेटी" में भी आपको लिया गया है। आकाशवाणी द्वारा आपके कई संगीत विषयक भाषण भी प्रसारित हो चुके हैं।

संगीत सम्बन्धी आपके अनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं तथा सन् १९३९ ई० में 'हिन्दुस्तानी म्यूज़िक' नामक एक अंग्रेज़ी की पुस्तक आपने लिखकर प्रकाशित की, जिसे विविध सङ्गीत विद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है। बम्बई यूनिवर्सिटी द्वारा अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशनार्थ आपको आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई थी। सन् १९३४

में एक मराठी पुस्तक "मंगीताचें आत्मचरित्र" भी आपने प्रकाशित की थी। इस प्रकार संगीत साहित्य की सेवा करते हुए भी आपका संगीताभ्यास बराबर चलता रहता है। आपका कहना है, "जिस दिन मैं संगीत का रियाज़ नहीं करता उस दिन ऐसा प्रतीत होता है मानो आज मैंने कोई भयंकर अपराध किया है।"

सङ्गीत कला को व्यवसायिक रूप मे प्रयुक्त न करते हुए, केवल सङ्गीतसेवी मनोवृत्ति रखते हुए ही गत २० वर्षों से आप इसकी सेवा कर रहे हैं। वर्तमान समय में आप ७२—सी० नरायन पेठ, पूना में निवास करते हैं।

★

तुलाजीराव भोंसले

आपने 'संगीत सारामृतोद्धार' नामक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में है तथा दाक्षिणात्य संगीत पद्धति का प्रतिपादक है। भाषा सरल व सुबोध है। इस ग्रंथ के सिद्धांत, वहां के १०० वर्ष पूर्व रचित ग्रंथों से काफी मिलते हैं, इसलिये इस ग्रंथ को विद्वान लोग दक्षिण पद्धति का सर्व-मान्य ग्रंथ कहते हैं।

तुलाजीराव भोंसले छत्रपति शिवाजी के वंशज थे। इनके पिता का नाम महाराज प्रतापसिंह था। पिताजी के स्वर्गवासी होने के बाद सन् १७६५ ई० में तुलाजीराव तंजौर की गद्दी पर बैठे। सन् १७७१ ई० में नवाब मौहम्मद अली ने इनको युद्ध में परास्त करके बंदी बना लिया। इसके पश्चात् किसी प्रकार अँग्रेजों की सहायता पाकर १७७३ ई० में पुनः इनको गद्दी वापिस मिल गई, परन्तु इन्हें अंग्रेजों का स्वामित्व स्वीकार करना पड़ा। इनके तीन पुत्र और तीन कन्याएँ हुईं, लेकिन समस्त संतति इनके जीवन काल में ही समाप्त होगई। सन् १७८६ ई० में आपका भी स्वर्गवास होगया।

तुलाजीराव अधिक पराक्रमी नहीं थे, किंतु कला—कौशल एवं विद्या के प्रगाढ़ प्रेमी थे। आपके समय में साहित्य तथा ललित कलाओं का समुचित विकास हुआ। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण आपने अनेक देवालय तथा धर्मशालाओं का निर्माण कराया और अपने जीवन में अनेक तीर्थ—यात्राएं कीं।

दत्तात्रय केशव जोशी

संस्कृत के अनेक संगीत ग्रंथों का सम्पादन कार्य करने वाले पं० दत्तात्रय केशव जोशी का नाम अनेक संगीत प्रेमी जानते होंगे। सन् १८९६ ई० में पूना के नूतन मराठी विद्यालय में आपने शिक्षणकार्य प्रारम्भ किया और इसी समय से आपने सङ्गीत कला का अध्ययन भी आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् सन् १९०५ ई० में आप पूना गायन समाज के सैक्रेटरी रहे। आपने स्वर्गीय गणपति बुआ भिलवडीकर से ७ वर्ष तक प्रत्यक्ष सङ्गीत का अभ्यास किया। सन् १९१२ में ग्वालियर घराने की चीजों की कुछ स्वरलिपियाँ संग्रह करके पं० भातखण्डे के पास पहुँचाई ।

हींगनघाट यूनिवर्सिटी में आपने दो वर्ष तक अवैतनिक रूप से विद्यार्थियों के समक्ष सङ्गीत शास्त्र पर भाषण दिये। वहाँ के सङ्गीत विषय के परीक्षक भी आप रहे थे। भातखण्डे लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ "क्रमिक पुस्तक मालिका" जो सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुई थी, उसका सम्पादन भी आपने किया था एवं लखनऊ के भातखण्डे संगीत महाविद्यालय में अवैतनिक रूप से दो वर्ष तक वायस प्रिंसीपल का कार्य तथा प्रत्यक्ष गायन की शिक्षा भी आपने दी थी। आपने 'रागकोष' तथा 'हिन्दुस्थानी संगीत प्रकाश' आदि पुस्तकें भी लिखी थीं।

आपकी जन्म तिथि का ठीक–ठीक पता नहीं लगता, किन्तु यह निश्चित है कि सन् १८६० ई० के आस–पास आप का जन्म हुआ था।

★

दत्तिल

पांचवीं शताब्दी के बाद के बहुत से ग्रन्थकारों ने इस ग्रन्थकार के नाम का उल्लेख किया है; परन्तु यह लेखक कब और कहां पैदा हुआ ? इस विषय पर कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। इस ग्रंथकार (दत्तिल) ने भी अपने ग्रंथ में पूर्वकालीन लेखक—नारद, कोहल और विशाखित के नामों का उल्लेख किया है, लेकिन इन लोगों का समय नहीं दिया अतः दत्तिल का काल भी निश्चित नहीं किया जा सकता। अनुमानतः हम इस ग्रन्थकार का समय चौथी या पांचवीं शताब्दि के आस-पास निश्चित कर सकते हैं।

संगीत के विषय पर "दत्तिलम्" नामक ग्रन्थ इसी ग्रन्थकार दत्तिल की रचना है। यह संस्कृत भाषा में एक छोटा सा ग्रन्थ ही है। इसमें ताल, स्वर और जाति का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। कुछ भी सही, इतने प्राचीन अर्थात् लगभग १५०० वर्ष पहिले के इस ग्रन्थ से हमें यह तो देखने को मिल ही जाता है कि उस काल में हमारा संगीत किस रूप में था।

दामोदर

'संगीतदर्पण' नामक संस्कृत ग्रंथ के रचनाकार पं० दामोदर ही थे। इस ग्रंथ में ६ अध्यायों के अन्तर्गत संगीत की व्याख्या की गई है। अध्यायों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रबंधाध्याय, वाद्याध्याय, तालाध्याय और नृत्याध्याय। इस ग्रंथकर्ता ने रागों का वर्णन देवताओं के स्वरूपों में किया है, जिनके द्वारा आज का संगीतकार कोई विशेष लाभ नहीं उठा सकता; हाँ श्रद्धावान तथा उपासक व्यक्तियों के लिये यह सामग्री लाभपद हो सकती है। इस ग्रंथकार ने स्वरों के रंग भी बतलाये हैं। परन्तु यह रंग तत्कालीन रागों के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होते। क्योंकि पं० दामोदर ने 'रत्नाकर' (१३ वीं सदी) के स्वराध्याय को लिया है और रागाध्याय किसी अन्य ग्रंथ से लिया हुआ मालूम होता है। रागाध्याय में १७ वीं सदी में प्रयुक्त होने वाले रागों का वर्णन है इसलिये १३ वीं सदी के स्वरों के रंग १७ वीं सदी के रागों के लिये नितान्त अनुपयुक्त हैं।

पं० दामोदर मुगल बादशाह जहाँगीर (१६२५ ई०) के समय में हुए हैं। उसी समय 'संगीत दर्पण' की रचना हुई। १७ वीं शताब्दी में संगीत पद्धति में काफी परिवर्तन होगये। श्रुति प्रमाण एक सा नहीं रहा। षड्ज और पंचम स्वरों को अचल (अविकृत) मान लिया गया। ऐसे युग में १३ वीं शताब्दी के स्वरों का विशेष महत्व नहीं रहा, फिर भी यह ग्रंथ संगीत-जिज्ञासुओं के लिये मनन की वस्तु है।

आपके पिता का नाम पं० लक्ष्मीधर था। इसके अतिरिक्त आपकी वंश परम्परा एवं निवास स्थान आदि के विषय में ठीक-ठीक पता नहीं लगता। आपके ग्रंथ का अनुवाद फारसी तथा गुजराती भाषाओं में हो चुका था और वर्तमान में इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

नवाब अली

राजा नवाब अली खां, अकबरपुर जिला सीतापुर के प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार व रईस थे। आपने लाहौर के उस्ताद काले खां से प्रारम्भिक संगीत शिक्षा ली। बाद में कुछ दिन उस्ताद नजीर खां व मुहम्मद अलीखां से भी सीखा। आपके खास मित्रों में से उस्ताद मुन्ने खां, कालिका बिन्दादीन महाराज तथा सादिक़ अली खां आदि प्रमुख हैं। राजा साहब स्वयं हारमोनियम बजाने का शौक़ रखते थे। और आठ वर्ष तक आपने सितार भी बजाया लेकिन उस्ताद बरकतुल्ला और इनायत खां का सितार वादन सुनकर आपको अपने सितार वादन से निराशा हो गई और सितार बजाना छोड़ दिया किंतु ध्रुपद, धमार गाने में आप बराबर प्रयत्नशील बने रहे। भातखंडे जी के आप मित्र और परम स्नेही थे।

रामपुर के उस्ताद मुहम्मद अली खां से आपने बहुत सी चीज़ें प्राप्त कीं और उन्हें "मारिफुन्नग़मात" पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया।

★

नारद-१

उपरोक्त नाम से संगीत के बहुत कुछ ग्रंथ लिखे गये हैं, जैसे—सारसंहिता, रागनिरूपण, पंचमसार संहिता, चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्‌आदि;परन्तु उन ग्रंथों का अध्ययन करने से सिद्ध होता है कि यह सब एक ही लेखक की रचनायें नहीं। सम्भव है इसी नाम के कई लेखक हुए हों अथवा यह एक गोत्र–वाचक नाम हो।

'नारद' के नाम से लिखा हुआ "नारदी शिक्षा" नामक ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है, परन्तु यह लेखक महर्षि नारद नहीं, बल्कि सामान्य कोटि का ही एक मनुष्य था। 'नारदी शिक्षा' एक छोटा सा ग्रंथ है। इसकी भाषा भी सरल ही कहनी चाहिये। संगीत के साथ–साथ लेखक ने इसमें कुछ सामवेद–कालीन बातों का भी उल्लेख किया है। यदि ईसवी सन की चतुर्थ शताब्दी तक के ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो 'श्रुति' शब्द का अर्थ "स्वर का भाग" दृष्टिगोचर नहीं होता, जो कि 'नारदीय शिक्षा' में दिया गया है। दत्तिल और भरत ने अपने ग्रन्थों में भी 'श्रुति' शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु उसके अर्थ भिन्न लिये हैं। अतः सिद्ध होता है कि यह ग्रंथकार अवश्य ही चतुर्थ शताब्दि के पूर्व हुआ होगा। नारदी शिक्षा में राग शब्द का भी प्रयोग किया गया है किन्तु रागलक्षणों का उल्लेख नहीं किया गया। राग शब्द का वर्तमान अर्थ उस समय सम्भवतः अस्तित्व में ही नहीं आया था। राग का विस्तृत विवेचन दसवीं शताब्दी के पश्चात् ही प्रकाश में आया है।

इस ग्रंथकार के जन्म स्थान, जन्म संवत एवं मृत्युकाल के सम्बन्ध में प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वर्तमान समय में इसकी पुस्तक 'नारदी शिक्षा' प्रकाशित भी हो चुकी है।

नारद-२

इस विद्वान ने 'संगीत मकरंद' नामक ग्रन्थ की रचना की । कोई-कोई अनुमान लगाते हैं कि यह आठवीं शताब्दि में हुआ होगा, किन्तु यह केवल अनुमान ही हो सकता है क्योंकि इसके ग्रन्थ में कुछ संस्कृत रागों के मुसलिम नाम दिये हुए मिलते हैं। इतिहास के मतानुसार संस्कृत राग नामों को मुस्लिम नाम देने की प्रणाली सोलहवीं सदी के बाद ही दृष्टिगोचर होती है, इसलिये यह ग्रंथकार सोलहवीं शताब्दी के पूर्व का नहीं हो सकता। 'संगीत मकरंद' में स्वर, मूर्छना राग, ताल आदि विषयों को लिया गया है। पुरुष राग तथा स्त्री रागों की चर्चा भी की गई है। यह बात तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम काल तक के किसी ग्रंथ में दिखाई नहीं पड़ती। 'संगीत मकरंद' पर 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ की छाया भी दृष्टिगत होती है। इसमें 'माहुरी' नामक एक राग नाम भी मिलता है। इसी नाम को पुण्डरीक विट्ठल (१६ वीं सदी) ने अपने ग्रन्थ में 'सारङ्ग' राग के लिये प्रयुक्त किया है। इन सब कारणों से इसी मत की पुष्टि होती है कि उक्त ग्रन्थकार १६ वीं सदी के लगभग ही हुआ होगा। इसके अतिरिक्त इस विद्वान की वंश परंपरा एवं जन्म स्थान आदि के विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता।

★

पन्नालाल गुसाईं

"नादविनोद" नामक ग्रन्थ के लेखक श्री गुसाईं पन्नालाल जी के पूर्व पुरुषों की जन्म भूमि मुलतान के निकट उच्चनामी नगरी है सन् १८५७ की क्रान्ति में इनके खान्दान को बहुत हानि पहुँची थी उसके पश्चात यह दिल्ली में बस गये। आप सारस्वत ब्राह्मण गोस्वामी श्री रामलाल जी के सपुत्र थे।

एक सितार व वीणा वादक के रूप में गुसाईं पन्नालाल जी ने यथेष्ट ख्याति प्राप्त की। उस समय के आपके शिष्य नारायण प्रसाद 'बेताब' ने आपकी प्रशंसा में एक कवित्त लिखा था, जो इस प्रकार है:-

"काहु समय कृष्णाचन्द्र बांसुरी बजाई आप,
वेदन विख्यात सुनी केतक पुरानन में।
मोहे त्रैलोक्य भवन चौदह दिक्पाल नाग,
किन्नर गंधर्व मोहे पक्षी मृग कानन में।
शेष अरु महेश औ, सुरेश देव दनुज-मनुज,
मोहे मुनीन्द्र जती जो–जो लय ध्यानन में।
मोही गति देखी 'नारायण' प्रत्यक्ष आज,
पन्नालाल स्वामी की वीणा की तानन में।

गत तोड़ों की बजन्त के लिये आप विशेष प्रशंसनीय थे। हाथ बड़ा तैयार और बजाने का ढङ्ग बड़ा आकर्षक था। वादन शैली भी बड़ी प्रशंसनीय थी। इन विशेषताओं के साथ–साथ आप बड़े सरल हृदय और मिलनसार तबियत के थे।

सन् १८९५ ई० में आपने 'नाद–विनोद' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें ६ राग ३० रागनी की प्राचीन स्वरलिपि पद्धति द्वारा विवेचना की गई है तथा बहुत सी स्वरलिपियां भी दीगई हैं। लगभग ४८० पृष्ठ का यह विशाल ग्रंथ उस समय में प्रकाशित करके आपने यथेष्ट ख्याति प्राप्त की थी। श्री पन्नालाल गोस्वामी एक उच्चकोटि के वक्ता भी थे। श्रोताओं पर आपके भाषणों का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता था। तत्कालीन कतिपय विज्ञ जनों के कथनानुसार यह भी प्रमाण मिलते हैं कि आप साधु अवस्था में रहा करते थे। कुछ भी सही, संगीत के क्षेत्र में आपके द्वारा की गई सेवायें स्मरणीय हैं। आपके सुपुत्र श्री चुन्नीलाल गुसाईं का नाम भी 'नाद विनोद' ग्रन्थ में पाया जाता है। ★

पार्श्वदेव

उक्त ग्रंथकार ने 'संगीतसमयसार' ग्रन्थ की रचना की है। इसमें पांचवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक की विवेचन पद्धति, विषय एवं प्रस्तुतीकरण आदि बातों का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है। पार्श्वदेव ने इस ग्रन्थ में चंदल वंश के १८ वें राजा परमर्दी का उल्लेख किया है। यह राजा ११६५ ई० में हुआ था। अतः इस ग्रंथकार का समय बारहवीं शताब्दी का अंत अथवा तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ हो सकता है। इसने अपने ग्रन्थ में 'बृहत् देशी' ग्रंथ के रचनाकार मतंग का भी उल्लेख किया है और मतंग का काल ग्यारहवीं शताब्दी में माना गया है, अतः इस युक्ति से भी सिद्ध होता है कि पार्श्वदेव बारहवीं सदी के अंत में अथवा तेरहवीं सदी के प्रारम्भ में हुआ। इसके निवासस्थान अथवा जन्मस्थान के विषय में ठीक-ठीक पता नहीं लगता।

किन्तु स्वर्गीय श्री कृष्णमाचार्य के कथनानुसार श्रीकंठ गोत्रीय आदि देव आपके पिता और गौरी आपकी माता का नाम था। पार्श्वदेव की एक विरदावली से यह भी पता चलता है कि इनको दो उपाधियां १-"श्रुतिज्ञान चक्रवर्ती" २-"संगीताकर" प्राप्त हुई थीं, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आप संगीत शास्त्र में पारंगत होने के साथ-साथ प्रत्यक्ष गायन-कला में भी दक्ष थे।

★

प्रो० साम्बमूर्ति
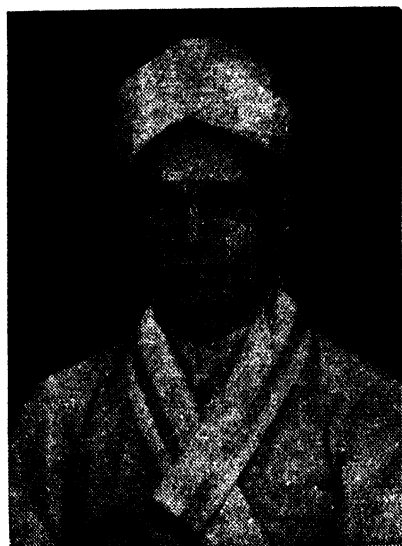
यह एक ऐसे व्यक्ति की जीवनी है, जिसका न तो किसी धनिक परिवार में ही जन्म हुआ और न जिसकी पीठ पर कोई प्रभावशाली व्यक्ति ही था। फिर भी कठिन परिश्रम, कर्तव्य की लगन और ईश्वर में विश्वास के कारण आपने संगीत के क्षेत्र में एक मुख्य स्थान प्राप्त किया।

प्रो० साम्बमूर्ति एक ऐसे कलाकार हैं, जिनमें बहुत से गुण एक साथ पाये जाते हैं। वे एक सफल संगीत शास्त्रकार, कवि, गायक, और तीन प्रकार के वाद्य बांसुरी, बेला, और प्रदर्शन वीणा बजाने वाले हैं। यह अन्तिम वाद्य आपका स्वयं का आविष्कार है। आपने अँग्रेजी, तामिल और तैलगू भाषा में कर्नाटक संगीत की बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, अतः संगीत-शास्त्रकारों में आपका एक विशेष स्थान है। आप पाँच भाषाओं के विद्वान हैं—तामिल, तैलगू, संस्कृत, इंगलिश और जर्मन। यद्यपि आपकी मातृ-भाषा तामिल है, तथापि अन्य भाषाओं का ज्ञान भी इन्होंने इसलिये प्राप्त किया, ताकि आप इन भाषाओं की अच्छी पुस्तकों का मनन कर सकें।

१४ फरवरी सन् १६०१ ई० को साम्बमूर्ति का जन्म दक्षिण भारत की तामिल भाषी ब्राह्मण जाति में हुआ। आपके पिता का नाम श्री पीचू अय्यर था, वे रेलवे में स्टेशन मास्टर थे। जब आप केवल चार वर्ष के ही थे कि आपके पिताजी का स्वर्गवास होगया, फिर इनकी माताजी ने सावधानी पूर्वक इनका पालन-पोषण किया। वे इन्हें विभिन्न धार्मिक कथा सुनाया करती थीं और बहुत से गीत भी इन्हें याद करा दिये थे, उन गीतों के कारण विवाह के अवसरों पर प्रायः बालक साम्बमूर्ति को गाने के लिये लोग अपने यहां बुलाया करते थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आर्य पाठशाला मदरास में

हुई यहां एक अध्यापक जो अच्छे गायक थे धार्मिक भजन गाया करते थे। साम्बमूर्ति को भी इन भजनों के गाने की प्रेरणा मिली। सन् १६१० ई० में आप हाईस्कूल में दाखिल हुए और छात्रवृत्ति पाते हुए १६१६ ई० में उत्तीर्ण होगये। पाठशाला में वार्षिक उत्सव होते थे, उनमें इनकी कविता, बांसुरी या बेला-वादन अवश्य होता। इन्टर पास करने के पश्चात प्रेसीडैन्सी कालेज मद्रास में आपने बी० ए० पास किया। जुलाई सन् १६२२ ई० में आपका विवाह होगया।

संगीतकला का अध्ययन आपने १२ वर्ष की आयु से ही प्रारम्भ करदिया था। शुरू में मिस्टर वौद्दू कृश्नियां ने आपको बेला सिखाने का कार्य उदारतापूर्वक स्वीकार कर लिया, फिर एक वर्ष बाद कृष्णामूर्ति से बांसुरी वादन की शिक्षा प्राप्त की और उसमें प्रगति करने लगे। शाम के समय अपनी बांसुरी लेकर समुद्र के किनारे चले जाते और वहां खूब रियाज़ करते। बांसुरी शिक्षा की बहुत सी बातें आपने प्रसिद्ध बांसुरी वादक वेंकटरामा शास्त्री से भी प्राप्त कीं। १६२४ ई० में आप पादरी एच० ए० पोपले के सम्पर्क में आये। उन्होंने आपको अपनी ग्रीष्मकालीन पाठशाला में भारतीय गान विद्या का शिक्षण कार्य दिया और इसी पाठशाला के आप १६२७ में अध्यक्ष बन गये।

बीच में एकबार आपका विचार कोई सरकारी नौकरी प्राप्त करने का हुआ, तब पोपले साहब ने आपको एक परिचय पत्र मद्रास सरकार के विकास विभाग के मंत्री E. W. Lay को लिख दिया। साम्बमूर्ति उस पत्र को लेकर ले० साहब से मिले तो उन्होंने कहा—"मेरे प्रिय नवयुवक मैं इसी समय तुमको एक क्लर्क की जगह दे सकता हूं किन्तु मेरी इच्छा है कि तुम गंभीरता-पूर्वक एकबार फिर सोचो कि जब तुम्हारे अन्दर संगीत कला के सब गुण विद्यमान हैं तो क्या तुम एक क्लर्क बनने के बजाय संगीत के क्षेत्र में अधिक यश और मान प्राप्त नहीं कर सकते ? साम्बमूर्ति ने उनकी यह बात ध्यानपूर्वक सुनी और उन्हें धन्यवाद देकर चुपचाप चले आये। ले साहब के उक्त शब्द इनके हृदय में चुभ गये और इन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो मैं संगीतकला के क्षेत्र को ही ग्रहण करूंगा।

इसके पश्चात् पोपले साहब की सम्मति से साम्बमूर्ति को कई विद्यालयों में संगीत शिक्षक के पद प्राप्त हुए। १६२८ ई० में क्वीनमैरी कॉलेज और दूसरे वर्ष लेडी विलिंग्टन ट्रेनिंग कालेज में म्यूज़िक के लेक्चरर नियुक्त हुए।

सन् १६२८ के पश्चात् साम्बमूर्ति ने व्यावसायिक रूप में संगीत का कार्य छोड़ दिया और पढ़ाने के कार्य में अपना समय लगाने लगे।

जर्मनी की "डच अकादमी" ने साम्बमूर्ति को म्यूज़िक में योरोपीय संगीत का अध्ययन करने के लिये एक छात्रवृत्ति प्रदान की। अतः सन् १६३१ के अप्रैल में आप योरोप के लिये रवाना होगये। इस यात्रा से आपका जीवन ही बदल गया। वहाँ आपने विभिन्न विद्वानों से बेला, बांसुरी एवं हार्मनी का विशेष ज्ञान प्राप्त करते हुए पाश्र्व सङ्गीत की विशेषताओं का अध्ययन किया। भारतीय संगीत पर भाषण देने के लिये दो बार आपको बर्लिन में बुलाया गया। इसके अतिरिक्त आपने इटली, फ्राँस, बेलजियम, हॉलैंड, इंगलैंड, स्कॉटलैंड, जुगो-स्लाविया, हंगरी, स्वीडन और ऑस्ट्रेलिया का भ्रमण किया तथा अनेक स्थानों पर भारतीय संगीत की महत्ता पर व्याख्यान दिये। इससे आप विदेशों में खूब चमके और फिर अप्रैल सन् १६३२ ई० में भारत लौट आये। यहां आपने पुस्तक लेखन का कार्य आरम्भ किया। आपकी मुख्य-मुख्य पुस्तकों के नाम निम्नलिखित हैं:—

1. A Dictionary of South Indian Music and Musicians. 2. Indian melodies in staff notation. 3. The teaching of Music. 4. South Indian Music (Four-Parts). 5. The flute. 6. Great Composers. 7. Mode-Shift tone etc. etc.

आपकी कई पुस्तकें दक्षिण भारतीय विश्वविद्यालयों की संगीत परीक्षाओं के कोर्स में स्वीकृत हैं।

योरोप प्रवास के समय आपने ऑरकेस्ट्रा संगीत तथा उसकी रचना विधि का भी भली प्रकार अध्ययन किया और भारत आकर आपने उस ज्ञान से काम लेकर भारतीय वृन्दवादन (Orchestra) में सुधार करके उसमें कुछ विशेषताओं का समावेश किया। मद्रास विश्वविद्यालय के सन् १६३३ तथा ३५ के दीक्षान्त समारोहों पर आपको ऑरकेस्ट्रा वादन के लिये विशेष रूप से बुलाया गया वहां भारतीय और योरोपियन दोनों ने आपकी बहुत प्रशंसा की। विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय-समय पर उपाधियां भी प्राप्त हुईं उदाहरणार्थ—"गन्धर्व वेद विशारद" तथा "संगीत कला सिख मणि"। गत १ जनवरी १६५४ को भारत के उपराष्ट्रपति

डा० राधाकृष्णनन ने आपको संगीत शास्त्र प्रवीण की उपाधि देकर सम्मानित किया। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा Academy of Dance Drama and Music के विधान समिति के आप सदस्य बने।

प्रो० साम्बमूर्ति के शिष्य भारतवर्ष तथा सीलोन के कई स्थानों में विद्यमान हैं जिनमें से कुछ तो कॉलेजों में संगीताचार्य (Lecturer of Music) हैं तथा संगीत विद्यालयों के प्रधान अध्यापक हैं। आपके कुछ शिष्य फिल्म स्टार, प्लेबैक गायक हैं तो कुछ रेडियो में भी काम कर रहे हैं। इस प्रकार वे आपके द्वारा प्राप्त हुई संगीत कला से यश व अर्थ प्राप्त करते हुए संगीत संसार की सेवा कर रहे हैं।

★

पुण्डरीक विट्ठल

सद्रागचंद्रोदय, रागमंजरी, रागमाला और नृत्य निर्णय प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थों के रचयिता पं० पुण्डरीक विट्ठल बड़े चतुर, प्रतिभाशील और यशस्वी लेखक हुए हैं। आपका निवास स्थान मद्रास प्रान्त के रामानाऊ जिले में स्थित 'सात्तनूर' ग्राम है। यह जमदाग्नि गोत्री ब्राह्मण थे। यहीं पर आपने संस्कृत एवं संगीत विद्या का अभ्यास किया था। भली-भांति प्रवीणता पाने के बाद आप जीविकोपार्जन तथा यश प्राप्ति का उद्देश्य लेकर १५७० ई० के लगभग उत्तर भारत की ओर बढ़े। सर्व प्रथम यह बुरहान पहुँचे। यह नगर उस समय खानदेश राज्य की राजधानी था और वहां फरुर्खी वंश के राजा राज्य करते थे। यह राजा बड़े गुणग्राहक तथा कला-कौशल के प्रेमी थे, अतः पुण्डरीक विट्ठल को यहाँ सुगमता पूर्वक राजाश्रय प्राप्त होगया। इसी स्थान पर राजाज्ञानुसार आपने सर्व प्रथम 'सद्रागचंद्रोदय' की रचना की। उस समय संगीत की थ्योरी (शास्त्र) तथा प्रचलित संगीत पद्धति में विभिन्नता थी शास्त्र तथा प्रचार में साम्य लाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में फरुखी वंश के राजाओं अहमदखां, ताजखां आदि की तारीफ लिखी गई है।

उन दिनों अकबर बादशाह के कलाप्रेमी होने की चर्चा ज़ोरों पर थी। पुण्डरीक विट्ठल ने भी इस चर्चा को सुना और अकबर बादशाह तथा उसके दर्बार को देखने की इच्छा जागृत हुई। इस इच्छा-पूर्ति के उद्देश्य से विट्ठल जी अकबर के भतीजे, जयपुर के राजा मानसिंह के आश्रय में पहुँच गये। राजा मानसिंह के द्वारा इनकी इच्छा पूरी होगई। अकबर बादशाह के साथ-साथ उसके नवरत्न, दर्बारी गुणीजनों से भी पुण्डरीक का परिचय होगया। जयपुर में रहते हुए मानसिंह की आज्ञानुसार पुण्डरीक ने अपने द्वितीय ग्रन्थ 'राग मंजरी, की रचना की, इस पुस्तक के प्रारम्भ में भी मानसिंह और उसके पिता तथा बादशाह अकबर की प्रशन्सा की गई है।

शनैः शनैः इस विद्वान की कीर्ति मुखरित होने लगी और यह बादशाह अकबर की श्रद्धा का पात्र भी बन गया। अकबर की आज्ञानुसार भी क्रमानुसार इसने दो ग्रन्थ' रागमाला' तथा 'नृत्य निर्णय' लिखे। यह श्री पुण्डरीक की अन्तिम रचना थी, इस कार्य के पश्चात् यहीं इनकी मृत्यु होगई, ऐसा विद्वानों का मत है।

★

प्रभूलाल गर्ग

बहुत कम व्यक्ति यह जानते होंगे कि हास्यरस की कविताओं के सफल लेखक हास्यरसावतार "काका" कवि और 'संगीत' मासिक पत्र के संचालक व संस्थापक श्री प्रभूलाल गर्ग एक ही व्यक्ति हैं। मानव की विशेषता के प्राय: दो रूपों में दर्शन होते हैं; एक किसी गुण विशेष की अधिकता में और दूसरे विभिन्न प्रकार के गुणों के विकास की जीवनी शक्ति में। गर्ग जी का जीवन दूसरे प्रकार की विशेषताओं का उदाहरण है, जिसमें अनेक गुणों का समुच्चय पाया जाता है। दुख, गरीबी और कठिनाइयों के संघर्षमय वातावरण में आपका जीवन विकसित हुआ है, फिर भी आपने संगीत के प्रकाशन क्षेत्र में जो आशातीत सफलता प्राप्त की है, उसका भारतवर्ष में अन्यत्र उदाहरण नहीं मिलता।

आपका जन्म १८ सितम्बर १९०६ ई० को हाथरस में हुआ था। अभी आप केवल १५ दिन के शिशु ही थे कि आपके पिता श्री शिवलाल जी का स्वर्गवास होगया। इस संकटकाल में आपकी माताजी की दशा अत्यन्त शोचनीय होगई। टूटे-फूटे एक मकान के अतिरिक्त पिताजी ने विशेष संपत्ति छोड़ी नहीं थी, अत: माताजी को बच्चों की परवरिश में बड़ी कठिनाई पड़ने

लगी। गर्गजी के मामा हाथरस के निकट ही इगलास नामक कस्बे में रहते थे, उन्होंने ही इस संकटकालीन स्थिति में इस परिवार की सहायता की।

सवेरे एक समय रोटियां बनती थीं, उन्हीं को शाम को भी खालिया करते थे। पूड़ी–परांवठे या दूध दही के दर्शन तो जब तब किसी विशेष त्यौहार पर ही होते थे।

लगभग १० वर्ष की आयु में शिक्षा प्राप्त कराने आपके मामाजी इन्हें इगलास लेगये, वहां ४ वर्ष तक रहने के पश्चात् आप हाथरस आगये। शिक्षा क्रम और आगे बढ़ाने के लिये पैसा नहीं था, अतः १४ वर्ष की आयु में ही ६) रुपये माहवार की नौकरी करनी पड़ी। नौकरी के साथ ही साथ आप हिन्दी–अँग्रेजी तथा उर्दू का अभ्यास भी करते रहे। कुछ समय बाद संयोग से एक मित्र रंगीलाल जैन की सहायता से चित्रकला व संगीत में अभिरुचि उत्पन्न हुई अतः आप चित्र बनाते और फिर उसे सामने रखकर वंशी बजाते हुए स्वान्तः सुखाय का अनुभव करते।

सन् १९२८ में नौकरी छूट जाने पर घर में चिंता हुई कि अब कैसे गुज़ारा हो? भाग्य ने करवट बदली, दैवयोग से एक मित्र पं० नन्दलाल शर्मा से परिचय हुआ। शर्मा जी हारमोनियम, तबला बजाना जानते थे और गर्गजी बांसुरी बजाते थे; दोनों ने मिलकर तय किया कि एक पुस्तक हारमो–नियम तबला तथा बांसुरी की शिक्षा लिखी जाय। लेखन कार्य शुरू होगया, फलस्वरूप "म्यूज़िक मास्टर" पुस्तक तैयार होकर प्रकाशित होगई। इस पुस्तक के विज्ञापन जब विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में कराये गये तो आशातीत सफलता मिली। संगीतप्रेमी जनता ने इस पुस्तक का दिल खोल कर स्वागत किया जिसके परिणाम स्वरूप इसके १४ संस्करण हुए।

इस कार्य के साथ–साथ गर्ग जी अपना संगीताभ्यास भी बढ़ाते रहे। उन दिनों हाथरस में एक वयोवृद्ध कलाकार "कुँवर श्याम" रहते थे, उनसे आप संगीत शिक्षा प्राप्त करने लगे। कंठ निर्बल होने के कारण गायन का रियाज़ तो आगे न बढ़ सका, किन्तु अपनी लगन और परिश्रम के द्वारा संगीत के शास्त्रीय विवेचन (थ्योरी) का ज्ञान आपने भली प्रकार अर्जित कर लिया। उन्ही दिनों हाथरस के कुछ उत्साही नवयुवकों ने एक नाट्य क्लब

स्थापित करके ड्रामा खेलने का आयोजन किया, जिसमें गर्ग जी हास्याभिनय किया करते थे। हास्यरस की भूमिका आप इतनी सफलता से निभाते थे कि स्टेज पर पदार्पण करते ही जनता द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट से आपका स्वागत होता था। एक सामाजिक प्रहसन में आपको 'काका' का पार्ट दिया गया जिसे आपने इतनी कुशलता से अदा किया कि तब से बहुत से व्यक्ति आपसे 'काका' कहने लगे। फिर 'काका' उपनाम से आप हास्यरस की कविताएँ भी लिखने लगे और कवि संमेलनों में भी भाग लेने लगे। इस प्रकार शीघ्र ही आप 'काका' कवि के नाम से लोकप्रिय होगये। आगे चल कर आपकी तीन पुस्तकें—'काका' की कचहरी, पिल्ला और म्याऊँ प्रकाशित हुईं जिनका विनोदप्रिय जनता ने मुक्त हृदय से स्वागत किया।

'काका' का हास्याभिनय देखने को लोग उत्सुक रहते, 'काका' के नाम से टिकटें चुटकियों में बिक जातीं एवं कवि संमेलनों में जहां 'काका' के आगमन की सूचना मिलती तो अपार भीड़ हो जाती। इस प्रकार लोकप्रिय 'काका' आकाशवाणी, नाट्यमंच, कविसंमेलन तथा सामाजिक समारोहों में भाग लेकर जनता के खिलौना बन गये।

जनवरी १६३५ ई० में आपने मासिक पत्र 'संगीत' का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। कला प्रेमी जनता का सहयोग पाकर यह पत्रिका दिनों दिन उन्नति पथ पर अग्रसर होती गई। द्वितीय महायुद्ध की चिनगारियों के फल-स्वरूप जब पत्र-पत्रिकाओं पर भी संकट के बादल मँडराने लगे तो 'संगीत' भी इससे अछूता न रह सका। कागज कन्ट्रोल के अन्तर्गत एक सरकारी आर्डर जारी हुआ कि "मासिक पत्रिकाओं में ७० प्रतिशत पृष्ठ कम करके केवल ३० प्रतिशत ही रखने होंगे"। उन दिनों 'संगीत' लगभग ४४ पृष्ठों का निकलता था। इस आज्ञा के कारण 'संगीत' केवल १४ पृष्ठों का रह गया। इस घटना पर 'काका' ने मार्मिक चुटकी लेते हुए लिखा था:—

पढ़ने से लड़ना भला, राज करें अँगरेज।
इसीलिये 'संगीत' में रह गये चौदह पेज॥
रहगये चौदह पेज यही "बाबा" की मर्ज़ी।
खबरदार कुछ कहा ! फाड़ डालूंगा अर्ज़ी॥
कहँ 'काका' कविराय, अरे इन्सानी पत्थर।
सौ में रहगये तीस, खागये 'बाबा' सत्तर॥

अँग्रेजी शासन की खरी आलोचना करते हुए उस समय आपकी कई व्यंगपूर्ण कविताएँ भारत के अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इसके पश्चात् आपने संगीत के विशेषांकों तथा अन्य ग्रन्थों का सम्पादन तथा प्रकाशन किया। आपके "संगीत-सागर" नामक ग्रन्थ के अब तक ५ संस्करण हो चुके हैं। सन् १९५४ में आपने 'वसंत' उपनाम से 'संगीत विशारद' नामक एक पुस्तक लिखी, जिसका संगीत के विद्वानों तथा विद्यार्थियों द्वारा अच्छा स्वागत हुआ।

संगीत के क्षेत्र में आपने जो कार्य किया है, उसका अध्ययन करने के पश्चात् आपको श्री भातखंडे की प्रतिमूर्ति कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि वर्तमान संगीत एवं शास्त्रीय संगीत को भावी पीढ़ी के लिये गतिमान रखने के हेतु आपने अब तक लगभग ८० ग्रन्थों का प्रकाशन करके भारतीय संगीत के क्षेत्र में जागृति उत्पन्न करदी है। उक्त ग्रंथों में संस्कृत, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती और उर्दू के कुछ ऐसे दुर्लभ ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद भी सम्मिलित है जो अप्राप्य हो चुके थे और जिनके पुनर्मुद्रण का साहस अब तक कोई भी नहीं कर सका था। आज भारतवर्ष के अतिरिक्त पाकिस्तान, बर्मा, सीलोन, मलाया, फिजी, अफ्रीका, इङ्गलेंड, अमेरिका, रूस आदि देशों में भी मासिक 'संगीत' और आपकी पुस्तकों के पाठकों की संख्या उत्साहवर्धक है।

यह सब गर्ग जी के कठिन परिश्रम, शुद्ध व्यवहार, सत्य निष्ठा तथा प्रभु की कृपा का ही फल है कि केवल अस्सी रुपये से आरम्भ होने वाले "संगीत कार्यालय" की आर्थिक स्थिति आज अस्सी हजार से भी आगे पहुँच गई है और निरंतर उन्नति के लक्षण ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं; दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संगीत ग्रंथों के हिन्दी प्रकाशन में भारतवर्ष में "संगीतकार्यालय" ने अपना एकाधिकार (Monopoly) प्राप्त करलिया है।

कुछ समय से आप अपने समय का अधिक भाग काश्मीर आदि पहाड़ी स्थानों की सैर में व्यतीत करने लगे हैं और वर्ष में लगभग ४ मास हाथरस से बाहर रहकर चित्रकला, काव्य और संगीत की त्रिवेणी का आनन्द लेते रहते हैं। आपने लगभग ४० प्रसिद्ध संगीतज्ञों के तैल चित्र भी स्वयं तैयार किये हैं। आज कोई अपरिचित व्यक्ति जब गर्ग जी की हास्यरस की कविता, संगीत के ग्रन्थ एवं कलात्मक चित्रों का अवलोकन करता है तो उसे यकायक विश्वास नहीं होता कि इन सब कलाओं का उद्गम इस दुबले-पतले

एक ही व्यक्ति के मस्तिष्क से हो सकता है। आपकी संगीत सम्बन्धी वार्ता व हास्य कविताऐं लखनऊ तथा दिल्ली रेडियो स्टेशन से प्रसारित होती रहती हैं। आपके बड़े भ्राता श्री भजनलाल गर्ग अपने सात्विक जीवन तथा साधु सत्संग का लाभ अपने छोटे भाई को देते हुए पुत्रवत् स्नेह रखते हैं एवं आपकी वृद्धा माता जिन्होंने अपने संघर्षमय जीवन के दोनों पहलुओं का सुख-दुख उठाया है, आज भी मौजूद हैं। ये सब जब कभी एकान्त में बैठकर अतीत का स्मरण करते हैं तो भावावेष में कंठ अवरुद्ध होजाता है।

इस समय गर्ग जी की आयु ५० वर्ष के लगभग है। शारीरिक ढांचा दुबला-पतला होते हुए भी आप अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करते हैं और अपना समस्त दैनिक कार्य, समय की पाबंदी निभाते हुए नियमानुसार करते हैं। इस आयु में भी नित्य-प्रति ४-५ मील टहलना और एक मील की दौड़ लगाना जारी है। संगीत कार्यालय का कार्य, संगीत प्रेस का प्रबन्ध तथा 'संगीत' मासिक का सम्पादन आजकल आपके सुपुत्र (प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक) लक्ष्मीनारायण गर्ग द्वारा सुचारु रूप से होरहा है।

★

फीरोज फ्रामजी

पूना के प्रसिद्ध संगीत शास्त्री पंडित फीरोज फ्रामजी का जन्म १९ फरवरी सन् १८७८ में बम्बई शहर में हुआ। जब आप केवल ३ माह के शिशु थे, आपके पिताजी स्वर्गवासी होगये, अतः बाल्यकाल में इनका पालन-पोषण इनके मामा द्वारा हुआ।

बचपन से आपको गाने का बहुत शौक था। जब इनकी आयु केवल ९ वर्ष की थी तभी से आप संगीत के जलसों तथा अन्य गायकों के प्रोग्रामों में गाना सुनने की दिलचस्पी रखने लगे थे। १२ वर्ष की उम्र में आपने 'फिडल' बजाने का अभ्यास शुरू किया। जेब खर्च के लिये जो पैसे मिलते थे, उनको यह अपनी संगीत शिक्षा में ही खर्च करने लगे।

१८९३ ई० में इन्होंने मैट्रिक का इम्तहान दिया और उसमें पास होने के बाद २५) मासिक वेतन पर अध्यापन का कार्य आरम्भ कर दिया। इसके बाद अदालत का काम भी सीखना शुरू किया, किन्तु कई अड़चनों के कारण उसमें सफलता न मिल सकी।

संगीत का शौक़ लग जाने के कारण आप कोई भी जलसा तथा नाटक कम्पनी का खेल देखे बिना नहीं रहते थे। इसके लिये घर वाले इनके ऊपर नियन्त्रण रखते थे, फिर भी आप रात के दस बजे बाद घर से चुपचाप खिसक जाते और सवेरे दूध के साथ दूध के बहाने चुपचाप घर में लौट आते।

सन् १८९५ ई० में आपका विवाह होगया, फिर जमशेद जी ब्रोगा की कम्पनी में ४०) मासिक पर आप रावलपिंडी चले गये; किन्तु वहां का जलवायु अनुकूल न होने के कारण आप अस्वस्थ रहने लगे, अतः उसी वर्ष बम्बई वापिस आगये। कुछ समय तक बम्बई में रहने के बाद पूना में आकर आपने जापानी वस्तुओं की एक दुकान खोली, किन्तु उसमें लाभ न होने के कारण दुकान बन्द करनी पड़ी। इसके पश्चात् एक और दुकान पर ३०) रुपये मासिक की नौकरी पर रहे, किन्तु इतने थोड़े वेतन में दो बालकों का और घर का खर्च न चलने के कारण यह नौकरी भी छोड़नी पड़ी।

उन दिनों पूना में मैसर्स नवरोजी साहेब मेल कन्ट्राक्टर थे, उन्होंने पंडित जी को वाठार स्टेशन से महाबलेश्वर तक डाक ले जाने का काम सौंप दिया। वेतन भी उचित मिलने लगा। महाबलेश्वर में ही आप विशेष रूप से रहने लगे। वहां पर सितार वादक ने एक जलसा किया। सितार सुनने का यह आपका पहला ही अवसर था, इसे सुनकर आप बहुत प्रभावित हुए अतः सितार सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई और सितार सीखने लगे तथा संगीत का शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त करने लगे।

सन् १९२२ में आपने संगीत की पुस्तकें लिखने और उन्हें प्रकाशित करने का कार्य शुरू किया। इनकी पहली पुस्तक सन् १९२६ में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् संगीत की थ्योरी तथा नोटेशन की हिन्दी भाषा में लगभग ३६ पुस्तकें आपने प्रकाशित कीं। पुस्तक लेखन काल में आप प्रातःकाल ३ बजे से लिखना शुरू कर देते थे और रात के बारह बजे तक परिश्रम करते थे। अति परिश्रम के फलस्वरूप यह बीमार होगये और धीरे-धीरे शक्ति भी क्षीण होने लगी, अन्ततोगत्वा ता० २१-२-१९३८ को आपका स्वर्गवास होगया।

संगीत कला की उन्नति में आपका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। स्वर्गीय भातखंडे की भांति आपने भी संगीत के ग्रन्थों की रचना करके अपना नाम अमर कर लिया है। अनेक रजवाड़ों से आपको पदवी और प्रशंसा पत्र भी प्राप्त हुये थे। नागपुर और मुरादाबाद कालिजों के संगीत विषयों के आप

परीक्षक थे और सितार व सुरसागर बहुत सुन्दर बजाते थे। पाश्चात्य संगीत के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। आपकी रचित पुस्तकों में निम्नांकित पुस्तकों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं:--

(१) सितार गत तोड़े संग्रह
(२) दिलखुश उस्तादी गायकी
(३) खयाल गायकी
(४) एनसाइक्लोपीडिया
(५) फीरोज राग सीरीज़
(६) तानप्रवेश
(७) हिन्दुस्थानी गायकी क्र० पु०
(८) भारतीय श्रुतिस्वर राग शास्त्र
(९) राग लक्षण गीत मालिका
(१०) हिन्दुस्थानी संगीत विद्या
(११) शास्त्रीय संगीतकला शिक्षक
(१२) संत गीत लहरी
(१३) संगीत श्रुति स्वर शिक्षा
(१४) राग शिक्षक
(१५) इंगलिश टैक्स्ट बुक

आपकी पुस्तकों का प्रकाशन कार्य पूना से आपके पुत्र प्र० फीरोज फ्रामर्जी सुचारु रूप से कर रहे है।

★

भरत

इनका काल ५०० ई० से भी पहले है। 'भरतनाट्य शास्त्र' इनके सिद्धांतों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इस पर अनेक विद्वान आचार्यों ने टीकाएँ की हैं। नाट्यशास्त्र के आदिम उपदेष्टा इन भरत के नाम पर सभी नट या अभिनेता भरत कहलाने लगे। 'अमरकोष' में भरत शब्द का अर्थ नट इसीलिये किया गया है। अभिनय व्यवसायी जाति का नाम ही भरत होगया था; ऐसे ही किसी भरत को मतंग ने अपना गुरु भी कहा है। इनका श्रुतिस्वर सिद्धांत एवं ग्राम भेद समस्त भारत में मान्य हुआ। दत्तिल, कोहल, मतंग, अभिनवगुप्त, हरिपाल, शार्ङ्गदेव एवं कुम्भ जैसे लेखक प्रधानतः भरत मतानुयायी ही थे। नाटक के सभी अङ्गों पर नाट्यशास्त्र में विचार किया गया है। भरत प्रतिपादित श्रुति सिद्धांत के आधार पर स्थित जातियों में समस्त लोक का संगीत निहित है। भरत के सिद्धांत सार्वभौम एवं सार्वदेशिक हैं। जातियों के निरूपण के अतिरिक्त भरत ने शुद्ध ग्राम रागों का नाम लेकर नाट्य में उनके प्रयोग के अवसर बताये हैं। वे सातों शुद्ध ग्राम राग, षड्ज ग्राम (राग विशेष), मध्यम ग्राम (राग विशेष), साधारित पंचम, कैशिक, शुद्ध षाडव और कैशिक मध्यम हैं। इन सातों शुद्ध रागों के लक्षण एवं उदाहरण पश्चात्वर्ती आचार्यों ने दिये हैं।

जाति अवस्था राग अवस्था में बदल जाने के कुछ कारणों पर भरतनाट्य शास्त्र में विचार किया गया है। महर्षि भरत ने अपने सौ पुत्रों को नाट्य वेद की शिक्षा दी। नाट्य के जिस अंग विशेष में जिसे रुचि थी, वह उसमें पारंगत हुआ। महर्षि भरत ने संक्षेप में जो कुछ कहा और जो उनके कहने से रह गया उसे स्पष्ट करने की आज्ञा अपने पुत्र कोहल को दी। उत्तर तन्त्र अथवा प्रस्तार तन्त्र के नाम से भरत सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन कोहल ने किया। शारदातनय ने 'पंच भारतीय' नामक एक ग्रंथ की चर्चा की है, जो भरत एवं उनके शिष्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का संग्रह रहा होगा।

महर्षि भरत ने चित्रा और विपंची नामक दो तन्त्री वाद्यों की चर्चा की है। चित्रा में सात तार होते थे, जो क्रमशः सातों स्वरों में मिलाये जाते थे। महर्षि भरत की वीणा मत्तकोकिला कही जाती है, जिसमें इक्कीस तारों पर तीनों सप्तक मिले रहते थे। भरत काल की वीणा में सारिकाएँ (परदे) नहीं होती थीं। प्रत्येक स्वर के लिये अलग–अलग तार होता था।

प्रसन्नता का विषय है कि भरतनाट्य शास्त्र की हिन्दी टीका संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा शीघ्र प्रकाशित होरही है, जोकि उसके सार्वभौम सत्य का उद्घाटन इस बीसवीं शताब्दी में कर सकेगी।

★

भावभट्ट

पं० भावभट्ट ने संगीत-विषय पर संस्कृत भाषा में जो ग्रन्थ लिखे थे, उनके नाम हैं—'अनूप संगीत विलास', अनूप संगीत रत्नाकर', 'अनूप संगीतांकुश' तथा 'मुरली प्रकाश'। इनमें से प्रारम्भिक ३ ग्रन्थों का प्रकाशन भी होगया है। आपने 'नष्टोदिष्ट प्रबोधक ध्रुपद टीका' व 'संगीत विनोद' की रचना भी की है।

ग्रंथों की भाषा से ध्वनित होता है कि पं० भावभट्ट संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। आपने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर पूर्वकालीन ग्रन्थकारों के नामों का उल्लेख किया है।

उक्त विद्वान बीकानेर नरेश महाराज अनूपसिंह के आश्रय में रहता था। इस नरेश का राज्यकाल १६७४ ई० से १७०६ ई० तक रहा। इसी समय राजाज्ञानुसार उपरोक्त ग्रन्थों की रचना हुई। पं० भावभट्ट उत्तम ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। 'कृष्ण पात्र' आपका गोत्र था, पिता का नाम श्री जनार्दन भट्ट तथा माता का नाम स्वप्रगवा था। आप लोग आभीर देश के धौलपुर नामक नगर के निवासी थे।

★

मंगेशराव तैलंग

कारवार के प्रसिद्ध विद्वान पं० मंगेशराव जी तैलंग केवल संगीत के ही विद्वान नहीं थे अपितु वेदांत, चित्रकला एवं साहित्य के भी पण्डित थे। "संगीत मकरन्द" को बड़ौदा की लाइब्रेरी ने प्रकाशित करने का जब आयोजन किया तो उसका बहुत कुछ भार मंगेशराव जी को सौंपा गया, उस पुस्तक में भूमिका एवं कुछ टिप्पणियां आप ही की लिखी हुई हैं। संगीत के प्राचीन ग्रंथ के अन्वेषण में आप विशेष रुचि रखते थे।

२५ अगस्त १८५६ ई० को कानड़ा जिले के अन्तर्गत कारवार के निकट बाड़ गाँव में आपका जन्म एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता श्री रामकृष्ण राव उस समय सरकारी नौकरी में तहसीलदार के पद पर थे। आरम्भ में मंगेशराव की शिक्षा-दीक्षा नियम पूर्वक चलने लगी और मराठी, संस्कृत, कन्नड़ के साथ ही साथ अंग्रेजी में मैट्रिक की परीक्षा भी आपने पास करली। उस समय आपकी अवस्था २० वर्ष की थी।

सन १८८१ ई० के लगभग आप बम्बई आये और वहाँ हाईकोर्ट में नौकरी करते हुए शनैः-शनैः उन्नति करते गये। सन् १९१० ई० के लगभग आप असिस्टेन्ट रजिस्ट्रार के पद तक पहुंच गये, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् नौकरी छोड़दी और संगीत के क्षेत्र में कार्य करने लगे। १९१४ ई० में पैन्शन प्राप्त करके आप अपने दामाद श्री विनायकराव वाघ के साथ दिल्ली आये; यहां गोस्वामी पन्नालाल से आपका परिचय हुआ।

बम्बई में हाईकोर्ट की नौकरी पर जब आप थे, तो वीणा बजाया करते थे एवं बाहर से आये हुए गुणी लोगों के प्रोग्राम अपने यहां कराते

रहते थे। संगीत की विशेष तालीम के लिये कुछ दिनों के लिये आप बड़ौदा भी गये। प्रसिद्ध बीनकार अलीहुसेनखां, बन्दे अलीखां आदि की कला का आपके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा। वीणा के रियाज के साथ-साथ संगीत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अनुसन्धान कार्य में भी आपकी रुचि बढ़ने लगी। सन् १९४२ ई० में पूना के आनन्दाश्रम ने शार्ङ्गदेव कृत "संगीत रत्नाकर" के दोनों भाग जब पुनः प्रकाशित किये, तो इनका संशोधन पं० मंगेशराव ने ही किया।

जब कभी आप बम्बई जाते थे तो पं० भातखंडे जी से भी अवश्य मिलते थे, यद्यपि भातखंडे जी के विचार और कार्यों से आपका कुछ विरोध था, फिर भी आप उन्हें मानते थे। भातखंडे जी के ग्रंथ "लक्ष्यसंगीत" एवं मराठी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के बारे में आपने कड़ी आलोचना की है। 'The 22 Shrutics of Indian Music' लघु पुस्तिका भी आपने लिखी।

मंगेशराव जी संगीत के एक कुशल लेखक थे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहते थे। आपका अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण लेख "Ancient Sanskrit works on Indian Music and it's present Practice" कलकत्ता ओरिएन्टल जनरल के १९३६ ई० के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। उक्त लेख में आपने इस बात पर विशेष जोर दिया है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में राग लक्षणादि जो दिये हुए हैं, वे आजकल के संगीत से मेल नहीं खाते, उन्हें हमें बदलना होगा; क्योंकि संगीत सदैव से परिवर्तनशील रहा है और इसी नियम के अनुसार आज का संगीत प्राचीन संगीत से पृथक हो गया है।

आपने संगीत के विविध ग्रन्थों का अध्ययन और अन्वेषण करके टिप्पणी के रूप में उन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, जिनका संग्रह लगभग चारसौ पृष्ठों में है और उसे आपने नौ भागों में विभाजित करके "भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर" पूना को अर्पण किया। सन् १९१४ में बम्बई की नौकरी से निवृत्त होकर आपने समस्त भारत की यात्रा की। कई स्थानों पर विद्वानों ने आपका सम्मान किया। इसके पश्चात् आप कारवार आकर रहने लगे और ११ अगस्त सन् १९४९ को, ९० वर्ष की आयु में यहीं पर आपका देहावसान हो गया। आपके पौत्र श्री प्रभाकर यशवन्त तैलंग बम्बई में रहते हैं और वीणा व सितार वादन में विशेष रुचि रखते हैं।

★

मतङ्ग

जनश्रुति इनका काल छठी शताब्दी बताती है। प्रो० रामकृष्ण कवि के विचार में इनका काल नवीं शती का मध्य भाग है। मतंग के ग्रन्थ का नाम बृहद्देशी है, जिसमें आठ अध्याय हैं; ताल और वाद्य पर भी इस ग्रंथ में विचार किया गया है। परवर्त्ती सभी आचार्यों ने मतंग का मत सम्मान पूर्वक उद्धृत किया है।

मतंग ने कश्यप, नन्दी, कोहल, दत्तिल, दुर्विशत्ति, याष्टिक, वल्लभ, विश्वावसु, शार्दूल, विमाखिल इत्यादि पूर्वाचार्यों की चर्चा की है। इन्होंने भरतोक्त सप्त स्वर मूर्च्छनाएँ मानी तो हैं, परन्तु राग सिद्धि के लिये मूर्च्छना के आकार को विस्तृत करके उसे द्वादश स्वर मानने पर बल दिया है, जिसमें सात स्वर एक सप्तक के तथा पाँच स्वर अन्य सप्तक के सम्मिलित हैं। यह द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद नंदिकेश्वर मत का कहा जाता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद का युक्तियुक्त खंडन किया है, जिसके कारण पश्चाद्वर्त्ती आचार्यों ने भी द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद की उपेक्षा की। शार्ङ्गदेव ने जातियों के रूप तो मतंग इत्यादि आचार्यों से लिए हैं, परन्तु मूर्च्छना सप्त स्वर ही मानी है।

मतंग चित्रा वादक थे, इन्हें कुम्भ ने चैत्रिक कहा है। प्रो० रामकृष्ण कवि के अनुसार किन्नरी वीणा के आविष्कारक मतंग हैं। मतंग से पूर्व वीणा पर सारिकाएँ यानी परदे नहीं होते थे। इन्होंने सबसे पहले वीणा पर सारिकाएँ रक्खीं। किन्नरी वीणा के तीन भेद लोक में प्रचलित हुए। बृहती किन्नरी, मध्यमा किन्नरी और लघ्वी किन्नरी। मतंग की किन्नरी पर चौदह पर्दे होते थे और १८ भी। तीव्र गंधार एवं काकली निषाद के लिए अलग परदे नहीं रक्खे जाते थे, अपितु प्रवेश अथवा निग्रहा क्रिया से उनकी सिद्धि की जाती थी। किन्नरी पर तीन तार चढ़े होते थे, एक बाज का और दो चिकारियां। जब बाज का तार षड्ज में तथा चिकारियां क्रमशः पञ्चम और षड्ज में मिली रहती थीं और अठारह परदों पर क्रमशः छटे परदे तक मन्द्र सप्तक, सातवें से तेरहवें तक मध्य सप्तक तथा चौदहवें से अठारहवें तक तार सप्तक के पाँच स्वर मिले रहते थे तो वीणा पर षड्ज ग्राम बोलता था। यदि बाज का तार मध्यम में तथा दोनों चिकारियां क्रमशः षड्ज और मध्यम में मिली होती थीं एवं षड्ज ग्रामिक गांधारों को दो श्रुति चढ़ाकर उन्हें धैवत की संज्ञा देदी जाती थी तो किन्नरी पर मध्यम ग्राम ध्वनित होता था। मूर्च्छना के अनुसार जब बाज के तार की ध्वनि की संज्ञा रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत या निषाद होती थी.

तब उसी के अनुसार श्रुति संख्या के आधार पर परदों को सरका कर अवशिष्ट स्वरों की स्थापना होती थी। बाज का काम केवल एक तार पर होता था. किसी स्वर से सप्तक का आरंभ मानने पर सम्पूर्ण मन्द्र सप्तक, सम्पूर्ण मध्य सप्तक एवं तार सप्तक के पांच स्वरों की प्राप्ति वादक को एक तार पर हो जाती थी। एक स्वर मुख्य तार पर था तथा अवशिष्ट अठारह स्वर अठारह परदों पर मिल जाते थे। चौदह परदों वाली किन्नरी पर सम्पूर्ण मन्द्र सप्तक, सम्पूर्ण मध्य सप्तक एवं तार सप्तक के केवल एक स्वर की प्राप्ति होती थी।

आधुनिक वे सभी तन्त्री वाद्य किन्नरी का विकसित रूप हैं, जिन पर पर्दे विद्यमान हैं। इस सम्बन्ध में समस्त भारत मतंग का ऋणी है। आचार्य शार्ङ्गदेव ने किन्नरी का देशी रूप पृथक बताया है, वहां देशी शब्द का तात्पर्य शार्ङ्गदेव के युग में प्रचलित किन्नरी रूप से है।

महेशनारायन सक्सेना

महेश जी का जन्म ७ अगस्त १९१७ ई० को प्रयाग नगरी में हुआ। आपके पिता का नाम श्री० देवीदयाल सक्सेना है। आपके घर में आरम्भ से ही कला के प्रति प्रेम रहा है। परिवार की संगीत शिक्षा का श्री गणेश श्री० नीलू बाबू द्वारा हुआ। आपके दो भाई श्री प्रेमनारायण और श्री०- जगदीश नारायण भी संगीत प्रेमी हैं।

सन् १९२९ ई० में आपने प्रयाग संगीत समिति में श्री जगदीशनारायण पाठक, श्री० एन० आर० जोशी और स्व० आर० के० पटवर्धन के अध्यापन में संगीत शिक्षा लेनी आरम्भ की और सन् १९३६ ई० में 'संगीत प्रभाकर' की डिगरी प्रथम श्रेणी में प्राप्त की तथा सन् १९३७ में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० एस० सी० किया। अपनी महत्वाकांक्षा के कारण मैरिस कॉलेज लखनऊ में आपने विष्णु-दिगम्बर और भातखण्डे पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन किया और सन् १९३९ ई० में प्रथम श्रेणी में उक्त कालेज से 'संगीत विशारद' की डिगरी प्राप्त की। २-३ वर्ष तक आपने श्री रातान्जनकर से भी संगीत शिक्षा प्राप्त की।

एम० ए० में भी दो वर्ष तक संगीत का अध्ययन किया, इससे आपको गायन में शुद्धता व सरलता के साथ विविधता, नोम-तोम, चमत्कार तथा श्रुति प्रयोग का ज्ञान प्राप्त हुआ। सन् १९४१ में देहरादून के राजपुर स्थित 'मानव-भारती' की भी आपने सेवा की एवं सन् १९४६ में पुनः प्रयाग लौट कर साहित्यरत्न की परीक्षा पास की। आपने अपने हिन्दी के गुरु डा० रामकुमार वर्मा के अनुरोध से हिन्दी में एम० ए० की डिगरी प्रथम श्रेणी में ली। सन् १९४७ से १९५० तक प्रयाग संगीत समिति के निर्देशक के रूप में कार्य करते रहे; जिसमें आपके प्रयत्न से चार नवीन विभाग स्थापित हुए (१) शिशु विभाग (२) भाव संगीत (३) संगीत में एम० ए० (४) बी० टी० कक्षा। आपके समय में विद्यार्थियों की संख्या १०० से बढ़कर ४६५ के लगभग जा पहुँची थी। संगीत शास्त्र (दो भागों में) पुस्तक भी आपने लिखी। सन् १९५० में प्रयाग विश्व विद्यालय के संगीत विभाग में लैक्चरर नियुक्त हुए। भारतीय संगीत की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि नामक पुस्तक भी आप लिख रहे हैं। सन् १९५१ ई० से फरवरी ५५ तक "संगीत" मासिक पत्र का अवैतनिक सम्पादन कार्य आपने किया। इलाहाबाद रेडियो केन्द्र से आपके संगीत कार्यक्रम भी प्रसारित हो चुके हैं और विभिन्न संगीत सेमिनारों में संगीत पर निबन्ध पढ़ने के लिये भी आपको आमन्त्रित किया जाता है।

★

मानसिंह तोमर

संगीतकला के क्षेत्र में ग्वालियर अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। तोमर वंशीय राजाओं ने यहां लगभग १ शताब्दी तक शासन किया। इस राज वंश के अनेक नरेशों ने बाहुबल और राज्यबल के साथ-साथ एक विशाल और कलाप्रेमी हृदय भी पाया था, जिसके कारण वे साहित्य, संगीत कला के आश्रयदाता और पोषक भी बने।

इसी तोमर (तँवर) वंश के महाराजा मानसिंह का संगीत ज्ञान बहुत उच्चकोटि का था। आपके शासनकाल (१४८६-१५१८ ई०) में, आपके दरबार में कई प्रसिद्ध गायक-वादक रहते थे, जिनमें बैजू, बख्शू, चरजू, भगवान, धोंडू तथा रामदास के नाम उल्लेखनीय हैं।

जबकि प्राचीन शास्त्रीय संगीत से जनता ऊब रही थी तब, मुलतान का शेख बहाउद्दीन जकरिया रागों का मिश्रण करके नई-नई धुन तैयार कर रहा था, गुजरात का सुलतान हुसेन भारतीय रागों को ईरानी रूप में ढाल रहा था, तभी राजा मानसिंह ने भी जनता की इस बदली हुई रुचि को परखा और ध्रुपद जैसी गायकी का प्रचार कर, प्राचीन शास्त्रीय संगीत की रक्षा करते हुए जनता के रुचि परिमार्जन में योग दिया।

आपने अपने यहाँ के उच्चकोटि के गायक वादकों की सहायता से रागों की संख्या तथा उनके प्रकार विस्तार पूर्वक व्याख्या सहित लिपिबद्ध करके "मानकुतूहल" नामक एक ग्रन्थ की रचना अपने गायक वादकों की सहायता से की, जिसका फारसी अनुवाद १६७३ ई० में "संगीत दर्पण" के नाम से फकीरुल्ला द्वारा हुआ। संगीत में युगान्तरकारी कार्य करने वाले इस पुरुष को ध्रुपद के पुनःस्थापन का पूरा श्रेय है; इसी के कारण ग्वालियर संगीत का सौर मंडल बना। संगीत कला के साथ-साथ साहित्यिक ज्ञान भी मानसिंह में यथेष्ट था, जिसका प्रमाण "मानकुतूहल" में दिये उनके स्वरचित पद हैं। महाराज मानसिंह के द्वारा ध्रुपद के आविष्कार के सम्बन्ध में फकीरुल्ला ने "राग दर्पण" में लिखा है:—

"मानसिंह के इस अद्भुत आविष्कार के लिये गायन शास्त्र सदा उनका आभारी रहेगा। कदाचित् आगे चलकर कोई गायक राजा मानसिंह के समान गायन शास्त्र में प्रवीण हो तो परमात्मा की अपार लीला से ध्रुपद जैसे अन्य गीत की रचना कर सके; परन्तु अभी तो यही विचार आता है कि ऐसा होना

असम्भव है।" मान कुतूहल की असली कापी प्राप्त नहीं होती। मान कुतूहल में श्रेष्ठ वाग्गीकार की विशेषताओं के बारे में राजा मान लिखता है:—

"श्रेष्ठ गायक तथा रचयिता को व्याकरण, पिंगल, अलंकार, रस, भाव, देशाचार, लोकाचार का अच्छा ज्ञान होना चाहिये तथा शब्द ज्ञान में भी प्रवीण होना चाहिये। उसकी प्रवृत्ति, कलानुवर्ती तथा समय से सामंजस्य स्थापित करने वाली होनी चाहिये। उसके गीत विचित्र और अनूठे होने चाहिये, प्राचीन रचनाएँ कंठस्थ होनी चाहिये तथा संगीत, नृत्य, वाद्य में उसकी पैठ होने के अतिरिक्त प्रबन्ध का उत्तम ज्ञान भी होना चाहिये।" क्या आज के किसी कलाकार को मान की इस कसौटी पर परखा जा सकता है?

सुन्दर कल्पना से अभिसिक्त किंवदंती है कि ग्वालियर से ११ मील दूर राई गांव की एक गरीब गूजर कुल की कन्या जिसका नाम मृगनयनी था, जो अपने रूप, लावण्य के साथ ही साथ साहस और वीरता के कारण विख्यात हो रही थी, उसके रूप तथा गुणों पर मोहित होकर महाराजा मानसिंह ने उसके साथ विवाह कर लिया था। कहा जाता है कि एक दिन राजा मानसिंह उक्त ग्राम की ओर जब शिकार खेलने गये तो देखा कि मृगनयनी ने जङ्गली भैंसे को सींग पकड़कर दूसरी ओर हटा दिया। एक रूपवती कन्या का यह अद्भुत साहस देखकर ही महाराज ने उसे अपनी रानी बनाने की इच्छा प्रकट की। जब गूजरी के पिता के पास विवाह प्रस्ताव पहुंचा तो वह प्रसन्न हुआ, किन्तु मानिनी मृग-नयनी कुछ शर्तों के साथ ही विवाह के लिये तैयार हुई। (१) मेरे लिये अलग महल बनवाया जाय (२) मेरे गांव से एक नहर बनाकर महल तक गांव का शुद्ध जल पहुंचाया जाय। उसकी शर्तें स्वीकार हुईं। मानमंदिर के नीचे ही "गूजरी महल" का निर्माण हुआ। एक छोटीसी नहर द्वारा राई से ग्वालियर तक पानी पहुंचाने की व्यवस्था करदी गई। ग्वालियर के संगीतमय वातावरण में रहकर रानी मृगनयनी को भी संगीतकला सीखने की इच्छा हुई। कहा जाता है कि बैजूबावरा नामक गायक द्वारा रानी मृगनयनी ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। गूजरी टोड़ी, मङ्गल गूजरी इत्यादि रागों की रचना इसी रानी के नाम पर हुई। सिकन्दर के पश्चात् जब इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा तो ग्वालियर पर अधिकार करने की महत्वाकांक्षा उसके अंदर जागृत हुई। लोदियों की सेना ने ग्वालियर गढ़ घेर लिया। इसी दौरान में (सन् १५१६ ई० में) मानसिंह की मृत्यु होगई और इनके पुत्र विक्रमादित्य तोमर गद्दी पर बैठे।

★

मिर्ज़ाखान

प्रसिद्ध उर्दू ग्रंथ 'तोफ़ेतुल हिन्द' के रचनाकार मिर्ज़ाखान ही थे। यह ग्रंथकार सम्भवतः १६ वीं शताब्दी के पूर्व हुआ, क्योंकि "नग़माते आसफ़ी" (एक उर्दू का प्रसिद्ध ग्रन्थ) में इसके उद्धरण प्राप्त होते हैं। "नग़माते आसफ़ी" की रचना सन् १८१३ ई० में हुई थी, अतः इस प्रकार मिर्ज़ाखान के समय की पुष्टि हो जाती है। इस ग्रंथकार ने "संगीत दर्पण", "सभाविनोद", "रागार्णव" आदि ग्रंथों का आधार लिया है। इस ग्रन्थ के मनन करने से प्रतीत होता है कि मिर्ज़ाखान को भारतीय संगीत का उच्चकोटि का ज्ञान प्राप्त था।

मिर्ज़ाखान आज़मशाह के आश्रित थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ में इस बात को सिद्ध कर दिया है कि शुद्ध स्वर सप्तक 'बिलावल' ही होना चाहिये। हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति के लिये यह ग्रन्थ बड़े महत्व का है, इसमें सन्देह नहीं।

★

हकीम मुहम्मद करमइमाम

"मश्रादनुल मौसीकी" नामक उर्दू-ग्रन्थ के रचयिता हकीम मुहम्मद करम-इमाम अपने समय के एक अच्छे गुणी होगये हैं।

आपके पिता का नाम दिलावरखां था, जो एक ऊँचे दर्जे के संगीतज्ञ थे। इनके नाना लखनऊ शहर में नवाब आसिफुद्दौला के सभासद थे। हकीम जी को बाल्यावस्था से ही गाने-बजाने में विशेष उत्साह था। सैन्य-विभाग में भर्ती होने के पश्चात् अपने पिता दिलावरखां और मामा अलीमुल्ला खां से आपने "सोज़ख्वानी" (वह संगीत जो मुहर्रम के दस दिनों में गाया जाता है) सीखा था। ये दोनों ही अच्छे संगीतज्ञ थे। पिता और मामा के कारण हकीम मुहम्मद करमइमाम का नवाब सालारजंग के पुत्र नवाब हुसैनअली खां के साथ विशेष सम्बन्ध रहा। नवाब साहब सुदक्ष-संगीतज्ञ थे, अतः इनके संसर्ग में रहने के कारण हकीम साहब गाने-बजाने में अच्छी प्रगति करते रहे। तदुपरान्त मीर अली साहब से आपने संगीत सीखा! उन्हीं दिनों आपको लखनऊ से बाहर जाने का सुयोग प्राप्त हुआ। तब आपको बड़े-बड़े गायक-वादकों का संगीत सुनने को मिला, और उनसे साक्षात्कार करने के सुअवसर प्राप्त हुए।

कुछ समय तक बांदा में आप सरिश्तेदार के पद पर रहे। इन दिनों बांदा में संगीत प्रेमी नवाब ज़ुल्फिक़ारखाँ रहते थे, उनके सभासदों में अधिकांश प्रतिष्ठित-गायक और वादक थे। उनका संगीत सुनने का सुयोग आपको दीर्घ-काल तक प्राप्त होता रहा और इस सुयोग से लाभ प्राप्त करके आपने अपने सङ्गीत-ज्ञान को और भी अधिक विकसित किया।

१८५३ ई० में बांदा से नौकरी छोड़कर आप लखनऊ चले आये। उस समय भी नवाब वाजिदअली शाह लखनऊ की गद्दी पर आसीन थे। लखनऊ आकर हकीम साहब ने नवाब इकरामुद्दौला के यहाँ नौकरी करली। सन् १८५७ में आपने "मश्रादनुल मौसीकी" ग्रंथ की रचना की। इसमें संगीत विषय की विवेचना तथा किंवदंतियों के साथ-साथ संगीत-कलाकारों के घरानों का संक्षिप्त इतिहास भी मिलता है। सन् १९२५ ई० के लगभग इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ। इससे पहले ही हकीम मुहम्मद करमइमाम १८६५ ई० के लगभग लखनऊ में स्वर्गवासी होगये

★

मोहम्मद रजा

इतिहास वेत्ताओं के मतानुसार इस विद्वान का समय अठारहवीं सदी का का अंत एवं १६ वीं सदी का प्रारम्भ निश्चित होता है। इनको लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला का आश्रय प्राप्त था; इस नवाब का राज्यकाल सन् १७७५ से १७६५ ई० तक माना जाता है। आपने उर्दू का प्रसिद्ध ग्रंथ 'नग़माते-आसफ़ी' लिखा है। यह ग्रन्थ सन् १८१३ ई० में लिखा गया। इस ग्रंथ के लेखन कार्य में मोहम्मद रज़ा को उक्त नवाब के आश्रित संगीतज्ञों की भी सहायता प्राप्त हुई होगी, ऐसा विद्वानों का मत है।

'नग़माते आसफ़ी' में शुद्ध स्वर सप्तक बिलावल ही माना गया प्रतीत होता है। ग्रंथकर्त्ता ने मुख्य ६ रागों को लिया है और उनका भार्या तथा पुत्र बधुओं के रूप में वर्गीकरण करते हुए विस्तृत विवरण भी दिया है। संगीत सम्बन्धी उर्दू के ग्रंथों में इस ग्रंथ को उच्चकोटि का सम्मान प्राप्त है। श्री भातखंडे लिखित हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति' 'में नग़माते आसफ़ी' के उद्धरण मिलते हैं।

★

रघुनाथ भूपाल

इतिहासकारों के मतानुसार यह नायक वंश के तीसरे राजा थे। इनकी राजधानी तंजौर थी। १६०४ ई० से १६६० ई० तक इनका राज्यकाल माना जाता है। राजा रघुनाथ भूपाल धार्मिक प्रवृत्ति वाले उच्चकोटि के विद्वान तथा पराक्रमी नरेश थे। इनके युग में धर्म शास्त्र, कला-कौशल एवं आस्तिकता का काफ़ी विकास हुआ। इन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया तथा बहुत से विद्वान एवं कलाकारों को प्रश्रय दिया। इन्होंने संगीत विषय पर 'संगीत सुधा' नामक एक संस्कृत ग्रंथ की रचना भी की। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका, परन्तु तंजौर की "पैलेस लाइब्रेरी" में आज भी सुरक्षित रक्खा हुआ है। इस ग्रन्थ की शैली तथा विचारधारा से भली-भाँति प्रकट होता है कि लेखक उच्चकोटि का विद्वान तथा संगीत कला का मर्मज्ञ था।

✱

रामामात्य

संगीत जगत में पं० रामामात्य का नाम भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वरमेलकलानिधि' के रचनाकार आप ही हैं। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसका रचनाकाल १५५० ई० के लगभग माना जाता है।

पं० रामामात्य विजयनगर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम तिम्बराज था और वे विजयनगर के राजा सदाशिव राय के प्रधानमंत्री थे। इस राजा ने सन् १५४२ ई० से १५६७ ई० तक राज्य किया। तिम्मराज के पुत्र राम को भी अपने पिता की आमात्य (मंत्री) की पदवी मिली, इसलिये इनका पूरा नाम रामामात्य प्रसिद्ध हुआ। राजा सदाशिव राय तथा उसके पूर्वज स्वभाव से ही कलाप्रेमी थे, अतः पं० रामामात्य को संगीत शास्त्र का अध्ययन एवं रचना कार्य के लिये अनुकूल अवसर मिला। इन्हीं दिनों आपने 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रंथ की रचना की।

१६ वीं सदी के अन्तिम चरण में, दीर्घ आयु प्राप्त करने के पश्चात् पं० रामामात्य विजयनगर में ही स्वर्गवासी हो गये।

★

ललन पिया

फरुखाबाद के ललन पिया एक उच्चकोटि के ठुमरी गीतों के रचनाकार हो गये हैं। कहा जाता है कि जीवन में आपने न तो कोई गुरु बनाया और न कोई शिष्य। सारस्वत ब्राह्मण कुल में जन्मा यह कलाकार अधिकतर ठुमरियां ही गाता था। आर्थिक स्थिति शोचनीय थी अतः दिन गरीबी में ही काटे।

ललन पिया ने "ललन सागर" नामक एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमें ठुमरियों के बोल, राग, ताल व मात्रा आदि छपे हैं। स्वरलिपि नही दीं। ठुमरी गीतों के अतिरिक्त इन्होंने अन्य कविताएं भी लिखीं जो उत्तर-प्रदेश के गायक वर्ग में आज भी लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध बनी हुई हैं। भाषा तथा अर्थ गाम्भीर्य की दृष्टि से यदि इनकी रचनाओं को अन्य ठुमरी गीतों के साथ तौला जाय तो निःसंदेह ललन पिया का पलड़ा भारी बैठेगा।

ललन पिया लय और ताल के विशेष जानकार थे। आपके गाते समय ताल का पता लगाना बड़ा कठिन होता था और इसी कारण अधिकतर तबलियों में झगड़ा हो जाया करता था। ठुमरियों की बन्दिश बड़ी विचित्र और हृदयग्राही होती थी, इसी कारण ललन पिया ठुमरी जगत में नाम कर गये। आपकी मृत्यु सन् १९१८ और १९२६ ई० के मध्य हुई थी।

★

लोचन

पं० लोचन का समय चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम तथा पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल मानते हैं । यह ऐसा युग था जबकि संगीत पद्धति में द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे थे, अतः पं० लोचन को प्राचीन तथा नवीन पद्धति की विभिन्नताओं को समझने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक संगीत पद्धति में इस प्रकार की मान्यताएं थीं:—

श्रुतियों को ध्वनि मापक मानते थे और सप्त स्वरों में क्रमानुसार ४–३–२–४–४–३–२ के हिसाब से उनका विभाजन किया गया था, इस प्रकार श्रुतियों की कुल संख्या २२ मानी गई थी। स और प विकृत हो सकते थे। कैशिक, काकली और मृदु षड़ज की तीन विकृति थीं तथा क्रमानुसार १, २, ३ श्रुति की ध्वनियां थीं। मृदु पंचम शुद्ध पंचम की विकृति होता था जिसका स्थान १६ वी श्रुति था । रागों का वर्गीकरण होता था तथा रागों के स्वर मूर्छनाओं की सहायता से लिये जा सकते थे ।

पं० लोचन के समय में उक्त मान्यताओं में परिवर्तन तथा परिष्कार होने लगा अतः अवसर का लाभ उठाते हुए उन्होंने 'राग सर्व संग्रह' तथा 'राग तरंगिणी' नामक दो संगीत ग्रन्थों की रचना की। इन रचनाओं के फलस्वरूप आपको संगीत संसार में अपूर्व यश एवं सम्मान की प्राप्ति हुई। इस विद्वान ने अमीर खुसरो द्वारा अपने आस-पास जारी की गई पद्धति को विदेशी न मानकर अपने देश का उद्गम ही सिद्ध किया।

पं० लोचन का निवास स्थान मुजफ्फरपुर (बिहार) माना जाता है। आप मैथिल ब्राह्मण थे। संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान होने के कारण प्राचीन तथा अर्वाचीन संगीत का अध्ययन करने में आपको बहुत सुविधा मिली। संगीत शास्त्र के प्रकांड विद्वान होने के पश्चात् आपने क्रियात्मक संगीत का भी समुचित अभ्यास किया था। प्रसन्न मूर्ति, व्यवहार कुशलता और बुद्धिमानी आपके व्यक्तित्व के विशेष गुण थे। इन्होंने दीर्घ आयु प्राप्त की और १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वर्गवासी हो गये।

*

वसन्तराव राजोपाध्ये

गांधर्व महा विद्यालय मंडल बम्बई के मन्त्री पंडित वसन्तराव राजोपाध्ये उन व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने मौन रूप से एक सफल संगीत शिक्षक के रूप में संगीत कला के विद्यार्थियों को लाभान्वित किया है। संगीत शिक्षण के अतिरिक्त आपने संगीत सम्बन्धी कुछ उत्तम पुस्तकें भी लिखी हैं; जिनमें माध्यमिक "आलाप-तान," "संगीत शास्त्र" तथा "उस्तादी गायकी" के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वसन्तराव का जन्म सन् १९१३ ई० में हुआ था। आपके पिता पं० यशवन्तराव उच्चकुलोत्पन्न, विद्वान और संगीत प्रेमी थे। वसन्तराव को बाल्यकाल से ही संगीत के प्रति आकर्षण था। जब आप स्कूल में पढ़ते थे तो वहां होने वाले विशेष उत्सवों पर संगीत के कार्यक्रमों में भाग लेते थे। मैट्रिक पास करने के पश्चात् सन् १९३९ ई० में प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० नारायणराव व्यास से आपने संगीत शिक्षा लेनी आरम्भ की। कुछ समय तक अपने परिश्रम और अभ्यास के द्वारा गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की उच्च परीक्षा "संगीत प्रवीण" पास कर ली, और मंडल के कार्यों में सहयोग देकर संगीत सेवा करने लगे।

सन् १९४५ ई० में आप उक्त मंडल के संयुक्त मंत्री और १९४८ ई० में प्रधान मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित हुए।

पं० नारायणराव व्यास ने जब १९३४ ई० में दादर संगीत विद्यालय की स्थापना की तो इस विद्यालय में आपको शिक्षक के रूप में नियुक्त किया

गया था, और जब पं० शंकरराव व्यास द्वारा व्यास संगीत विद्यालय की स्थापना हुई तो यहाँ प्रधान संगीत शिक्षक के रूप में कार्य आरम्भ किया, जिसे आप अभी तक निभा रहे हैं।

आपकी संगीतोन्नति का मूल कारण यद्यपि आपकी प्रतिभा ही मानी जायगी तथापि पं० शंकरराव व्यास व पं० नारायणराव व्यास की कृपा और सहयोग से भी आपको बहुत लाभ पहुँचा।

आपकी कई पुस्तकें संगीत के पाठ्यक्रम में चल रही हैं, एवं विभिन्न पत्रों में आपके संगीत सम्बन्धी निबन्ध भी प्रकाशित होते रहते हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रचार कार्य में आपकी सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। आप बड़े मिलनसार निराभिमानी और सौम्य प्रकृति के व्यक्ति हैं। संगीत जगत को अभी आपसे बहुत कुछ आशाएं है।

★

विष्णु नारायण भातखण्डे

आज देश के संगीत प्रेमियों में स्वर्गीय भातखंडे जी का नाम भी उसी सम्मान के साथ लिया जाता है जिस प्रकार कि हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठान और सृजन में महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदासजी का। आपने संगीत जैसी ललितकला, जो मानव जीवन से निकटतम सम्बन्ध रखने वाली है, की अभिवृद्धि एवं प्रचार के लिये अपने जीवन का लगभग संपूर्ण भाग ही खपा दिया।

श्री विष्णुनारायण भातखण्डे का जन्म बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नामक ग्राम के एक उच्च ब्राह्मण घराने में १० अगस्त सन् १८६० ई० को हुआ। इनके माता–पिता संगीत के विशेष प्रेमी थे, अतः बाल्यकाल ही से पंडितजी को गाने का शौक पैदा हो गया। आप अपनी माता के श्री मुख से जो गीत सुनते थे उसे उसी प्रकार नकल करके गा देते थे। इतने छोटे बालक की संगीत में विशेष रुचि देखकर इनके माता–पिता को अनुभव हुआ कि इस बालक को संगीत की ईश्वरीय देन है।

जिस विद्यालय में पण्डितजी शिक्षा पाते थे, उसमें उन्होंने अपने संगीत और गीतों के द्वारा सबको आकर्षित कर लिया। विद्यालय के विशेष अवसरों पर ये गाना गाकर पुरस्कार भी प्राप्त करते थे। संगीत सम्मेलन, ड्रामा और अन्य उत्सवों में भी आप भाग लेने लगे। साथ ही साथ स्कूली पढ़ाई में भी आपने बाधा नहीं पड़ने दी। इस प्रकार भातखण्डे ने स्कूल तथा कालेज की पढ़ाई जारी रखते हुए संगीत का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब आप कालेज में पढ़ते थे तभी आपने शास्त्रीय संगीत नियमित रूप से सीखना आरम्भ कर दिया था। आपने सितार भी सीखा और उसमें विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी तीन वर्ष के अन्दर आपने सितार का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् १८९० में एल०-एल० बी० की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् आप कराची चले गये वहां वकालत आरम्भ की, किन्तु किन्हीं कारणों से वहां विशेष सफलता न मिल सकी और आप बम्बई पहुंच कर छोटी अदालतों में वकालत करने लगे।

संगीत का अंकुर तो भातखण्डे के हृदय में बाल्यकाल से था ही, इन्हीं दिनों भारतीय संगीत कला के प्रसिद्ध कलाकारों को सुनने का भी इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ, जिससे ये बहुत प्रभावित हुए और सोई हुई संगीत जिज्ञासा जाग उठी। आपकी इच्छा हुई कि संगीत कला की छान-बीन करने के लिये चेष्टा करनी चाहिए, अत: आपने बम्बई के 'ज्ञान उत्तेजक मण्डल' में भी कुछ दिन संगीत शिक्षा प्राप्त की एवं बहुत सी पुस्तकों का अध्ययन किया।

सन् १९०४ में आपकी ऐतिहासिक संगीत यात्रा आरम्भ हुई। सबसे पहले आपने दक्षिण की ओर भ्रमण किया और वहां के बड़े-बड़े नगरों में स्थित पुस्तकालयों में पहुँचकर संगीत सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं अनेक दक्षिणी संगीत विद्वानों के साथ संगीत चर्चा में भाग लिया, उन लोगों से बहुत से प्रश्न भी किये। यहीं पर आपको पण्डित व्यंकटमखी के ७२ मेल (थाट) का भी पहली बार पता चला। प्रवास में आप हर समय संगीत प्रश्नों की एक डायरी रखते थे और अवसर मिलते ही संगीतज्ञों से तर्क करते थे।

सन् १९०६ ई० में पंडित जी ने उत्तरी तथा पूर्वी भारत की यात्रा की। इस यात्रा में उन्हें उत्तरी संगीत पद्धति की विशेष जानकारी हुई। विभिन्न कलावन्तों से आपने गण्डा बँधाकर संगीत की जानकारी येनकेन प्रकारेण हासिल की और संगीत विद्वानों से भेंट करके अनेक प्राचीन एवं अप्रचलित रागों तथा तथ्यों के सम्बन्ध में खोज-बीन की।

सन् १९०७ में आपने विजयानगरम्, हैदराबाद, जगन्नाथपुरी, नागपुर और कलकत्ता की यात्रा की तथा सन् १९०८ में मध्यप्रान्त और उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों का दौरा किया।

उन दिनों उत्तर भारत में प्राचीन राग–रागिनी पद्धति प्रचलित थी और वहां के संगीतज्ञ उनके नियमों पर ध्यान न देते हुए उन्हें गाते थे। बहुत से बड़े–बड़े संगीतज्ञ जो कि गाना तो बड़ा सुन्दर गाते थे लेकिन स्वयं उन्हें इस बात का पता नहीं था कि यह गाना कौनसे राग का है और इसमें कौनसे स्वर लगाये जारहे हैं ? यह देखकर पंडितजी ने विचार किया कि दक्षिण पद्धति के जन्य–जनक अर्थात् राग थाट प्रणाली का प्रचार इधर किया जाय तो इधर का संगीत क्रम–बद्ध होकर ठीक हो जायगा। अतः आपने थाट पद्धति आरम्भ करने के लिये अपने प्रयत्न शुरू कर दिये। फलस्वरूप उत्तर भारत के संगीतज्ञ 'राग–रागिनी' प्रणाली को छोड़कर थाट राग प्रणाली को ठीक समझ कर उसकी ओर आकर्षित हुए और कुछ समय बाद उत्तर में थाट पद्धति चालू होगई।

संगीत कला का विशेष ज्ञान प्राप्त करने एवं उसके प्रचार का एक उपाय पंडितजी ने यह सोचा कि विविध स्थानों में संगीत सम्मेलन कराये जांय। इस कार्य में आपको बड़ा परिश्रम करना पड़ा और सफलता भी मिली। सन्–१९१६ में आपने बड़ौदा में एक विशाल संगीत सम्मेलन किया, जिसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इस सम्मेलन में संगीत के बड़े–बड़े विद्वानों द्वारा संगीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरता पूर्वक आपस में विचार विनिमय हुए और एक "ऑल–इण्डिया म्यूज़िक अकादमी" की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद दूसरा सम्मेलन दिल्ली में, तीसरा बनारस में और चौथा लखनऊ में किया एवं अन्य कई स्थानों में भी संगीत सम्मेलन हुए। इसके अतिरिक्त संगीत की उन्नति और प्रचार के लिये कई जगह आपने म्यूज़िक कालेज भी स्थापित किये। जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूज़िक कालेज (अब भातखण्डे यूनिवर्सिटी ऑफ़ म्यूज़िक), ग्वालियर का माधव संगीत विद्यालय तथा बड़ौदा का म्यूज़िक कालेज विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कालेजों में आपकी स्वरलिपि पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती है।

संगीत कला पर आपने बहुत सी पुस्तकें भी लिखीं एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। मराठी में लिखित "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के चार भागों के लेखक आप ही हैं। इन ग्रन्थों में अपनी संगीत यात्रा के विशेष अनुभव भी आपने लिखे हैं। इनके अतिरिक्त 'लक्ष्य संगीत', 'शार्ट हिस्टोरीकल सर्वे...', 'ए कम्पैरेटिव स्टडी...' तथा 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के

छः भाग भी आपने लिखे, जिनमें हिन्दुस्थान के पुराने उस्तादों की घरानेदार चीजें स्वरबद्ध करके प्रकाशित की हैं। इन छः जिल्दों में १८१ राग और उनकी १८७५ चीजें स्वरलिपि सहित हैं। इन पुस्तकों से संगीत विद्यार्थियों को जो लाभ हुआ है उसका वर्णन करना लेखनी से बाहर है। अनेक संगीत कालेजों और यूनिवर्सिटियों के पाठ्यक्रम में यह पुस्तक स्वीकृत हो चुकी हैं। सन् १९२१ में आपने अभिनव रागमंजरी व श्री मल्लक्ष्य संगीतम् ग्रन्थ विष्णु शर्मा के नाम से लिखे। श्री भातखंडे का लगभग सारा कार्य हिन्दी भाषा में अनूदित होकर संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

स्व० भातखण्डे जी के कार्य को हम चार भागों में बांट सकते हैं। मुसलिम काल में विशेष उन्नति पर पहुंचे हुए संगीत का नवीन शास्त्र बनाना, यह आपके कार्य का प्रथम अङ्ग है। इन दिनों हमारे सङ्गीत के शुद्ध स्वर बदल चुके थे, राग–रागिनी पद्धति में भी कोई क्रम नहीं रह गया था। आपने इस परिवर्तित सङ्गीत कला को शास्त्रों का आधार देकर उच्च स्तर पर पहुँचाया। दूसरा कार्य आपने यह किया कि विविध खानदानी गवैयों के गाने सुनकर उनकी स्वर–लिपियां तैयार कीं और उन्हें एकत्रित करके "क्रमिक पुस्तक मालिका" के रूप में प्रकाशित किया, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। भातखंडेजी का तीसरा और महान् कार्य यह है कि उन्होंने एक सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया। आज भारतवर्ष में नोटेशन करने की इतनी सीधी और सरल पद्धति दूसरी नहीं है। पंडितजी ने चौथा कार्य यह किया कि सङ्गीत कला की क्षत–विक्षत पद्धतियों के स्थान पर आधुनिक थाट पद्धति का निर्माण किया, इससे सङ्गीतज्ञों में एक नियमबद्ध प्रणाली से गाने-बजाने की योग्यता पैदा हुई।

आपकी पुस्तकों का अवलोकन करने से पता चलता है कि आप संगीत कला के साथ–साथ कविता करने में भी कुशल थे। क्रमिक पुस्तकों की बहुत सी चीजों में "चतुर" शब्द का प्रयोग हुआ है, यह चीजें पण्डित जी द्वारा ही रची हुई हैं। आपका उपनाम "चतुर पण्डित" था।

पण्डित जी एक लम्बे कद के व्यक्ति थे, आपका शरीर सुन्दर और स्वच्छ था। ललाट विद्वानों की भाँति चौड़ा और तेजयुक्त था। आप बड़े परिश्रमी व्यक्ति थे। आपने संगीत संसार के लिये जो काम किया है उसके लिये सङ्गीत इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा।

सन् १९३१ ई० से, जब कि इन पर रोगों का आक्रमण हुआ तब से इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। तीन साल की लम्बी बीमारी के बाद सङ्गीत का यह पुजारी १९ सितम्बर सन् १९३६ ई० में, गणेश चतुर्थी के दिन परलोकवासी हुआ।

★

व्यंकटमखी

सङ्गीत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चतुर्दण्डि प्रकाशिका' के रचयिता पं० व्यंकटमखी थे। आपका पूरा नाम पं० व्यंकटेश तथा पिता का नाम गोविन्द दीक्षित था। माता का नाम नागमांबा था। गोविन्द दीक्षित नायक वंश के अन्तिम राजा विजय राघव के दीवान थे। इस राज्य की राजधानी का नाम तंजावर था। इतिहासकारों के मतानुसार राजा विजय राघव सन् १६६० ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। यह राजा शूर वीर होने के साथ-साथ साहित्य एवं ललित कलाओं का भी विशेष प्रेमी था; अतः पं० व्यंकटेश को उसने अपना दर्बारी गायक बना लिया।

अनुकूल वातावरण एवं समुचित साधन प्राप्त होने के कारण इन्हीं दिनों पं० व्यंकटेश ने 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' ग्रन्थ की रचना की। दाक्षिणात्य संगीत पद्धति के ग्रन्थों में इस ग्रन्थ को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। वर्तमान काल में यह ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है।

पं० व्यंकटमखी की गुरु परम्परा शार्ङ्गदेव से सम्बन्धित थी। इनके गुरु का नाम श्री 'तानप्पाचार्य' और बाबा गुरु का नाम श्री "हौनेर्याचार्य" था। गुरु परम्परा के सम्बन्ध में इनके बाबा गुरु के कथनानुसार ही संकेत मिलता है। अपने गुरुवर्य के पास समुचित अध्ययन एवं अभ्यास करने के उपरांत, सर्व प्रथम पं० व्यंकटेश ने राग आरभी में गुरु-वर्णन सम्बन्धी एक गीत 'गंधर्व जनता खर्व' की रचना की। यह गीत आजकल भी उधर के क्षेत्र में प्रचलित है।

१७ वीं शताब्दी के अन्त में, तंजावर में ही इस विद्वान की मृत्यु होगई, ऐसा विद्वानों का मत है।

★

शार्ङ्गदेव

संग्रहकाल के शास्त्रकारों में आचार्य शार्ङ्गदेव का स्थान सर्वोच्च है। इनके पितामह शोढल काश्मीर निवासी थे। वे निवास के लिये दक्षिण में चले आये; भास्कर के पुत्र शोढल देवगिरि अर्थात् दौलताबाद के यादव नरेश के आश्रय में रहे। और तत्पश्चात् उनके पुत्र शार्ङ्गदेव भी देवगिरि नरेश के आश्रय में रहे। ये आचार्य शोढल आचार्य शार्ङ्गदेव के पिता थे।

आचार्य शार्ङ्गदेव की प्रसिद्ध संगीत रचना 'संगीत रत्नाकर' है। इसके एक टीकाकार सिंहभूपाल का कथन है कि शार्ङ्गदेव के उदय से पूर्व संगीत की समस्त पद्धति भरत इत्यादि के ग्रन्थों के दुर्बोध होजाने के कारण दुर्गम होगई थी। शार्ङ्गदेव ने इस पद्धति को ज्ञेय बना दिया। 'संगीत रत्नाकर' की रचना जिन आचार्यों के मतों का मंथन करके की गई है; वे हैं सदाशिव, शिवा, ब्रह्मा, भरत, कश्यप, मतंग, याष्टिक, दुर्गा, शक्ति, शार्दूल, कोहल, विशाखिल, दत्तिल, कम्बल, अश्वतर, वायु, विश्वावसु, रम्भा, अर्जुन, नारद, तुंबरु, आन्जेनय, मातृगुप्त, रावण, नंदिकेश्वर, स्वाति, गण, बिन्दुराज, क्षेत्रराज, राहल, रुद्रट, नान्यदेव, भोज, परमर्द्दी, सोमेश्वर, जगदेक, भरतनाट्य शास्त्र के व्याख्याता लोल्लट, उद्भट, शंकु, अभिनवगुप्त, कीर्तिधर तथा अन्य अनेक संगीत विशारद।

'संगीत रत्नाकर' संगीत के उपलब्ध ग्रन्थों का मुकुट है; जिसका रचनाकाल १२ से ३५ ई० है। केशव, सिंहभूपाल एवम् कल्लिनाथ ने इस पर संस्कृत में तथा विठ्ठल ने तेलगू में टीका की है। 'रत्नाकर' में प्राचीन तथा शार्ङ्गदेव के समय प्रचलित संगीत का वर्णन है। इसमें स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, एवं नृत्याध्याय हैं। प्रायः सभी पश्चात्वर्ती ग्रन्थकार शार्ङ्गदेव के ऋणी हैं। कल्लिनाथ एवं सिंहभूपाल की व्याख्यायें 'रत्नाकर' को स्पष्ट करती है।

आधुनिक मेल पद्धति या ठाठ पद्धति को मस्तिष्क में रखकर रत्नाकर वर्णित जातियों एवम् रागों को समझा जाना कदापि सम्भव नहीं। शार्ङ्गदेव द्वारा तुरुष्कतोड़ी एवम् तुरुष्कगौड़ जैसे रागों का प्रतिपादन सिद्ध करता है कि उस युग में दक्षिण तक संगीत पर मुस्लिम प्रभाव पहुंच चुका था। रत्नाकर

वर्णित रागों में अनेक राग ऐसे हैं, जिनके साथ मालव, गौड़, कर्नाट, बंगाल, द्राविड़, सौराष्ट्र, दक्षिण, गुर्जर जैसे प्रदेशवर्ती शब्द लगे हुए हैं; जो इन रागों का प्रदेश विशेष के साथ सम्बद्ध होना सूचित करते हैं। इस शताब्दी के कुछ लेखकों ने शार्ङ्गदेव को समझने का पर्याप्त परिश्रम किए बिना ही, उन पर अनेक लांछन लगाये हैं। ऐसे लोगों की निंदनीय प्रवृत्ति ने महर्षि भरत को भी अपना लक्ष्य बनाया है।

*

श्रीकण्ठ

आपने दाक्षिणात्य संगीत पद्धति पर 'रस कौमुदी' ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है। इसके प्रथम भाग में संगीत तथा दूसरे भाग में साहित्य के विषय को लिया गया है। इस ग्रंथकार ने पूर्वकालीन संगीत के ग्रन्थों में दी हुई संगीत की थ्योरी को अपनी भाषा में लिखने का प्रयास किया है। इसमें दक्षिण पद्धति के स्वर तथा थाटों की परिभाषा दी गई है।

श्रीकण्ठ नवानगर (काठियावाड़) के रहने वाले थे। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आपने इस ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका। इसकी हस्तलिखित प्रति बड़ौदा–पुस्तकालय में देखी जा सकती है। लोग इस बात का आश्चर्य करते हैं कि यह ग्रंथकार उत्तर भारत का निवासी होकर दक्षिण पद्धति का ग्रन्थ कैसे लिख पाया होगा? परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। चूँकि उत्तर भारतीय संगीत के विद्वान दक्षिण पद्धति को आमतौर पर समझ नहीं पाते, इसलिये एक साधारण सी बात उनकी दृष्टि में महान् हो सकती है और इसीलिये वे आश्चर्य करने लगते हैं।

★

श्रीनिवास

इस विद्वान ने 'राग तत्व विबोध' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में अधिकांश अहोबल के ग्रंथ 'संगीतपारिजात:' के क्लिष्ट और अस्पष्ट स्थलों को स्पष्ट करते हुए उसी मत की पुष्टि की गई है। रागों में १२ स्वरों के प्रयोग का पक्ष लेकर इसने अपने मत की सरल और पूर्ण व्याख्या की है। यह ग्रंथकार अहोबल के पदचिन्हों पर चलने वाला अर्थात् उसका अनुयायी ज्ञात होता है, अत: इसका समय १८ वीं शताब्दी के लगभग ही मान लेना उचित होगा। 'राग तत्वविबोध' ग्रन्थ छपकर प्रकाशित भी हो चुका है।

श्रीनिवास नरपतिपुर के पास जन्मा था और बचपन में संगीत सम्बन्धी ग्रंथों को चुराने का आदी हो गया था। इस प्रकार अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ इसने एकत्रित कर लिये थे। बाद में इसके संग्रहीत ग्रन्थ घर में आग लग जाने के कारण नष्ट हो गये। इससे श्रीनिवास को गहरा सदमा पहुंचा और पागल होने तक की नौबत आगई, किन्तु वेंकट राजा एक दक्षिणी विद्वान ने इसको समझा बुझाकर ठीक किया और ग्रन्थों की चोरी का प्रायश्चित करवाया।

श्रीनिवास के सम्बन्ध में अन्य विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता, इसका एक मात्र कारण यह भी हो सकता है कि वह जन सम्पर्क से दूर ही रहता था।

★

सुल्तानहुसेन शर्की

सन् १३३९ ई० में जौनपुर के सूबेदार ख्वाजा यास ने, उस समय के तुग़लक वंशीय राजा को डरपोक और कमज़ोर समझकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। लगभग ६० वर्ष तक यह राज्य स्वतंत्र रहा। सन् १४५८ ई० में सुल्तान हुसेन शर्की जैसे ही जौनपुर की गद्दी पर बैठे, कि तत्कालीन दिल्ली के बादशाह बहलोल ने इन पर चढ़ाई करदी और यह उस लड़ाई में पराजित होगये। पराजित होने के बाद आपने बंगाल के राजा का आश्रय लिया। आपके जीवन का एक बड़ा और अन्तिम भाग यहीं गुज़रा और सन् १४९९ ई० के लगभग बंगाल में ही मृत्यु को प्राप्त हुए।

सुल्तान हुसेन शर्की अपने वंश के अन्तिम राजा हुए। इनको संगीत से बड़ा प्रेम था। ख़्याल गायन पद्धति के प्रचार और प्रसार के लिये इनके द्वारा किये गये प्रयत्न सराहनीय हैं। इन्होंने उस समय की ख़्याल गायकी में एक विशेष संशोधन भी किया जो "जौनपुरी" के नाम से आजकल भी प्रसिद्ध है।

★

सोमनाथ

श्री सोमनाथ पंडित का निवास स्थान राजमहेंद्री नगर माना जाता है। इनके पिता का नाम मुद्गल पंडित था। यह बहुत उच्च कोटि के विद्वान, धर्मनिष्ठ तथा दानी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सोमनाथ भी संगीत विद्या में पारंगत होने के साथ संस्कृत साहित्य के उत्कट विद्वान हुए। इनके समय में भी संगीत के शास्त्रों तथा प्रचलित संगीत में मतभेद था, अतः प्रचलित पद्धति को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से इन्होंने 'राग विबोध' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ की टीका भी इन्होंने स्वयं ही की जिससे इस पुस्तक को समझने का कार्य बहुत सरल हो गया। टीका करते समय इन्होंने अन्य ग्रन्थकारों के उद्धरण भी दिये हैं जिनके द्वारा इनके मत की पुष्टि होती है।

पण्डित सोमनाथ कुशल वीणा वादक भी थे। वीणा के सम्बन्ध में 'राग विबोध' ग्रन्थ में अनेक नवीन चिन्हों की योजना दृष्टिगोचर होती है। यह ग्रंथ दाक्षिणात्य संगीत का प्रतिष्ठाता है। इस ग्रन्थ का रचना काल १६०६ ई० के लगभग माना जाता है। इस ग्रन्थकार के जन्म के विषय में ठीक–ठीक तिथि का उल्लेख नहीं मिलता, अतः उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इनका जन्म १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ होगा। समुचित यश तथा दीर्घ आयु प्राप्त करते हुए, १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस विद्वान का शरीरांत होगया।

★

सौरीन्द्रमोहन ठाकुर

व्यक्तिगत प्रतिभा का प्रदीप्त आलोक निर्मित करते हुए देश का मुख उज्वल कर जाति के उत्थान एवं संसार के सभा मंच पर श्रेष्ठ आसन ग्रहण करने वालों में स्व० राजा सौरीन्द्रमोहन ठाकुर एक विशेष स्थान रखते हैं। किन्तु उनके जीवन दर्शन के जितने भी संवाद आज तक प्रकाशित हुए हैं उनको हृदयंगम करने से यही सत्य उद्घाटित होता है कि उनका आदर्श प्राचीन भारत के ब्राह्मण धर्म के अनुरूप था। वेद और ब्राह्मण की ऐतिहासिक उपलब्धि उन्होंने आत्मसात की थी। स्वयं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वास्तविक कुल धर्म का उन्होंने पालन किया था, शुष्क आचार-विचार का प्रश्रय लेकर उन्होंने सत्य को अस्वीकार नहीं किया।

सौरीन्द्रमोहन के समकालीन इतिहास का मनन करने पर हम देखते हैं कि उस समय बंग जननी रत्नगर्भा थी। यह देखा जाता है कि राजा राममोहन को युग निर्माता का स्थान दिया गया, ऋषि बंकिम चंद्र जाति को वन्दे मातरम् मंत्र द्वारा दीक्षित करते हुए प्रतीत होते हैं, दया के सागर विद्या सागर शिक्षा विस्तार का आसन ग्रहण करते हैं, कुसंस्कारों की निवृत्ति माइकेल मधुसूदन के गंभीर छंदों द्वारा होती है, रामकृष्णदेव परमहंस का संदेश है 'जितने मत उतने ही रास्ते'; विश्व कवि रवीन्द्रनाथ, सर्व त्यागी देशबन्धु, श्री अरविन्द ऋषि, युग विप्लवी विवेकानंद, नट गुरू गिरीशचंद्र और वैज्ञानिक जगदीशचंद्र प्रफुल्लचंद्र आदि उस युग के असंख्य प्रमुख रत्न थे; उन्हीं में संगीत विज्ञान का निष्ठा के साथ गम्भीर अनुशीलन करने वाले एक रत्न राजा सर सौरीन्द्रमोहन ठाकुर हुए। श्री सौरीन्द्रमोहन आत्मद्रष्टा थे। उन्होंने देखा कि आत्म विस्मृत जाति में पुनः प्राण लाने के लिये उसके पुनरोत्थान का इतिहास स्पष्ट शब्दों में लिखने की विशेष आवश्यकता है। केवल मात्र राजनीतिक स्वाधीनता अर्जित करने के तथ्य एकत्रित करने से ही किसी भी जाति का

सत्य इतिहास निर्मित नहीं हो सकता। इस इतिहास को पूर्ण करने के लिये विस्मृति पटल को हटाकर अपनी संस्कृति की जितनी भी गौरवमय कथायें हैं उनको इकट्ठा करना आवश्यक है।

हम देखते हैं कि उस युग की समाज व्यवस्था में बंगाली सज्जनों को व्यक्तिगत रूप से संगीत का अनुशीलन करना अमर्यादा सूचक था, किन्तु उसी युग में सौरीन्द्रमोहन अविचालित निष्ठा के साथ संगीत विज्ञान के अनुशीलन-कर्ता केवल एक ही व्यक्ति थे। केवल मात्र वेतनभुक्त उस्तादों को रख कर उन्होंने स्वान्तः सुखाय लाभ नहीं किया था। इस ऋषितम ब्राह्मण संतान की निष्फल, कठिन साधना का प्रमाण वर्तमान भारतीय संगीत समाज है।

कलकत्ते के ठाकुर वंश में आज से ११६ वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८४० ई० में सौरीन्द्रमोहन का जन्म हुआ था। यह विख्यात ठाकुर वंश उस समय दो शाखाओं में विभक्त होकर पास-पास ही दो महल्लों में निवास करता था। जोड़ा शाको में बंगीय ब्राह्मण समाज के अन्यतम कर्णधार महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर अपने परिवार सहित निवास करते थे और पाथुरिया घाटा में श्री हर-कुमार ठाकुर एवं तत्कालीन हिन्दू समाज के विशिष्ट समाजपति गण रहते थे। सौरीन्द्रमोहन इन हर कुमार ठाकुर के कनिष्ठ पुत्र थे; ज्येष्ठ पुत्र थे उत्तर काल के महाराजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर।

किशोर अवस्था आने के पूर्व ही सौरीन्द्रमोहन में विशेष मानसिक प्रतिभा का विकास परिलक्षित हुआ। आप केवल मात्र संगीत का अनुशीलन ही नहीं अपितु साहित्य एवं इतिहास इत्यादि के सम्बन्ध में भी असाधारण अनुसंधान करने वाले थे। अतः हम देखते हैं कि जिस समय उन्होंने 'भूगोल एवं इतिहास घटित वृत्तांत' नामक ग्रंथ की रचना की, उस समय उनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी। उनके 'मुक्तावलि' और 'माला विकाग्नि मित्रे' ग्रंथों ने जब गुणी एवं ज्ञानी जनों को आकर्षित किया तब इस ग्रंथकार की आयु केवल १६ वर्ष थी।

सौरीन्द्रमोहन की प्राथमिक शिक्षा उनके पिता के पास ही प्रारम्भ हुई। इनके पिता तानसेन के वंशज उत्कृष्ट गायक बासत खाँ एवं ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक हस्सू खाँ के शिष्य थे। इन्होंने अपने पुत्र को ध्रुपद और सितार वादन की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। इस समय सौरीन्द्रमोहन की आयु ८ वर्ष की थी।

शिक्षा क्रम की उन्नति के साथ-साथ सौरीन्द्रमोहन को क्रमशः संगीत विज्ञान की विभिन्न शैली एवं घरानों के वैचित्र्य तथा विभिन्न मतों ने आकृष्ट किया। फलस्वरूप प्रख्यात बीनकार स्व० लक्ष्मीप्रसाद मित्र के पास इनकी वीणा तथा कंठ संगीत की शिक्षा प्रारम्भ हुई। इसी समय इनको सहपाठी के रूप में उत्तरकाल के एक विख्यात् ध्रुपदिये स्व० गोपालप्रसाद चक्रवर्त्ती मिले; यह सौरीन्द्रमोहन की बूआ के लड़के थे। तत्पश्चात् लक्ष्मी बाबू के दोनों ज्येष्ठ भ्राता स्व० गोपालप्रसाद मिश्र और शारदासहाय मिश्र ने पाथुरिया घाटा में आकर सौरीन्दमोहन के संगीत आचार्य का पद अलंकृत किया। इनसे सौरीन्द्र-मोहन ने टप्पा और क़व्वाली गीतों की प्राथमिक शिक्षा आरम्भ की और यह भी सम्भव है कि उसी समय विष्टुपुर के क्षेत्रमोहन गोस्वामी महाशय ने भी इनके संगीताचार्य का पद ग्रहण किया हो।

इस प्रकार सौरीन्द्रमोहन की ज्ञानार्जन की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। फलस्वरूप विष्टुपुर के यदुभट्ट, अनंतलाल बन्दोपाध्याय, कलकत्ते के केशवचंद्र मित्र, मुरारी गुप्त, महेन्द्र चट्टोपाध्याय और कालीप्रसन्न वंदोपाध्याय और उत्तर भारत से बासत खाँ, मुरादअली खाँ, हस्सू खाँ, सज्जन खाँ, महम्मद खाँ (बड़कू मियाँ) और उनके भ्राता मोहम्मद अलीखाँ, अब्दुल्ला खाँ, हनुमानदास, विश्वनाथराव, बीनकार नंद दीघल, इम्दाद खाँ, न्यामतउल्ला खाँ, कालेखाँ, कुकुभ खाँ, गुरुप्रसाद मिश्र, शिवनरायण मिश्र, शिवसहाय मिश्र, लक्ष्मीप्रसाद मिश्र (गायक) ऐसे प्रमुख अनेक कलाविद आपके पास आये।

उक्त कलाकारों के आगमन से यह नहीं समझना चाहिये कि राजा सौरीन्द्रमोहन ने इन सब को आचार्य रूप में ही ग्रहण किया, अपितु तत्कालीन भारत के विभिन्न घरानों का ज्ञानार्जन करने के उद्देश्य से ही आप इन कलाविदों का सम्मेलन कराते थे। इस सम्मेलन पर विचार करने से प्रमाणित होता है कि सौरीन्द्रमोहन ने ही सर्व प्रथम संगीत सम्मेलन की वास्तविकता समझी और आंशिक रूप में सफलता भी प्राप्त की।

प्रतिभाधर संगीत कलाविदों की शिक्षा एवं साहचर्य के कारण सौरीन्द्र-मोहन ने क्रमानुसार दान्डा मात्रिक स्वरलिपि पद्धति एवं प्राचीन राग-रागनियों के विषय में नव-परिकल्पना स्थिर की और निष्ठा के साथ संगीत सम्बन्धी ग्रन्थादि की रचना भी प्रारम्भ करदी।

भारतीय संगीत के साथ–साथ आप योरोपीय संगीत का सचेष्ट अनुशीलन करते रहे। लाखों रुपये व्यय करके आपने देश-विदेश के असंख्य, दुष्प्राप्य संगीत सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रंथादि संग्रहीत किये और इस प्रकार विभिन्न देशों के संगीत के संबंध में ज्ञानार्जन करके निम्नांकित ग्रंथों की रचना की:– 1-Hindu Music from various authors, 2-Hindu music, 3-English versus said to Hindu music, 4-Six Principal Ragas. 5- Prince Panchshat, 6-Victoria Samrajan, ७-यंत्र क्षेत्र दीपिका ८-जातीय संगीत विषयक प्रस्तार ९-मृदंग मंजरी १०-ऐक्य तान ११–हारमोनियम सूत्र १२–यंत्र कोष १३–विक्टोरिया गीतिका, १४–गांधर्व कलाप व्याकरण १५–कंठ कौमुदी १६–संगीत सार संग्रह आदि। रचना काल में अन्यतम संगीताचार्य स्व० क्षेत्रमोहन गोस्वामी और स्व० कालीप्रसन्न बन्दोपाध्याय की इन्हें विशेष सहायता मिली।

आपकी सत्य निष्ठा असफल नहीं हुई। देखते–देखते सौरीन्द्रमोहन की ख्याति देश–विदेशों में प्रसारित होगई। आपके ग्रंथादि, प्रबन्ध समूह का विभिन्न योरोपीय भाषाओं में अनुवाद होने के कारण विभिन्न देशों के मनीषियों का ध्यान आपकी ओर आकर्षित हुआ। योरोप के अनेक राष्ट्रों ने आपको विभिन्न प्रकार के पदकादि उपहार देकर आपके प्रति सम्मान प्रकट किया। अमेरिका के फ्लाडेलफ़िया विश्व–विद्यालय (सन् १८७५ ई०) तथा ऑक्सफोर्ड विश्व–विद्यालय (१८९६ ई०) ने आपको 'डाक्टर ऑव म्यूजिक' की उपाधियों से विभूषित किया। तत्कालीन भारत साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया ने इनको सन् १८८० ई० में राजा बहादुर, सी. आई. ई. और १८८४ ई० में Knight Bachelor of the United Kingdom उपाधियों से विभूषित करके इङ्गलैंड जाने के लिये निमंत्रित किया। तत्कालीन बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड ने भी इसी प्रकार के सम्मानों से विभूषित करके आपको बेल्जियम आने के लिये आमन्त्रित किया। प्रख्यात योरोपियन म्यूजिक कान्फ्रेंस के तत्कालीन कर्णधारों की भी तीव्र इच्छा थी कि एक बार सौरीन्द्रमोहन उनके सम्मेलन में उपस्थित हों। संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी आपको विविध रूपों में विशाल धनराशि का प्रलोभन देकर मारकिन राष्ट्र प्रदर्शन करने के लिये निमंत्रित किया। किन्तु सौरीन्द्रमोहन का चरित्र विशिष्ट धातुओं से बना हुआ था। वह व्यक्तिगत सम्मान की अपेक्षा अपने धर्म को विशेष महत्व देते थे। अतः उस काल के हिन्दू समाज की विधियों का निर्देश लंघन करके समुद्र यात्रा करना उन्हें स्वीकार न हुआ।

सौरीन्द्रमोहन विदेश नहीं जा सके; किंतु विदेश उनका विस्मरण न कर सका। विदेशी गुणीवृन्द आज भी उनको यथोचित श्रद्धा के साथ स्मरण

करते हैं इसका प्रमाण हमें मोजार्ट, बीथोविन इत्यादि के संगीत आलोचना प्रसङ्ग में सौरीन्द्रमोहन का उल्लेख देखकर मिलता है। कैप्टिन डे०, फॉक्स स्ट्रेन्वे, एच० पोपले आदि प्रमुख संगीतज्ञों ने आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के कारण ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में आपका विराट तैलचित्र एवं बहुमूल्य पाषाण प्रतिमा स्थापित की थी। विदेशियों ने सौरीन्द्रमोहन का जितना सम्मान किया उसकी तुलना में भारतवासी उनके सम्मान आदि के प्रति अत्यंत उदासीन रहे; इसका उदाहरण हमें इससे मिलता है कि उनका जीवन सम्बन्धी कोई भी इतिहास हम प्रकाशित नहीं कर सके; उन्होंने कितने ग्रन्थों की रचना की यह भी हम में से अधिकांश को नहीं मालूम। सौरीन्द्रमोहन ने ही सर्व प्रथम इस बात का प्रयास किया था कि महलों की चहारदीवारी से निकलकर संगीत जनसंगीत बने और इसके निमित्त उनके प्रयासों में 'बङ्ग संगीत विद्यालय' और Bengal Academy of Music की स्थापना एक श्रेष्ठतम तथा अपूर्व सूझ थी।

उक्त दोनों संस्थानों का संचालन सौरीन्द्रमोहन अपने ही द्रव्य से करते थे। सर्व प्रथम आपने कलकत्ता के कौलू टोला महल्ले में संगीत विद्यालय की स्थापना की जिसका कि बाद में चितपुर रोड के नार्मल स्कूल में स्थानान्तरण होगया। सौरीन्द्रमोहन की मृत्यु के पश्चात् शनैः शनैः यह सब प्रयत्न केवल इतिहास बन कर रह गये।

सौरीन्द्रमोहन का देहावसान ५ जून, शुक्रवार सन् १९१४ ई० को होगया। मृत्यु के समय आपके चार पुत्र मौजूद थे, जिनके नाम हैं प्रमोद-कुमार, प्रद्योतकुमार, श्यामकुमार और शिवकुमार। इनमें से प्रद्योतकुमार और शिवकुमार ने विशेष ख्याति अर्जित की।

★

हृदयनारायण देव

यह 'गढ़ा मंडला' के राजा थे। यह स्थान वर्तमान मध्य प्रदेश में है। इनके पिता का नाम प्रेमशाह उर्फ प्रेमनारायण था। आप गढ़ा नामक राज्य के शासक थे। सन् १६५१ ई० में हृदयनारायण शत्रुओं द्वारा पराजित होकर मंडला जाकर बस गये, इसीलिये यह 'गढ़ामंडला के राजा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

यह राजा प्रारम्भ से ही साहित्य एवं ललित कलाओं में रुचि रखने वाला था, इसने 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश' नामक दो ग्रन्थों की रचना की। यह दोनों ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं और उत्तरीय संगीत पद्धति में सर्व-मान्य हैं।

'हृदय कौतुक' ग्रन्थ का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके रचना कार्य की प्रेरणा लोचन के 'राग तरंगिणी' नामक ग्रन्थ से मिली होगी। दूसरे ग्रन्थ 'हृदय प्रकाश' की रचना अहोबल के 'पारिजात' का आधार लेकर हुई। कुछ भी सही यह दोनों ही पुस्तकें संगीत जिज्ञासुओं के लिये बड़े काम की हैं। इनमें तत्कालीन १२ स्वरों का निश्चित स्थान तार की लम्बाई से स्पष्ट किया गया है। मेल (थाट) व्यवस्था की योजना भी सुन्दर ढङ्ग से दी गई है।

श्री हृदयनारायण देव का समय १७ वीं शताब्दी ही निश्चित किया जा सकता है। जय गोविन्द नामक पंडित ने इनके वंश का इतिहास भी लिखा था जिसे सन् १६६७ ई० में शिला लेख का रूप देकर वहीं गढ़वा दिया गया।

★

क्षेत्र मोहन स्वामी

आप बंगाल प्रान्त के उच्चकोटि के संगीत शास्त्रज्ञ थे। स्वामी जी स्वयं को 'विष्णुपुरी' पद्धति की परम्परा में से समझते थे। आपका समय १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध मानना चाहिये। राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर के गायन गुरु होने के कारण आपकी काफ़ी ख्याति थी। टैगोर साहब के ग्रन्थों का प्रकाशन आपके नेतृत्व में ही हुआ था। आर्य संगीत पर लिखे हुए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में 'शुद्ध स्वर सप्तक बिलावल है' ऐसा इनका विश्वास था। इस विश्वास को दृष्टिगत करते हुए बरबस यह कहना पड़ेगा कि इन्हें प्राचीन ग्रन्थों का यथार्थ रूप में ज्ञान नहीं हो पाया था और इसी कारण इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों में अनेक संभ्रामक विधान पाये जाते हैं। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आपकी मृत्यु हो गई।

★

द्वितीय अध्याय

गायक

अंजनीबाई मालपेकर

लगभग ७३ वर्ष की आयु में भी आपकी आवाज़ दमदार और मधुर बनी हुई है। अंजनी बाई अपने समय की एक प्रसिद्ध गायिका रही हैं। यद्यपि आपने सन् १९२० से ही व्यक्तिगत महफ़िलों में गाना छोड़ दिया है, किन्तु आपके अनुभव से लाभ उठाने के लिये बड़े-बड़े संगीत मर्मज्ञ और जिज्ञासु एवं उच्च परिवार के संगीत प्रेमी अब भी आपके पास आते रहते हैं।

अंजनीबाई के नाना वासुदेव राय व उनके दो भाई वामनराव तथा राम बा पेशेवर संगीतज्ञ थे। राम बा गाना भी गाते और शिक्षा भी देते थे। वामन राव एक योग्य तबला वादक थे। अंजनीबाई की मां भी गाया करती थीं जिन्हें कि अपने पिता से संगीत शिक्षा प्राप्त हुई थी। संगीत के ऐसे परिवार में अंजनीबाई का जन्म २२ अप्रैल सन् १८८३ को गोआ में हुआ। यद्यपि आपका परिवार उस समय बम्बई में रहता था, किंतु प्रसव के लिये गोआ जाने का रिवाज इनकी पारिवारिक महिलाओं में आरम्भ से ही था। बचपन में आपकी साधारण सी शिक्षा होने के बाद आठवें साल में आपकी संगीत शिक्षा प्रारम्भ होगई और खां साहब नज़ीर खाँ का गंडा बंधवा दिया गया। प्रातःकाल ४ बजे ही उस्ताद इनके घर आते और नौ-दस बजे तक तालीम देते। सर्व प्रथम कुछ पल्टे अलंकार तैयार कराने के पश्चात् उन्होंने साढ़े तीन वर्ष तक केवल यमन राग ही सिखाया और उसके पश्चात् दो वर्ष तक भैरवी सिखाई। इनके उस्ताद का कहना था कि इन दोनों रागों के सध जाने पर फिर सब कुछ ठीक हो जाता है, क्यों कि यमन-राग में तीव्र स्वर आजाते हैं और भैरवी में सब कोमल स्वर। इस प्रकार सप्तक के बारहों स्वरों का ज्ञान शागिर्द के दिमाग़ में बैठ जाता है। उस्ताद ने इनको खंडमेरु

के भेद भी याद करा दिये थे, जिनसे स्वरों की तैयारी खूब होगई। इस प्रकार पांच वर्ष तक संगीत की नींव मजबूत कर लेने के पश्चात् खां साहब ने बाई से कहा—"बेटा अब तुम्हारी आवाज़ तैयार होकर स्वरों पर क़ाबू हुआ है, अब आगे न तो मुझे सिखाने में कठिनाई पड़ेगी और न तुम्हें सीखने ही में दिक्क़त होगी, इसलिये अब मुझे तुम्हारे साथ अधिक मेहनत करने की कोई जरूरत नहीं। अब तो घण्टे दो घण्टे रोज़ाना की तालीम काफ़ी है"। इसके पश्चात् उस्ताद नज़ीर खां ने दस–पंद्रह वर्ष तक आपको कई रागों की शिक्षा और दी। सन् १९२० ई० के लगभग उस्ताद नज़ीरखां की मृत्यु होगई। फिर उनके भाई ख़ादिम हुसैन इनके यहां आते–जाते रहे।

इसके पश्चात् बाई जी ने नैपाल, पंजाब, सौराष्ट्र, गुजरात कच्छ, मध्य–प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि कई प्रांतों में भ्रमण करके संगीत कार्यक्रमों में भाग लेकर अर्थ के साथ–साथ यथेष्ट ख्याति भी प्राप्त की। इनके गाने की महफ़िलें विशेषतः रियासतों, रजवाड़ों और जागीरदारों के यहां होने के कारण उस समय के कुछ ऐयाश और बदचलन राजा नवाबों के द्वारा इन्हें कुछ कटु अनुभव भी हुए, इसलिये इन्होंने फिर ऐसी महफ़िलों में भाग लेना ही छोड़ दिया। जीवनयापन के लिये पैसा इनके पास काफ़ी हो ही चुका था और इनके एक लड़का भी था अतः फिर इनकी रुचि भजन पूजन की ओर अग्रसर होने लगी। यहां इनके जीवन की एक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है:—

एक बार बापू तारा के यहाँ रात भर इनके गाने का जल्सा हुआ। जल्से के बाद इनकी आवाज़ एक दम बैठ गई और इतनी बैठ गई कि बोला भी नहीं जाता था। अनेक वैद्य डाक्टरों का इलाज कराया गया लेकिन कोई नतीजा न निकला, यह बहुत ही चिंताग्रस्त रहने लगीं। तब कुछ व्यक्तियों ने इनको सम्मति दी कि नारायण महाराज के प्रसाद से तुम्हारी आवाज़ ठीक हो सकती है। इन बातों में इनका विश्वास नहीं था फिर भी जब इनके यहां आने जाने वाले नारायण महाराज के भक्त महाराज से विशेष आज्ञा ले करके इनके लिये मिश्री और लौंग लेकर आये और कहा कि लो यह प्रसाद खाओ तुम्हारा स्वर ठीक हो जायेगा। यह तो इस बात से हँसने लगीं कि इतने–इतने इलाज कराने पर भी जब कुछ न हुआ तो इस प्रसाद से ही क्या हो जायगा लेकिन इनकी माता जी इन बातों में श्रद्धा रखती थीं अतः उन्होंने आग्रह पूर्वक इन्हें प्रसाद खिला दिया। प्रसाद खाने के बाद इन्होंने हँसी

में प्रसाद लाने वाले लोगों से कहा, लो सुनो अब मेरी आवाज़ और इन्होंने एक ज़ोर की तान ली तो आवाज़ साफ़ व खुली हुई निकलने लगी। सब आश्चर्यचकित रह गये तबसे बाई जी की श्रद्धा नारायण महाराज केडगांवकर पर विशेष रूप से होगई और आप उनकी भक्त बन गईं। भजन, कीर्तन, मण्डलियों में आप विशेष रुचि रखने लगीं और फिर आपने तीर्थ यात्रा में भाग लेकर अनेक धार्मिक स्थानों का भ्रमण किया। फिर भट वाडी (बम्बई) में आपने एक नई बिल्डिङ्ग खरीद ली, वहां शांति पूर्वक रहते हुए भगवद्-भजन में अपना समय व्यतीत करती हैं एवं जब-तब कोई प्रसिद्ध गायक अथवा गायिका आती है तो उनका कार्यक्रम भी आप अपने घर पर कराती रहती हैं।

★

अख्तर पिया (वाजिदअली शाह)

लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह ने "अख्तर पिया" उपनाम से बहुत से गीतों की रचना की थी। इनके बारे में अबतक यह कहावत चली आती है कि ऐसा कला प्रेमी, रसिक, शौकीन मिजाज़ और ऐय्याश न तो कोई हिन्दू राजाओं में था और न मुस्लिम नवाबों में हुआ। यह सन् १८४७ में लखनऊ की राजगद्दी पर बैठे और सन् १८५६ ई० में ब्रिटिश सरकार ने इन्हें शासन कार्य में अयोग्य पाकर पदच्युत कर दिया। नौ, दस वर्ष के राज्य-काल में ही नवाब वाजिद-अली शाह ने जीवन की उन समस्त रंगीनियों को लूट लिया जिनकी, आज का कवि और शायर केवल कल्पना ही किया करता है।

नवाब साहब को संगीत से विशेष प्रेम था। स्वयं भी बड़े अच्छे गायक थे और नृत्य में तो उस समय कोई आपकी समता ही नहीं कर सकता था। इनके प्रमुख शिष्य का नाम कन्हैया नर्तक था। लखनऊ के कैसर बाग में एक विशाल भवन का निर्माण करके उसमें ३६० नाट्यशालाऐं स्थापित की गई थीं। होली के अवसर पर नवाब साहब कृष्ण और उनकी नाट्य-शाला की अभिनेत्रियां गोपी बनकर नृत्यक्रीड़ा किया करते थे। केवल केशर, रंग और गुलाल में ही लगभग दस हज़ार रुपये व्यय किये जाते थे। कभी-कभी राज भवन में "संगीत इन्द्र सभा नाट्य" का भी कार्यक्रम हुआ करता था। इसमें नाट्यशाला की नर्तकियां परियों का वेश धारण करती थीं और नवाब साहेब इन्द्र का रूप बनाकर अभिनय किया करते थे। सन् १८५६ ई० के फरवरी के महीने की बात है—एक दिन प्रातःकाल ब्रिटिश सरकार की ओर से इन्हें गद्दी छोड़ने का हुक्म मिला। नवाब

साहेब इस आज्ञा को सुनकर अपने दरबार में आये और सिंहासन पर बैठकर भैरवी के स्वरों में "बाबुल मोरा नैहर छूटो जाय" चीज़ गाकर लोगों को अपने पदच्युत होने का संदेश दिया। सरकार की ओर से आपको बारह लाख रुपये पेंशन देकर कलकत्ता रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। कलकत्ता को जाते समय नवाब साहब अपने साथ कई अच्छे गायक एवं चुनीदा नर्तकियों को ले गये।

उपरोक्त घटनाओं से सिद्ध होता है कि नवाब वाजिदअली शाह संगीत कला में सर से पांव तक डूबे हुए थे। कला और कलाकारों से यह विशेष प्रेम करते थे। सन् १८८७ ई० में कलकत्ते में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

★

अचपल

यों तो हमारे देश में प्राचीन समय से अब तक न जाने कितने उच्चकोटि के गायक और ऊंचे दर्जे के कवि उत्पन्न हुए। परन्तु ऐसे कलाकार जिनमें गायकी और कवित्व-शक्ति दोनों ही विद्यमान रही हों, बहुत ही कम देखने में आये। 'अचपल' के अन्दर यह दोनों ही विशेषताएं मौजूद थीं। यह उच्चकोटि के ख्याल गायक होने के साथ-साथ एक अच्छे कवि भी थे, इन्होंने अपने ख्यालों की बन्दिश के लिये अनेक गीतों की रचना की। जिन गीतों में "अचपल" उपनाम का प्रयोग हुआ है वे सभी रचनायें इसी कलाकार की प्रतीत होती हैं। इतिहासज्ञों के मतानुसार अठारहवीं शताब्दी का अन्त इस कलाकार का समय निश्चित किया जाता है। इसके निवास स्थान निधन तिथि एवं पूरे नाम के विषय में ठीक-ठीक प्रमाण नहीं मिलते।

★

अनन्त मनोहर जोशी

आपका जन्म सन् १८७८ ई० के लगभग "औंध" में हुआ था, बाल्यकाल से ही संगीत शिक्षा इन्होंने अपने पिता मनोहर बुआ जोशी से पाई। उसके पश्चात् मिरज में बालकृष्णबुआ के शिष्य बने। तत्पश्चात आपने प्रसिद्ध कलावन्त रहमतखां "भूगन्धर्व" से संगीत का अध्ययन किया। आप एक माने हुए संगीतज्ञ हैं और वर्षों तक बम्बई में "गुरु समर्थ संगीत विद्यालय" के अध्यक्ष रह चुके हैं। सुगायक होने के साथ-साथ आप स्वरकार भी हैं, इन्होंने कई ख्याल अपनी शैली में स्वरलिपि बद्ध किये हैं। आपके सुपुत्र गजानन जोशी भी एक होनहार कलाकार हैं और गायन में यदा-कदा अपने पिताजी का साथ देते हैं।

★

अंतूबुआ आप्टे

महाराष्ट्र के दक्षिणी भाग में रामदुर्ग नामक एक छोटी सी रियासत है, अन्तूबुआ यहीं के निवासी थे। उन दिनों रामदुर्ग में आप्टे नाम का एक सम्मानीय घराना रहता था, अन्तूबुआ इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इनके हृदय में कला के संस्कार जागृत हुए। नौकरी करने की इच्छा तो बचपन से ही नहीं थी, अतः कुछ दिनों तक लक्ष्यहीन ही भटकते रहे। एक दिन इन्होंने अपने साथियों से सुना कि मिरज में एक प्रसिद्ध गायक आया है जो जिसे चाहे संगीत की शिक्षा देता है। इस समाचार को सुनते ही विना किसी को सूचित किये अन्तूबुआ मिरज जा पहुँचे। वहां पहुंच कर उस्ताद जैनुलअब्दुल्ला से इन्होंने भेंट की। उस्ताद ने इस शर्त पर कि तुझे मेरे यहां काम करना पड़ेगा, अन्तू को संगीत शिक्षा देना स्वीकार कर लिया। अन्तू ने बड़ी लगन और परिश्रम के साथ अभ्यास प्रारम्भ किया और पांच छः वर्षों की अवधि में ही श्रेष्ठ गायक बन गये। अन्तूबुआ के सहपाठी महादेव गोखले भी इन्हीं दिनों उस्ताद के पास रहकर तैयार हो गये थे। उस्ताद जैनुल अपने दोनों शिष्यों को लेकर संगीतोत्सवों में जाने लगे और इन दोनों के मधुर तथा तैयार गायन की ख्याति फैलने लगी।

इस प्रकार संगीत के प्रकांड विद्वान और श्रेष्ठतम् गायक बन कर अन्तूबुआ अपनी जन्मभूमि रामदुर्ग में वापिस आये। इनके गुणों से प्रभावित होकर सरकार रामदुर्ग ने इन्हें अपना दरबार गायक बना लिया। इनके पास उस्ताद की कृपा से पर्याप्त चीजों का संग्रह और उत्तम गायनशैली आदि विशेषताएँ थीं, इस कारण इस प्रदेश में अन्तूबुआ की अच्छी ख्याति होगई। यह स्वाभाव के बड़े नम्र एवं निर्व्यसनी थे। बलवंतराव केतकर इनके प्रमुख शिष्यों में से थे। १९ वीं शताब्दी के अन्त में आप स्वर्गवासी होगये।

★

अब्दुलकरीम खां

खां साहेब अब्दुलकरीम खां किराना (जिला सहारनपुर) के निवासी थे। इनके घराने में प्रसिद्ध गायक, तंतकार व सारंगी वादक हुए हैं। इन्होंने अपने पिता कालेखां व चाचा अब्दुल्लाखां से संगीत शिक्षा प्राप्त की। यह बचपन से ही बहुत अच्छा गाने लगे थे। कहा जाता है कि पहली बार जब इन्हें एक संगीत-महफ़िल में पेश किया गया, तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते-करते इन्होंने संगीत कला में इतनी उन्नति करली कि आपको तत्कालीन बड़ौदा नरेश ने अपने यहां दरबार गायक नियुक्त कर लिया। बड़ौदा में ३ वर्ष तक रहने के पश्चात् १९०२ ई० में प्रथम बार आप बम्बई आये और फिर मिरज गये। मधुर और सुरीली आवाज एवं हृदयग्राही गायकी के कारण दिनोंदिन इनकी लोक-प्रियता बढ़ती गई।

सन् १९१३ के लगभग पूना में आपने "आर्य संगीत विद्यालय" की स्थापना की। विविध संगीत जल्सों के द्वारा धन इकट्ठा करके आप इस विद्यालय को चलाते थे। गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था। इसी विद्यालय की एक शाखा १९१७ ई० में खां साहब ने बम्बई में स्थापित की और स्वयं तीन वर्ष तक बम्बई में आपको रहना पड़ा। इन दिनों आपने एक कुत्ते को बड़े विचित्र ढंग से स्वर देने के लिये सिखा लिया था, बम्बई में अब भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जिन्होंने अमरौली हाउस बम्बई के जल्से में इस कुत्ते को स्वर देते हुए सुना था। कई कारणों से सन् १९२० में यह विद्यालय इन्हें बन्द कर देना पड़ा, फिर खां साहब मिरज जाकर बस गये और अन्त तक वहीं रहे।

खां साहब गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे। महाराष्ट्र में मींड़ और कण युक्त गायकी के प्रसार का श्रेय खां साहब को ही है। इनके आलापों में अखंडता एवं एक प्रवाह सा प्रतीत होता है। सुरीलेपन के कारण आपका संगीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसे सुनने के लिये कला मर्मज्ञ विशेष रूप से फ़रमाइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमजोर थे, किन्तु आपका हृदय बड़ा विशाल और उदार था। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त और सरस था, और एक फकीरी वृत्ति के गायक थे। शास्त्रीय संगीत में ठुमरी जैसी क्षुद्र गायकी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय खाँ साहेब को ही है। मराठी भावगीत तथा भजन–गायकी पर भी आपका समान अधिकार था। आपकी गायकी प्रायः करुण और श्रृंगार रस से परिपूर्ण होती थी।

खां साहब की शिष्य परम्परा बहुत विशाल है। प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ौदेकर ने खां साहब से ही किराना घराने की गायकी सीखी है। इनके अतिरिक्त सवाई गन्धर्व, बहरेबुआ, रौशन आरा बेगम आदि अनेक शिष्य एवं शिष्याओं द्वारा आपका नाम रौशन हुआ है।

एक बार वार्षिक उर्स के अवसर पर आप मिरज आये थे। कुछ लोगों के आग्रह वश एक जल्से में वहां से मद्रास जाना पड़ा, वहां पर आपका एक सङ्गीत कार्यक्रम में गायन इतना सफल रहा कि उपस्थित जनता ने आपकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। फिर एक संस्था की सहायतार्थ जल्से करने के लिये वहां से पांडचेरी जाने का निश्चय हुआ। इस यात्रा में ही खां साहब की तबियत खराब हो गई और रात्रि के ११ बजे सिंगपोयमकोलम स्टेशन पर वे उतर गये। बेकली बढ़ती गई, कुछ देर इधर–उधर टहलने के बाद वे बिस्तर पर बैठ गये, नमाज़ पढ़ी और फिर दर्बारी कान्हड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इस प्रकार गाते–गाते २७ अक्टूबर सन् १९१७ ई० को आप हमेशा के लिये उसी बिस्तर पर लेट गये। यहाँ से उनका शव मद्रास लाया गया और फिर मोटर द्वारा मिरज ले जाकर ख्वाजा मिरा साहब के दरगाह के पास दफ़ना दिया गया।

★

अमानअली खां

खां साहब स्व० अमानअली खां मूलरूप से बिजनौर जिला मुरादाबाद के निवासी थे। आपके बाबा खां साहब दिलावर हुसेन मुरादाबाद में रहते थे, उनके चार पुत्र थे–(१) छज्जूखां (२) नजीरखां (३) हाजी विलायत-हुसेन खां (४) खादिमहुसेन खां।

इनमें से अमानअली खां के पिता छज्जूखां थे जिन्हें अमरशा साहब कहके भी पुकारा जाता था। इनके दो लड़के और १ लड़की हुई। जिनमें बडे लड़के का नाम फ़िदाअली खां, छोटे का नाम अमानअली खां और पुत्री का नाम महबूबन था।

अमानअली का बाल्यकाल खेल-कूद और पतंग बाजी में ही अधिकतर बीता, इनके इस खिलाड़ीपन से इनके अब्बाजान वड़े चिंतित रहते थे किन्तु उपाय कुछ नहीं था। एक दिन अमानअली खां को अपने पिता के साथ उनकी एक शिष्या के यहां जाने का अवसर प्राप्त हुआ। गाने की तालीम समाप्त होने के बाद उस शिष्या ने अमानअली से कहा "कुछ आप भी सुनाइये। इस पर इन्होंने जबाव दिया मुझे तो कुछ नहीं आता। यह सुनकर उस शिष्या ने इन्हें समझाते हुए कहा कि आप एक कलाकार के पुत्र हैं, आपका यह जवाब कि "मुझ से कुछ नहीं आता" ठीक नहीं मालुम होता। आप उनसे गाना सीखिये और अपने अन्दर वैसी ही खूबियां पैदा करके अपने घराने और पिता का नाम रोशन कीजिये।

उक्त शिष्या के इस कथन का प्रभाव इनके ऊपर ऐसा हुआ कि घर आकर उसी दिन से गाना सीखने की कोशिश करने लगे। पिता ने इनकी रुचि बदलती देखकर शीघ ही संगीत की तालीम इन्हें देनी आरम्भ करदी। जिसके फलस्वरूप कुछ ही समय में आपके अन्दर अच्छी तैयारी आ गई। बाद में अपने चाचा नजीरखां और खादिमहुसेन खां से भी आप तालीम पाते रहे

और इस प्रकार अपने घराने की गायकी प्राप्त करके आपने ध्रुपद–धमार की गायकी में नाम पैदा किया।

आपकी गायकी का सबसे विशेष गुण था, आपकी "सरगम पद्धति"। एक बार जहाँ आपने सरगम शुरू किये कि घन्टों तक श्रोतागण उन्हें मन्त्रमुग्ध होकर सुनते रहते थे। इसके अतिरिक्त आपकी "बढ़त" पद्धति भी बड़ी वेगपूर्ण होती थी। प्रत्येक स्वर को दूसरे स्वर से मींड लेकर जोड़ने की कला, सम पर पहुँचने की पद्धति बहुत सुन्दर और आकर्षक होती थी। जिस प्रकार आप आलाप और तान लेते थे, उसी अङ्ग से चीजों के मुखड़े भी कहते थे। गायन प्रदर्शन में आपके अन्दर मुद्रादोष का भी सर्वथा अभाव था।

बताया जाता है कि खां साहेब ने लगभग १०० रागों पर पांचसौ के लगभग चीजें बांधी थीं, इस प्रकार गायक के साथ-साथ आप नायक भी थे। आपने अपनी चीजों में "अमर" उपनाम दिया है। खेद है कि अभी तक इनकी यह चीजें पुस्तक रूप में संगीत प्रेमियों के सामने नहीं आ सकीं।

★

अमीर खां

उस्ताद अमीरखाँ के पिता उस्ताद शमीरखाँ एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ और इन्दौर राज्य के दरबारी कलावन्त थे। अमीरखाँ का जन्म इन्दौर में धनाढ्य संगीत घराने में हुआ, आपके पिता उस्ताद शमीरख़ाँ ने अपने घराने के अनेक कलावन्तों से शिक्षा प्राप्त की थी।

उ०अमीरखाँ ने दस वर्ष की आयु से अपने पिता से संगीत शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया था और २५ वर्ष की आयु तक निरंतर संगीत साधना में संलग्न रहे। ख्याल गायन में अमीरखां आज अपना एक विशिष्ट महत्व रखते हैं। राग की बढ़त और उसके रसका अपूर्व आनन्द देना अमीरखाँ के ही हक़ में है। विविध अलंकारों का समन्वय भी आप वैचित्र्यपूर्ण ढङ्ग से करते हैं। अंतिम मुगल शासक के समय आपके एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ पूर्वज ने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था। मुगल शासन का अंत होने पर आपके कुटुम्बियों ने संगीत को व्यापारिक माध्यम बना लिया, किन्तु आपके पिता को इससे घृणा थी और उन्होंने इस रवैये को समाप्त करने में ठोस कदम उठाये।

फ़िल्मी क्षेत्र में भी अमीरखाँ अपनी कला बिखेर चुके हैं और जनसाधारण ने उनके शास्त्रीय संगीत में उतनी ही रुचि ली है जितनी कि अन्य हल्के गीतों में; इससे हम अमीरखां की विलक्षण प्रतिभा को सहज ही आंक सकते हैं।

आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों तथा अनेक संगीत सम्मेलनों में अमीरखां ने अच्छी ख्याति अर्जित की है। आपकी चैनदार गायकी से श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

आपके प्रमुख शिष्यों में अमरनाथ का नाम उल्लेखनीय है। अमरनाथ की गायकी सुनकर सहज ही अमीरखाँ की याद आने लगती है। अमरनाथ आकाशवाणी दिल्ली पर नियुक्त हैं और 'गर्मकोट' फ़िल्म में संगीत निर्देशन भी कर चुके हैं।

★

अमीर खुसरो

हिन्दुस्तान के राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास में १२ वीं सदी क्रान्ति की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय थी। इन दिनों मुसलिम बादशाहों के आक्रमणों से पीड़ित होकर उत्तर भारत के हिन्दू राज्य एक-एक करके समाप्त होते गये और फिर भारतवासियों पर वह विदेशी संस्कृति लाद दी गई जो सदियों तक अपनी धाक जमाकर चलती रही।

अमीर ख़ुसरो के पूर्वज ख़ुरासान से भारत में आये थे, इसके पिता अमीर मोहम्मद सैफ़ुद्दीन एटा ज़िले के एक छोटे से कस्बे पटियाली में आकर बस गये। वे कला प्रेमी और प्रकृति पूजक के साथ-साथ काव्य रसिक भी थे। ख़ुसरो का जन्म सन् १२५३ ई० (६५१ हिजरी) में इसी स्थान पर हुआ। ख़ुसरो अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान था, इसके पिता ने इसको भली प्रकार शिक्षा दी। पिता की मृत्यु के बाद अमीर ख़ुसरो तत्कालीन ग़ुलाम घराने के दिल्लीपत ग़यासुद्दीन बलबन के आश्रय में रहा। वहां कलाकार और साहित्यकारों के सम्पर्क में रहकर इसकी प्रतिभा और भी प्रखर होती गई और ख़ुसरो काव्य रचना में रुचि लेने लगा।

इमामुल मुल्क द्वारा बुलाई गई संगीत महफ़िलों में भाग लेने के कारण अमीर ख़ुसरो का संगीत की ओर आकर्षण बढ़ा, जिससे लाभ उठाकर ख़ुसरो ने संगीत के क्षेत्र में ऐसा काम कर दिखाया जिसके कारण इतिहास में उसका नाम अमर हो गया। कुछ समय बाद ख़ुसरो ने बलबन के पुत्र शाहज़ादा मौहम्मद सुलतान की नौकरी कर ली और उसके साथ मुल्तान गया, जहाँ उसके मालिक की मृत्यु मंगोलों के हाथों हो गई और ख़ुसरो हताश होकर

दिल्ली लौट आया। दिल्ली में उसने तत्कालीन बलबन के उत्तराधिकारी कैकोबाद के यहाँ नौकरी करली।

यद्यपि क़ैकोबाद शासन की दृष्टि से एक अयोग्य शासक ही साबित हुआ किन्तु संगीत और कविता से उसे बेहद मौहब्बत थी, उसे अपनी रुचि के अनुकूल ख़ुसरो जैसा कलाकार भी मिल गया था। इसी समय ख़ुसरो ने राजाज्ञा से "किराम उस्सादेन" मसनवी लिखी; जिसमें कैकोबाद और उसके पिता की भेंट का वर्णन किया गया। जब कैकोबाद की मृत्यु होगई तब ख़ुसरो ने अलाउद्दीन खिल्जी की (१२९५–१३१६) नौकरी करली। उसके यहां अमीर ख़ुसरो राज दरबार में प्रत्येक रात्रि को एक नई ग़ज़ल गाते थे। उन दिनों वहां संगीतज्ञों के जल्से होते रहते थे जिनमें बूढ़े सुल्तान राज दर्बारी क़ैदियों के साथ संगीत और काव्य का आनन्द लेते। इन कलाकारों में अमीर ख़ुसरो का विशेष स्थान था।

अमीर ख़ुसरो उच्चकोटि का संगीतज्ञ, गायक और कवि था। उसके गद्य–पद्य के ग्रन्थों ने फ़ारसी साहित्य में उसे बहुत ऊँचा स्थान दिया है। कहा जाता है कि ख़ुसरो ने संगीत पर भी एक ग्रन्थ लिखा था, किन्तु उसके नाम और प्रकाशन का कुछ पता नहीं लगता।

अमीर ख़ुसरो ने भारतीय और फ़ारसी गानों के आधार पर अनेक रागों की सृष्टि की थी जिनमें-साज़गिरि, उश्शाक़, ऐमन, जीलफ, सरपरदा, बाख़र्ज, मुनम, निगार, वसीत शाहाना आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

खुसरो के बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है जिससे इनके भारतीय और फ़ारसी संगीत पर अधिकार होने का पता चलता है। घटना इस प्रकार है कि अलाउद्दीन के शासन काल में दक्षिण भारत का प्रसिद्ध संगीतज्ञ (देवगिरी के राजा के आश्रित) गोपाल नायक नामक एक विद्वान गायक था। वह अपने बारहसौ शिष्यों के साथ दिल्ली आया। ख़ुसरो ने अलाउद्दीन को किसी तरह समझा बुझा कर यह प्रपंच रच डाला कि राज सिंहासन के नीचे छिपकर गोपाल नायक का गाना सुनता रहे। अलाउद्दीन राजी हो गया और गोपाल नायक ६ दिन तक दर्बार में गाता बजाता रहा तथा अमीर-ख़ुसरो सिंहासन के नीचे छिपा हुआ बराबर उसका संगीत सुनता रहा। इसके पश्चात् जब ख़ुसरो स्वयं उपस्थित हुआ तो गोपाल नायक ने उसे मुक़ाबिले के लिये ललकारा। पहले गोपाल ने गायन आरम्भ किया किन्तु ख़ुसरो ने

बीच में ही रोक कर कहा कि इन रागों में कोई नवीनता नहीं है। जब गोपाल ने उन रागों को दुहराने के लिये ख़ुसरो से कहा तो उसने फ़ौरन ही उन हिन्दुस्तानी रागों से मिलते जुलते फ़ारसी राग गाकर सुना दिये; इस प्रकार ख़ुसरो की जीत हुई।

अमीर खुसरो में यह विशेषता थी कि वे भारतीय रागों को सुनने के पश्चात् उसी तरह के फ़ारसी राग फ़ौरन तैयार करके सुना देते थे। अमीर ख़ुसरो द्वारा भारतीय संगीत की देन का उल्लेख लाहौरी के 'बादशाह नामा' में भी किया गया है। उसमें लिखा है कि मुसलमानों के उदय के पहले भारतीय संगीत में गीत, छंद, धुरू और अस्तुत होते थे। ये सब राग कर्नाटकी भाषा में होने के कारण उत्तर भारत के लोग उन्हें नहीं समझ सकते थे। अमीर ख़ुसरो ने गाने के चार नये तरीके निकाले (१) कौल इनमें फ़ारसी और अरबी के शब्द होते थे और गाने का ढंग भारतीय गीतों की तरह होता था (२) एक प्रकार का तराना जिसमें फ़ारसी के शेर होते थे जो प्रायः इकताला में गाये जाते थे (३) कव्वाली जो परशियन और भारतीय शैली मिश्रित एक गायन पद्धति थी (४) ख्याल यह एक प्रकार के गीत हिन्दुस्तानी भाषा के होते थे। इस प्रकार विशेष रूप से ख्याल तराने और कव्वाली के जन्मदाता होने का श्रेय अमीर ख़ुसरो को दिया जाता है। इसके अतिरिक्त वाद्यों में भी इसने क्रांन्ति पैदा की। ख़ुसरो ने दक्षिणी वीणा में परिवर्तन करके चार की जगह तीन तार लगाये तथा तारों का क्रम उलट कर चल परदे लगा दिये। और द्रुतलय में बजाने की सुविधा के लिये गतें बना कर ताल में निबद्ध कीं। इससे वीणा की अपेक्षा यह परिवर्तित वाद्य अधिक लोकप्रिय हो गया। इस वाद्य में तीन तार होने से ख़ुसरो ने इसका नाम सहतार (सितार) रक्खा। फ़ारसी में सह का अर्थ है तीन।

आगे चलकर इस तीन तार वाले सहतार का रूप बदलते-बदलते आज सितार के रूप में हमारे सामने है. इसमें तारों की संख्या भी बढ़कर सात होगई है। कुछ विद्वानों के मतानुसार अमीर ख़ुसरो ने ही पखावज को बीच से काट-कर 'तबला' का आविष्कार किया। सन् १३२४ ई० के लगभग अमीर खुसरो के उस्ताद निजामुद्दीन औलिया का देहान्त हो गया। इस दुखद समाचार को जब इन्होंने सुना तो अपने गुरु की कब्र के पास पहुँच कर इन्हों ने निम्नलिखित दोहा कहा:-

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

यह कहते हुए बेहोश होकर आप गिर पड़े। इसके पश्चात अमीर खुसरो विरक्त होकर रहने लगे और इसी वर्ष इनका भी देहान्त हो गया। इनकी कब्र भी इनके गुरू निज़ामुद्दीन औलिया के पायताने की ओर दिल्ली में मौजूद है जहां प्रतिवर्ष उर्स मनाकर उनकी गजलें गाकर कव्वाल लोग जशन मनाया करते हैं।

इनके पुत्र फीरोज खां भी सितार वादन में अपना नाम अमर कर गये हैं जिनका परिचय इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया जा रहा है।

अल्लादिया खां

स्वर्गीय खाँ साहब अल्लादिया खाँ के पूर्वज पहिले निजाम शाही में नौकर थे, फिर कुछ समय बादशाह औरंगजेब की नौकरी में रहे। कहा जाता है कि इनके प्रथम पुरखे गौड़ ब्राह्मण थे और उनके मालिक राजपूत सरदार थे। उन दिनों के शहन्शाह आलमगीर ने उन्हें मुसलमान बनने पर मजबूर किया तभी से खाँ साहब का पूरा वंश मुसलमान हो गया।

आपका जन्म सन् १८५५ के लगभग हुआ। अपने चचा दौलत खाँ के पास आपने कई वर्ष तक संगीत की तालीम ली, इसके बाद आप पहले पहल बड़ौदा स्टेट में नौकर हुये। श्रीमंत गायकवाड़ की नौकरी में ही आपका परिचय महाराष्ट्रीय संगीतज्ञों से हुआ। विशेष रूप से आपका पहनावा राजपूती ढंग का होता था सर पर सफ़ेद साफा, काली सर्ज का लम्बा कोट, सफ़ेद धोती और आखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगा कर

रौबदार गलमुच्छों से आपका व्यक्तित्व प्रभावशाली देखने में आता था। जब आप अपने भाई हैदरखाँ के साथ पहले पहल पूना में आये थे, तब "किर्लोसकर" नाटक मंडली में खाँ साहब की पहली महफ़िल हुई। पूना के बहुत से संगीतज्ञ भी उसमें शामिल थे। आपकी कला पूर्ण गायकी से सभी प्रभावित हुये और तब से महाराष्ट्र में खाँ साहब का नाम गवैयों की जबान पर रहने लगा।

कोल्हापुर दरबार के छत्रपति शाहू महाराज संगीत के विशेष प्रेमी थे। खाँ साहब के संगीत से प्रभावित होकर महाराज ने आपको दरबार गायक रख लिया, तब से आप कोल्हापुर में ही रहने लगे। कुछ समय बाद आपके पुत्र मन्जीखाँ की मृत्यु हो गई। मन्जी खाँ ने आपके घराने की कला अच्छी तरह प्राप्त करली थी और वे एक अच्छे गायक के रूप में संगीत की सेवा कर रहे थे! इनकी मृत्यु से दुखित होकर खाँ साहब अल्लादिया खां ने कुछ समय तक गाना ही छोड़ दिया। बाद में मित्र, सम्बन्धियों तथा शिष्य समुदाय के समझाने पर आप फिर संगीत सेवा करने लगे।

आपके शिष्य समस्त महाराष्ट्र में फैले हुये हैं। जिनमें गायनाचार्य भास्कर बुआ, श्रीमती केसर बाई, श्री गोविन्द राव टैम्बे तथा खाँ साहेब के सुपुत्र भुर्जी खाँ साहेब का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपके घराने की गायकी प्राप्त करने में उक्त शागिर्दों ने बड़ी तपस्या की है। इसका कारण यह है कि इस घराने की गायकी सरल न होकर कष्टसाध्य है। हिन्दोल, मालश्री, मारवा, बसंत, भैरवबहार, बसंतबहार, मारूविहाग, नायकीकानड़ा, गोरखकल्याण, खटतोड़ी, ललितमंगल, जयन्तमल्हार आदि अप्रसिद्ध और मुश्किल राग गाने में आप सिद्ध थे। आप अपनी गायकी में स्वर कंपन, मीड़, गमक, हरकत के साथ-साथ आलाप की गम्भीरता पर विशेष ध्यान देते थे। ऊंची और पतली आवाज़ से तार और अतितार सप्तक के स्वरों में काम दिखाने की विशेषता आपके अन्दर विद्यमान थी।

आपके घराने की गायकी में विशेष रूप से ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराने, होली आदि गीत प्रकार ही विशेष रूप से पाये जाते हैं। ठुमरी तथा ग़ज़ल का गाना आपके घराने में नहीं के बराबर है। कभी-कभी आपके पुत्र मंजी खाँ साहेब तो ठुमरी भी गाते थे। किन्तु उस ठुमरी में भी शास्त्रीय संगीत का निर्वाह वे यथा शक्ति करते थे।

खाँ साहेब की घराने की वाणी "डागुरी" प्रसिद्ध है और मत हनुमंत मत कहा जाता है। खाँ साहेब के पोते अज़ीजुद्दीन खाँ आजकल कोल्हापुर में रहते हैं। उनका कहना है कि कोल्हापुर की अल्लादिया खाँ स्मारक समिति खाँ साहेब की विस्तृत जीवनी मराठी भाषा में प्रकाशित करने का आयोजन कर रही है खाँ साहेब की मृत्यु १६ मार्च १९४६ ई० को हुई!

अल्लाबन्दे खाँ

आप भी अपने समय के एक बहुत लोकप्रिय ध्रुपद गायक हो गये हैं। अनुमान से आप उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पैदा हुए होंगे क्योंकि यह तत्कालीन अलवर नरेश के दरबारी गायक के पद पर आसीन थे। यह प्रसिद्ध संगीतज्ञ जाकिरउद्दीन खाँ के लघु भ्राता थे। श्रुतियों पर खाँ साहब का बहुत अच्छा अधिकार था। संगीत के क्षेत्र में आपके द्वारा की गई सेवाएं स्मरणीय हैं। सन् १९२३ ई० के लगभग अलवर में ही आपका स्वर्गवास हो गया, ऐसा इतिहासकारों का मत है। आपके दो पुत्र नसीरउद्दीखाँ डागर और रहीमउद्दीन खाँ डागर आजकल पर्याप्त ख्याति अर्जित कर रहे हैं।

★

आदित्यराम जी

उत्तर भारत में जिस प्रकार स्वामी हरिदास को संगीत का प्रकांड विद्वान और आदि गुरू माना जाता है; उसी प्रकार सौराष्ट्र के क्षेत्र में पं० आदित्य राम जी की भी मान्यता है। सौराष्ट्र की तप्त तथा ऊष्ण भूमि में संगीत की मधुर सरिता प्रवाहित करने का श्रेय आपको ही प्राप्त हुआ।

संवत् १८७१ वि० में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता जी संगीत के एक साधारण ज्ञाता थे, फिर भी इन्होंने अपने पुत्र आदित्यराम को संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा, सादा-सादा सरगम एवं भजन आदि सिखलाये; साथ ही संस्कृत की शिक्षा भी दी। आपका बचपन जूनागढ़ में तथा जवानी जामनगर में गुज़री। उस समय जामनगर के महाराज, श्री विभाजाम जी संगीत कला में विशेष रुचि रखने वाले तथा क़द्रदान थे। महाराज ने आदित्यराम को भी सुना और इनकी कला प्रवीणता से वहुत प्रभावित हुए। पुरस्कार में मोतियों का हार पहना कर महाराज ने इस कलाकार का यथेष्ट सम्मान किया और अपने दरबार में ही इनकी नियुक्ति कर दी।

पं० आदित्यराम जी उच्चकोटि के गायक होने के साथ-साथ ऊंचे दर्जे के मृदंग वादक भी थे। सुना जाता है कि यह विद्या पंडित जी को गिरनार पर्वत पर रहने वाले एक महान योगी द्वारा प्राप्त हुई थी। एक बार अपने प्रभावपूर्ण मृदंग वादन से आपने एक मस्त हाथी को भी अपने वश में कर लिया, ऐसा भी उल्लेख है। गायकी के साथ-साथ आपको नायकी का भी गुण प्राप्त

था। अपने गुरुवर गो० बृजलाल जी महाराज का आप बहुत सम्मान करते थे। आपने बहुत से ध्रुपद तथा धमारों की रचना की जिनमें अपने नाम के साथ साथ अपने गुरु जी का नाम भी दिया। इन रचनाओं का संग्रह "संगीत आदित्य" के नाम से प्रकाश में आया।

पं० जी लगभग ३२ वर्ष तक जामनगर के राजगायक रहे। इस अवधि में आपने संगीत विद्या की पर्याप्त सेवा की। अंत में सं० १९३६ वि० अर्थात् ६५ वर्ष की आयु में आप स्वर्गवासी हो गये।

ओमूकारनाथ ठाकुर

२८ जून सन् १८९७ के शुभ दिन, रियासत बड़ौदा के जहाज गांव में उनेवाल ब्राह्मण श्री गौरी-शंकर "ठाकुर" के यहाँ पंडित जी का जन्म हुआ। पंडित जी के पिता-जी प्रणव (ओं) के परम उपासक थे, अतः गर्भस्थ बालक का नाम ओंकारनाथ रखने का उन्होंने निश्चय किया था। लोगों ने हंस कर कहा कि लड़की होगी तो क्या करोगे? किन्तु तपस्वी पिता का वचन कैसे टल सकता था? बालक ने उसी राशि में जन्म पाया और ओंकारनाथ नाम रक्खा गया। लगभग ४ साल तक उसी गांव में आपका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। कुछ घरेलू झंझटों के कारण आपके पिता सब घरबार छोड़कर नर्मदा किनारे कुटिया बनाकर केवल बालक ओंकारनाथ को साथ लेकर रहने लगे। अपने पूज्य पिता जी की सेवा करना और विद्या-भ्यास करना ओंकारनाथ की नित्य क्रिया थी।

चौथे दर्जे की पढ़ाई समाप्त होने पर पंडित जी के दिल में माता-पिता और भाइयों के निर्वाह का प्रश्न उठा, अतः कुटुम्ब की सहायता के लिये आप रसोई का और मिल में मजदूरी का कार्य करने लगे। पंडित जी की पितृ भक्ति

कर्तव्य निष्ठा, और घुंघराले बालों वाली मोहक आकृति से आकर्षित होकर एक मिल मालिक ने आपको गोद लेने के लिये बहुत कोशिश की और इनके माता पिता को धन का लोभ भी दिखाया; किन्तु आपके पिता ने कहा यह किसी धनवान का दत्तक पुत्र नहीं बनेगा, यह बालक माता सरस्वती का पुत्र बनकर लक्ष्मी पतियों से भी अधिक सम्मान प्राप्त करेगा।

पंडित जी को जन्म ही से मधुर आवाज़ की ईश्वरीय देन है। विद्यार्थी काल में कविता गाने के आपके ढंग से शिक्षक प्रसन्न होते थे। बचपन से ही आपका संगीत प्रेम अपूर्व था। गाँव में कहीं पर किसी छोटे या बड़े गायक का संगीत कार्यक्रम होता तो वहां आप अवश्य उपस्थित होते थे।

पंडित जी की उम्र जब १४ साल की हुई, तब इनके पिता जी का स्वर्ग–वास हुआ। श्री० गौरीशंकर ठाकुर ने सात दिन पहले ही तिथि और समय बताकर जेष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को सवेरे ९ बजे योग समाधि ली और प्रणव का दीर्घ गान गाते हुये शरीर त्याग दिया। इसके बाद पंडित जी के जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिससे आपकी जीवन धारा बदल गई। भड़ौंच के एक उदार दानी पारसी ग्रहस्थ सेठ शाहपुर जी मंचेर जी डुंगा ने आपको गाने के लिये निमन्त्रित किया। ओंकारनाथ के गायन को सुनकर ये पारसी सज्जन अत्यन्त प्रभावित हुये और इनके अन्दर विशेषता देख कर उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इस बालक को श्री विष्णुदिगम्बर जी के गांधर्व महाविद्यालय बम्बई में संगीत शिक्षा के लिये भर्त्ती कराया जाय। पंडित जी के भाई ने स्वीकृति दे दी और ये उक्त विद्यालय में भर्त्ती हो गये। उस समय आपकी उम्र केवल १५ वर्ष की थी।

वहाँ पर पंडित जी ने संगीत का ५ वर्ष का पाठ्यक्रम केवल तीन वर्ष में ही समाप्त कर दिया। उन्हीं दिनों काठियावाड़ की एक नाटक कम्पनी बम्बई आई हुई थी। उसे एक सुन्दर गायक लड़के की आवश्यकता थी। पंडित जी के बड़े भाई ने इनको कम्पनी के मालिक के सामने उपस्थित किया और इनके संगीत से सन्तुष्ट होकर कम्पनी के मालिक ने ४००) रुपया महावार देने की इच्छा प्रकट की।

इस अवसर पर पंडित जी के बड़े भाई तो तैयार हो गये किन्तु ओंकारनाथ की इच्छा नौकरी करने की नहीं थी, वे अपनी संगीत साधना जारी रखना चाहते थे। आपने अपने बड़े भाई को दूसरे व्यक्ति के द्वारा यह समझाने की चेष्टा

की कि ४०० रुपये के मोह में पड़कर मेरा जीवन नष्ट न करें; किन्तु वे न माने और पंडित जी को विद्यालय से उठा लेने की चेष्टा करने लगे।

पंडित जी ने पहले से ही इस घटना का परिचय अपने गुरुदेव को करा दिया था, अतः जब बड़े भाई ने विद्यालय से उन्हें उठाने की बातचीत की तो गुरू जी ने शान्ति से कहा खुशी से अपने भाई को ले जाइये, किन्तु आपको याद होगा कि आपने मेरे साथ ९ वर्ष का करार किया है, बीच ही में अगर ले जाना चाहें तो तीन साल का खर्चा आपको देना होगा। बड़े भाई के पास इतनी रक़म तो थी ही नहीं अतः इस युक्ति से गुरू जी ने अपने होनहार शिष्य को महान संकट से बचा लिया।

पंडित जी की विद्वता और संगीत ज्ञान को पहचान कर सन् १९१७ ई० में गुरू जी ने आपको लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय में प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त किया। इस पद को आपने सफलता पूर्वक निभाया।

इन दिनों आपने भिन्न भिन्न संस्थाओं के आयोजनों में भाग लेते हुये संगीत के प्रति जनता की घृणा और दुर्भावना मिटाने के लिये अनेक प्रयत्न किये और संगीत की महानता का दिग्दर्शन कराते रहे। इससे पंजाब के प्रतिष्ठित घरानों की पर्दानशीन स्त्रियों में भी संगीत के प्रचार करने का श्रेय आपको ही है।

पंडित जी का गायन अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रभाव शाली है। इनका गायन स्वर प्रधान और भावना प्रधान होते हुये भी आवाज़ इतनी जोरदार है कि दोनों बाजू में बजने वाले दो तानपूरों की झनकार भी फीकी मालूम होती है। इनका संगीत सुनकर श्रोतागण चित्र के समान स्तब्ध हो जाते हैं। पंडित जी का गायन उनके कंठ ही से नहीं निकलता अपितु उनका संगीत भण्डार उनके हृदय से सागर की लहरों के समान उछल कर बाहर आता है। आपके गायन में पाश्चात्य स्वर संगति का सुन्दर मेल भी कभी-कभी सुनने को मिलता है।

आपकी गायकी में जो आलापचारी का अंग है वह इस गायकी के प्रसिद्ध प्रवर्तक खाँ साहब हद्दू खाँ, हस्सू खाँ के पुत्र रहमत खाँ साहब से प्राप्त है। यद्यपि आपकी गायकी का विशेष अंग तो आपको गुरुदेव श्री विष्णुदिगम्बर जी से ही प्राप्त हुआ है, किन्तु कभी-कभी रहमत खाँ साहब विष्णु दिगम्बर जी के यहाँ आया करते थे और महीनों ठहरते। इस अवसर से पंडित जी ने लाभ उठाया और उनकी गायकी को अपने गले में उतारते रहे। विशेष रूप से

तो पंडित जी ख्याल के गायक हैं, फिर भी ध्रुपद धमार और टप्पा आप सफलता पूर्वक गा सकते हैं । १।। या २ घंटे तक विभिन्न ढंग से एक ही राग को गाकर उसका हू–बहू स्वरूप खड़ा करने वाले हिन्दुस्तान के इने–गिने व्यक्तियों में से पंडित जी एक हैं । क्लिष्ट, वक्र और कूट तानें भी आप लेते हैं, फिर भी आपका विशेष झुकाव अलाप की ओर ही रहता है ।

भारत भूषण पं० मदनमोहन मालवीय ने आपके संगीत से प्रभावित होकर आपको 'संगीत प्रभाकर' की उपाधि से सम्मानित किया था । बेनी टो मुसोलनी ने पंडित जी के वीर, करुण और शान्त रस के स्वर चमत्कारों को सुनकर उन्हें स्वरलिप बद्ध करने के लिये रोम की 'रॉयल एकेडमी आफ़ म्यूज़िक' के प्रिंसिपल को आज्ञा दी थी ।

पंडित जी अपना प्रभावशाली व्यक्तित्व और प्रतिभा रखते हैं । आप कलात्मक पोशाक पहनते हैं । स्वर सिद्धि के साथ ही साथ व्याख्यान देने की कला में भी आप पारंगत हैं । गुजराती, हिन्दुस्तानी और मराठी भाषा में आप संगीत तथा अन्य विषयों पर धारा प्रवाह प्रवचन करने की क्षमता रखते हैं । इनके अतिरिक्त पंजाबी, अंग्रेजी के भी आप ज्ञाता हैं । सन् १९३१ ई० में सिंध के दौरे के समय संगीत के जलसों की अपेक्षा आपके व्याख्यान ही अधिक हुये थे । २८ दिनों में–भिन्न–भिन्न विषयों पर आपके ६४ व्याख्यान हुये अतः संगीत के साथ–साथ साहित्य के तत्व भी आपके अन्दर विद्यमान हैं । सन् १९३३ ई० में आपने योरुप की यात्रा की और फ्लोरेंस नगर की अन्तर्राष्ट्रीय संगीत परिषद में भाग लिया । योरुप के अन्यान्य देशों में, जहां जहां आप गये, आपको सम्मान और आदर प्राप्त हुआ । उन दिनों आपको रूस की ओर से भी निमन्त्रण मिला और आप जाने ही वाले थे कि आपकी पत्नी श्री इन्दरा देवी के दुखद अवसान का समाचार मिला । इससे आप अपने कार्यक्रम को रद्द करके भारत लौट आये ।

आजकल पंडित जी अपने जीवन के अन्तिम ध्येय की सिद्धि के लिये प्रयास कर रहे हैं । संगीत विद्यापीठ की स्थापना, संगीत के शास्त्रीय ग्रन्थों का लेखन, अपनी परम्परा के संगीत पदों का स्वरलिपि सहित प्रकाशन, नाद शास्त्र की दृष्टी से हिन्दी वाद्यों में सुधार और राग रागनियों के प्रभाव पौधों, पशुओं और मानवों पर क्या क्या होते हैं एवं संसार की संस्कृति के ऊपर हमारे रागों का क्या प्रभाव होगा, इन सभी बातों का सूक्ष्म संशोधन, सम्यक आलेखन और निदर्शन पंडित जी के भावी जीवन की आकांक्षाएं हैं । आजकल आप

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के संगीत विभाग के कुलगुरु हैं।

हिन्दी में आपने 'प्रणव भारती' तथा 'संगीताञ्जलि' (तीन भागों में) नामक पुस्तक लिखी हैं। इसके अतिरिक्त गुजराती में 'राग अने रस' पुस्तक लिखकर राग और रस के ऊपर यथेष्ट प्रकाश डाला है।

प्रजातन्त्र दिवस १९५५ के शुभ अवसर पर भारत सरकार ने "पदमश्री" की उपाधि देकर आपको सम्मानित किया है। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण संगीत के जल्सों में गाना आपने प्रायः बन्द कर दिया है, फिर भी संगीत प्रेमियों के आग्रह पर आप यदा-कदा विशेष अवसरों पर उपस्थित होकर सभापति पद से भाषण देकर संगीत जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा को शान्त करते ही रहते हैं।

★

इनायतखाँ पठान

सूफ़ी पंथ के इस प्रसिद्ध गायक ने भारतीय संगीत कला की पताका अमरीका, रूस, फ्रांस, ब्रिटेन, स्वीज़रलैन्ड, हॉलैंड आदि देशों में फहराई। अपनी संगीतकला के साथ–साथ आध्यात्मिक भाषणों द्वारा भी इन्होंने भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ाया।

सूफ़ी पन्थ के प्रसिद्ध गायक प्रौफेसर मौलाबख़्श आपके बाबा थे। इनायत खाँ के पिता रहमत खाँ पठान ने दो शादियां कीं, इनमें से दूसरी स्त्री खलीजा उर्फ़ इनायत बीवी द्वारा ५ जुलाई सन् १८८२ ई० को बड़ौदा में इनायत खाँ का जन्म हुआ। आपका प्रारम्भिक जीवन बड़ौदा में ही व्यतीत हुआ और वहीं आपने तालीम पाई। संगीत के क्षेत्र में इनका घराना पहले से ही प्रसिद्ध होने के कारण अच्छे–अच्छे कलाकार तथा गुणीजनों के सम्पर्क में रहते हुए इन्होंने संगीत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और सन् १९१० ई० तक सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। जहाँ कहीं आप गये वहीं पर आपकी कला का भव्य स्वागत हुआ। शास्त्रीय संगीत के कद्रदानों ने इनकी कला से प्रभावित होकर इन्हें हिन्दुस्तान से बाहर भारतीय संगीत और सूफ़ी पन्थ का प्रचार करने की प्रेरणा दी।

सन् १९१२ ई० में आपने एक उर्दू की विशाल पुस्तक "मिनक़ार मौसीक़ार" प्रकाशित की जिसका विद्वानों द्वारा समुचित आदर हुआ। आपने आध्यात्मिक भूमिका पर अधारित भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रसार किया। विदेश में आपके भाषण पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुए। अमेरिका के

कोलम्बिया विश्व विद्यालय में प्रथम बार आपका मार्मिक संगीत व्याख्यान हुआ। आपने श्रोताओं के हृदय में यह बात बैठा दी कि संगीत उस कारखाने के समान है जो लोगों के लिये नयी नयी वस्तुएं तैयार करता हुआ जीवन की आवश्यकताओं को पूरी करता है। अमेरिका से आप इंगलैंड, फ्रांस और रूस गये। फिर मार्च १९२३ ई० में पुनः अमेरिका गये। इस बार आपने न्यूयार्क में दर्शन शास्त्र पर और बोस्टन में अध्यात्म विद्या पर भाषण दिये। आपकी संगीत पटुता और दर्शन शास्त्र की अलभ्य जानकारी से अमेरिका वासी चकित रह गये। इसके पश्चात् आप तीसरी बार १९२५ ई० में पुनः अमेरिका गये और अपनी कला तथा विद्वता से श्री हेनरी फोर्ड को अत्यधिक प्रभावित किया। आपके उपदेशों ने बहुत से लोगों को आकर्षित किया जो आज भी अमेरिका और योरुप के अनेक क़स्बों में हर रविवार को "विश्व प्रार्थना" नामक धार्मिक समारोह मनाते हैं। विदेशों में उक्त महान कार्य करने के पश्चात् आप भारत वापिस आये। दुर्भाग्यवश १९२७ ई० में दिल्ली में इनकी मृत्यु होगई।

आपके कुछ रेकर्ड्स सन् १९०८ ई० में कलकत्ता की विक्टर कम्पनी ने भरे थे, वीणा वादन में भी इनायत खाँ ने पर्याप्त दक्षता प्राप्त करली थी तथा अपने मामा श्री अलाउद्दीन से पश्चिमी संगीत की शिक्षा भी प्राप्त कर एक विशिष्टता पैदा की। खाँ साहेब इनायत खाँ धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे; दूसरों को आकर्षित तथा प्रभावित करने का गुण, उच्च विचार धारा और एक कलाकार का हृदय वे रखते थे, इसीलिये विदेशों में भी आपका व्यक्तित्व लोकप्रिय सिद्ध हुआ। आपके दो पुत्र विलायत खाँ और हिदायत खाँ हॉलेन्ड के निवासी बने और उनके विवाह भी वहीं हुए तथा उनकी सन्तान को भी सौभाग्य से भारतीय शास्त्रीय संगीत में अभिरुचि रही।

★

उ० इनायत हुसेन खां

आपके पिता का नाम उ० महबूब खाँ था। सन् १८४६ में आपका जन्म आपके नाना फ़तूबुद्दौला, जो लखनऊ के नवाब वाजिद-अली शाह के सलाहकार तथा वजीर थे, उनके घर पर हुआ था। अतः प्रारम्भिक शिक्षा आपको अपने पिता व नाना से मिली। जब आप ६ वर्ष के थे तो सन् १८५७ के ग़दर के कारण अपने पिता के साथ रामपुर आ गये और तानसेन के वंशज उ० बहादुर खाँ से शिक्षा आरम्भ की। खाँ साहेब इनको ४ साल तक केवल स्वर साधना, और प्रथम राग गौड़ सारंग ५ वर्ष तक सिखाते रहे। इस तरह आपने ९ वर्ष तक केवल स्वर साधना तथा गौड़सारंग का अभ्यास किया। इसी समय एक बड़ी मजेदार घटना घटी। रामपुर के सभी संगीतज्ञ एक दिन बहादुर खाँ से इनके शिष्य इनायत हुसेन खाँ का गायन सुनने की इच्छा प्रकट करने लगे। काफी विरोध करने पर आपने मजबूरन जुमा के दिन सुनवाने का वादा कर लिया जो २४ घंटे में ही आने वाला था। इनायत हुसेन बहुत घबराये परन्तु उ० बहादुर खाँ ने इनको शास्त्र का ऐसा ढंग बतलाया कि केवल दस घंटे की साधना में ही गौड़सारंग, मुलतानी, श्री और पूरियाधनाश्री ये चारों राग ऐसी कुशलता से गाये कि श्रोता और गायक सब आश्चर्यचकित रह गये। इसीलिये कहा गया है कि यदि स्वर पक्के हैं तो गाना बजाना बड़ा सरल हो जाता है।

भ्रमण करते हुये जब आप ग्वालियर में उ० हद्दू हस्सू खां के पास आये तो वे इनकी गायकी से बड़े प्रसन्न हुये और इनसे अपनी लड़की की शादी करने के बाद शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। फिर थोड़े ही दिनों बाद आप रामपुर दरबार में नौकर हो गये। आप बड़े मस्त तबियत के थे, यही कारण था कि आप किसी भी दरबार में अधिक दिनों तक नहीं ठहरे और क्रमशः रामपुर, अलवर, दतिया, नैपाल और अन्त में हैदराबाद के निजाम महबूबअली खाँ के बुलाने पर चले गये और काफी अरसे तक रहे। आपकी मृत्यु सन् १६१६ ई० में हुई।

आप ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी और टप्पा सभी शैलियों से पूर्ण चौमुखी गवैये थे। टप्पा आपका खास अंग था। लय के तो सम्राट थे। आपकी तानें जानदार व सुरीली होती थीं। गीतों की रचना भी आपने "इनायत पिया" तथा "इनायत मियाँ" के नाम से खूब की है। शुद्ध आचरण होने के कारण आपका स्वास्थ्य, स्वभाव, आवाज तथा स्वर का सच्चा लगाव सभी सुन्दर था। आपका रहन-सहन बहुत ही सादा था। सभी जाति के रागों को बड़ी सुन्दरता और आसानी से गाते थे; गला मानों एक साँचे के समान था।

आपके प्रमुख शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं:—

उ० मुश्ताक हुसेन खाँ रामपुर, उ० फिदा हुसेन खाँ बड़ौदा, उ० हैदर-हुसेनखाँ रामपुर, उ० हफीज खाँ (गुड़यानी) मैसूर, उ० अमान अली ख़ाँ पूना, ग्वालियर महाराज के भाई—भइया गनपतराव, इनके अतिरिक्त भी आपके अनेक शिष्य हैं, जिनके नाम लिखने से एक लम्बी तालिका तैयार हो जायगी। आपने संगीत का बड़ा अच्छा प्रचार किया था।

★

इब्राहीम

मुगल साम्राज्य में अकबर को जो स्थान प्राप्त है, लगभग वैसा ही सम्मान दक्षिण में बीजापुर के इब्राहीम (आदिल शाह दूसरा) बादशाह को प्राप्त था। संगीतकला का प्रेमी यह सुन्नी मुसलमान था। मुसलमान होते हुए भी हिन्दू देवी-देवताओं में इसकी विशेष श्रद्धा रहती थी। नाथ पन्थी साधु सम्प्रदाय में इसकी रुचि और विश्वास होने के कारण कुछ लोग उसे नाथ पन्थी विचारों का अनुयायी बताते हैं।

बाद शाद इब्राहीम ने सन् १५८० ई० से १६२७ ई० तक बीजापुर में राज्य किया। वह एक उत्कृष्ट गायक, भावुक कवि और कुशल संगीतज्ञ था, अतः इसे वाग्गेयकार कहा जाय तो अनुचित न होगा। इसके जमाने में चित्रकला, संगीत और काव्यकला को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला।

इब्राहीम अपनी ६ वर्ष की उम्र में ही गद्दीनशीन हो गया। बाल्य अवस्था होने के कारण एक अविभावक के रूप में सुप्रसिद्ध चांद बीबी इसके पास बीजापुर में आकर रहने लगी तो दरबार के अन्य सरदारों और चांद बीबी में राज्य-कार्य के सम्बन्ध में कुछ अनबन रहने लगी। सन् १५८८ ई० में जब इब्राहीम की आयु लगभग १७ वर्ष की थी तब उसने बीजापुर राज्य का शासन भार स्वयं सम्हाल लिया।

सन् १६१४ ई० में बादशाह इब्राहीम जब लाहौर गया तो वहां बख्तरखां नामक एक कलावंत का संगीत सुनने का अवसर उसे प्राप्त हुआ। उसके गायन

मे प्रभावित होकर यह उसे अपने साथ दक्षिण ले आया और ध्रुपद शिक्षक के रूप में उसका शिष्यत्व स्वीकार करके गंडा बांध लिया एवं अपनी भतीजी की शादी भी बख्तर खां के साथ करदी। इब्राहीम बादशाह ने फ़ारसी में एक पुस्तक "किताब–ऐ–नवरस" भी तैयार की। इस पुस्तक में उसने हिजाज़, कानड़ा, भैरव, भूपाली, धनाश्री, बरारी, रामकली, नौरोज, पूरब आदि चीजें दी हैं। प्रत्येक चीज के गीत को चार भागों में व्यक्त किया है, स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग। इस पुस्तक की एक फोटो प्रति बम्बई के डाक्टर पी० एम० जोशी के पास भी बताई जाती है।

✱

उमराव खां

दिल्ली के प्रसिद्ध ख्याल गायक तानरसखाँ के नाम से सभी संगीत प्रेमी परचित होंगे। उमराव खाँ इन्हीं के सुपुत्र हैं, अपने पिता के द्वारा ही आपको संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई। परम्परायुक्त गायकी की सीनाबसीना तालीम पाकर भी इनके उच्चकोटि के संगीतज्ञ होने में क्या कमी रह सकती थी अतः शीघ्र ही आपकी गणना उच्चकोटि के गायकों में होने लगी। आपकी आवाज़ बड़ी सुरीली और दमदार है, घरानेदार गायक होने के कारण आपके गायन में अनेक रागों की विभिन्न वक्रताऐं दृष्टिगत होती हैं। जिन लोगों को आपका गायन सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ है वे इस बात को हृदय से स्वीकार करते हैं कि उमरावखाँ की गायकी बड़ी विद्वतापूर्ण एवं प्रभावशाली है।

आप प्रारम्भ में बहुत समय तक हैदराबाद रहे, वहां आपकी गायकी की यथेष्ट ख्याति हुई। तत्पश्चात १९४६ ई० के लगभग आप ग्वालियर राज्य के दरबार गायक बन गये।

★

एकनाथ पंडित
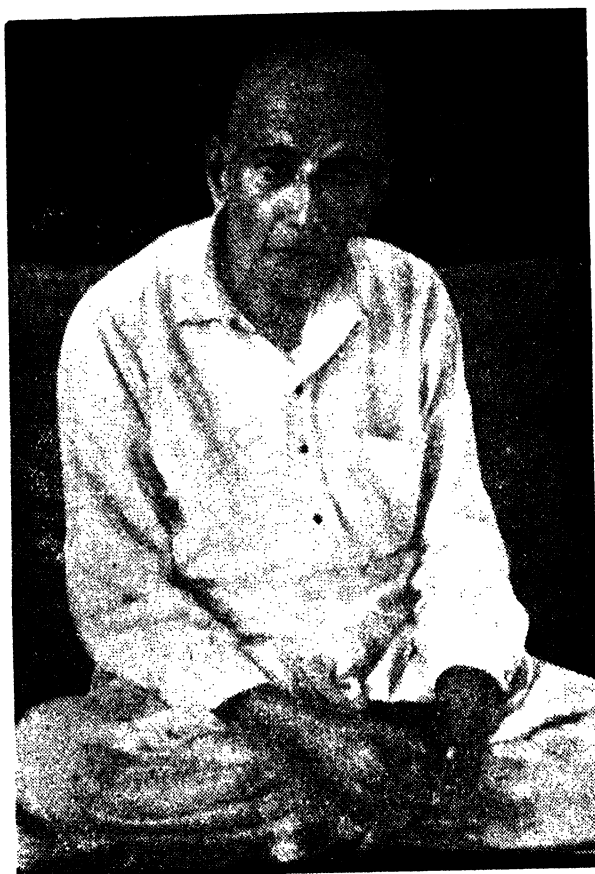
प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वर्गीय शंकर पंडित के छोटे भाई एकनाथ का जन्म सन् १८७० ई०के लगभग हुआ। आपके पिता विष्णु शास्त्री पंडित कीर्त्तनकार थे। संगीत कला से विशेष रुचि होने के कारण और उस समय के प्रसिद्ध उस्ताद हद्दू खाँ हस्सूखाँ के पास बहुधा जाया करते थे। उस्ताद से अधिक परिचय बढ़ जाने के बाद श्री विष्णु शास्त्री ने अपने दोनों पुत्रों की संगीत शिक्षा के लिये उस्ताद से प्रार्थना की तो उन्होंने स्वीकार करली और दोनों भाई संगीत की तालीम लेने लगे।

उस समय एक नाथ पंडित की आयु १८ वर्ष तथा इनके बड़े भाई शंकर पंडित की आयु २१ वर्ष के लगभग थी। किन्तु हद्दू खाँ साहेब की उस समय ढलती उम्र थी। बुढ़ापे एवं लकवे की बीमारी के कारण वे प्रायः बिस्तर पर पड़े-पड़े ही इन दोनों भाइयों को तालीम दिया करते थे। हद्दू खाँ के लड़के रहमत खाँ, शंकर पंडित, एकनाथ पंडित इन तीनों का सम्मिलित

गायन वादन उस्ताद के आगे हुआ करता था। हद्दू खाँ साहब का शरीरांत हो जाने के बाद इन दोनों भाइयों ने आठ दस माह तक नत्थू खाँ साहेब से भी तालीम पाई। नत्थूख़ाँ उस्ताद हद्दू खां साहेब के चचेरे भाई थे और महाराज जयाजी राव शिन्दे को गाने की तालीम देते थे।

कुछ समय बाद इन दोनों भाइयों को खाँ साहब निसार हुसैन से भी संगीत शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस्ताद निसार हुसैन पंडित जी के घर पर ही रहते थे और हिन्दुओं जैसा जीवन व्यतीत करते थे। इन्होंने शंकर पंडित तथा एकनाथ जी को लगातार ६ वर्ष तक गाने की तालीम दी और खूब रियाज़ कराया।

एक नाथ जी ने तबला बजाने की तालीम स्व० जोराबरसिंह से ली थी, जो उस समय के प्रसिद्ध तबला वादक हो गये हैं। साथ ही साथ आपने सितार बजाने की शिक्षा बाबूखाँ साहेब से तथा बीन बजाने की तालीम मियां मुजफ्फर खाँ से प्राप्त की।

उस जमाने में मियां शोरी की परम्परा के लाल जी बुआ नामक एक प्रसिद्ध टप्पा गायक थे और धार रियासत में रहते थे। उनके यहाँ जाकर एकनाथ पंडित ने टप्पा की गायकी सीखी।

एक नाथ पंडित को बचपन से ही कसरत कुश्ती का शौक़ था, अतः आपका स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि ८० वर्ष की अवस्था में भी आपके शरीर पर युवकों जैसी लालिमा दिखाई देती थी। आप अत्यन्त शान्त और निराभिमानी थे। बहुत कम बोलते थे, किन्तु जितना भी बोलते थे उसके द्वारा किसी को दुख न पहुंचे, ऐसी उनकी भावना रहती थी। आप शिवजी के उपासक थे अतः संगीत की निरन्तर शिक्षा के समय में भी दैनिक रूप से शिव पूजा अवश्य होती थी। आपकी वाणी में अलौकिक मिठास था।

सन् १९०३ ई० में आपने अपने भ्राता शंकर पण्डित के साथ बम्बई की यात्रा की। जल्सों में अपने भाई के साथ गाया भी करते थे। बम्बई के जल्सों में प्रसिद्ध संगीतज्ञ अल्लादिया खां साहब, गायनाचार्य बालकृष्ण बुआ, रहमत खां आदि अनेक विद्वानों का संगीत सुनने का अवसर भी आपको प्राप्त होता रहा। सन् १९१३ ई० तक आप बम्बई बार-बार आते रहे।

इन्हीं दिनों अर्थात् १९१४-१५ के लगभग स्व० पंडित भातखण्डे जी घरानेदार चीजों का संग्रह करने के लिये भ्रमण कर रहे थे। ग्वालियर की

चीजों के संग्रह में उन्होंने एकनाथ पंडित से बहुत सी चीजें प्राप्त की और लगभग २५० चीजों की स्वरलिपि भातखण्डे जी ने अपनी पद्धति से तैयार कीं।

सन् १९१७ ई० में एकनाथ जी के भ्राता शंकर पंडित स्वर्गवासी हो गये। इसके कुछ समय बाद 'पूना गायन समाज' में एकनाथ जी ने सात, आठ वर्ष तक संगीत शिक्षा दी और फिर ग्वालियर के प्रसिद्ध 'माधव संगीत विद्यालय' में सन् १९३० के लगभग कुछ समय तक काम किया। सन् १९३६ में माधव संगीत विद्यालय की नौकरी भी छूट गई।

इसी बीच धार में जाकर डा० मोघे को आपने संगीत तालीम दी। डा० मोघे गुरु भाव से आपकी अत्यन्त सेवा करते थे। डाक्टर साहब ने पंडित जी के गाने का वायर रिकॉडिंग भी करवाया था। यद्यपि वह ध्वनि मुद्रण बिलकुल निर्दोष नहीं हो पाया फिर भी पंडित जी की स्मृति को स्थाई रखने के लिये यह एक अच्छा कार्य हो गया। उन दिनों दमे की बीमारी के कारण पंडित जी का स्वास्थ्य गिर रहा था इस कारण भी रिकॉडिंग सन्तोषजनक न हो सका।

२९ अप्रैल सन् १९५० को पंडित जी की तबियत यकायक खराब हो गई अतः वे दूसरे ही दिन अपने घर पर ग्वालियर पहुंच गये और ३० अप्रैल सन् १९५० को इतवार के दिन आप स्वर्गवासी हो गये।

★

ए० कानन

श्री अकेट कानन कर्नाटक संगीत क्षेत्र में उत्पन्न होकर भी उत्तर भारत संगीत में एक कुशल कलाकार के रूप में दिखाई दे रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है। विभिन्न संगीत सम्मेलनों में अनेक कलाकारों के साथ–साथ ए० कानन को भी आप अवश्य पायेंगे।

आपका जन्म सन् १९२१ के लगभग मद्रास के एक धार्मिक परिवार में हुआ। आपके पिता श्री एम० कानन धार्मिक भावना के साथ-साथ संगीत कला में भी रुचि रखते थे। स्वभावतः ही आपके परिवार में कर्नाटक संगीत का प्रचार था। किन्तु जब यह परिवार हैदराबाद आया तो वहाँ ए० कानन की शिक्षा आरम्भ हुई। महबूब कालिज सिकन्दराबाद से आपने इन्टर की परीक्षा पास की। १६ वर्ष की आयु में निजाम स्टेट रेलवे में सिगनल इन्सपेक्टर की परीक्षा के लिए भर्ती हुए जहाँ पांच वर्ष का पाठ्यक्रम आपने पूरा किया। सन् १९४१ में बम्बई आकाशवाणी केन्द्र में ध्वनि परीक्षण के लिए आप आमंत्रित किये गये और वहाँ अपने कंठ माधुर्य के कारण आपने सफलता प्राप्त की।

बाल्यकाल से ही आपने श्री लानू बाबूराव से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा लेनी प्रारम्भ की। सन् १९४३ ई० में आप जब कलकत्ते पहुँचे तो वहाँ आपको सांगीतिक वातावरण भाग्यवश मिल गया। इस अवसर का लाभ उठाकर आपने संगीत क्षेत्र में आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय किया। कलकत्ते के प्रसिद्ध गायक श्री गिरजाशंकर चक्रवर्ती के सम्पर्क में जब आप आये तो उन्होंने आपकी प्रतिभा को देखकर आगे और संगीत अभ्यास करवाया।

कुछ समय बाद उस्ताद अमीरखाँ (इन्दौर) से प्रभावित होकर आप संगीत की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने उनके पास गये। उस्ताद अमीर खाँ ने जब इनकी

योग्यता, प्रतिभा और कण्ठ माधुर्य देखा तो उन्होंने आकर्षित होकर इनको संगीत की शिक्षा देना आरम्भ कर दिया।

१९४५ मे प्रथम बार कलकत्ता संगीत सम्मेलन में आपका गायन हुआ तो श्रोता आपकी मधुर स्वरलहरी सुनकर वाह वाह कर उठे। यह आपकी प्रथम कसौटी थी जिसमें आप खरे उतरे। फिर क्या था चमकने लगे और इस सम्मेलन के बाद विभिन्न स्थानों से आपको निमंत्रण आने लगे। आपकी गाई हुई राग-रागनियाँ तथा ठुमरियों के रिकार्ड विभिन्न रेडियो केन्द्रों में संग्रहीत रहते हैं। नभवाणी अखिल भारतीय कार्यक्रम में भी भाग लेकर आप प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। आपने बड़े गुलाम अली खाँ व अमीर खाँ साहब की शैली अपनाई है। राग केदार का "नन्द नन्दन कान्हा रे" बड़े आकर्षक ढंग से आप सुनाते हैं। स्वर की बढ़त का विलम्बित लय में काम दिखाना आपकी विशेषता है। गाते समय किसी प्रकार का मुद्रा दोष दिखाई नहीं देता, लड़ंत की गायकी के आप विरुद्ध रहते हैं। आपका कहना है कि इस गायकी में स्वर माधुर्य नष्ट होकर मस्तिष्क गणित क्रिया में लग जाता हैं, आंखें तबले पर जम जाती है, कान वाह-वाह सुनना चाहते हैं और शारीरिक क्रिया में एक कलाबाज़ी सी उत्पन्न हो जाती है। वहाँ संगीतानन्द न रहकर आत्म प्रशंसा और प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न हो जाता है। अत: आपका कथन है कि संगीत की साधना अपने गुरु की विशिष्टताओं को लक्ष करके शांति और सहृदयता पूर्वक करनी चाहिए; कलाकार बनना चाहिए, कलहकार नहीं।

संगीत के नवीन विद्यार्थियों को आप यही सलाह देते हैं कि जिनकी आवाज़ अच्छी है वे अवश्य ही गायन सीखें और जिनकी आवाज़ संतोषजनक नहीं, किन्तु वे संगीत में दिलचस्पी रखते हैं तो वे किसी भी वाद्य को अपना कर उस पर रियाज़ करें। छोटे या बड़े सभी कलाकारों को आप बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते तथा उनसे बड़ी आत्मीयता से मिलते हैं। आपका भविष्य उज्वल है।

★

कदर पिया

नवाब वाजिद अलीशाह के पद चिन्हों पर चलने वाले यह भी एक बड़ी रंगीन तबियत के नवाब हो गये हैं। रसिक होने के साथ-साथ यह उत्तम कोटि के गायक भी थे। इन्होंने बहुत से ठुमरी गीतों की रचना की जिनमें अधिकांश गीत शृङ्गार रस के थे। भाषा और अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से इन गीतों को उच्चकोटि का कहा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में इनकी ठुमरियां आजकल भी प्रचलित हैं। इन गीतों में मानव जीवन के अनुभवगम्य प्रसंगों को विशेष महत्व दिया गया है। चूंकि इनकी कविता भी एक गायक द्वारा लिखी गई है इसलिए इन ठुमरियों के गाने में गायक वर्ग को विशेष सरलता प्रतीत होती है।

इनका निवास स्थान लखनऊ था और यह नवाब लखनऊ के दूरवर्ती सम्बन्धी भी लगते थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा पेंशन के रूप में प्रति मास आपको एक बड़ी धनराशि मिला करती थी। यह भी नवाब वाजिद अलीशाह की तरह होली के अवसर पर प्रति वर्ष हजार दो हजार रुपये रंग, गुलाल और केसर में व्यय कर दिया करते थे। इनके भी स्वयं की कुछ नाट्य-शालायें थीं। इनके आश्रय में कुछ गायक भी रहते थे। इन्होंने वाजिद-अलीशाह का जमाना देखा था अतः सामर्थ्य के अनुसार उन्हीं के समान विलास-पूर्ण एवं आमोद-प्रमोद युक्त जीवन व्यतीत करने में संलग्न रहा करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में इनका देहान्त हो गया। इन्होंने अपने पीछे दो पुत्र छोड़े जिनकी आर्थिक स्थिति आगे चलकर दयनीय सी हो गई और वे अपने पिता की सांगीतिक धरोहर का परिवर्धन करने में भी असमर्थ रहे।

कृष्णराव शंकर पण्डित

संगीत कला के प्रकांड पण्डित श्री कृष्णराव ग्वालियर के निवासी हैं। आपका जन्म २६ जुलाई सन् १८६४ में ग्वालियर के एक दक्षिणी ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता स्वर्गीय पं० शंकरराव जी एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। श्री शंकरराव पंडित ने बाल्यावस्था से ही संगीत शिक्षा प्रारम्भ की थी। ग्वालियर के प्रसिद्ध कलाकार श्री हद्दू खाँ और नत्थू खाँ से आपने संगीत की शिक्षा पाई। कठिन परिश्रम द्वारा संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके
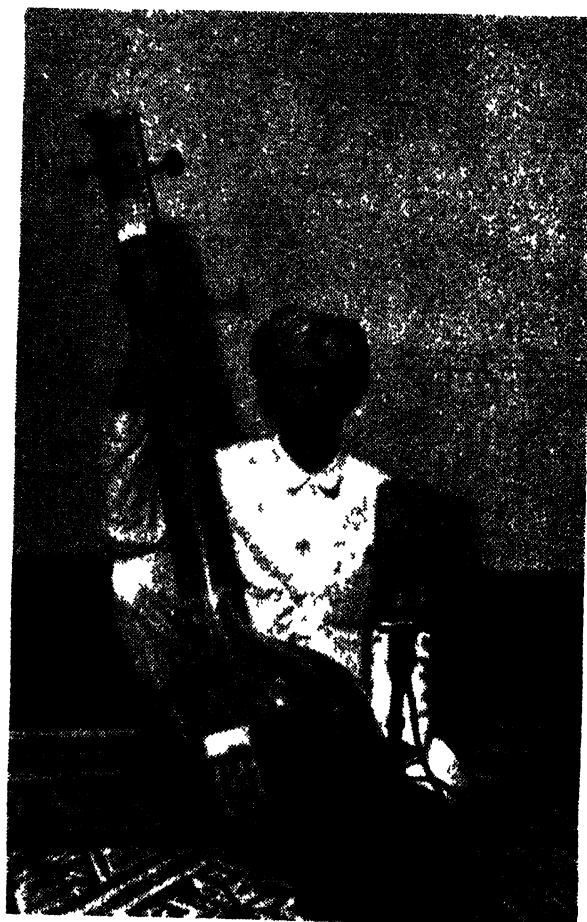
आपने श्री निसार हुसेन खां की देख रेख में संगीत विद्या की १२ वर्ष तक कठोर साधना की। इस प्रकार पं० शंकरराव जी तत्कालीन संगीत के प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा पूर्ण ज्ञान और अनुभव प्राप्त करके अपने समय के महान संगीतज्ञ सिद्ध हुए। आज भी ग्वालियर निवासी आप का गर्व के साथ स्मरण करते हैं।

अस्तु—अपने पिता पं शंकरराव जी से श्री कृष्णराव जी ने संगीत शिक्षा प्राप्त की। पिता ने अपने जीवन के अनुभव को पुत्र के कंठ में स्थापित करके ही अपने को कर्तव्य मुक्त माना। बालक कृष्णराव से पिता को बड़ी—बड़ी आशाऐं थीं, जो समय पाकर पूर्ण हुईं। एक प्रकांड विद्वान संगीतज्ञ के सत्संग और कठिन तपस्या द्वारा पं० कृष्णराव ने अपने आप को संगीत क्षेत्र के उज्वल नक्षत्रों की श्रेणी में पहुँचा दिया। आपके शास्त्रीय ज्ञान और स्वर ताल पर पूर्ण अधिकार को देश के बड़े से बड़े विद्वानों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। लयकारी में तो आप अद्वितीय समझे जाते हैं।

पण्डित जी के सम्पर्क में आने का जिन लोगों को सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे आपकी निस्पृहता और सरल स्वभाव से अत्यन्त प्रभावित हैं। इतनी उच्च कोटि के कलाकार होते हुए भी अभिमान आपको छू तक नहीं गया है। सरल स्वभाव के साथ जीवन में सादगी और ब्राह्मणोचित पवित्रता आपके विशिष्ट गुण हैं। आप देश के कोने कोने में अपने कला ज्ञान की धाक जमा चुके हैं। सङ्गीतोद्धारक सभा मुल्तान ने 'गायक शिरोमणि', अहमदाबाद आ० इ० संगीत विभाग ने 'गायन विशारद' और ग्वालियर दरबार ने 'संगीत रत्नालंकार' उपाधि देकर आपको सम्मानित किया। स्थान स्थान पर संगीत सम्मेलनों में आपने अपनी कला का प्रदर्शन करके संगीत क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

आपने सङ्गीत विषयक साहित्य भी लिखा है। हारमोनियम, सितार, जल-तरंग और तबला वादन पर आपने अलग अलग पुस्तकें लिखी हैं। आपकी रचनाओं में 'संगीत सरगम सार', 'सङ्गीत प्रवेश', 'सङ्गीत आलाप संचारी' आदि पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

आप ने अपना कार्य क्षेत्र आरम्भ से ही ग्वालियर रखा है। सन् १९१३ में महराज सतारा ने आप को शिक्षक के रूप में अपने यहाँ रखा परन्तु एक वर्ष बाद ही आपने यह कार्य छोड़ दिया। इसके उपरान्त महाराज ग्वालियर ने आपको पांच वर्ष तक अपने दरबार में रखा। इस बीच आपने आधुनिक ग्वालियर नरेश (तत्कालीन युवराज) और उनकी बहिन श्री कमला राजा को संगीत शिक्षा दी। परिस्थितियों से विवश होकर आपने दरबार छोड़ दिया और देशाटन के लिये निकल पड़े। तभी से आपके मन में एक संगीत विषयक अच्छी संस्था स्थापित करने की इच्छा उठी। फलतः सन् १९१४ में आपने 'गंधर्व महाविद्यालय' नाम से ग्वालियर में एक संस्था स्थापित की। १९१७ में उक्त संस्था का नाम अपने पिता की स्मृति में "शंकर गन्धर्व विद्यालय" रखा। यह संस्था तभी से संगीत शिक्षण का कार्य कर रही है और प्रतिवर्ष अच्छे

अच्छे कलाकार इस संस्था से निकलते रहे हैं। यह विद्यालय ग्वालियर में सबसे प्राचीन है।

पंडित जी की गायन शैली संगीत क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आप उन इने-गिने गायकों में से हैं जो केवल गुणीजनों के लिये ही गाते हैं। राग और लय की दृष्टि से गायन को सर्वथा शुद्ध रखना ही इनका ध्येय हैं। आपकी गायकी की विशेषता यह है कि आरम्भ से ही लय कायम करके स्थायी के साथ ही आलापचारी करते चलते हैं। इस प्रकार आपको अलग से आलापचारी करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर धीरे धीरे बाँट शुरू होती है। बाँट में बोलतान फिरततान, छूटतान, गमक, जमजमा, खटके, झटके मीड़ों की तानें, लागडाँट, लड़ंत, लड़गुथाव आदि प्रायः सभी अलंकारिक तानें एक के बाद एक यथाक्रम आती हैं। इन अलंकारों का एक खास क्रम है, जो इनके घराने की अपनी शैली है।

पण्डित जी बोलतान बहुत सुन्दर कहते हैं। इतनी नपी तुली बोल तानें, मानो पहले से ही इनकी बन्दिशें तैयार की गई हों, अन्य गायकों में नहीं मिलतीं। आपकी दूसरी विशेषता है 'गले की मींड़' तीन सप्तक की तान कहने के बाद फिर ग मे गं यानी पूरे एक सप्तक की मींड़ कहकर सुर पर न्यास देना कुछ साधारण काम नहीं है।

आपकी तीसरी और सबसे प्रधान विशेषता है गायकी की जटि-लता। आपका विलम्बित ख्याल जब समाप्त होने को आता है तो तानें कुछ ऐसी जटिल और दुरूह हो उठती हैं कि साधारण श्रोताओं का जी घबरा उठता है और ऐसे अवसर पर संगतिये 'सुर पर होकर' पण्डित जी का मुँह देखते रह जाते हैं

सन् १९४७ में ग्वालियर महाराज (श्रीमंत जयाजीराव शिंदिया) ने आपको स्थानीय माधव संगीत महाविद्यालय में सुपरवाइज़र अलाउन्स देकर नियुक्त किया था। १९४५ में ग्वालिर दरबार में आप "संगीत रत्नालंकार की उपाधि से सम्मानित हो चुके हैं।

आपके २ सुपुत्र (१) प्रो० नारायणराव पंडित (२) प्रो० लक्ष्मणराव पंडित बी० ए० भी संगीत कला के विद्वान हैं जिनका कार्यक्रम आकाशवाणी से प्रसारित होता रहता है। इनके अतिरिक्त आपके शिष्यों में प्रो० विष्णुपन्त चौधरी, रामचन्द्रराव सप्तरिषि, पुरुषोत्तमराव सप्तरिषि, दत्तात्रय जोगलेकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

★

कृष्ण शास्त्री बुआ

कृष्ण शास्त्री बुआ उज्जैन के निवासी थे । एक सम्मानीय परिवार में आपका जन्म हुआ था । आरम्भ में आपने हिन्दी एवं संस्कृत की यथेष्ट शिक्षा प्राप्त की । तत्पश्चात् आपको संगीत सीखने की इच्छा उत्पन्न हुई और इन्होंने ग्वालियर के लिए प्रस्थान किया । उस समय ग्वालियर नगर संगीत विद्या का केन्द्र बना हुआ था । प्रख्यात गायक मियाँ हद्दू खां के प्रमुख शिष्य श्री वासदेव बुआ जोशी उस समय ग्वालियर में ही रहते थे । अतः कृष्ण शास्त्री ने उनको ही अपना गुरु बनाना निश्चय किया । सरल स्वभाव तथा प्रतिभाशील मस्तिष्क वाले शास्त्री बुआ पर गुरुदेव प्रसन्न हो गये और उन्होंने इनको संगीत शिक्षा देना स्वीकार कर लिया । उस समय वासदेव बुआ के पास श्री बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर भी गायन शिक्षा लिया करते थे । गुरु के प्रसाद से कृष्ण शास्त्री बुआ कुछ वर्षों में ही उच्च-कोटि के संगीत कार बन गये । बहुत दिनों तक ग्वालियर में ही आपने निवास किया ।

एक बार गायन चर्चा पर वाद-विवाद हो जाने के फलस्वरूप ग्वालियर नगर से आपका हृदय खिन्न हो गया और पुनः अपनी जन्मभूमि उज्जैन में आकर रहने लगे । यहाँ आकर आपने श्री रामचरित मानस को अपनी जीविका का आधार चुना । स्थानीय राम मन्दिर में कथा, कीर्तन तथा भजन आदि गाकर अपना निर्वाह करने लगे ।

शास्त्री बुआ बहुत उच्चकोटि के ख्याल गायक संगीतज्ञ थे, आपको अनेक ख्याल याद थे । अपने गुरु वासदेव बुआ जोशी की आज्ञानुसार इन्होंने गणपति भिलवडीकर को संगीत की शिक्षा दी । गुरु कृपा से गणपति भी ख्याल गायकी में पारंगत हो गये । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में उज्जैन में ही आपका देहावसान हो गया ।

★

श्री कृष्णहरि हिर्लेकर

स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर के प्रथम शिष्य पं० श्रीकृष्णहरि हिर्लेकर का नाम पलुस्कर जी के शिष्य संप्रदाय में आज भी आदर के साथ लिया जाता है।

सन् १८७१ ई० में गगनबावड़ा रियासत में आपका जन्म हुआ। बचपन से ही आवाज सुरीली और आकर्षक होने के कारण भजन गायन में आपकी अभिरुचि उत्पन्न हुई। उस समय उक्त रियासत के अधिपति श्री माधव राव मोरेश्वर राव संगीत कला के प्रेमी और स्वयं एक कुशल सितार वादक थे। उस समय के प्रसिद्ध गायक खाँ साहब अल्लादिया खां, उमराव खाँ, रहमत खाँ आदि रियासत में आकर जब कभी अपना गायन सुनाया करते थे तो बालक श्री कृष्ण को भी उन कलाकारों का गायन सुनने का अवसर प्राप्त होता रहता था; इस प्रकार शास्त्रीय संगीत में भी इनकी रुचि बढ़ने लगी।

एक बार किर्लोस्कर नाटक कम्पनी के प्रसिद्ध अभिनेता भाऊराव कोलटकर जब गगनबावड़ा रियासत में पधारे तब हिर्लेकर जी ने उनको कुछ

भजन सुनाये, जिन्हें सुनकर भाऊराव बहुत प्रसन्न हुए और अपनी नाटक कम्पनी में सम्मिलित करने के लिए इनसे प्रस्ताव किया, किन्तु इन्होंने स्पष्ट मना कर दिया क्योंकि उच्चकोटि के गायकों को सुनते-सुनते शास्त्रीय संगीत की ओर यह आकर्षित हो रहे थे और राग गायकी को ही अपनाना चाहते थे।

शास्त्रीय संगीत की ओर इनकी विशेष लगन देखकर गगनबावड़ा के राजा साहब ने श्रीकृष्ण को मिरज के पं० बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर के पास तालीम के लिये भेजा। इचलकरंजीकर के पास उन दिनों पं० विष्णु-दिगम्बर पलुस्कर भी संगीत शिक्षा प्राप्त करने के हेतु आते थे अतः श्रीकृष्ण जी का भी पं० विष्णु दिगम्बर से वहां अच्छा परिचय हो गया। आपकी संगीत शिक्षा वहां चलने लगी और पलुस्कर जी में आप गुरु भाव मानने लगे। जब सन १८९६ ई० में पलुस्कर जी अपनी शिक्षा पूर्ण करके मिरज छोड़कर बाहर जाने को उद्यत हुए तो पं० श्री कृष्ण भी उनके साथ होलिये और अनेक स्थानों पर अपनी संगीत लहरी से जनता को संतुष्ट किया।

लगभग ३ साल तक महाराष्ट्र, बम्बई, बड़ोदा, अहमदाबाद तथा काठियावाड़ आदि स्थानों में घूमकर आप बृजभूमि मथुरा में पहुंचे। मथुरा से दिल्ली होते हुए पंजाब गये। इस बीच आप पलुस्कर जी के संसर्ग में रहकर श्रुति शास्त्र का अध्ययन तथा स्वरलिपि पद्धति की जानकारी भली प्रकार कर चुके थे। पं० पलुस्कर जी ने ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं को संगीत स्वरों में निबद्ध किया था और जब उन ऋचाओं को डा० ऐनीबेसेन्ट के सामने गाकर सुनाया गया तो वे बहुत प्रभावित हुईं। ऐनीबेसेन्ट के द्वारा महाराजा काश्मीर को जब ये बातें मालूम हुईं तो उन्होंने पंडित जी को बुलवाया और अपने यहां के लिये एक संगीत शिक्षक की मांग की। तब पलुस्कर जी ने पं० श्रीकृष्ण हरि हिर्लेस्कर को सन् १९०३ ई० में काश्मीर भेजा। वहां ३ साल रहने के पश्चात् सन् १९०६ ई० में आप बनारस में संगीताध्यापक बने और वहां कई वर्ष तक योग्यता पूर्वक कार्य करके बहुत से विद्यार्थी आपने तैयार किये, इनमें से कई विद्यार्थी अब भी उच्च पदों पर आसीन हैं।

अंत में आप एक वानप्रस्थी के रूप में अपना जीवन क्रम चलाते हुए भगवद् भजन में अपना समय बिताने लगे।

★

कुमार गन्धर्व

कुमार गन्धर्व का जन्म, बेलगांव जिले के सुले भावी ग्राम में ८ अप्रैल १९२४ को एक लिंगायत परिवार में हुआ। इनका मूल नाम शिवकुमार है। आपके पिता श्री सीताराम कोमकली भी एक अच्छे गायक थे।

अपनी आयु के पांचवें वर्ष में ही एक दिन यकायक कुमार की प्रतिभा दृष्टिगोचर हुई। यह बालक उस दिन सवाई गन्धर्व के एक गायन-जलसे में गया था। वहां से लौटकर जब घर आया तो सवाई गन्धर्व द्वारा गाई हुई बसंत राग की चीज़ तान और आलापों के साथ ज्यों की त्यों नकल करके गाने लगा। यह देखकर इनके पिता जी आश्चर्य चकित रह गये। लोगों ने कहा इस बालक में पूर्वजन्म के सङ्गीत-संस्कार यथेष्ट रूप में विद्यमान हैं अतः इसकी संगीत भावना को बल देने के लिये इसे शास्त्रीय संगीत अवश्य सिखाइये। फलस्वरूप कुमार की संगीत शिक्षा प्रारम्भ हो गई। ७ वर्ष की तालीम में ही कुमार के अन्दर यह विलक्षण शक्ति पैदा हो गई कि बड़े-बड़े गायकों के ग्रामोफोन रेकर्ड हूबहू नकल करके गाने लगे।

९ वर्ष की उम्र में कुमार गन्धर्व का सर्व प्रथम गायन-जलसा बेलगाँव में हुआ। इसके पश्चात् बम्बई के प्रोफेसर देवधर ने कुमार को अपने सङ्गीत विद्यालय में रख लिया। फरवरी सन् १९३६ में, बम्बई में एक संगीत परिषद हुई, उसमें कुमार गन्धर्व की कला का सफल प्रदर्शन हुआ, जिससे श्रोतागण मुग्ध हो गये और इनका नाम संगीतज्ञों तथा संगीत कला प्रेमियों में प्रसिद्ध हो गया। अनेक सामयिक पत्र-पत्रिकाओं ने उन दिनों कुमार गन्धर्व के संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

२३ वर्ष की उम्र में, अर्थात् मई १६४७ में आपका विवाह हो गया, भाग्य से आपको पत्नी भी संगीत प्रवीण मिली। कुमार की पत्नी भानुमती करांची की रहने वाली थी; किन्तु माता पिता का देहान्त हो जाने पर संगीत शिक्षा के हेतु वे बम्बई आगई और उसी संगीत शाला में उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हुआ जिसमें कि कुमार गन्धर्व संगीत सीख रहे थे तथा बच्चों को सिखा रहे थे। यहीं पर इन दोनों का प्रथम परिचय हुआ, तत्पश्चात नियमानुसार इनका विवाह कार्य सम्पन्न हो गया।

विवाह को एक वर्ष भी न होपाया था कि दुर्भाग्यवश कुमार गन्धर्व अस्वस्थ हो गये और तपेदिक जैसी भयंकर बीमारी के आसार दिखाई देने लगे। अतः वायु परिवर्तन के लिये ये दोनों पति–पत्नी मालवा की एक सुन्दर पहाड़ी देवास पर निवास करने लगे। इनकी पत्नी ने छाया की तरह साथ रहकर इनकी सेवा की, और उसका सुन्दर फल यह निकला कि कुमार स्वस्थ हो गये।

४ वर्ष तक संगीत से पृथक रहने के पश्चात् अब कुमार गन्धर्व फिर संगीत–जगत के सम्मुख आये हैं, और अपने जादू भरे संगीत का रसास्वादन संगीत प्रेमियों को करा रहे हैं। हां, लम्बी बीमारी के कारण कंठ में पहिले जैसा गुण तो नहीं रहा; फिर भी आशा है कि भविष्य में परिश्रम द्वारा वही जादू पुनः आजायगा।

कुमार गन्धर्व केवल मधुर गायक ही नहीं अपितु उनके अन्दर अन्वेषण की प्रतिभा और कल्पना भी है। आपने अपनी रुग्णावस्था के समय में भी नये–नये रागों की खोज जारी रखते हुए मालवा लोकगीतों का भी अभ्यास किया। नवीन रागों के निर्माण में आपके द्वारा नवनिर्मित राग–अहिमोहनी, मालवती, सहेली तोड़ी, निंदियारी, भावमत भैरव, लग्न गंधार आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। लोक गीतों में शास्त्रीय संगीत का मधुर मिश्रण आपके द्वारा कार्तिक पूर्णिमा उज्जैन के मेले में आयोजित लोकगीत सम्मेलन में जिन्होंने सुना है, उनका कहना है कि कुमार मानवरूपी गन्धर्व है। आपने यह प्रमाणित कर दिया है कि हमारे प्राचीन लोक गीतों में भी शास्त्रीय संगीत का अजस्र स्रोत प्रवाहित है।

कुमार गन्धर्व का स्वभाव अत्यन्त मृदुल है और यह मृदुता उनके स्वर को मीठा बनाने में सहायक हुई है। कुमार का कण्ठ वास्तव में ईश्वरीय देन है, वे पक्की चीज गायें या साधारण गीत, समान मोहिनी उत्पन्न करने की क्षमता उनमें है। वास्तव में वे एक सफल कलाकार हैं।

★

केशब बुवा इंगले

गायनाचार्य केशब बुवा इंगले
इचलकरंजी संस्थान के दरबारी
गायक हैं। आपके पिता तथा बाब
भी बड़े गुणी गायक थे। पितामह
का नाम था स्व० भीकूबुवा,
बहुत ही विद्वान कलावन्त हुये हैं
आपके पिता गुंडो बुवा स्वर्गी
बाल कृष्ण बुवा इचलकरंजीकर
पट्ट शिष्य थे।
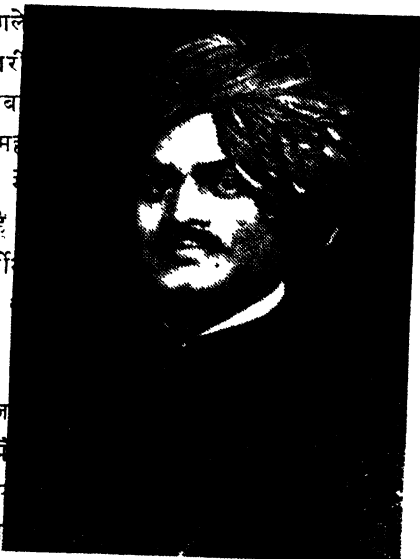
इंगले बुवा का जन्म सतारा जि
के फलटण नामक गांव में ३ अप्रै
१९०९ ई० में हुआ। आप
पिता औंध संस्थान के खानदा
गवैया थे, अतः आपका बाल्यकाल
औंध में ही बीता। १९२० ई० में आपके पिता सांगली में दरबारी गायक नियुक्त हुए, तब केशब बुवा भी सांगली गये। सन् १९२६ में आपने मैट्रिक किया। इसके पश्चात् कॉलेज की पढ़ाई आरम्भ करने के बजाय अपने पिता जी से संगीत का उच्चाभ्यास करने की इच्छा आपने प्रगट की। तब ५ वर्ष तक अर्थात् सन् १९३१ तक आपने संगीत की सपरिश्रम आराधना की और बाद में इचलकरंजी दरबार में ही आप दरबारी गायक नियुक्त हुए। इचलकरंजी में आपने कई शागिर्द तैयार किये। जिनमें से आज अनेक व्यक्ति विभिन्न स्थानों पर संगीत शिक्षक का कार्य कर रहे हैं।

१९३५ में आप मैसूर गये, वहां दरबार में आपका यथेष्ट सम्मान हुआ। सन् १९३८ में आप पूर्व अफ्रीका में गायन के कार्यक्रमों के लिये अपने दो शिष्यों सहित गये थे। सन् १९३९ में इन्दौर सरकार ने संगीत की पदवी परीक्षा के परीक्षक के लिये आपको नियुक्त किया।

गायनाचार्य केशब बुवा ने संगीत विषय पर अनेक लेख लिखे हैं। आपका प्रथम लेख १९३३ में एक भारतीय संगीत मासिक में छपा। इसके अतिरिक्त

आपने स्वर्गीय बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर की जीवनी तथा "गोखले-घराने की गायकी" नामक दो उत्तम पुस्तकें प्रकाशित कीं।

बम्बई रेडियो से आपके कई कार्यक्रम प्रसारित हो चुके हैं। सन् १९४२ में आपके कार्यक्रम भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर हो रहे हैं, आपकी गायकी में बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर घराने की गायकी की पूरी-पूरी छाप है। आवाज़ का माधुर्य, ताल तथा स्वरों पर अधिकार, इन सब बातों से आपका संगीत अत्यन्त आकर्षक होता है।

★

केसरबाई

शास्त्रीय संगीत की गायिकाओं में केसरबाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप महाराष्ट्रीय महिला हैं। आपका जन्म सन् १८६३ ई० में हुआ। ८ वर्ष की आयु में ही कोल्हापुर में आपकी संगीत शिक्षा खां साहब अब्दुलकरीम खां द्वारा आरम्भ हो गई। लगभग १० महीने में खां साहब ने इनको बहुत से अलंकार कंठस्थ करा दिये, साथ ही एक दो चीजें भी सिखा दीं, इसके बाद आप कोल्हापुर से पुनः गोआ वापिस आ गईं।

गोआ पहुंचने पर नौ-दस महीने तक इनका संगीताभ्यास बंद रहा; क्योंकि वहां पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो कि हिन्दुस्तानी संगीत की शिक्षा दे सके। भाग्य से उसी समय पं० वझे बुआ गोआ के निकट 'साम गाम' नामक स्थान पर आये हुये थे, तब ये उनके पास गायन सीखने जाने लगीं। लगभग १३ वर्ष की उम्र तक वझे बुआ से इन्हें तालीम मिलती रही। इसके बाद वझेबुआ साहब को एक ज़मींदार ने बांदोर नामक गांव में अपनी पुत्री की संगीत शिक्षा के हेतु बुला लिया; केसर बाई ने इस अवसर को भी नहीं छोड़ा और बांदोर जाकर उनसे शिक्षा लेने लगीं।

१६ वर्ष की उम्र में सन् १६०६ के लगभग ये बम्बई आकर रहने लगीं। वहां पर इन्होंने एक वर्ष तक प्रसिद्ध सितार वादक खां साहब बरकतुल्ला से संगीत की तालीम ली। इसके पश्चात् बरकतुल्ला साहब पटियाला दरबार चले गये, किन्तु बीच-बीच में वे दरबार से छुट्टी लेकर बम्बई आ जाते थे और केसरबाई को संगीत सिखाते थे। यह क्रम लगभग दो साल तक चला।

सन् १६१२ में खां साहब अल्लादिया खां बम्बई में आठ माह तक रहे। केसर बाई ने उनसे संगीत सीखने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने इसे स्वीकार भी कर लिया, किन्तु उनकी गायकी को ये आत्मसात न कर सकीं और फिर खां साहब का स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ गया था, अतः वे बम्बई से कोल्हापुर चले गये।

इस प्रकार अस्त–व्यस्त संगीत शिक्षण से इनका दिल ऊब गया था और इन्होंने सोचा कि किसी एक गुरू से ही नियमित रूप से संगीत शिक्षा ली जाय तभी कुछ प्राप्त हो सकेगा। उन दिनों पं० भास्कर बुआ बम्बई में ही रहते थे, उनसे इन्होंने शिक्षा लेनी आरम्भ की। अभाग्यवश साढ़े चार महीने सिखाने के बाद वे बम्बई छोड़कर पूना चले गये। इसके बाद पं० 'रामकृष्ण बुआबझे' से भी कुछ दिन इन्होंने सीखा। इस प्रकार सन् १९१७ तक इनका संगीत अस्त व्यस्त रहा। तब इन्होंने सन् १९१८ में यह दृढ़ संकल्प किया कि संगीत सीखूँगी और जरूर सीखूंगी।

पं० वझेबुआ द्वारा संगीत शिक्षण स्थगित हो जाने के बाद एक वर्ष यों ही बीत गया। इनकी प्रबल इच्छा थी कि मैं प्रसिद्ध संगीतज्ञ खां साहब अल्ला-दिया खां को अपना गुरू बनाकर उनकी गायकी सीखूं; किन्तु बहुत सी सिफारिशें करने पर भी वे सिखाने को तैयार न होते थे। इस उधेड़बुन में दो वर्ष बीत गये किन्तु इन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। ये बहुत दुखी रहने लगीं, जिसके फलस्वरूप इनका स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा। इनकी ऐसी दशा देखकर और गाना सीखने की प्रबल इच्छा इनके अन्दर पाकर, बम्बई के सेठ बिट्ठलदास ने इन्हें विश्वास दिलाया कि "केसरबाई आप निराश न हों मैं खाँ साहब को तुम्हें संगीत सिखाने के लिये राजी कर लूंगा।" सेठ जी ने अपनी बीमारी के बहाने का तार देकर खां साहब को बम्बई बुलाया और उनसे प्रार्थना की कि आप केसरबाई को तालीम देना शुरू कर दीजिये वर्ना इस बेचारी का शरीर नहीं रहेगा। खां साहब ने कहा कि सन् १९१२ में मैंने इसे तीन महीने तक सिखाया था, लेकिन मेरी गायकी को यह हासिल न कर सकी, इसलिये अब मैं नहीं सिखाऊंगा; किन्तु सेठ जी के विशेष आग्रह पर खां साहब ने अपनी कुछ शर्तों के साथ केसर बाई को तालीम देना स्वीकार कर लिया। शर्तें कागज़ पर लिखीं गईं। (१) एक निश्चित रकम देकर गंडा बांध लेना चाहिये। (२)‥‥‥रु० मासिक वेतन रूप में देना चाहिये (३) तालीम करीब दस साल तक चालू रहेगी। (४) मेरी तन्दुरुस्ती ठीक न रही या किसी काम से मैं बाहर गया उन दिनों की भी मुझे पूरी तनुख्वाह मिलेगी (५) बम्बई छोड़-कर मेरे बाहर रहने पर जहां मैं रहूँगा वहां आकर आप तालीम हासिल करेंगी।

उक्त शर्तें स्वीकार कर लेने पर पहली जनवरी सन् १९२१ को केसर बाई के गंडा बाँध दिया गया और तालीम शुरू हो गई। इसके बाद खां साहब अपना इलाज कराने सांगली जाकर रहने लगे अतः इनको भी वहां शिक्षा के हेतु जाना

पड़ा। सांगली में गर्मी अधिक होने के कारण खाँ साहब के साथ केसर बाई बम्बई आ गईं। तालीम देने में खाँ साहब बिल्कुल आलस्य नहीं करते थे वे लगभग नौ घंटे तक इन्हें तालीम देते थे। आरम्भ में तो केसर बाई की आवाज कुछ बैठने लगी, किन्तु ६ महीने के बाद कुछ ठीक होने लगी और फिर २ माह में पूरी आवाज़ खुल गई। इस प्रकार लगभग ८ वर्ष तक केसर बाई ने उस्ताद अल्लादिया खां से संगीत शिक्षा प्राप्त की। कहा जाता है कि खां साहब ने प्रथम इनको तोड़ी राग सिखाना आरम्भ किया था। पूरी तरह मुंह खोलकर भरपूर आवाज़ निकालने पर खां साहब विशेष ध्यान देते थे। अत्यन्त धीमी लय में प्रत्येक पल्टा वे भली प्रकार रटा देते थे। केसर बाई का कहना है कि मैंने एक-एक पल्टा लाखों बार रटा होगा! पल्टे अच्छी तरह रट लेने से आगे चलकर तानें निर्दोष निकलने लगती हैं। अति विलम्बित लय में प्रत्येक राग के पल्टों को सम के पूरे चक्कर तक अखंड रूप से कहना चाहिये, ऐसा खां साहब का कहना था। उनकी गायकी की इस पद्धति के कारण ही केसर बाई की सांस पचाने की शक्ति, जिसे गवैयों की भाषा में दम-सांस कहते हैं, स्वतः बढ़ गई।

केसर बाई का संगीत शिक्षण लगातार २५, ३० वर्ष तक हुआ है और उन्होंने कड़ा परिश्रम किया है। उसी का यह फल है कि आज आप अखिल भारत में अपने मधुर कंठ संगीत के लिये प्रसिद्ध हैं। जिन्होंने केसरबाई का प्रत्यक्ष गान सुना है वे उनके गले की विशेषताओं से भली भांति परिचित हैं। उनके अनेक ग्रामोफोन रिकॉर्ड भी तैयार हो चुके हैं। वैसे तो आप बहुत से राग गाती हैं किन्तु बसंतबहार, मियांमल्हार, गुणकली, जयजयवन्ती, गौड़मल्हार, शुद्धनट, अड़ाना, मारूबिहाग, तोड़ी, सावनीकल्याण, हेमनट इत्यादि राग इन्हें विशेष प्रिय हैं।

निर्दोष तथा खुली हुई आवाज़ निकालना तथा उसे सुविधानुसार ऊंचाई-नीचाई पर बारीक, मोटी करते हुये मन्द्र पंचम से तार मध्यम या पंचम तक आसानी से पहुँचना केसर बाई का विशेष गुण है। इस उम्र में भी आपकी तानें बहुत स्पष्ट, गमकयुक्त तथा दानेदार होती हैं।

खुर्शीदअली खां

१६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लखनऊ में, संगीत के बड़े-बड़े नामी उस्ताद होगये हैं, जिनमें से सेनी घराने के ख्याल गायक उस्ताद सादिक़ अलीखां के शागिर्द उस्ताद खुर्शीदअली खाँ का नाम भी उल्लेखनीय है।

उस्ताद खुर्शीदअली का जन्म सन् १८५५ ई० में हुआ। आपने बड़े परिश्रम और रियाज़ द्वारा उस्ताद सादिक़ अली खां की गायकी प्राप्त की। प्राचीन गायन शैली को आप बड़ा महत्व देते थे और तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास की गायकी का चित्र अंकित करने में समर्थ थे।

'मारिफुन्नग़मात' के लेखक राजा नवावअली से आपकी मित्रता थी। जिस समय भारतीय संगीत पर नाट्य संगीत की छाया पड़ने लगी और जनता शास्त्रीय संगीत से बचकर इस नवीन शैली में दिलचस्पी लेने लगी तो उस्ताद खुर्शीदअली खां ऐसे संगीत प्रेमियों से अलग रहकर शास्त्रीत संगीत की एकांत साधना में लीन रहने लगे। किन्तु शास्त्रीय संगीत ने जब एक बार फिर करवट बदली तो उस्ताद पुनः शनैः-शनैः प्रकाश में आने लगे। उन दिनों मैरिस कालेज लखनऊ जिसे आजकल भातखंडे संगीत विद्यालय कहा जाता है आरम्भ हुआ था। कुछ व्यक्तियों ने उस्ताद खुर्शीदअली खां को मैरिस कॉलेज में लेने के लिये चर्चा चलाई किन्तु इस कालेज की शिक्षा प्रणाली प्राचीन शैली के उस्तादों के लिये एक नई वस्तु होने के कारण वे उससे अलग-अलग ही रहे।

आप एकान्त प्रिय, निराभिमानी एवं शर्मीली प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । इस-लिये संगीत गोष्ठियों एवं जल्सों में बहुत कम भाग लेते थे । भारतीय संगीत की प्राचीन शैली पर आधुनिक शैली ने जो आक्रमण कर दिया था उससे भी आप अपनी कला को बचाना चाहते थे । फ़रमाइशी चीज़ें गाकर लोगों को खुश करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी ।

पुराने उस्ताद प्रायः ऐसी मनोवृत्ति के पाये जाते हैं जो अपनी चीज़ें किसी दूसरे को आसानी से नहीं बताते, किन्तु उस्ताद खुर्शीदअली खां इसके अपवाद थे । वे अपने विद्यार्थियों को सेनी घराने के वह ख्याल भी बता देते थे जोकि उन्होंने बड़े परिश्रम से प्राप्त किये थे । अतः विद्यार्थी समुदाय और स्कूल के संगीत अध्यापक उनका अत्यन्त आदर करते थे । कठिन से कठिन तालों और जटिल से जटिल रागों पर उनका अधिकार था । अन्त में यह वयोवृद्ध कलाकार ९५ वर्ष की ऐतिहासिक आयु प्राप्त करके मार्च सन्-१९५० ई० में स्वर्गवासी होगया । आपके एक शिष्य प्रेमनारायण बहादुर प्रायः आपकी जीवनी के संस्मरण सुनाया करते हैं ।

★

गंगूबाई हंगल

श्रीमती गंगू बाई हंगल का जन्म फरवरी सन् १९१३ ई० में धारवाड़ में हुआ। आपके पिता का नाम श्री चिक्कूराव तथा माता का नाम श्रीमती अम्बाबाई था। अम्बाबाई स्वयं एक अच्छी कर्नाटक संगीतज्ञा थीं अतः आप ही ने अपनी पुत्री की प्रारम्भिक शिक्षा का श्रीगणेश किया, किन्तु गंगूबाई की रुचि कर्नाटक संगीत की ओर से घटती देखकर हुबली के पं० कृष्णाचार्य के पास हिन्दुस्तानी संगीत सीखने के लिये भेज दी गई। वहां आपने एक वर्ष तक संगीत शिक्षा पाई। इसके पश्चात् आपका परिचय श्री० रामभाव कुन्डगोलकर उर्फ स्वरगंधर्व से हुआ, जिनसे आपने गंडा बँधाया; किन्तु आपके ये गुरू जी एक नाटक कम्पनी में काम करते थे अतः उन्हें कम्पनी के साथ साथ घूमना पड़ता था इसलिये आप इनसे लगातार संगीत न सीख सकीं। सन् १९३८ ई० में आपने अपने मामा श्री० दत्तो पंत देसाई से भी संगीत शिक्षा पाई। इसके पश्चात आपके गुरू जी नाटक कम्पनी छोड़ कर स्थाई रूप से कुन्डगोल में रहने लगे। यह स्थान हुबली से ग्यारह मील दूर था। गंगू बाई को संगीत सीखने के लिये नित्य प्रति ११ मील की यात्रा करके, गोल कुन्ड जाना पड़ता था; इस प्रकार तीन वर्ष आपने श्री० रामभाव से तालीम पाई। बाद में आपके स्वास्थ में कुछ खराबी आ जाने पर डाक्टरों के परामर्श से नियमित संगीत शिक्षा का तारतम्य टूट गया।

सन् १९२४ ई० में बेलगांव में, कांग्रेस के महा अधिवेशन में आपका प्रथम सार्वजनिक गायन हुआ। सन् १९३४–३५ ई० में भिन्न–भिन्न ग्रामोफोन कम्पनियों ने आपकी गायकी के कुछ रिकार्ड तैयार किये। सन् १९३८ में कलकत्ता के संगीत सम्मेलन में आपके गायन से श्रोता अन्यन्त प्रभावित हुये। इसके पश्चात् प्रयाग, लखनऊ, अमृतसर, करांची, बम्बई, बड़ौदा, गया, देहरादून आदि संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर आपने अपनी कला प्रदर्शित की। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न रेडियो स्टेशनों से आपके कार्यक्रम प्रसारित होते रहे हैं। महिला गायिकाओं में आपका स्थान उच्च स्तर पर माना जाता है।

★

गणपति बुवा

प्रसिद्ध गायनाचार्य स्व० बालकृष्ण बुवा का सर्व प्रथम शिपत्व जिन्हें प्राप्त हुआ वे थे गायनाचार्य पं० गणपति बुवा भिलवडीकर। आचार्य भातखंडे जी को अपनी क्रमिक पुस्तकों के लिये इनसे बहुतसी खान्दानी चीजें भी प्राप्त हुई थीं।

गणपति बुवा का जन्म माघ शुक्ला ११सम्वत् १८८२को बाठार गांव में हुआ था। आपके पिता श्री वेदोनारायण सखाराम भट्ट पुरोहित थे। बाल्यकाल से ही बालक गणपति को वेद पाठ और कर्म काण्ड की शिक्षा प्राप्त हुई और १२ वर्ष की उम्र में ही आपका विवाह भी हो गया।

बाठा गाँव में उन दिनों हरि भजन-कीर्त्तन आदि होते ही रहते थे, उनमें गणपति भी शामिल होने लगा। कीर्तनकार गायकों का जनता बहुत आदर करती थी और उन्हें भेंट भी चढ़ाई जाती थी, यह देखकर गणपति जी के मन में भी कीर्तनकार बनने की लालसा जागृत हो उठी किन्तु इसके लिये पहले गायन सीखना आवश्यक है। इसके लिये आपने उस समय के प्रसिद्ध

संगीत गुणी गायनाचार्य बालकृष्ण बुवा के पास जाने का निश्चय किया । वे उन दिनों सतारा में रहते थे ।

अपने अन्य साथी मित्रों के साथ घर पर बिना कुछ कहे सुने गणपति चल दिये-संगीत शिक्षा के लिये । पास में पैसा नहीं था, अतः पैदल ही चले । दूसरे दिन कोल्हापुर पहुँचे तो रोटियों का प्रश्न सामने उपस्थित हुआ, इधर मार्ग की थकान भी काफी थी । दोनों साथी गणपति से कहने लगे कि अब खाने का क्या प्रबन्ध होगा ? गणपति ने उत्तर दिया, पैसा तो है नहीं, भिक्षा मांगकर खायेंगे और क्या ? यह सुनकर दोनों साथी गणपति से बहुत नाराज हुए और वापिस गांव लौट गये, किन्तु गणपति जी अपनी धुन के पक्के थे, अतः कोल्हापुर से सतारा पहुँचे और बालकृष्ण बुवा के सम्मुख अपनी रामकहानी उपस्थित करदी ।

इनकी सब बातें सुनकर बालकृष्ण बुवा ने सबसे पहला प्रश्न इनसे यह किया-क्या तुम गाँजा रगड़ सकते हो ? गणपति ने जवाब दिया हाँ, सिखाने पर यह भी कर सकूंगा । यह सुनकर बुवा साहब ने इनको रहने की आज्ञा दे दी । उनके सभी छोटे बड़े काम ये करने लगे और भट्ट जी महाराज के मठ में रहकर मांगी हुई रोटियों से गुज़ारा करने लगे; इस प्रकार कष्ट सहन करते हुये इन्होंने बालकृष्ण बुवा से संगीत की शिक्षा प्राप्त की । उस समय इनकी आयु १६ वर्ष की थी ।

कुछ समय बाद मियां हस्सूखां के शिष्य जोशी जी जो कि बालकृष्ण बुवा के गुरू जी थे, उनके पास रहने का अवसर गणपति को प्राप्त हुआ । ये इनके साथ ग्वालियर चले गये । ग्वालियर पहुँच कर ये गुरू जी की सेवा मन लगाकर करने लगे । घर का काम करते करते ही जोशी जी का गाना ध्यान पूर्वक सुनते थे । एक वर्ष तक यहाँ रहने के पश्चात् कृष्णशास्त्री शुक्ल के पास उज्जैन आये । एक साल तक तो शास्त्री जी ने इन्हें कुछ नहीं सिखाया, उनका कहना था कि गाना सुनते सुनते जब तुम्हारे कान तैयार हो जांयगे तब कुछ सिखाऊंगा । अतः एक वर्ष के बाद इनकी तालीम शुरू हो गई और ३–४ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करके आप अच्छे तैयार हो गये । फिर कुछ समय बाद आप अपने गाँव वापस आ गये ।

इन दिनों महाराष्ट्र में सङ्गीत नाटक कम्पनियों का खूब प्रचार था गणपति बुवा का शरीर सुडौल और सुन्दर था, अतः इनको एक नाटक कंपनी ने अपने यहां ले लिया । इसके बाद अन्य कम्पनियों में भी आप रहे । सन्

१८९० ई० में नाटक कम्पनी छोड़कर बेलगांव में रहने लगे। बेलगाँव में कुछ वर्ष रह कर फिर कोल्हापुर गये, कोल्हापुर में उन दिनों अनेक गायक और वादक रहते थे, अतः उनके साथ कई जल्सों में आपने भाग लिया। इनके अतिरिक्त कुछ शिक्षण कार्य भी आप करते रहे।

सन् १९०२ ई० में कोल्हापुर छोड़कर आप पूना आये, यहां आकर आपने कृष्णाबाई कोल्हापुर वाली को तालीम देना शुरू कर दिया तथा 'पूना गायन समाज' में भी आपको शिक्षक का स्थान प्राप्त हो गया। 'पूना गायन समाज' की पूँजी बैंक में डूब जाने के कारण समाज के कार्य की प्रगति रुक गई। तब पंडित भातखण्डे जी के बुलावे से आप बम्बई चले गये। भातखण्डे जी ने इनकी बहुतसी चीजें सुनीं और उनकी स्वरलिपि करके क्रमिक पुस्तक मालिका में प्रकाशित करायीं। आगे चलकर गणपति बुआ को बुढ़ापे के कारण बम्बई का जलवायु अनुकूल नहीं पड़ा अतः सन् १९२५ में आप साँगली चले आये। साँगली आकर आपने अपने निवास स्थान पर 'चतुर संगीत विद्यालय' का साइन बोर्ड लगा लिया, विद्यार्थियों को आप संगीत सिखाने लगे। बुढ़ापे के कारण इनका शरीर नहीं चलता था, इसलिये आमदनी भी कम होती थी, किन्तु साँगली के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने आपस में चंदा इकठ्ठा करके इनकी सहायता की। आपको यहाँ पर दमा तथा अन्य बीमारियों ने भी ग्रस लिया था अतः आप बहुत कमजोर हो गये। अन्त में २३ अगस्त सन् १९२७ को आपका देहावसान हो गया।

स्व० गणपति बुवा की आवाज मीठी गोल और सुरीली थी। आप टप्पा तराना—सरगम वगैरह भी अच्छी तरह गाते थे। आपने बहुत से शिष्य तैयार किये।

★

गणेश रामचंद्र बहरे बुवा

संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर अपनी मधुर, गम्भीर आवाज़ से संगीत जिज्ञासुओं को आकर्षित करने वाले, शुभ्र दाढ़ी और भगवा रेशमी कुर्ता पहने हुए महात्मा जैसे वेश में पं० गणेश रामचंद्र बहरे बुवा बड़े आकर्षक प्रतीत होते हैं। ६५ वर्ष की आयु में भी आपकी आवाज़ में बिल्कुल कम्पन नहीं है। आपके गले से निकली हुई किसी चीज में खाँ साहेब रजबअली की छाया दिखाई देती है तो किसी चीज़ में खाँ साहेब अब्दुलकरीम खाँ की गायकी की छाप पाई जाती है।
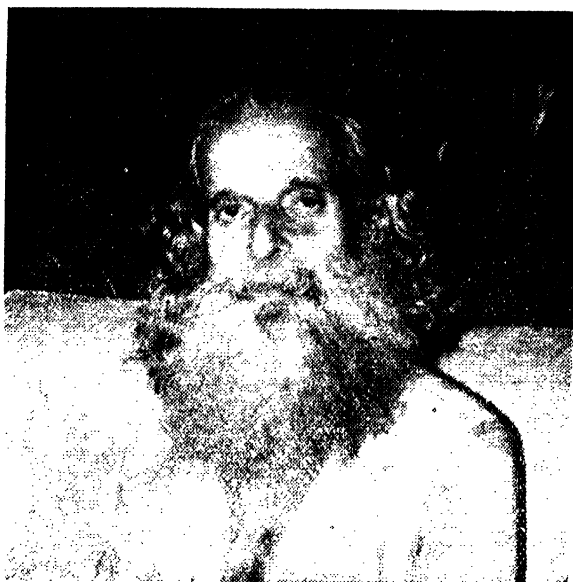
इस महाराष्ट्रीय कलाकार का जन्म रत्नागिरी जिले के अन्तर्गत सन् १८९० ई० में, कुरधा नामक गाँव में हुआ। आपके पिता जी संगीत प्रेमी थे अतः आपको भी बचपन से ही गाने का शौक़ लग गया; किन्तु पिता जी की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण एवं गाँव में कोई संगीत शिक्षक न होने से आपने सन् १९०४ ई० के लगभग घर छोड़ दिया और "नाट्यकला प्रवर्तक मंडली" में प्रविष्ट हो गये। इसी कम्पनी में गणपतिबुवा भिलवडीकर बाल अभिनेताओं को संगीत शिक्षा दिया करते थे, अतः बहरे बुआ भी इनसे तालीम हासिल करने लगे। जब यह कम्पनी शोलापुर पहुँची तो वहाँ उन दिनों खाँ साहेब अब्दुलकरीम खाँ रहते थे। उनकी गायकी से आकर्षित होकर बहरे बुवा ने उनसे संगीत शिक्षा की प्रार्थना की। खाँ साहब ने स्वीकृति देदी अतः बहरे बुवा नाटक कम्पनी छोड़कर संगीत शिक्षा प्राप्त करने लगे।

इन दिनों खाँ साहब अब्दुल करीम खाँ के पास केवल दो ही शागिर्द तालीम ले रहे थे। एक तो बहरे बुवा और दूसरे बंडो पन्त तिलक। बहरे बुवा सरगम और पल्टों की प्रारम्भिक शिक्षा उक्त नाटक कम्पनी में भिलवडीकर जी से प्राप्त कर ही चुके थे, अब यहाँ आलाप और तानों पर मेहनत होने लगी। इन दोनों शिष्यों को खाँ साहब सामने बैठा लेते थे और रात के बारह बजे तक खूब रियाज़ कराते थे। लगभग एक वर्ष तक यहाँ तालीम पाकर फिर आप कुर्धे में अपने घर पहुंच गये। इसके पश्चात् रावबहादुर देवलजी ने अपने खर्चे से आपको पं० रामकृष्ण वझे बुवा के पास बेलगांव भेज दिया। इनके पास बहरे बुवा रोज़ाना जाकर दो चीजें सीख आते, इस प्रकार एक महीने में आपने ३० रागों के छोटे बड़े ख्यालों की ६० चीजें प्राप्त करलीं और फिर वापिस घर आये। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और स्वर ज्ञान के बल पर बहरे बुवा ने वे ६० चीजें खूब कंठस्थ करके आत्मसात करलीं, और उनकी स्वरलिपि बनाकर भी अपने पास रखलीं। देवल साहब द्वारा बहरे बुवा को छात्रवृत्ति मिल रही थी अतः आपका संगीताभ्यास निरंतर गतिशील था। इसके कुछ समय बाद खाँ साहब अब्दुल करीम खाँ हुबली छोड़कर मिरज में रहने लगे, तो बहरे बुवा की तालीम उनके द्वारा फिर शुरू हो गई और पुनः ६ महीने तक खाँ साहब की तालीम का लाभ आपने प्राप्त किया।

कुछ समय बाद आप इन्दौर पहुंचे और वहाँ खाँ साहब रजब अली के पास आना-जाना शुरू करके उनसे अच्छी तरह परिचय प्राप्त कर लिया। इस विद्यार्थी की उत्कट अभिलाषा और साङ्गीतिक अभिरुचि को देखकर रजबअली खां ने इनको अपनी तानें सिखाईं, फिर खां साहेब के साथ आपने कई स्थानों का भ्रमण किया। इससे आपको रजब अली खां साहेब की गायकी का बहुत कुछ अंश प्राप्त होगया। जब पूना में भास्कर बुवा बखले का 'भारत संगीत विद्यालय' सफलता पूर्वक चल रहा था तो उसमें कुछ संगीत प्रेमियों की सिफारिश के द्वारा बहरेबुवा को इस विद्यालय में प्रवेश मिल गया। नित्य प्रति भास्कर बुवा से आप तालीम पाने लगे, किन्तु किसी अज्ञात कारण वश आपका यह क्रम १ वर्ष से अधिक नहीं चल सका।

सन् १९१८ ई० में कान्देवाडी बम्बई में खां साहेब अब्दुल करीम खां ने 'आर्य संगीत विद्यालय' खोला था, इन दिनों बहरे बुवा भी वहाँ मौजूद थे, खाँ साहेब ने इन्हें बुलाकर विद्यालय में संगीत शिक्षक का स्थान दे दिया। कुछ प्राइवेट ट्यूशन भी आप कर लेते थे, इस तरह बम्बई में आपकी गुज़र-बसर होने लगी।

सन् १९३२ ई० में आपकी पत्नी का देहांत होगया। इससे आपके हृदय को बहुत ठेस पहुंची और ग्रहस्थ आश्रम से वैराग्य उत्पन्न होगया। आपने दाढ़ी बढ़ाना आरम्भ कर दिया और भगवत भजन एवं संगीत आराधना में समय व्यतीत करने लगे। आपकी प्रकृति सीधी और सरल होने के कारण संगीत प्रेमी आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यदा–कदा अब भी आप विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर अपनी कला से संगीत प्रेमियों को तृप्त करते रहते हैं। तानों की अच्छी तैयारी, स्पष्ट स्वर, हल्की किन्तु गम्भीर आवाज़ तथा आकर्षक व्यक्तित्व यह आपकी विशेषताएं हैं।

★

गणेशराव पाध्ये

निर्धन परिवार में रहते हुए एवं अनेक कष्टों का सामना करके जिन्होंने अपने जीवन के बड़े भाग को संगीत के वातावरण में प्रसन्नता पूर्वक बिता दिया और अपने आन्तरिक दुखों की ख़बर मित्र तथा सम्बन्धियों तक को न होने दी, वे थे धूलिया के स्वर्गीय पं गरणेशराव पाध्ये।

जब आप आठ वर्ष के ही थे तभी आपके पिता का देहांत होगया और आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रत्नागिरी ज़िले के अन्तर्गत देवरूख में अपने मामा के यहां हुई। घर वालों की इच्छा थी कि आपको संस्कृत पढ़ाई जाय, लेकिन आपका झुकाव विशेष रूप से संगीत की ओर था, अतः स्कूली पढ़ाई को अधूरी छोड़कर आप बड़ौदा के लिये चल दिये। वहाँ पहुँचकर उस्ताद फ़ैज मोहम्मद, फ़तेह मोहम्मद जो उस समय बड़ौदा में दर्बारी गायक थे, उनसे तालीम लेनी आरम्भ करदी। पास में पैसा नहीं था, फिर भी आपने अनेक मुसीबतें उठाते हुए और अपने उस्तादों की सेवा करके उनकी गायकी प्राप्त की। फिर कुछ समय तक आपने संत ब्रह्मीभूत बाल कृष्णानंद स्वामी से टप्पे की तालीम हासिल की। इस प्रकार आपने ध्रुपद, धमार, टप्पा आदि प्रमुख गायन शैलियों का अध्ययन करके फिर उस्ताद निसार हुसेन खां की गायकी का लाभ ग्वालियर जाकर प्राप्त किया। इस तरह लगभग बारह बर्ष तक संगीत की साधना करके फिर आप पूना पहुँचे। वहाँ पर्वती रियासत में स्थित श्री विष्णु मंदिर में कुछ समय तक आपने अपनी गायन कला द्वारा भगवान की सेवा की।

आप केवल गायक ही नहीं अपितु स्वरकार भी थे। आपकी बनाई हुई कई चीज़ें स्व० भातखंडे जी ने पसंद करके अपनी क्रमिक पुस्तकों में दी हैं। संगीत के अतिरिक्त पाध्ये साहब अन्य कलाओं में भी पारंगत थे। विविध प्रकार की सुगंधित शृङ्गार सामिग्री एवं औषधियां बनाने में भी आप कुशल थे।

पाध्ये बुवा का देहावसान अप्रैल सन् १९४७ के लगभग होगया, आपके प्रमुख शिष्यों में श्री हरिभाऊ करहाडकर, श्री फड़के तथा केलकरजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त पाध्ये बुआ ने अपने बड़े पुत्र शामराव को अपने घराने की संगीत शिक्षा देकर एवं अपनी व्यवसायिक कला सिखाकर योग्य बनाया जो पाध्ये ब्रदर्स के नाम से धूलिया में एक दूकान चलाते हुए संगीत के शौक़ को भी क़ायम रक्खे हुए हैं।

★

गिरजा देवी

काशी नगर को प्राचीन काल से ही धर्म तथा संस्कृति का उद्-गम स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस पावन नगरी ने जहां अनेक प्रकाण्ड विद्वानों तथा धर्म प्रवर्तकों को जन्म दिया, वहां अपनी कोख से समय-समय पर अनेक संगीत रत्नों को भी पैदा किया है। श्रीमती गिरजा-देवी की गणना ऐसे ही कला-रत्नों में की जा सकती है।

जो लोग भारतीय आकाश-वाणी केन्द्रों से प्रसारित होने वाले शास्त्रीय संगीत को सुनने के प्रेमी हैं वे इनकी स्वरमाधुरी के आकर्षण से भलीभांति परिचित होंगे।

आपके पिता स्वर्गीय बा० रामदास राय संगीत कला के अनन्य प्रेमी थे, हारमोनियम वादन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। इसी सांगीतिक वातावरण में, अप्रैल १९२९ ई० में गिरजा देवी का जन्म हुआ। ४-५ वर्ष की आयु

से ही इनकी संगीत शिक्षा प्रारम्भ होगई। १५ वर्ष की आयु तक स्वर्गीय पं० सरजूप्रसाद मिश्र द्वारा आपने सीखा। पं० सरजूप्रसाद की मृत्यु होजाने के कारण गिरजाबाई पं० श्री चंद मिश्र की शिष्या बन गई और अभी तक उनसे ही शिक्षा लेती हैं।

सार्वजनिक रूप से गायन प्रदर्शन का प्रथम अवसर आपको आकाशवाणी लखनऊ द्वारा प्राप्त हुआ; यह कार्यक्रम आशा से अधिक सफल हुआ—और यहीं से आपकी ख्याति विद्युत गति से प्रस्फुटित हो उठी। भारतवर्ष के लगभग सभी प्रमुख आकाशवाणी केन्द्रों ने गिरजादेवी को गायन प्रदर्शन के लिये निमन्त्रित किया और सभी केन्द्रों पर आपके सफल कार्यक्रम सम्पन्न हुए। इन्ही दिनों संगीत प्रेमियों के अनुरोधपूर्ण निमन्त्रण पर आपने भारत के विभिन्न नगरों में होने वाले विराट संगीत सम्मेलनों में भाग लेना प्रारम्भ किया। तब से आप अब तक सफलतापूर्वक संगीत सम्मेलनों को अपनी स्वर-लहरियों से नवजीवन प्रदान करती आ रही हैं। दिल्ली रेडियो से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी आप दो बार गा चुकी हैं।

गिरजादेवी की गायकी 'सैनी' घराने की बताई जाती है; ख्याल और ठुमरी गीतों की सफल गायिका होने के साथ-साथ आप पूर्वी लोकगीत, भजन, होली, कजरी, दादरा तथा आधुनिक गीत काव्य को भी बड़ी खूबी के साथ गाती हैं। तैयार तानें तथा आलापकारी का मोहक किन्तु गम्भीर ढंग आपकी स्वर साधना के परिचायक हैं।

इस नवोदित गायिका से अभी बड़ी-बड़ी आशाएँ की जाती हैं, अनेक संगीत प्रेमी इनके स्वर्णिम भविष्य की ओर बड़े उत्साह और विश्वास के साथ देख रहे हैं।

★

गुलाम रसूल

आप लखनऊ के रहने वाले थे। और तत्कालीन नवाब आसफ़ुद्दौला के यहाँ नौकरी करते थे। कुछ दिनों बाद नवाब के दीवान हसनराज़ खाँ से अनबन हो जाने के कारण आपने लखनऊ का दरबार त्याग दिया, यहाँ तक कि निवास के लिए भी किसी अन्य स्थान की ओर चल दिये। कलाकार को अपनी जान से भी प्यारा अपना सम्मान होता है। कहते हैं कि उक्त दीवान ने गुलाम रसूल को अपने यहाँ गायन के लिये आमन्त्रित करके उनका अपमान किया था। संभवत: अनबन होने का ठोस कारण यही था। आप ध्रुपद गायन में प्रवीण होने के साथ-साथ ख्याल गायन पद्धति के पोषक माने जाते हैं। आपने अपने जीवन में प्राचीन ध्रुपद गायन प्रणाली में परिवर्तन लाने और ख्याल गायन पद्धति का प्रचार करने के उद्देश्य से बड़ा कठिन परिश्रम किया था। आप अपने लक्ष्य में अधिकांश सफल हुए, इसमें सन्देह नहीं।

गुलाम रसूल ख्यालों की चीजें स्वयं तैयार करते थे और उन्हें अपने घराने की बंदिश में ढाल कर वर्तमान सभ्य समाज में प्रचलित किया करते थे। निस्संदेह आपकी वाणी में रस और गायकी में जादू था। आपकी गायकी के विषय में एक कहावत अबतक चली आती है कि आपकी स्वर लहरियों पर बुलबुलें (एक पक्षी) मुग्ध हो कर गाते समय खां साहब के पास आकर बैठ जाया करती थीं। आप ख्याल गायकी के अन्तिम नायकों में से थे। आपका एक पुत्र शोरी मियाँ, जिसे आप "नबी" कह कर पुकारते थे, संगीत का ख्याति प्राप्त कलाकार हुआ। उसने "टप्पा" नाम की एक नवीन गायकी का आविष्कार करके संगीत की दुनियां में यथेष्ट कीर्ति एवं लोकप्रियता प्राप्त की। गुलाम रसूल ने काफी उम्र पाई, पर्याप्त ख्याति प्राप्त करके आप अठारहवीं शताब्दी के अन्त में स्वर्गवासी हो गये।

★

गुंडु बुवा इङ्गले
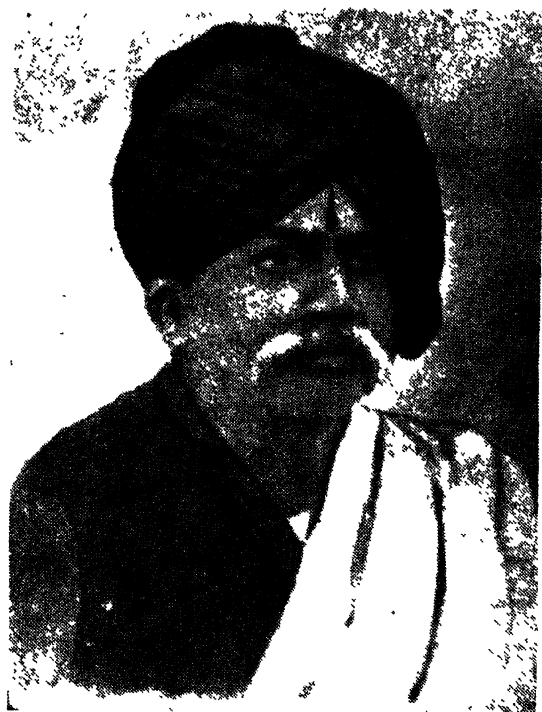
इनके पिता भीकू बुवा इंगले औंध संस्थान के कर्मचारी थे। आपको संगीत की शिक्षा बुवा इंचलकरंजीकर से प्राप्त हुई थी। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गुंडु बुवा अधिक दिनों तक औंध संस्थान की नौकरी पर न रह सके। औंध से हटने के पश्चात् आपने सांगली राज्य में जाकर नौकरी करली।

योग्य गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के कारण आप संगीत विद्या में निपुण तो हो गये, किन्तु आपकी आवाज़ विशेष मधुर तथा प्रभावशाली नहीं थी। संगीत का कलाकार वर्ग तो आपकी गायकी पसन्द करता था किन्तु जनता के साधारण वर्ग द्वारा आपको अधिक लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। स्वभाव भी कुछ कड़वाहट लिये हुआ था। इनके दो पुत्र संगीत के प्रति अभिरुचि रखते थे अतः दोनों को ही आपने संगीत की उत्तम शिक्षा देकर तैयार कर दिया। इनके अतिरिक्त और भी आपने बहुत शिष्य तैयार किये। जीवन का अधिकांश समय आपने सांगली में ही व्यतीत किया और सन् १९२५ ई० के लगभग यहीं पर आपकी मृत्यु हो गई।

★

गुज्जरराम वासुदेव 'रागी'

स्वर्गीय पं० गुज्जरराम वासुदेव 'रागी' (गुज्जर भगत) का जन्म, कस्बा हरियाना ज़िला होशियारपुर (पू० पंजाब) वत्स गोत्रीय ब्राह्मण कुल में, पौष प्रविष्टे ११ शनिवार सं०१६११वि० को हुआ था। आपके पिता श्री कान्हचंद जी वासुदेव खेती एवं व्यापार का काम करते थे। पिता के केवल एक ही संतान होने के कारण आपका पालन-पोषण गुज्जरों द्वारा ही कराया गया। अतः आपका नाम भी गुज्जर राम प्रचलित हो गया। राग विद्या में प्रवीण एवं लोकप्रिय होने के नाते आपको 'रागी जी' तथा 'गुज्जर रागी' भी कहा जाने लगा।

पंजाब का हरियाना घराना ध्रुपद गायन में उत्तम घराना गिना जाता है। 'रागी' जी ने अपने परिश्रम और स्वर–चमत्कार द्वारा इस घराने में चार चांद लगा दिये। उस समय के प्रतिष्ठित गायक स्व० पं० छज्जूराम जी भगत (छज्जू भगत) द्वारा आपने सङ्गीत शिक्षा प्राप्त की। स्व० मुहम्मद हुसैन (हरियाना घराने के प्रसिद्ध गायक) भी आप ही के शिष्यों में से थे।

'रागी' जी उच्चकोटि के गायक होने के साथ–साथ भगवान के भक्त, स्वेच्छाचारी एवं स्वभिमानी भी थे। गुरु शिक्षा के अनुसार मन चाहता तो गायन करते थे अन्यथा किसी के बार बार आग्रह करने पर भी नहीं गाते थे। जवाब दे देते कि "हम आप लोगों के बंधे हुए नहीं हैं। आप अपना शौक़ कहीं

और जाकर पूरा कर लें, हम आपकी इच्छाओं के गुलाम नहीं हैं। यह विद्या ऐसी नहीं जिसका अनुचित प्रयोग किया जाय" ! परन्तु श्रोताओं से पीछा छुड़ाना सरल नहीं था। उनको पंडित जी को गवाने की एक आसान तरकीब याद हो गई थी। वह यह कि थोड़ी दूर के फ़ासले पर दो एक अन्य सङ्गीतज्ञों को बैठाकर उनके द्वारा रागालाप आरम्भ करा दिया जाता था। आवाज़ कानों में पड़ते ही 'रागी' जी अपने स्वर को ऊँचा उठाकर स्वयं ही गाना आरम्भ कर दिया करते थे। इस प्रकार श्रोता गणों को अपने उद्देश्य-पूर्ति में सफलता मिल जाती थी।

आपका ध्रुपद गायन पंजाब भर में प्रसिद्ध था। देश के गण्यमान्य संगीताचार्य श्री बाला गुरु, पं० विष्णु दिगम्बर तथा श्री भास्करराव आदि आपकी स्वरमाधुरी पर मुग्ध थे। अपने पंजाब के भ्रमण काल में श्री विष्णु दिगम्बर जी ने जब प्रथम बार 'रागी' जी को सुना तो बहुत ही प्रभावित हुए तथा उनके कंठ माधुर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"वास्तव में श्री 'रागी' जी पंजाब के ही नहीं, बल्कि देश के महान् सङ्गीतज्ञ हैं"।

वैसे तो पंडित जी के जीवन की अनेक घटनाएं हैं, जिनके द्वारा वे इतने लोकप्रिय हुए, परन्तु यहाँ संक्षेप में आपके जीवन की कुछ मनोरंजक घटनाएं लेखनीबद्ध की जा रही हैं जिनके द्वारा उनकी उच्चतम सङ्गीत साधना, सतत्व, ईश्वर भक्ति तथा आत्म-गौरव का आभास होगा:—

एक बार 'रागी' जी अपने गुरु के साथ श्रीनगर (काश्मीर) पधारे। गुरु आज्ञा से महाराजा प्रतापसिंह के महलों के समीप ही मनोविनोदार्थ, आपने 'शिवताण्डव स्तोत्र संगीत' तत्कालीन राग के अनुसार गाना आरम्भ कर दिया। उस समय महाराज अपने महलों में राग सभा का आनन्द ले रहे थे। 'रागी' जी की स्वरलहरी जैसे ही उस राग सभा की प्रधान गायिका के कानों में पहुँची वैसी ही वह महल से बाहर 'रागी' जी के पास दौड़ी चली आई; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार चुम्बक के पास लोहा स्वयं खिचकर चला आता है। गायिका के इस प्रकार अचानक राग सभा छोड़ने से हलचल मच गई। राजाज्ञा से तुरंत गायिका का पीछा किया गया तो गायिका को 'रागी' जी से विनम्र प्रार्थना करते हुए पाया। सूचना पाते ही महाराज ने तुरंत इन लोगों को आदर के साथ राजमहलों में बुलालिया। फिर महाराज के अनुरोध पर आपने अपनी मनमोहक संगीत धारा प्रवाहित की। सब लोग तृप्त होगये और उचित सम्मान तथा स्वागत के साथ आपको विदा किया गया।

सं० १९६० वि० में, होशियारपुर से ३० मील दूर स्थित चिन्तपूर्णी देवी के पर्वत शिखर भगवती के मन्दिर में, जगदम्बा के चरणों में नत मस्तक होकर आपने मेघराग का गायन किया। कहा जाता है–कड़ी धूप का वातावरण होते हुए भी वहाँ उसी समय जलवृष्टि होगई। जलंधर के देवी तालाब पर स्व० पं० हरिबल्लभ के सहयोग से संगीतोत्सव का श्रीगणेश आपके ही द्वारा हुआ था। वहाँ पर आजकल भी यही संगीतोत्सव अखिल भारतीय सङ्गीत सम्मेलन के रूप में प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

सन् १९१३ ई० की बात है, एक बार आपके पुत्र स्व० पं० मेलारामजी ने आपसे विनम्र प्रार्थना कि कि मुझे रियासत कपूरथला के चीफ़ मिनिस्टर से सिफ़ारिश करके वहाँ नौकरी दिला दीजिये। यद्यपि मिनिस्टर साहब 'रागी' जी के अनन्य भक्त एवं मित्र थे, फिर भी आपने अपने पुत्र की प्रार्थना ठुकरा दी और स्पष्ट कह दिया—"किसी की सिफ़ारिश करना अपने आत्म-गौरव को बेचना है। तुम्हें नौकरी तो मिल जायेगी, किन्तु आत्म–सम्मान वापिस नहीं आयेगा"।

लोक प्रिय और ख्याति प्राप्त होने के कारण रिकॉर्ड भरने वाली कम्पनी ने भी आपसे कई बार आग्रह किया, परन्तु आपने उनको निराश ही रक्खा। आपके विचार से स्वर और संगीत व्यापार का साधन नहीं अपितु मोक्ष प्राप्त करने का साधन था। राज दर्बारों के बुलावों पर भी बहुत कम जाते थे क्योंकि वहां उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता भंग होती थी।

अंत में सं० १९७१ वि० ज्येष्ठ प्रविष्ट २९ (जून १९१४ ई०)को ५८॥ वर्ष की आयु में दो–तीन मास के ज्वर से पीड़ित होकर आपकी मृत्यु हो गई।

जालंधर के देवी तालाब पर प्रति वर्ष वर्तमान युग में भी बहुत से लोग आपको श्रद्धांजलियां भेंट करते हैं। पंजाब के प्राचीन संगीतज्ञों में आज भी आपकी गायन शैली का अंग विद्यमान है। वहाँ के कुछ गायक इस संगीतोत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष 'रागी' जी की स्मृति में ध्रुपद–धमार की गायकी प्रस्तुत करते हैं।

★

गोकुलचन्द पुजारी

गोटा वालों के मंदिर हाथरस में पं० गोकुलचंद जी पुजारी "रामायणी" को जिन व्यक्तियों ने देखा है एवं उनसे संगीत सम्बंधी संपर्क स्थापित किया है वे उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। वास्तव में वे एक छिपे हुए संगीत रत्न थे और उन्होंने स्वयं प्रकाश में आने की कोई चेष्टा भी नहीं की।

पुजारी जी हाथरस नगर के निकटस्थ सासनी के रहने वाले थे, यही आपका जन्म स्थान था। आपके पिता पं० बालमुकन्द जी रामायणी अच्छे विद्वानों में से थे। उन्हें रामायण का यथेष्ट ज्ञान था, इसलिये गोकुलचंद जी भी रामायण की भावाभिव्यक्ति में पूर्ण रूपेण दक्ष हो गये। रामायण की किसी भी गुत्थी को सुलझाना पुजारी जी के लिये साधारण सी बात थी।

पुजारी जी ने जूनागढ़, ग्वालियर आदि रियासतों का भ्रमण करके और वहाँ अनेक वर्ष रहकर संगीत की उच्चतम शिक्षा प्राप्त की। लगभग ३० वर्ष की आयु में आपकी पत्नी का देहावसान हो गया और तब से आपने जीवन पर्यन्त ठाकुर पूजा तथा संगीतमय वातावरण में ही अपना समय व्यतीत किया।

पुजारी जी स्वयं को प्रसिद्ध मृदंगाचार्य कुदऊसिंह का शिष्य बताया करते थे और सितार में हफ़ीज खां (जूनागढ़) को अपना उस्ताद कहते थे। आपके अन्दर नवीन साजों का आविष्कार करके उन्हें स्वयं निर्माण करने की

विलक्षण प्रतिभा थी, जिसके फलस्वरूप आपने एक नवीन प्रकार का तम्बूरा, स्वरमंडल, तूरबीन नवरत्न, (एक तार वाद्य जो नौ प्रकार से बजता था) लोह तरंग, नसतरंग, काँचतरंग, सकोरातरंग और विचित्र सारंगी आदि वाद्य यंत्र तैयार किये। स्वर और लय की बारीक से बारीक गुत्थी सुलझाने में आप समर्थ थे। तालों की दुगुन, तिगुन, ड्योढ़, क्वाड़, चौगुन और छैगुन लय तक में सफलता पूर्वक कार्य करते हुए अपने राग के निर्धारित स्वरों से अलग नहीं होते थे।

पुजारी जी के अन्दर एक सबसे विभिन्न विशेषता यह थी कि वे किसी चीज़ को सम से आरम्भ करके अपने हाथ और पैरों से चार विविध तालों के ठेके देते हुए लय पर क़ायम रहते थे। आपके इस विलक्षण कार्य से बहुत से संगीत प्रेमी चकित रह जाते थे। आपकी प्रतिभा–कीर्ति सुनकर बाहर से आये हुए संगीतज्ञ अथवा नृत्यकार मंदिर में आपके पास अवश्य आते। आपका व्यवहार यद्यपि सरल और दुलारपूर्ण था, किन्तु अपने विद्यार्थियों की भूलों पर एवं ग़लत स्वर लग जाने पर फ़ौरन ही स्वर मंडल के उस डंडे से ख़बर लिया करते थे जो कि ठोस लोहे का था। विद्यार्थियों से प्रायः आप कहा करते थे कि बेटा! बारह स्वरों को जितना घोट लोगे आगे चलकर उतनी ही सरलता से रागों को ग्रहण कर सकोगे।

संगीत के विद्वान होने के साथ ही आपके अन्दर कुछ और कलाएं भी पाई जाती थीं। ठाकुर जी की सेवा में फूलों का बँगला और मोतियों का श्रंगार ऐसा कलात्मक किया करते थे कि दर्शक गण वाह–वाह कर उठते। इसके अतिरिक्त आप पाक शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

तान सेनी घराने की डागुर वाणी के ध्रुपद आप प्रायः सुनाया करते थे। आपके प्रिय रागों में ईमनकल्याण, बिलावल, भैरव, धनाश्री, तोड़ी और देश के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ७५ वर्ष की आयु में संवत् २००० विक्रमी के लगभग हाथरस में ही आपका देहावसान हो गया।

आपके प्रमुख शिष्यों में पं० रामस्वरूप वैद्य, बनवारीलाल भारतेन्दु तथा पं० रामसरन पुजारी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ ई० में देवगिरी (दक्षिण) पर चढ़ाई की थी, उस समय वहां रामदेव यादव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रम में गोपाल नायक दरबारी गायक रहता था। गोपाल नायक और अमीर खुसरो की सङ्गीत प्रतियोगिता भी हुई। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार स्वीकार करली। किन्तु अमीर खुसरो हृदय से इसकी विद्वता का लोहा मानता था। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप में पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक के विषय में एक किंवदन्ती अब तक चली आ रही है कि, जब कभी यह दिल्ली से बाहर जाते थे, तब अपनी गाड़ी के बैलों के गले में समयानुसार, रागवाचक ध्वनि पैदा करने वाले घण्टे बाँध दिया करते थे। चतुर कल्लिनाथ ने भी 'रत्नाकर' ग्रन्थ के तालाध्याय की टीका में ताल व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक के नाम का उल्लेख किया है, इससे प्रमाणित होता है कि उस समय के सङ्गीत विद्वानों में गोपाल नायक का काफी सम्मान था। यथाः—

कुड्क्कुतालस्त गोपालनायकेन ।
राग कदंबै रेवगुप्तवाद् प्रयुक्त ।।

इतिहास के संकेतानुसार गोपाल नायक सन् १२९४ और १२९५ ई० के बीच दिल्ली पहुंचे। उस समय के उपलब्ध संस्कृत ग्रंथों में ध्रुपद का उल्लेख नहीं मिलता, इससे सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ध्रुपद नहीं गाते थे, (ध्रुपद गायक एक दूसरे गोपाल लाल सोलहवीं शताब्दी में, बैजूबावरा तथा तानसेन के समकालीन हुए हैं) गोपाल नायक के समय में अर्थात् १३ वीं शताब्दी में प्रबन्ध प्रचलित थे जो संस्कृत, तमिल, तैलगू आदि भाषाओं में थे। नायक गोपाल छन्द-प्रबन्ध गान में अद्वितीय थे।

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरी के पश्चात् आपके जीवन का शेष भाग दिल्ली में ही व्यतीत हुआ और वहीं इनकी मृत्यु भी होगई।

★

गोपाल लाल

यह विलक्षरग गायक तानसेन और बैजू का समकालीन हुआ है। यह बहुत उच्चकोटि का गायक था। इसकी रची हुई अनेक ध्रुपदों में "सुनो मियाँ तानसेन ...." तथा सुनो "बैजू बावरे कहत गोपाल लाल" ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं, इनसे सिद्ध होता है कि यह अकबर कालीन (सोलहवीं शताब्दी का गोपाल लाल, उस गोपाल नायक से भिन्न है जो कि तेरहवीं सदी में अमीर खुसरो के समकालीन हुआ था।

कहा जाता है कि इसकी माता शिशु अवस्था में ही छोड़कर स्वर्गस्थ होगई थीं, तब बैजू बावरे तथा स्वामी हरिदास द्वारा इसका पोषरग तथा संगीत शिक्षा सम्पन्न हुई। गोपाल लाल का विवाह एक चित्रकार की कन्या प्रभा के साथ होगया। कुछ समय बाद इनसे एक लड़की पैदा हुई और उसका नाम "मीरां" रक्खा गया।

गुरू कृपा से गोपाल के संगीत में जब विशेष आकर्षरग पैदा होने लगा तो वह गुरू से आज्ञा लिये बिना दिल्ली और फिर काश्मीर चला गया। वहां पर गोपाल का संगीत जब तत्कालीन महाराजा काश्मीर ने सुना तो वे बड़े आर्कषित हुए और गोपाल से पूछा कि तुमको संगीत की शिक्षा किससे प्राप्त हुई ? गोपाल ने अपने गुरू बैजू व स्वामी हरिदास का नाम छुपाते हुए बारम्बार यही कहा कि मेरा कोई गुरू नहीं है, मेरे पास जो कला है वह ईश्वर प्रदत्त है ! महाराज को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, वे कहने लगे कि तुम्हारे गायन की शैली, तानों का प्रवाह आदि विशेषताएं साबित करती हैं कि तुम्हारा कोई गुरू अवश्य ही होगा। इस पर भी गोपाल लाल ने नकारात्मक उत्तर दिया तो महाराज ने कह दिया—अच्छा, यदि कभी तुम्हारे गुरू का होना प्रमाणित होगया तो तुम अपराधी घोषित कर दिये जाओगे और उसके परिरगाम के लिये तुम्हें तैयार रहना होगा।

इधर गोपाल के गुरू बैजू को जब यह बात मालुम हुई कि गोपाल काश्मीर में महाराज के दरबारी संगीतज्ञों में सम्मिलित होगया है तो वह उससे मिलने के लिये तथा प्रभा और मीरां को देखने की लालसा लेकर काश्मीर की ओर चल दिये।

भयंकर जंगल और विकट पहाड़ियों के कण्टकाकीर्ण मार्ग को तय करते हुए बैजू बावरा जब श्रीनगर पहुँचे और पूछते-पूछते गोपाल लाल के निवास स्थान पर गये तो उनकी दीनावस्था और फटे हुए वस्त्र देखकर द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया। बैजू निराश होकर लौट आये और एक बगीचे में बैठकर गाना गाने लगे; वहां पर तत्काल ही श्रोताओं की भीड़ इकट्ठी होगई। श्रीनगर में जगह-जगह इस विचित्र गायक की चर्चा होने लगी, महाराज के कानों तक भी यह खबर पहुंची कि एक फटे हाल और बावला सा गवैया यहाँ पर घूम रहा है, उसके संगीत में ऐसा आकर्षण है कि जो भी उसका गाना सुनता है वही स्तब्ध रह जाता है।

महाराज ने एक आम जल्सा करके उस विचित्र गायक को निमन्त्रित किया। गोपाल को जब यह समाचार मालुम हुआ तो वह समझ गया कि अवश्य ही बैजू यहां आगया। गोपाल ने इस भय से कि कहीं प्रतियोगिता का प्रश्न पैदा होगया तो बड़ी मुसीबत होगी, इस अवसर को टालना चाहा किन्तु राजाज्ञा के सामने उसकी एक न चली। निदान संगीत सभा इकट्ठी हुई। बैजू को गोपाल की यह कृतघ्नता मालुम होगई थी कि उसने यहां पर यह प्रसिद्ध कर रक्खा है मेरा कोई गुरू नहीं है।

बैजू का गायन आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम उसने गोपाल को लक्ष्य करके अपना स्वरचित पद "काहे को गर्व कीन्हों गुणी जो कहायो रे" भीमपलासी में आरम्भ किया तो चारों ओर से वाह-वाह की आवाजें आने लगीं। वह राग इतना प्रभावशाली और मार्मिक था कि उपस्थित श्रोताओं की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। गोपाल भी अपने को न सम्हाल सका, उसकी सोई हुई आत्मा जाग उठी। जैसे ही ध्रुपद का अन्तिम चरण—"कहत बैजू बावरे सुनियो गोपाल लाल, गुरु को बिसार तैं कहा फल पायो रे?" गाकर बैजू ने अपना संगीत समाप्त किया, उसी समय गोपाल लाल धड़ाम से उसके चरणों में गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। बैजू ने अपने शिष्य को हृदय से लगा लिया। गोपाल को उस समय इतनी आत्म ग्लानि हुई कि उसके हृदय की गति बन्द होगई और वहीं पर उसकी मृत्यु होगई।

गोपाल की अन्त्येष्टि हिन्दू धर्मानुसार सिन्धु नदी के तट पर करदी गई। इन दिनों गोपाल की स्त्री प्रभा अपनी पुत्री मीरां के साथ चन्देरी अपनी बहिन के यहां गई हुई थीं, उन्हें जब यह दुखद समाचार मालूम हुआ तो रोती बिलखती

वे श्रीनगर आईं। बैजू ने उन्हें सान्त्वना देकर ढाढस बँधाया और शास्त्र-विधि के अनुसार गोपाल की दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये उसकी प्रतिमा का अन्तिम संस्कार करने की इच्छा व्यक्त की तो प्रभा ने कहा—दादा ! मूर्ति का नहीं, मैं तो अपने पतिदेव की अस्थियों का पूजन करना चाहती हूँ। तब बैजू ने कहा, अच्छा ! यही हो जायगा। मैं मीरां बेटी को एक राग सिखाऊँगा जिसे गाने से जल में डूबे हुए गोपाल के अस्थिपंजर पानी के ऊपर तैर आवेंगे, तब तुम उनका पूजन करके विधि पूर्वक संस्कार करना।

यह सम्वाद बिजली की तरह सारे शहर में फैल गया। निश्चित तिथि को सिन्धु नदी के किनारे दर्शकों की भीड़ लग गई। संगीत का यह अद्भुत चमत्कार देखने के लिये सभी व्यग्र थे। ठीक समय पर नदी के किनारे बैठ कर "मीरां" ने बैजू के सिखाये हुए उस मल्हार राग की अवतारणा की तो गोपाल की अस्थियां धीरे-धीरे जल के ऊपर आकर इकट्ठी होगईं। संगीत कला का यह अद्भुत चमत्कार देखकर सब आश्चर्य चकित रह गये। तभी से वह राग "मीरां की मल्हार" नाम से विख्यात हुआ।

★

गोपेश्वर बनर्जी
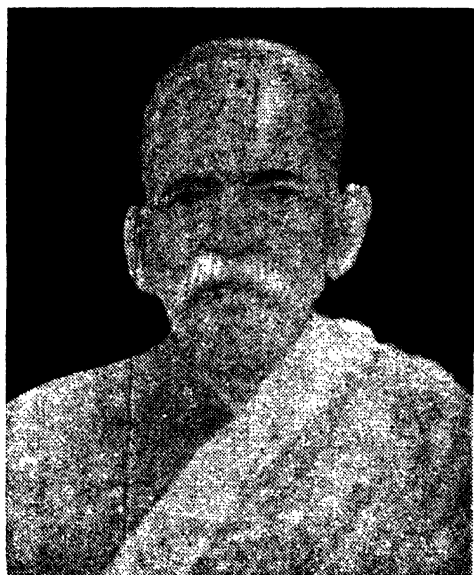
आपका जन्म विष्णुपुर में सन् १८७८ ई० में हुआ। गोपेश्वर बनर्जी का नाम बंगाल के प्रसिद्ध ध्रुपद व टप्पा गायकों में लिया जाता है। आपके पिता का नाम अनन्तलाल था और उन्हीं से आपने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। आपको संगीत शास्त्र की जानकारी बहुत उच्च कोटि की थी। गुरुप्रसाद मिश्र, शिवनारायण और गोपाल चक्रवर्ती से भी आपने तालीम पाई। आपने संगीत विषय पर कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं। इन पुस्तकों में चीज़ों की स्वरलिपियां भी दी गई हैं। आपने बंगाल के मुख्य संगीत विद्यालय में दीर्घ समय तक प्रधान संगीत शिक्षक का कार्य किया है। प्रत्यक्ष में आपका गायन विशेष श्रुतिमधुर नहीं, किन्तु संगीत शास्त्र (Theory) तथा संगीत के शिक्षण कार्य में आपको विशेष प्रवीण कहना ही पड़ेगा। आपके पुत्र श्री रमेशचन्द्र बनर्जी भी अच्छे गायकों की श्रेणी में आने का प्रयास कर रहे हैं।

गौहर जान

प्रसिद्ध गायिका गौहरजान ख्याल, होली आदि उच्चकोटि के गायन में तो कुशल थीं ही, किन्तु इन्हें विशेष सफलता ठुमरी–गायन में प्राप्त हुई। कहा जाता है कि ठुमरी गाने में इनकी समानता करने वाली दूसरी गायिका अभी तक नहीं हुई। गौहरजान की आवाज़ मधुर, भरी हुई, सुरीली और दमदार थी। गायन के साथ–साथ अभिनय कला में भी आप दक्ष थीं।

इनका जन्म सन् १८७० ई० के लगभग हुआ था, बाल्यकाल में ही एक बार भयंकर बीमारी के समय इनके बचने की कोई आशा नहीं रही थी, किन्तु भगवान ने इनकी रक्षा करली, क्योंकि इनके मधुर संगीत श्रवण का सुयोग जनता को प्राप्त होना था।

योग्य अवस्था होजाने पर गौहर ने रामपुर के उस्ताद नजीरखां तथा तत्कालीन प्रसिद्ध प्यारे साहब जैसे उत्तम गायकों द्वारा संगीत की तालीम प्राप्त की। अपने रियाज़ और लगन के बल पर दिनों दिन गौहर को संगीत में सफलता प्राप्त होती गई।

तरुणावस्था में कुछ समय तक आप दरभंगा दरबार की गायिका के रूप में रहीं, तत्पश्चात् कलकत्ता रहने लगीं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, पूना आदि नगरों में जब आपकी गायन कला के सफल प्रदर्शन हुए तो आपका नाम देश भर में चमक उठा। इनके गाने के रेकर्ड भी बहुत से तैयार हुए, जिन्हें सुनकर संगीत प्रेमी आत्म विभोर होजाते थे। गौहरजान जिस समय किसी बैठक में भावाभिनय करती हुई ठुमरी सुनाती थीं तो दर्शक मुग्ध होकर चित्रवत् रह जाते।

एक बार लखनऊ में एक विशाल संगीत समारोह में बड़े–बड़े गुणी–उस्तादों के बीच जब गौहरजान ने अपनी कला का प्रदर्शन किया तो सभी कलाकारों ने इनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की और इनका भारतीय संगीत की एक उच्चकोटि की गायिका के रूप में सम्मान किया गया।

आपका स्वभाव सरल था, अपनी कला प्रतिभा द्वारा गौहरजान ने ख्याति के साथ–साथ यथेष्ट सम्पत्ति भी प्राप्त की। प्रौढ़ावस्था में आपने मैसूर दरबार की सेवा स्वीकार करली और वहीं पर सन् १९३० में इनका देहावसान होगया।

★

ग्वारिया बाबा

ब्रज के प्रसिद्ध सन्त श्री ब्रजराज कुमार सखा "ग्वारिया बाबा" का जन्म बुन्देलखंड के एक गांव में सम्वत १६०० वि० के लगभग हुआ था। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर बाल्यावस्था से ही आप ईश्वरोपासना में निमग्न रहते थे। आपके पिता जी ध्रुपद गायन में निपुण थे अतः ग्वारिया बाबा में भी बचपन से ही सङ्गीतकला के अंकुर दिखाई देने लगे।

कहा जाता है कि पुत्र जन्म के अवसर पर एक बार पत्नी की प्रसव पीड़ा देखकर आपको गृहस्थ आश्रम से वैराग्य हो गया अतः उसी रात्रि को घर छोड़कर चल दिये और दतिया के एक तालाब में रात्रि भर नाभि तक जल में खड़े होकर षड़ज साधना करते हुए प्रभु का ध्यान करते रहे। उसी तालाब में एक मगर भी रहता था, प्रातःकाल होने पर पुर-वासियों ने देखा कि वही मगर बाबा के ओर-पास चक्कर लगा रहा था, किन्तु उन्हें कुछ पता नहीं था। यह सम्वाद जब राजा भवानीसिंह को मालूम हुआ तो तत्काल ही घटना स्थल पर पहुँच कर जबरदस्ती बाबा को तालाब से बाहर निकाला और अपने महल में ले गये। राजा साहेव सङ्गीतकला के बड़े प्रेमी थे, कुदऊसिंह आदि बड़े-बड़े कलाकार उन दिनों राजा साहब के यहाँ रहते थे अतः राजा साहव की ग्वारिया बाबा पर विशेष श्रद्धा हो गई। प्रभात तथा रात्रि के समय तीन तीन घंटा नित्य षडज साधना में बाबा व्यतीत करते थे। आपको संगीत का गणितशास्त्र प्राप्त करने की विशेष अभिलाषा रहती थी, उन्हीं दिनों आपका परिचय एक दंडी स्वामी से हुआ जो वहीं पर एक पहाड़ी-गुफा में संगीत साधना किया करते थे। डंडी स्वामी सङ्गीत गणित शास्त्र के विद्वान थे अतः ग्वारिया बाबा ने उन्हीं के साथ ३ वर्ष तक गुफा में रह कर अध्ययन किया। अंत में गुरु

दक्षिणा के रूप में दंडी स्वामी को राजा साहेब के साथ व्रजयात्रा कराने वृन्दावन लाये। व्रजयात्रा करने के पश्चात गुरु जी के उपदेश से आप वृन्दावन में ही रह कर सङ्गीत प्रचार करने लगे। आपके सिखाये हुए बहुत से सङ्गीतज्ञ व्रज में अब भी मौजूद हैं।

ग्वारिया बाबा का रहन–सहन बड़ा विलक्षण था। कभी आप शाही ठाट-बाट में घूमते तो कभी दीन–मलीन वेष में रहते। रात्रि को वृन्दावन के जंगलों में घूमा करते। एक बार आपको रात्रि में कुछ चोर मिले, चोरों ने कहा:— "ग्वारिया चोरी करिबे चलैगो" ? बाबा ने स्वीकृति देदी और चोरों के साथ हो लिये। एक घर में जाकर चोर तो सामान चुराने और बाँधने में लगे और आप वहां पर खाने पीने की चीजें तलाश करने लगे। एक खुंटी पर ढोलक टंगी हुई थी, उसे आप बजाने लगे फलस्वरूप मकान वाले जाग गये चोरों में भगदड़ मच गई। इधर–उधर सामान छोड़कर चोर भाग गये। ग्वारिया बाबा पकड़े गये। गुड़ की डेली हाथ में लगी हुई थी, घरवालों ने इन्हें खूब पीटा, किन्तु जब प्रकाश में मुँह देखा तो सब लोग पहिचान गये और बाबा से क्षमा मांगने लगे बाबा हंसते हुए कहने लगे—"यारन के संग चोरी करिबे आयौ हो सो गुर खायौ और मार खाई"। आप सदा व्रजभाषा ही बोलते थे।

एक बार पतंग उड़ाते हुए एक लड़का मकान की छत्त से गिर गया। जब ग्वारिया बाबा को यह दुर्घटना मालूम हुई तो अपने मुख को काला पोत कर, एक पतंग–धागे में बाँधी और कई दिन तक नगर में घूम–घूम कर कहते रहे "देखो पतंग उड़ावतौ भयौ छोरा मरिगौ और मेरौ म्हौं कारौ भयौ, ऊपर कूं देखिबौ और नीचे कूं ध्यान न रखिबौ, ऐसौ ही सर्वनाश करावै है।" सत्पुरुषों और महात्माओं की ऐसी ऐसी विचित्र बातों से गम्भीर शिक्षा प्राप्त होती है।

आपकी पोशाक वजन में बड़ी भारी होती थी, उसे पहन कर खूब तेज चलते थे। आपने कितने ही बीमारों को अपने संगीत से अच्छा कर दिया। अपने जीवन में कभी भी फोटो नहीं उतरने दिया। इस लेख के साथ जो फोटो दिया जा रहा है वह अन्त समय का ही है।

शरीर छोड़ने के १५–२० दिन पहिले ही उन्होंने एक पर्चा बँटवा कर कह दिया था "ग्वारिया किसी सम्प्रदाय का नहीं है, मुझे कोई जलावे नहीं,

पाँव में रस्सा बांध कर कुत्ते की तरह वृन्दावन में घसीटते हुए यमुना में डाल दें"।

मृत्यु के बाद उनका शरीर वृन्दावन के प्रमुख मन्दिरों के सामने होकर निकाला गया। उस नित्य सखा की देह का मन्दिरों से माला, चन्दन, पुष्प आदि द्वारा सत्कार हुआ और फिर वह शरीर वंशीवट के समीप श्री यमुना जी की गोद में आषाढ़ शुक्ला १४ सं० १६६५ वि० को विसर्जित कर दिया गया।

आपके शिष्यों में श्री रामचन्द्र मूँगा जी का नाम उल्लेखनीय है जोकि मथुरा जी में "श्री व्रजकला परिषद" द्वारा सङ्गीत सेवा कर रहे हैं।

★

चंदनजी चौबे

संगीत सुधाकर पं० चन्दन जी चौबे ध्रुपद और धमार के प्रसिद्ध गायक हो गये हैं। आपका जन्म श्रावण शुक्ला१० सम्वत १६२६ वि० में हुआ था। इनके पिता श्री० अम्बा जी चतुर्वेदी मथुरा के प्रसिद्ध ध्रुपदिया थे। मथुरा के श्री दाऊ जी मन्दिर में वे नियमित रूप से नित्यप्रति कीर्तन गान किया करते थे। चन्दन जी के पितामह श्री बौली बाबा भी बृज के प्रसिद्ध संगीतज्ञ हो गये हैं।

आपने १८ वर्ष की अवस्था से संगीत सीखना प्रारम्भ किया था। अपने बुजुर्गों से संगीत सीखने के अतिरिक्त चन्दन जी ने भारत के प्रसिद्ध संगीत मर्मज्ञ श्री गोपालराव जी के पास भी कुछ समय तक संगीताभ्यास किया। इसी प्रकार उस्ताद फैयाज खाँ के चाचा उस्ताद गुलाम अब्बास से भी इन्होंने कुछ समय तक तालीम पाई।

सन् १६२४ में लखनऊ की ऑल इन्डिया म्यूजिक कान्फ्रेन्स में आपको 'संगीत सुधाकर' उपाधि का सम्मान प्राप्त हुआ और उसके साथ ही गवर्नर ने गोल्ड-मैडिल भी आपको भेंट किया। इसी सम्मेलन में चतुर पंडित श्री भातखण्डे जी ने कहा था "चन्दन जी की ध्रुपद गायन शैली उनकी अपनी विशिष्ट और निराली है। वे ध्रुपद गायन में मियां अलाबन्दे खाँ से बढ़कर हैं। मैंने ऐसी सुन्दर शैली में ध्रुपद का गायन पहले कभी नहीं सुना।"

चंदन जी, बल्लभ सम्प्रदाय के कट्टर वैष्णव थे। बल्लभ कुल के आचार्य गोस्वामी श्री० जीवनलाल जी महाराज, गोस्वामी बालकृष्ण जी महाराज, गोपाललाल जी महाराज और श्री घनश्याम लाल जी महाराज जो संगीत शास्त्र के परम मर्मज्ञ थे, इनके सम्पर्क में रहकर चंदनजी ने संगीत के तीनों अङ्गों (गीत, वाद्य और नृत्य) का सम्यक ज्ञान प्राप्त किया। अष्ट छाप के महात्माओं की वाणी जिस मधुरता के साथ चंदन जी अपने संगीत से व्यक्त करते थे, वह भुलाई नहीं जा सकती। ध्रुपद की शब्दावली में छिपे हुए साहित्य और अलंकार को वे अपने संगीत प्रयोग द्वारा साकार करके दिखा देते थे। मृदङ्ग के अतिरिक्त तबला पर भी वे अपना ध्रुपद गान इस खूबी से व्यक्त करते थे कि श्रोताओं को मृदंग का अभाव तनिक भी नहीं अखरता था। उनके ध्रुपद और धमार सुनने के लिये दूर-दूर के कला-प्रेमी आते थे।

वृद्धावस्था में भी चंदनजी अपने तान-आलाप और दमदार आवाज़ से श्रोताओं को आकर्षित कर लेते थे और अपने गले से मीड़ द्वारा अपने गायन में एक अपूर्व चमत्कार पैदा करते थे। माघ सम्वत २००१ वि० को संगीत का यह वृद्ध पुजारी स्वर्गवासी होगया। आपके पुत्र श्री बालजी चौबे मथुरा में ही रहते हैं।

★

चरजू

अनेक व्यक्तियों ने रामपुर घराने के कुछ गायकों को चरजू की मल्हार गाते हुए सुना होगा। श्री भातखण्डे लिखित क्रमिक पुस्तक मालिका भाग ६ में भी इसका उल्लेख मिलता है। मल्हार का यह भेद उक्त विद्वान द्वारा ही प्रचलित किया हुआ मालूम होता है। इसके अतिरिक्त आपने और भी रागों का निर्माण किया तथा उन्हें प्रचलित किया। आपको भी नायक की पदवी प्राप्त थी जिससे विदित होता है कि चरजू नायक अपने समय के प्रकांड विद्वान तथा संगीत के उच्चतम कलाकार थे।

विद्वान् चरजू को तोमर वंशज ग्वालियर नरेश महाराजा मानसिंह का समकालीन तथा दरबारी गायक बताया जाता है। कुछ लोगों का ऐसा भी विश्वास है कि रामपुर घराने से भी आपका सम्बन्ध रहा होगा। आप मुस्लिम कुल में पैदा हुए थे। इसके अतिरिक्त आपके निवास स्थान एवं जन्म तिथि आदि के विषय में ठीक-ठीक पता नहीं लगता।

★

चाँद खाँ सूरज खां

यह दोनों कलाकार सहोदर भाई थे और हिन्दू कुल में पैदा हुए थे, किन्तु बाद में गान विद्या सीखने के उद्देश्य से इन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इनका निवास स्थान ख़ैराबाद नामक एक ग्राम बताया जाता है, यह गाँव पंजाब प्रान्त में था। इन दोनों के प्रारम्भिक नाम, जब कि ये हिन्दू थे सुधाकर और दिवाकर थे, लेकिन मुसलमान होने के बाद यह चाँद खाँ और सूरज खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इतिहासकारों के मतानुसार इन दोनों भाइयों का समय १६ वीं शताब्दी निश्चित होता है। ये अपने समय के बहुत प्रतिभावान तथा उच्चकोटि के गायक हुए हैं। इन लोगों की प्रबल उत्कंठा थी कि वर्तमान प्रचलित गायन प्रणाली में संशोधन करके एक नवीन पद्धति का प्रचार किया जाय। इस दिशा में इन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न किये, किन्तु अपने लक्ष्य को पूरा करने में इनको विशेष सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी इनके परिश्रम का प्रमाण हमारे सामने मौजूद है। गायन प्रणाली में इनके द्वारा किया हुआ एक नवीन संशोधन "ख़ैराबादी भेद" के नाम से प्रचार में आ चुका है।

★

चुन्ना बाई

ग्वालियर के संगीत प्रेमी महाराजा जयाजीराव के दर्बार में उस समय के प्रसिद्ध कलाकार हद्दू खाँ, नत्थेखाँ, अमीर खाँ, तानरस खाँ, कुदऊसिंह, सुखदेवसिंह, बन्देअली खाँ आदि पुरुष संगीतज्ञों के अतिरिक्त स्त्री कलाकार चुन्नाबाई और चंद्रभागा गायिका के रूप में थीं। चुन्ना बाई का स्वर ऐसा था मानो बीन बज रही हो। चुन्ना बाई की शादी उक्त दर्बार के प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खाँ के साथ नाटकीय ढंग से हुई जिसका वर्णन पाठकों के मनोरंजनार्थ यहाँ दिया जाता है।

दर्बार में एक दिन उस्ताद बन्देअली खाँ का वीणा वादन हुआ, उस दिन का वीणा वादन सुनकर महाराज जयाजीराव इतने प्रभावित हुए जैसे उनके ऊपर कोई जादू हो गया हो और उठ कर तत्क्षण बोले—बन्दे अली ! आज तुमने कमाल कर दिया, मैं बहुत ही खुश हूँ जो तुमको माँगना है मांग लो ! आज मैं इतना खुश हूं कि अगर तुम मेरा राज भी मांगोगे तो उसे भी दे डालूंगा। दर्बार के सभी व्यक्ति आश्चर्य चकित हो गये। बन्दे अली बोले, महाराज आपका राज लेकर मैं क्या करूँगा, लेकिन जो चीज़ मैं मांगूंगा वह आप दे नहीं सकेंगे। महाराजा बोले "क्या बात करते हो, जो माँगोगे वही मिलेगा।" यह देखकर अन्य दर्बारी संगीतज्ञ आपस में कहने लगे कि आज ये झक्की तबियत का बन्दे अली न मालूम क्या मांगेगा ? महाराज ने फिर कहा, बन्देअली मेरी ज़बान बदलने वाली नहीं है मांगो ! तो बन्देअली ने कहा, महाराज मुझे तो चुन्ना को दे दीजिये। बन्देअली की विचित्र मांग से सब लोग चकित रह गये और सोचने लगे कि इस झक्की ने क्या बेवकूफी से भरी हुई मांग की है। अबतो इसे दर्बार से इनाम के बजाय कुछ दण्ड ही मिलेगा क्योंकि चुन्ना बाई महाराज की प्रिय दासी गायिका है। किन्तु महाराज ने अपना वचन निभाते हुए फ़ौरन ही कह दिया कि अच्छा खाँ साहब बाई चुन्ना आज से आपकी हुई, साथ ही वज़ीर साहब को भी यह आज्ञा देदी कि दर्बार के ख़र्च से चुन्ना बाई का निकाह बाक़ाइदा करा दिया जाय। सब लोग कह उठे, महाराज जयाजीराव की जय !

इस प्रकार इस प्रसिद्ध गायिका को एक उत्तम वीणावादक कलाकार प्राप्त हो गया। शादी की पहली रात को छुपकर देखने के लिये कुछ मन चले

मक्कारों ने झरोकों में से झांका तो क्या देखा कि खाना-पीना समाप्त होते ही बन्दे अली ने अपनी वीणा संभाली और चुन्ना बाई ने तानपूरा, दोनों की संगीत-लहरी आरम्भ हुई और सवेरा होगया। देखने वाले शरमिन्दा होकर पश्चाताप करने लगे।

चुन्ना बाई प्रत्येक दृष्टि से बन्दे अली खाँ के लिये योग्य साबित हुई। किसी कलाकार को कलाकार पत्नी मिल जाये तो वह अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता है। चुन्नाबाई ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक राज्य सुख और धन वैभव को लात मार कर इस कलाकार की पत्नी बनना स्वीकार किया और फिर गृहस्थ कार्य के साथ-साथ अपना संगीताभ्यास भी जारी रक्खा। अन्त में बन्देअली खाँ की मृत्यु के पश्चात् भी इसने अपने सुमधुर गायन द्वारा संगीत प्रेमी जनसमुदाय को आकर्षित किया।

★

छोटे मोहम्मद खां

देश प्रसिद्ध गायक मियाँ हद्दू खाँ के दो पुत्र हुए, बड़े पुत्र का नाम मोहम्मद खां और छोटे का नाम रहमत खाँ था। चूँकि खां साहब हद्दू खाँ काफी समय तक निःसन्तान रहे, इसलिये मोहम्मद खाँ के पैदा होने पर इन्हें अपार प्रसन्नता हुई। हद्दू खाँ ने इसे पैगम्बर मोहम्मद की कृपा समझा, अतः उन्हीं के नाम पर इस बालक का नामकरण संस्कार संपन्न हुआ।

हद्दू खां बाल्यकाल से ही अपने पुत्र मोहम्मद खाँ को संगीत की शिक्षा देने लगे। बालक बड़ा सुशील और प्रखर बुद्धि वाला था अतः द्रुत गति से अपने घराने की गायकी कण्ठ में उतारता चला गया। समय आने पर अपने घराने की गायकी के लगभग सभी गुण उसमें प्रकट होने लगे। मोहम्मद खां ने गायकी के प्रारम्भिक कोर्स को पूरा करने के बाद अपने पिता हद्दूखां से उस विचित्र और मुश्किल गायकी को सीनाबसीना सीखा, जिसकी शिक्षा पाना हद्दू खाँ के अन्य शिष्यों के लिए दुर्लभ था। हद्दू खाँ को मोहम्मद खां की शिक्षा तथा अभ्यास से जब पूर्ण संतोष होगया तब उन्होंने मोहम्मद खाँ को नाना साहेब के पास इन्दौर भेज दिया। नाना साहेब ने मोहम्मद खां की परीक्षा ली और इन्हें कला का अधिकारी देखकर संतुष्ट हो गये। इस समय इनका ताल अङ्ग कुछ दुर्बल था, अतः नाना साहेब ने अपने कठिन परिश्रम द्वारा, स्वयं संगत कर-करके इनकी यह कमी भी पूरी करदी। जब मोहम्मद खां ताल के विषय में भी पारंगत हो गये तो उनको भ्रमण की इच्छा हुई।

नाना साहेब की आज्ञा पाकर सबसे पहिले आप बड़ौदा पहुंचे। मोहम्मद खां बड़े लाड़-प्यार में पले थे, इसलिये इनका शरीर बड़ा बलिष्ठ गठीला और सुडौल बन गया था। बड़ौदा में आपको पहलवान समझा गया और वहां आपने एक प्रतिद्वन्दी पहलवान को पछाड़ा भी। तत्पश्चात् बड़ौदा के महाराज खंडेराव ने अपने दरबार में इनके गायन का कार्यक्रम भी रक्खा। इस समय विष्णुपन्त छत्रे तथा बालकृष्ण बुवा भी बड़ौदा में मौजूद थे। मोहम्मद खां के गाने का प्रभाव न केवल दरबार में ही अपितु सारे बड़ौदा शहर में छागया। महाराज ने काफी धनराशि इनको पुरस्कार में दी।

बड़ौदा के बाद मोहम्मद खां बम्बई पहुंचे। यहाँ भी गुणग्राही मित्रों के सहयोग से अल्पकाल में ही यह प्रसिद्ध हो गये। उस समय हद्दू खां भी

ग्वालियर में मौजूद थे। बम्बई में दुर्भाग्य से इन्हें मदिरापान का दुर्व्यसन लग गया। संगीत सभाओं में भी शराब पीकर प्रोग्राम देने लगे। एक दिन इसी दुर्व्यसन के कारण इनका गायन भरी महफ़िल में भदरंग होगया। यह खबर जब हद्दू खां को मिली तो उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ। बम्बई रहकर मोहम्मद खां ने अनेक संगीत के जलसों में भाग लिया और वहां के संगीतज्ञ एवं संगीत प्रेमियों के बीच आपको यथेष्ट यश, कीर्ति एवं धन की प्राप्ति हुई। परन्तु शराब का शौक़ उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया और एक दिन आपने इतनी पी ली कि आप सर्वदा के लिये नशे में विलीन हो गये। आपकी मृत्यु की यह हृदयविदारक घटना सन् १८७४ ई० में हुई थी।

बड़े मोहम्मद के बाद पैदा होने वाले वैसे ही महान एवं उच्चकोटि के लोकप्रिय गायक यही छोटे मोहम्मद खां हुए। ऐसे नौजवान और महान गायक के असामयिक निधन से संगीत संसार को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। इनके पिता हद्दू खां को इस दुःखद समाचार से भयानक आघात पहुँचा और इस घटना के पश्चात् वे भी थोड़े ही दिन जीवित रहकर इस संसार से विदा होगये। छोटे मोहम्मद खां के प्रमुख शिष्यों में वासुदेव बुवा जोशी और छत्रे हुए।

★

जितेन्द्रनाथ भट्टाचार्य

आपके पिता पं०बामाचरण जी, वेदपाठी ब्राह्मण के साथ ही साथ एक कुशल वादक भी थे । वाद्य निर्माण कला में भी वे दक्ष थे । उनका बनाया हुआ एक लकड़ी का सितार आप के सुपुत्र जितेन्द्रनाथ जी के पास था, जिस पर बहुत ही कुशलता से आपने अपने उस्ताद स्वर्गीय मोहम्मद खाँ साहब का चित्र बना दिया था।

बामाचरण जी ने मयूरभंज रियासत में कई वर्ष पंडिताई की । संगीत प्रेम आप में बाल्यावस्था से ही था । सौभाग्य से आपको मोहम्मद खाँ, वारिस अली, यदुभट्ट ध्रुपदी, अहमद खाँ 'ख्याली', बसद खाँ, कासिम अली रबाबिया, घुन्नी खाँ ठुमरी गायक जैसे ख्याति प्राप्त कुशल संगीतज्ञों से सितार वादन की शिक्षा मिली ।

एक अवसर पर जब वामाचरण जी नारजोल के राजा साहब के यहाँ गए तो वहाँ आपको दरभंगा के सुप्रसिद्ध सरोदवादक मुराद अली साहब से भेंट का अवसर मिला । मुराद साहब ने आपके उस्ताद मोहम्मद खाँ के सितार वादन को दोष युक्त बतलाया । जब आपने मुराद साहब को सितार की धुनें सुनाई जिन्हें आपने मोहम्मद खां से सीखा था, तो उन धुनों को सुनकर मुराद साहब ने उनको ब्राह्मण के रूप में मुसलमान बताया, क्योंकि मुराद साहब के विचार से इतना संगीत ज्ञान एक ऐसे व्यक्ति को जो व्यवसाई संगीतज्ञ हो, दुर्लभ था ।

एक बार आपका सितार वादन कुँवर नरेन्द्र मित्र के यहाँ हो रहा था, श्रोतागण तल्लीन थे कि एक श्रोता ने वादक से कोई प्रश्न कर दिया । एक दूसरे श्रोता को यह विघ्न इतना अखरा कि असंयमित होकर उसने विघ्नकारी को चाँटा रसीद कर दिया ।

राजा सर सौरीन्द्र मोहन टैगोर के आप विशेष कृपा पात्र थे । बामाचरन जी को 'सुर सिंगार' का यथेष्ट अभ्यास था ।

आपके सुपुत्र जितेन्द्र नाथ को आप से व्याकरण, काव्य शास्त्र एवम सितार की शिक्षायें मिलीं, किन्तु जितेन्द्र जी की रुचि सब विद्याओं से अधिक सितार में थी । बंगाली सितार वादकों में आपका स्थान सर्वश्रेष्ठ था, आलाप और जोड़ का आपको अद्‌भुत ज्ञान था, साथ ही तोड़ा पद्धति में भी कुशल थे ।

जितेन्द्र नाथ जी का जन्म सन् १८७७ ई० में नादिया जिला रानाघाट में हुआ । आपके पास ऐसी अभूतपूर्व प्रतिभा थी, जो सब को मुग्ध कर लेती थी जिसे आपके स्वर्गीय पिता जी ने भारत के महान संगीतज्ञों से प्राप्त किया था ।

आपकी विलम्बित पद्धति प्रशंसनीय थी । प्रतिभा देवी द्वारा संस्थापित "संगीत महाविद्यालय" में आप कुछ समय तक संगीत शिक्षक रहे ।

आप उदार हृदय व्यक्ति थे । अपने प्रदर्शनों का अधिक आर्थिक मूल्य नहीं चाहते थे इसी कारण जनता में उनकी कला की सदैव माँग रही ।

★

ज्योत्सना भोले

शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में पर्याप्त प्रसिद्धि पाने के साथ–साथ ज्योत्सना भोले को नाट्य संगीत और भाव गीतों पर भी बड़ा अच्छा अधिकार है। आकाश वाणी दिल्ली से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम में आपको अब तक दो बार गाने का सुअवसर प्राप्त हो चुका है। बम्बई आकाशवाणी केन्द्र की तो आप सबसे पुरानी गायिका हैं। आपने अनेक वर्षों तक विभिन्न उस्तादों से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त करके विज्ञ सांगीतिक समाज में जो स्थान प्राप्त किया है उसकी सराहना करनी पड़ेगी।

सन् १९१३ ई० में गोआ में आपका जन्म हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा बम्बई में सम्पन्न हुई। बाल्यकाल में पंडित सुखदेवप्रसाद कत्थक से नृत्य की शिक्षा लेकर ज्योत्सना देवी ने संगीत के क्षेत्र में पदार्पण किया। प्रारम्भ में आपने आगरा घराने के खादिम हुसेन खां तथा

फ़ैयाज़ खाँ के शिष्य बशीर खां से लगभग आठ वर्ष तक शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त की। भारतीय चल चित्र जगत के ख्याति प्राप्त संगीत निर्देशक श्री केशव राव भोले के साथ सन् १९३२ में ज्योत्सना जी का विवाह सम्पन्न हो गया।

शादी के बाद तो आप पूर्णतः संगीत की दुनियां में निमग्न होगईं। शिक्षा-क्रम भी अधिक विस्तृत हुआ। १९३४ ई० में आपने ग्वालियर घराने के उस्ताद धम्मन खां साहब से संगीत की उच्च शिक्षा ग्रहण की। लगभग सात वर्ष तक (सन् १९३९-४५ ई० तक) दिल्ली के उस्ताद इनायत खां से सीखती रहीं और बीच-बीच में स्वर्गीय वझे से भी आपको संगीत सीखने का अवसर मिलता रहा।

इस प्रकार संगीत का विस्तृत पाठ्यक्रम समाप्त करने के पश्चात् ज्योत्सना ने मराठी रंगमंचीय क्षेत्र में प्रवेश किया और अनेक नाटकों में अद्वितीय ख्याति प्राप्त की। आपका 'कुलवधू' नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ। सन् १९५१ ई० में कलकत्ते में होने वाले अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में आपको जितनी कीर्ति और लोकप्रियता प्राप्त हुई वह अवर्णनीय है। १९५३ ई० में आपने चीन जाकर भारतीय संगीत का बड़ा आकर्षक एवं प्रभावशाली प्रदर्शन किया।

कंठ माधुर्य आपको ईश्वर प्रदत्त है, निरन्तर अभ्यास द्वारा आपने उसे और भी सरस बना लिया है। द्रुतलय में भी कठिनतम तानालापों में स्वरों की स्पष्टता झलकती है, ताल पर भी पर्याप्त अधिकार है।

★

डी०वी० पलुस्कर

प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के सुपुत्र श्री दत्तात्रय का जन्म १८ मई १९२१ को कुरुन्दवाड़ में हुआ। इनसे पहले इनके ११ भाई बहिन छोटी आयु में ही अकाल काल कलवित हो चुके थे। अतः इनके जीवन के लिए उनके माता पिता विशेष आशापूर्ण न थे। लगभग ८ वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार बहुत धूमधाम से नासिक में मनाया गया। इस अवसर पर देश के कोने-कोने से पंडित जी के सैकड़ों शिष्य नासिक में इकट्ठे हुए थे। यज्ञोपवीत के बाद ही पंडित जी ने उन्हें थोड़ा बहुत संगीत सिखाना शुरू किया। किन्तु अधिक दिन तक उनके भाग्य में अपने पिता से सीखना न लिखा था। १९३१ में पिता जी की मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक वे नासिक में अपने चचेरे भाई श्री चिंतामणि पंत से संगीत सीखते रहे। पंडित जी के शिष्य इस विकट परिस्थिति में उनकी आर्थिक सहायता करते रहे। अन्त में सन् १९३५ में वे पूना गांधर्व महाविद्यालय में आ गए। वहां वे पं० विनायकराव पटवर्धन से कई वर्ष तक शास्त्रीय संगीत का अध्ययन करते रहे। गुरु ऋण से उऋण होने के लिए पटवर्धन जी ने दत्तात्रय जी को सिखाने में कोई कसर बाकी न रखी। उन दिनों रात के ९ बजे से लेकर ११-१२ बजे तक और इससे भी आगे उनकी तालीम चलती थी। रियाज करने में भी किसी प्रकार की कमी नहीं होने देते थे। पं० नारायणराव व्यास, मिराशी बुवा आदि संगीतज्ञों से भी उन्होंने लाभ उठाया। गांधर्व महाविद्यालय में उन्होंने

अध्यापन का कार्य भी अत्यन्त सफलता पूर्वक किया। विद्यालय की सर्वोच्च परीक्षा संगीत प्रवीण में उन्होंने अभिनंदनीय यश प्राप्त किया।

सन् ३५ के दिसम्बर महीने में पं० विनायकराव जी के साथ आप लाहौर आए। सारा पंजाब पं० विष्णु दिगंबर पलुस्कर को गुरु मानता था। गुरुपुत्र को पहले पहल अपने बीच में पाकर पंजाबी आनन्द विभोर हो गए। जालंधर के उल्लेखनीय मेले में जब उनका प्रथम सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ तो पंजाब के मशहूर तबला नवाज मलंगखां ने कहा—'बेटा, खुल के गावो, तुम शेर के बच्चे हो। ताल की चिंता मत करना मैं किसलिये हूं।' दत्तात्रय ने झपताल में विहाग 'सखि आज नन्दनंदन' गाकर रंग जमा दिया। १९३८ में आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र पर उनका सबसे पहला कार्यक्रम विष्णु दिगंबर जी के स्मृति दिवस के अवसर पर हुआ। धीरे धीरे उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई। तालीम के अतिरिक्त उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की भी सुन्दर झलक उनकी गायकी में थी। किसी भी घराने या गायकी से कोई भी अच्छी चीज लेकर उसका अपनी गायकी में अन्तर्भाव करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया इसलिए उनकी कला हमेशा विकासोन्मुख रही। अत्यन्त मधुर कंठस्वर, ऊंचे दर्जे की तालीम, निरंतर साधना और हर अच्छी चीज को अपनाने की वृत्ति के कारण ही उनकी गायकी इतनी लोकप्रिय हुई। प्राय: प्रत्येक कलाकार की अपनी कोई एक विशेषता होती है। कोई आलाप–बढ़त में विशेष दक्ष होता है, कोई सुरीलेपन और मिठास में। कोई दानेदार और सफाई तथा तैयारी की तानों के लिए, कोई लयकारी और बोलतानों के लिए। पलुस्कर जी की गायकी में उच्चकोटि की ख्याल गायकी के इन सभी अङ्गों का अपूर्व समन्वय था। संगीत के लिए भाव प्रकाशन के महत्व को वे भली प्रकार समझ पाये थे। शुद्ध मुद्रा और शुद्ध वाणी के नियम को वे पूरी तरह निभाते थे। स्वर या लय का मुश्किल से मुश्किल काम करते हुए भी चेहरे पर शिकन तक न आने देकर मुस्कराते हुए सम पर आना उनकी अपनी विशेषता थी। श्रोताओं की नब्जों को पहचान कर उसके अनुरूप ही अपना गाना वे प्रस्तुत करते थे। चुने हुए समझदार श्रोताओं के सामने जहां घंटा-घंटा भर विस्तार करते थे वहां बड़े जन समूहों मे २०–२५ मिनट में ही ख्याल गायन समाप्त करके भजन शुरू कर देते थे। उनके भजनों में एक अपूर्व जादू था जिससे श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। जल्सों, संगीत सम्मेलनों के अलावा उनके ग्रामोफोन रेकर्ड भी बहुत लोकप्रिय हुए। आकाशवाणी पर तो जो सर्वप्रियता उन्हें मिली वह दुर्लभ थी। यद्यपि आपकी गायकी का सम्बन्ध ग्वालियर के स्वर्गीय

हद्दू खां हस्सू खां के घराने से था तथापि संगीत के प्रायः सभी घरानों में आप रुचि लेते थे । अपने घराने की गायकी की मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए अन्य घरानों की विशेषताओं का भी उसमें समावेश करने में संकोच नहीं करते थे । आगरा घराने की बोलतानें और किराना घराने का सुरीलापन तथा अल्लादिया खां के घराने की वक्रतानें आपको विशेष रूप से पसंद थीं ।

आपके गायन में किसी प्रकार का मुद्रा दोष नहीं था, गाते समय चेहरे पर प्रसन्नता की झलक और मुस्कराहट स्पष्ट दिखाई देती थी । गायन में रस और भाव का भी आप भली प्रकार ध्यान रखते थे । प्रसिद्ध चित्र बैजू बावरा में "बैजू" का पार्श्व संगीत आपने ही दिया था ।

आपकी पसंद के रागः—रामकली, मालकौंस भैरवबहार, गौड़मल्लार बागेश्वरी, ललित, टोड़ी, मुलतानी, केदार, मालगुंजी आदि हैं । गायन प्रारम्भ करने से पूर्व आप "महफ़िल का रंग" तथा श्रोताओं की रुचि का विशेष ध्यान रखते थे । जहां साधारण श्रोता आप देखते वहां अपने प्रसिद्ध भजन— "चलो मन गंगा जमुना तीर" तथा "जानकी नाथ सहाय करें" आरम्भ करके उन्हें शीघ्र ही आकर्षित कर लेते थे ।

इसी वर्ष के अगस्त मास में वे चीन जाकर आये थे । कहा जाता है कि भारतीय शास्त्रीय गायन बाहर के देशों में पसंद नहीं किया जाता, परन्तु उनकी अपूर्व सफलता ने इस कथन को सर्वथा असत्य सिद्ध कर दिया ।

पलुस्कर जी ने अपने पिताजी की लिखी हुई कई पुस्तकों का अत्यन्त योग्यतापूर्वक संपादन किया । वे एक अत्यन्त उच्च कोटि के रचनाकार भी थे । अनेक बंदिशों तथा भजनों की बहुत सुन्दर स्वर-रचनायें उन्होंने कीं । वे एक सच्चरित्र, निर्व्यसनी, आदर्श नागरिक थे । जब चीन गए तब अपने साथ तीन चित्र ले गये । एक श्रीराम का, दूसरा स्वर्गीय पिता का और तीसरा महात्मा गांधी का । वे अपनी माता के परम भक्त थे । रूस को जाने वाले कलाकार मंडल में स्थान पाने के गौरव का परित्याग उन्होंने इसीलिये कर दिया था कि उनकी माताजी ने अनुमति नहीं दी थी ।

उनकी पत्नी अत्यन्त सुशीला और विदुषी हैं । बड़े बालक बसन्तकुमार की आयु ८ वर्ष और कन्या की लगभग ५ वर्ष की है । इन छोटे बच्चों को, विदुषी पत्नी को और अनेक संगीत प्रेमियों को बिलखते छोड़कर आप २६–१०–५५ को स्वर्गवासी होगये । भगवान अपने प्यारों को अपने से दूर ज्यादा दिन नहीं रख सकता इसीलिये उसने दत्तात्रय विष्णु पलुस्कर को केवल ३५ वर्ष की आयु में ही अपने पास बुला लिया ।

★

तान्द्रज खां

आप दिल्ली के निवासी थे और अपने को श्रीचन्द्र के घराने का बताया करते थे। घराने दार ख्याल गायक होने के कारण आपकी दूर-दूर तक ख्याति फैली हुई थी। यह तराना बड़ा तैयार और वैचित्र्यपूर्ण ढंग से गाया करते थे। मियां हद्दू खां की मृत्यु के पश्चात् ग्वालियर नरेश श्री जयाजीराव ने इनको अपना दरबारी गायक नियुक्त किया था। यद्यपि मियां हद्दू खां से आपका वेतन कम था, फिर भी संगीत प्रेमी नरेश के आश्रय में रहने के कारण इन्हें काफी श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। एक बार तान्द्रज खां ने महाराज जयाजीराव से अपना वेतन स्वर्गीय हद्दू खाँ के बराबर कर देने की माँग भी की किन्तु उन्होंने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि हमारी दृष्टि में तुम्हारी योग्यता हद्दू खां के बराबर नहीं है, इसलिए वेतन वृद्धि नहीं की जा सकती।

तान्द्रज खाँ बहुत दिनों तक ग्वालियर दरबार में रहे, इसके बाद आपने ग्वालियर छोड़ दिया और हैदराबाद में जाकर रहने लगे, वहीं सन् १८८५ के लगभग आपकी मृत्यु हुई।

★

तानसेन

भारतीय संगीताकाश के जगमगाते नक्षत्र, संगीत-सम्राट तानसेन का नाम आज कौन नहीं जानता ? संगीत प्रेमी ही नहीं अपितु साधारण व्यक्ति भी तानसेन के नाम से भली भांति परिचित हैं। उनका इस भांति विख्यात होना ही उनकी प्रतिभा और महत्ता की सूचना दे रहा है।

तानसेन का जन्म ग्वालियर से सात मील दूर बेहट नामक एक छोटे से गांव में हुआ था; इनके पिता का नाम मकरन्द पांडे था, कोई-कोई उन्हें मुकुन्दराम पांडे भी कहते थे। पांडे जी एक अच्छे गायक थे इस कारण जन साधारण में विशेष प्रिय थे। उनके पास धन की कमी नहीं थी किन्तु बहुत दिनों से इनके कोई संतान जीवित नहीं रहती थी। तानसेन से पहले उनके अनेक संतान हुईं मगर कोई जीवित न रह सकी। एक व्यक्ति ने तानसेन के पिता को सूचना दी कि ग्वालियर में हज़रत मोहम्मद गौस नामक एक सिद्ध फ़क़ीर हैं, उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाय और उनकी कृपा हो जाय तो संतान जीवित रह सकती है। यह सुनकर पांडे जी ग्वालियर पहुँचे, अनुनय

विनय करने पर फ़कीर साहब ने इन्हें एक तावीज दिया और कहा कि इसे अपनी स्त्री के गले में बांध देना, इसको धारण करने से संतान जीवित रहने लगेगी किन्तु इस तावीज के नियमों का पालन करना आवश्यक है। पांडे जी तावीज को लेकर घर आये और तानसेन की माता के गले में बांध दिया, साथ ही फकीर साहब की आज्ञानुसार उनके बताये हुए नियमों का पालन करते रहे। फलस्वरूप कुछ दिनों के बाद सन् *१५०६ ई० में मकरन्द पांडे को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। पांडेजी को कुछ लोग मिश्र भी कहते थे। बालक का नामकरण संस्कार हुआ तो उसका नाम रामतनू रखा गया, फिर उसे तन्नामिश्र कहने लगे और फिर यही तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाल्यावस्था में तन्ना मिश्र बहुत नटखट प्रकृति के थे। पढ़ने-लिखने से बिल्कुल दूर रहकर जंगल में गाय चराते घूमा करते अथवा गंगा के किनारे घूमते रहते। एकमात्र पुत्र होने के कारण माता-पिता इनसे कुछ नहीं कहते, इस प्रकार लाड़ प्यार में तानसेन की उम्र जब १० वर्ष की हुई तो इनके अन्दर एक आश्चर्य जनक प्रतिभा दिखाई देने लगी, वह यह कि विभिन्न प्रकार के जानवरों की बोली बोलकर उनकी हूबहू नकल उतार लेते थे। संयोगवश इन्हीं दिनों स्वामी हरिदास अपनी शिष्य मंडली सहित वाराणसी धाम में तीर्थ यात्रा के निमित्त जा रहे थे। जब स्वामी जी तानसेन के गांव के पास होकर गुजरे तो उपद्रवी तन्नामिश्र को कुछ तमाशा दिखाने की सूझी और स्वामी जी तथा उनकी शिष्य मंडली को डराने के लिए एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर की बोली बोलने लगे। जंगल तो था ही, वहां शेरों का होना भी सम्भव था, अतः साधू मंडली उस शब्द को सुनकर बहुत भयभीत हुई, तब स्वामी जी ने शिष्य मंडली को ढाढस देते हुए कहा कि सब लोग चारों तरफ देखो शेर किधर बोल रहा है, थोड़ी देर में ही दो तीन शिष्य तन्नामिश्र को पकड़ कर स्वामी जी के पास ले आये और कहा कि देखिये यह बच्चा हमको शेर की बोली बोलकर डरा रहा था। स्वामी जी बालक तन्नामिश्र के रूप और लक्षण देखकर, उसे एक होनहार बालक समझ कर बहुत प्रसन्न हुए। स्वामी जी ने सोचा कि इस बच्चे में जब दूसरों के कंठ स्वर की नकल करने की इतनी क्षमता है तब यह गवैयों की भी नकल आसानी से कर सकता है अतः यह संगीत कला भी सीख सकता है। स्वामी जी उसे लेकर उसके पिता के पास पहुंचे और कहा कि

***तानसेन की जन्म तिथि के सम्बन्ध में विभिन्न मत मतान्तर हैं। कुछ लेखक सन् १५३२ ई० तथा कुछ १५२० ई० भी लिखते हैं।**

इस बालक को हमारी मंडली में शामिल करदो। पहले तो पांडे जी ने कुछ आनाकानी की किन्तु स्वामी जी के विशेष आग्रह पर एवं यह समझाने पर कि इस बालक को संगीतकला में प्रवीण बनाया जायगा, वह राजी हो गये। स्वामी जी उस बालक को वृन्दाबन ले आये तथा तानसेन की संगीत शिक्षा आरम्भ करदी। वृन्दाबन में स्वामी जी के निकट रह कर संगीताभ्यास करते करते जब रामतनू को १० वर्ष व्यतीत हो गये तब इनके पिता जी का देहान्त हो गया और कुछ समय बाद माता जी भी चल बसीं। पिता जी की मृत्यु के अन्तिम क्षणों में तन्नामिश्र उनके पास उपस्थित थे तब उनके पिता ने उनसे कहा कि रामतनू तू हजरत मोहम्मद गौस को मत भूलना और उनकी किसी भी आज्ञा का उलंघन मत करना।

वृन्दाबन लौटकर पिता का अन्तिम आदेश रामतनू ने स्वामी हरिदास जी को बताया और स्वामी जी से परामर्श करके ग्वालियर को प्रस्थान किया। वहां मौ० गौस के पास पहुँच कर उनके दर्शन किये और सब वृतान्त कह सुनाया। गौस साहब ने रामतनू पर दुलार से हाथ फेरते हुए कहा कि अब तुम यहीं रहो। फक़ीर साहब की आज्ञानुसार तन्नामिश्र ग्वालियर में रहने लगे और गौस साहेब से संगीत की तालीम भी लेते रहे।

कुछ समय बाद रामतनू को मालूम हुआ कि ग्वालियर के स्वर्गीय महाराजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी मृगनैनी बहुत सुन्दर गाना गाती है अतः उसका गाना सुनने की तीव्र अभिलाषा उसके मन में जागृत हुई, तब रामतनू ने अपनी यह इच्छा मोहम्मद ग़ौस के सामने प्रकट की। हजरत ग़ौस का रानी बहुत सम्मान करती थीं। उन्होंने रामतनू की इच्छा का समाचार जब रानी को बताया तो उसने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक रामतनू को निमंत्रित करके अपना गाना सुनाया। मृगनैनी का गाना सुनकर रामतनू अत्यन्त प्रभावित हुए, फिर तो मृगनैनी के संगीत मन्दिर में नित्य प्रति जाने लगे और उसके संगीतामृत का पान करते रहे। वहीं पर रामतनू के हृदय मन्दिर में एक नई मूर्ति बस गई अर्थात् रानी मृगनैनी की दासियों में से हुसैनी नाम की एक मुसलिम रमणी के रूप माधुर्य और सुमधुर संगीत ने रामतनू को आकर्षित कर लिया। उन दोनों का यह प्रेम रानी मृगनैनी से न छिप सका। रामतनू को रानी पुत्रवत् स्नेह करती थी अतः हुसैनी के प्रति रामतनू का आकर्षण देखकर उन दोनों को विवाह सूत्र में बांधने का निश्चय किया। मोहम्मद ग़ौस से परामर्श करके इन दोनों का विवाह करा दिया।

हुसैनी का असली नाम प्रेमकुमारी था। यह एक सारस्वत ब्राह्मण की कन्या थी जो बाद में सपरिवार मुसलिम धर्म में दीक्षित हुई और फिर उसका इस्लामी नाम हुसैनी रखा गया। ब्राह्मण कन्या होने के कारण उसे सब हुसैनी ब्राह्मणी कहकर पुकारते थे। उक्त विवाह कार्य में पुरोहित का कार्य स्वयं हज़रत ग़ौस ने सम्पन्न किया और रामतनू का नाम मो० अताअली खां रखा गया। विवाह के पश्चात् मो० अताअली उर्फ़ रामतनू रानी मृगनैनी तथा मो० ग़ौस की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर वृन्दाबन में स्वामी हरिदास के पास फिर लौट आये और सविस्तार समस्त घटना स्वामी जी से निवेदन करदी। स्वामी हरिदास जी एक उदार हृदय महात्मा थे, जाति भेद में उनका कोई विश्वास नहीं था अतः वे रामतनू और मो० अताअली में कोई भेद न देखते हुए पहिले की तरह ही स्नेह करते रहे एवं संगीत की शिक्षा देते रहे। रामतनू अपने गुरु की पूर्ण रूप से सेवा करते हुए संगीत साधना करते रहे, साथ ही इनकी पत्नी भी अपना संगीताभ्यास बढ़ाती रहीं। स्वामी जी से लगभग १०० ध्रुपद रामतनू को प्राप्त हो चुके थे।

कुछ समय बाद जब मो० ग़ौस का अन्त समय निकट आया तो उन्होंने तानसेन को बुलाने के लिये स्वामी जी के पास सम्वाद भेजा। स्वामी जी ने तुरन्त ही तानसेन को ग्वालियर जाने की आज्ञा दी। इन्होंने ग्वालियर पहुँचकर ग़ौस साहब की सेवा सुश्रुषा करके उनको संतुष्ट किया। एक शाही फ़कीर की भांति ग़ौस साहब के पास धन का विशाल भण्डार था वह सब उन्होंने तानसेन को दे दिया। तत्पश्चात् वे परमधाम को सिधार गये। इसके बाद कुछ दिनों तक तानसेन सपरिवार ग्वालियर में रहे, बीच–बीच में स्वामी हरिदास जी के पास संगीत साधना के निमित्त आते जाते रहते। यौगिक सप्त चक्र में सातों स्वरों का प्रकाश योगबल से किस तरह सम्भव हो सकता है यह भेद भी स्वामी जी ने तानसेन को बता दिया था, उसी गुरु शक्ति के प्रभाव से समय पाकर तानसेन ने नाद सिद्धि प्राप्त की।

संगीत के उक्त साधना काल में तानसेन को ४ पुत्र और १ कन्या प्राप्त हुए, पुत्रों के नाम क्रमशः सुरतसेन, शरतसेन, तरंगसेन और विलास खां थे और पुत्री का नाम था सरस्वती। इन सबने ही नाद विद्या में सिद्धि प्राप्त की और आगे चल कर अपने वंश के गौरव को बढ़ाया।

तानसेन की संगीत साधना जिस समय चर्मोत्कर्ष पर थी उस समय रीवां के महाराज राजा राम (रामचन्द्र) तानसेन को वृन्दाबन से अपने दरबार में

ले गये । वहाँ कई वर्ष रहने के पश्चात् तानसेन का सौभाग्य सूर्य चमक उठा । बादशाह अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठे । महाराज रामचंद्र और बादशाह अकबर की मित्रता थी । एक बार अकबर किसी विशेष कार्य से रीवा गये तो वहाँ उनको तानसेन का संगीत सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ । इस स्वर्गीय संगीत को सुनकर अकबर बहुत प्रभावित हुए । रीवा नरेश ने जब यह देखा कि बादशाह तानसेन से बहुत प्रसन्न हैं तो उन्होंने उपहार स्वरूप तानसेन को अकबर की भेंट कर दिया । बादशाह तानसेन को सम्मानपूर्वक अपने साथ दिल्ली ले आये और सन् १५५६ ई० में तानसेन को अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया । अकबर के दर्बार में तानसेन को सर्वश्रेष्ठ गायक होने का गौरव प्राप्त था । रात्रि के समय बादशाह के शयन मदिर में तानसेन के संगीत के स्वर गुंजित होते थे तभी बादशाह को निद्रा आया करती थी । प्रातः काल पक्षियों के कलरव के साथ तानसेन के प्रभात कालीन गीत शाही महलों में नवजीवन का संचार किया करते ।

रात्रि के समय तानसेन अपने स्थान पर रियाज़ किया करते थे । एक दिन बादशाह ने सोचा कि तानसेन के मकान पर चलकर उनका स्वेच्छित संगीत सुनना चाहिये और छद्म वेष में एक रात को बादशाह वहाँ पहुंच ही तो गये । उस दिन तानसेन का वह संगीत सुनकर अकबर अत्यंत प्रभावित हुए और भावावेष में वहाँ स्वयं प्रकट होकर अपने गले से बहुमूल्य एक जवाहिराती हार तानसेन के गले में डाल दिया । यह सम्वाद जब अन्य दर्बारी गायकों ने सुना तो वह ईर्ष्या से जलने लगे और तानसेन को नीचा दिखाने का अवसर ढूंढने लगे । उधर तानसेन ने वह हार बेच दिया । यह बात बादशाह के कानों तक उन्हीं ईर्ष्यालु व्यक्तियों द्वारा पहुँचाई गई । बादशाह का दिया हुआ उपहार बेच देना साधारण कार्य नहीं था अतः बादशाह बहुत क्रोधित हुए और दूसरे दिन तानसेन से आते ही पूछा तुम्हारा वह हार कहाँ है ? तानसेन ने लज्जा अनुभव करते हुए कहा—महाराज वह हार तो खो गया । बादशाह ने नाराज़ होकर कहा, अगर तुम उस हार को पहन कर नहीं आओगे तो तुम्हें दर्बार में स्थान नहीं मिलेगा । तानसेन उदास होकर घर लौट आये और चिंतित रहने लगे । इस संकट काल में उन्हें अपने पहले मालिक महाराजा रामचंद्र की याद आई और उसी रात तानसेन रीवा को चल पड़े । महाराज से साक्षात्कार किया और कहा कि महाराज आज बहुत दिन बाद आपको दो चीज़ें सुनाने आया हूं । उस समय तानसेन ने राजा राम के आगे दो ध्रुपद प्रस्तुत किये, एक तो था शुक्ल विलावल में "राजाराम निरंजन······" और दूसरा था मेघराग का

"मगन रहो रे ·····।" यह दोनों गीत सुनकर राजा राम बहुत मुग्ध हुए और उसी समय अपने पैर से रत्न जड़ित खड़ाऊँ तानसेन को पुरस्कार में दे दिये। उस जोड़ी का मूल्य ५० लाख रुपये था। यह पारितोषिक प्राप्त करके तानसेन पुनः दिल्ली लौट आये और बादशाह अकबर के पास पहुँचकर अभिवादन करते हुए वह रत्न जड़ित पादुका बादशाह के समक्ष रख दीं और कहा कि अपने हार का मूल्य काटकर बाक़ी मुझे लौटाने की आज्ञा हो जाय! यह दृश्य देखकर बादशाह ने आश्चर्य चकित होकर कहा कि तानसेन! यह रत्न-पादुका तुम्हारे सात स्वरों में से एक स्वर के मूल्य के बराबर भी नहीं हैं।

एक दिन अकबर ने तानसेन से कहा—तुम्हारा गाना जब इतना मीठा है तो तुम्हारे गुरू जी का संगीत तो न जाने कितना मधुर होगा, हम उसे सुनना चाहते हैं। तानसेन बोले—महाराज मेरे गुरु देव योगी पुरुष हैं, दर्बार में तो वे आयेंगे नहीं, अगर आप वृन्दावन उनके आश्रम को चलें तो आपकी इच्छा पूर्ण हो सकती है। संगीत प्रेमी अकबर वेष बदल कर और स्वामी जी को रत्नादि भेंट लेकर तानसेन के साथ उनके आश्रम में पहुँचे। स्वामी जी अंतरदृष्टा थे अतः एक नज़र में ही उन्होंने छद्म वेषी अकबर को पहचान लिया और तानसेन से कहा—"अरे तनुआं! बादशाह को इतनी तकलीफ़ देकर काहे को साथ ले आया?" विस्मित होकर तानसेन ने बादशाह के आने का कारण गुरु जी को बता दिया तो स्वामी जी ने प्रसन्नता पूर्वक बादशाह को अपना संगीत सुनाया। इस दिव्य संगीत को सुनकर बादशाह आत्मविभोर होगये और साथ में लाये हुए रत्न स्वामी जी के आगे रख दिये, तब स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं सन्यासी हूं रत्नों का क्या करूंगा, और यदि रत्न ही देना चाहते हो तो नेत्र बन्द करके सुनो! यह कहते हुए स्वामी जी ने एक चीज गाई। अकबर ध्यानमग्न हो सुन रहे थे। गायन समाप्ति पर जब अकबर की आंखें खुलीं तो स्वामी जी ने पूछा—कहो कुछ देखा? बादशाह बोले—"हां, मैंने देखा कि यमुना जी में रत्नों का एक घाट बना हुआ है, गोपियां जल भरने आई हैं, उसी घाट की एक सीढी टूटी हुई है, कृष्णजी भी वहाँ खड़े हैं और गोपियों को टूटी सीढी से सावधान रहने की सूचना दे रहे हैं।" स्वामी जी ने कहा, ठीक है, तुम हमको जो रत्न देते थे उसके द्वारा उस टूटी हुई सीढी को बनाय दो। तब अकबर की समझ में आया कि स्वामी जी की इच्छा पूरी करने लायक मेरे पास रत्न कहां हैं?

तानसेन को भैरव राग में विशेष रूप से सिद्धि प्राप्त थी। कहा जाता है है कि नायक गोपाल के वंश की किसी स्त्री द्वारा उन्हें भैरव राग प्राप्त हुआ था।

इस राग को तानसेन दर्बार में कभी नहीं गाते थे। इसका उपयोग केवल अकबर बादशाह के जागने पर उनके महल में केवल आलाप के रूप में होता था। दर्बार में विशेषतः जो राग गाते थे वह "दर्बारी" राग के नाम से प्रसिद्ध है। एक राग दर्बारीकान्हड़ा भी है इसे तानसेन इतनी खूबी से गाते थे कि बादशाह उसे मियां का राग अर्थात् तानसेन का राग कहते थे। इस राग को बादशाह तानसेन के अतिरिक्त अन्य किसी से नहीं सुनते थे। दर्बारी-कान्हड़ा के अतिरिक्त कुछ और राग भी ऐसे हैं जोकि तानसेन को विशेष रूप से सिद्ध थे और वे राग भारतीय संगीत में तानसेन के नाम को हमेशा अमर बनाये रहेंगे। उदाहरणार्थ दर्बारी तोड़ी, मियां की मल्हार, मियां की मारंग आदि रागों को तानसेन के वंशज आज भी विशेष रूप से गाकर प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं।

हार वाली उपरोक्त घटना की शिकायत असफल होने पर दर्बारी गवैयों की ईर्ष्या और भी बढ़गई, तब उन्होंने एक नया षडयंत्र रचा। वे सब मिलकर बादशाह के पास पहुंचे और कहा कि हजूर हम लोगों ने दीपक राग कभी नहीं सुना, यदि आपकी महर हो जाय तो तानसेन के द्वारा सुनवा दीजिये, इस राग को उनके सिवा अन्य कोई नहीं गा सकता। यह सुनकर अपने सरल स्वभाव से बादशाह ने तानसेन से दीपक राग गाने की फरमाइश कर दी। तानसेन ने कहा जहाँपनाह! दीपक राग गाने से मैं मर जाऊँगा किन्तु इस बात का बादशाह को विश्वास नहीं हुआ, और वे नहीं माने। तब तानसेन ने १५ दिन का समय मांगा।

उक्त समस्या को सुलझाने के लिये तानसेन चिंतित रहने लगे क्योंकि दीपक राग का तेज इस मृत्यु लोक का कोई भी गायक सहन करने में असमर्थ था। उसके स्वरों की अग्नि से शरीर तक जल जाता है। तानसेन यह भी जानते थे कि यदि उसके साथ ही साथ मेघराग द्वारा जल बरसा कर उन स्वरों की अग्नि शांत करने में कोई गायक समर्थ हो तो यह समस्या सुलझ सकती है और दीपक राग गाते हुए भी मेरी जीवन रक्षा हो सकती है। यह सोचकर तानसेन ने अवधि के १५ दिनों के अन्दर अपनी गुणवती कन्या सरस्वती और स्वामी हरिदास की एक शिष्या रूपवती को मेघराग की शिक्षा दी। यह दोनों देवियाँ संगीत कला में प्रवीण तो थीं ही अतः कुछ ही दिनों में इनको मेघराग सिद्ध होगया तत्पश्चात् तानसेन ने बाशाह अकबर को सूचित कर दिया कि मैं दीपक राग गाने के लिये तैयार हूं।

तानसेन दीपक राग गायेंगे, यह समाचार बिजली की तरह देशभर में फैल गया और विभिन्न स्थानों के सहस्त्रों श्रोता दिल्ली में आकर एकत्रित होने लगे। विशाल जनसमूह के समक्ष, शाही दरबार में, प्रातः काल की बेला में तानसेन ने दीपक राग का यज्ञ आरम्भ किया। उधर पूर्व निश्चित योजनानुसार उसी समय सरस्वती और रूपवती ने मेघराग का यज्ञ आरम्भ कर दिया। तानसेन ने पहिले ही उनसे कह रक्खा था कि यज्ञ–पूजन समाप्ति के तुरन्त बाद ही मेघराग का आलाप आरम्भ करदें और दोपहर के ठीक दो बजे मेघराग का गायन आरम्भ करदें अन्यथा तनिक सी भी त्रुटि विपत्ति का कारण बन सकती है। इस प्रकार दोनों संगीत साधिकाओं को तैयार करके ही तानसेन सभा में उपस्थित हुए थे। यथा समय यज्ञ पूजा की समाप्ति के बाद अकबर बादशाह सभा मंडप में पधारे। बादशाह की आज्ञा लेकर तानसेन दीपक राग गाने को उद्यत हुए। साथ ही तानसेन ने बादशाह से यह अनुमति भी प्राप्त करली कि सभा में जो दीपक रक्खे हैं उनके जलने पर मैं तुरन्त बन्द कर दूंगा।

रागालाप आरम्भ हुआ कुछ ही मिनटों में श्रोताओं को गर्मी महसूस होने लगी, जैसे जैसे आलाप आगे बढ़ने लगा गायक और श्रोता पसीने से तर होने लगे। थोड़ी देर में तानसेन के नेत्र रक्त वर्ण हो गये और तानसेन के शरीर में दाह होने लगा। गाने का अन्त होते होते सब प्रदीप जल उठे और सभा में अग्नि की लपटें दिखाई देने लगीं।

तब बादशाह, वज़ीर, दीवान, मुसाहिब तथा श्रोतागण इधर-उधर भागने लगे। सबको अपने अपने प्राण बचाने की धुन थी। सभा मंडप में एक कुहराम सा मच गया। इसी वातावरण में अर्धदग्ध तानसेन भी सभा छोड़कर अपने घर को भागे, नगर में हाहाकार मच गया।

उधर तानसेन की कन्या सरस्वती और साधिका रूपवती मेघराग का आलाप कर रही थीं। झुलसे हुए तानसेन को देखकर तत्काल ही उन्होंने मेघराग का गाना शुरू कर दिया, जैसे–जैसे राग आगे बढ़ता गया आकाश मेघाछन्न होने लगा कुछ क्षण बाद ही जल वृष्टि आरम्भ हो गई, जिससे तानसेन का झुलसा हुआ शरीर ठंडा हुआ। तानसेन ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा कि देवियो! तुम्हारी तनिक सी भूल से मेरे ऊपर इतना संकट आया। यदि तुमने ठीक समय पर राग आरम्भ कर दिया होता तो मेरी यह दशा न होती।

उक्त घटना के पश्चात् अशक्त तानसेन लगभग एक मास तक शैया पर पड़े रहे और तब बादशाह ने अनेक उपचारों द्वारा बड़ी कठिनता पूर्वक तानसेन को स्वस्थ बनाया। अकबर अपनी भूल पर बहुत पछताया। तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को मुग्ध करने, रोगियों को स्वस्थ बनाने आदि की अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाएं हुईं। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरु कृपा से तानसेन को जो राग रागनियाँ सिद्ध थीं उनका प्रभाव जड़ और चेतन दोनों पर ही होता था। उपरोक्त कथानकों में संभव है कुछ असत्य भी हो क्योंकि प्रत्येक का ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है; फिर भी किंवदन्तियाँ बिना आधार के नहीं बन सकतीं यह सत्य है। "आइने अकबरी" में अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि तानसेन जैसा गायक पिछले एक हज़ार वर्ष तक नहीं हुआ। इससे हम तानसेन की प्रतिभा सहज ही आंक सकते हैं। फिर सूरदास ने तो यहाँ तक लिखा है:—

भलो भयो विधि ना दिये शेप नाग के कान।
धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान॥

आखिर यह भौतिक शरीर एक दिन सभी को छोड़ना पड़ता है अतः तानसेन का भी अन्तिम समय आ पहुँचा। ज्वर से पीड़ित तानसेन ने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की किन्तु बादशाह अकबर ने उन्हें अपने पास ही रक्खा। अंततो-गत्वा फरवरी सन् १५८५ ई० में, दिल्ली नगर में तानसेन स्वर्गस्थ होगये। उनकी पूर्व इच्छानुसार उनका शव ग्वालियर भेज दिया गया तथा फ़क़ीर मौहम्मद ग़ौस के बराबर ही तानसेन की भी समाधि बनवादी गई। तानसेन की मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र बिलास खाँ ने अपने पिता के यश, सम्मान और कीर्ति की यथोचित वृद्धि की और वह भी तत्कालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ स्वीकार किये गये।

★

ताराबाई शिरोडकर
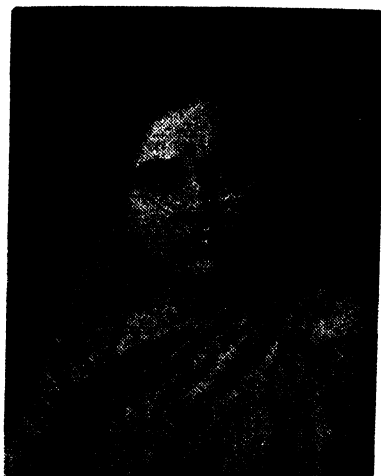
इन्दौर नरेश महाराजा तुकोजी-राव होल्कर ने जिन्हें राज्य गायिका के पद पर नियुक्त किया वे श्री तारा-बाई शिरोडकर संगीत के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

आपका जन्म सन् १८८९ ई० में गोआ के अंतर्गत शिरोडा नामक स्थान पर हुआ। जब आपकी अवस्था लगभग १६ वर्ष की थी तब आप गोआ की राजधानी पंजी के निकट कालापुर स्थान पर आकर रहने लगीं। सर्व प्रथम यहीं पर आपको संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा, उस समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री रामकृष्ण बुआ वझे द्वारा प्राप्त हुई। उसके बाद कुछ समय तक आपने भास्कर बुआ बखले से लगभग १ वर्ष तक तालीम हासिल की और फिर "करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान" के नियमानुसार, अपने रियाज़ तथा परिश्रम के बलपर संगीत कला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् १९१२ ई० में ताराबाई गोआ छोड़कर पूना में आकर रहने लगीं और यहाँ इन्हें पुनः स्व० भास्कर बुआ बखले की गायकी प्राप्त करने का सुअवसर मिला। लगभग एक वर्ष पश्चात् ताराबाई ने पूना भी छोड़ दिया और आप स्थायी रूप से बम्बई में रहने लगीं। प्रथम महायुद्ध के अवसर पर जब ब्रिटिश सत्ता द्वारा वारफंड इकट्ठा करने के लिये नये-नये साधनों का प्रयोग किया जा रहा था तो तत्कालीन अधिकारियों ने ताराबाई के संगीत कार्यक्रमों द्वारा काफ़ी रुपया बटोरा और तब ये जनता के निकटतम सम्पर्क में आ गईं और इनकी कला चमकने लगी। विभिन्न क्लब तथा जल्सों में आपके कार्यक्रम होने लगे।

जिन दिनों ताराबाई इन्दौर नरेश के यहाँ राज्य गायिका के पद पर नियुक्त हुई थीं उन दिनों आप कलावंत नत्थन ख़ाँ के बड़े लड़के मौहम्मद ख़ाँ से गायकी सीख रही थीं, किन्तु जब कुछ समय बाद इनका स्वास्थ्य ख़राब रहने

लगा तो रियाज़ के लिये उचित समय न दे सकीं। सन् १६४६ में भास्कर बुआ बखले की निधन तिथि पर प्रथम बार बम्बई रेडियो केन्द्र से आपका संगीत अपने गुरु को श्रद्धांजलि अर्पण करने के रूप में प्रसारित हुआ। आपकी आवाज़ और गायकी से प्रभावित होकर जब श्रोताओं द्वारा रेडियो पर ताराबाई के और भी प्रोग्राम कराने की मांग की गई, तब रेडियो अधिकारियों ने इनके कई कार्यक्रम कराये एवं इनके कुछ रेकर्ड भी तैयार करके रक्खे।

अन्त में उदरनासूर के कारण ६ जुलाई १६४६ को आपका शरीरांत हो गया।

त्यागराज

जिस प्रकार सूर और तुलसी के प्रभाव से समस्त उत्तर भारत भक्ति मार्ग में तल्लीन हो गया, उसी प्रकार दक्षिण में महात्मा त्यागराज के संगीतमय उपदेशों से लाभ उठाकर दक्षिण के बहुत से व्यक्तियों ने ज्ञान और यश प्राप्त किया। महात्मा त्यागराज भगवान के भक्त, विद्वान, कवि, संगीतज्ञ और कर्नाटक गायन के महान सुधारक थे।

इस महान विभूति का जन्म आँध्र प्रान्तीय एक ब्राह्मण कुल में सन् १७६० ई० में हुआ था। इनके पिता किसी कारण से अपनी मातृभूमि छोड़ कर तमिल प्रान्त में जा बसे थे। मद्रास प्रान्त के तन्जौर नामक नगर के पास तिरुवियर नामक ग्राम में ही श्री त्यागराज ने अपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया था। आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के द्वारा दक्षिण में आँध्र भाषा का डंका बजा कर सबको आंध्र भाषा का प्रेमी बना डाला। आपने अपनी समस्त रचनायें पद-शैली में बनाई थीं। आज दक्षिण की विविध भाषाओं में त्यागराज की कृतियाँ तथा पद गा गाकर वहाँ के संगीतज्ञ भक्त रस की मन्दाकिनी बहा रहे हैं।

त्यागराज एक सुप्रसिद्ध गायक तो थे ही, साथ ही वे कर्नाटक संगीत के सुधारक भी थे। उन्होंने कई नवीन राग-रागनियों का आविष्कार करके

कर्नाटक संगीत को अमृत के समान मधुर बनाया। आज कल दक्षिण के बहुत से शहरों और कस्बों में इस महापुरुष की स्मृति में वार्षिक उत्सव मनाये जाते हैं, जिनमें साधारण जनता के अतिरिक्त बड़े बड़े नामी गायक वादक अपनी अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए त्याग राज को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

इनके पिता श्री राम ब्रह्म भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के साकार स्वरूप थे। इनकी माता श्रीशान्तीदेवी अपने नाम के ही समान शान्तस्वरूप और पतिव्रता थीं। त्यागराज के पिता ने संस्कृत में विद्वान बनाने की इच्छा से इन्हें संस्कृत विद्यालय में पढ़ने भेजा, किन्तु आपकी रुचि उस ओर नहीं थी। आप विद्यालय से आते जाते समय श्री वैन्कट रमनैया की वीणा सुनने के लिये पहुँच जाते। उनकी वीणा के स्वरों ने त्याग राग के हृदय में संगीत के अंकुर उत्पन्न कर दिये और यह अंकुर ईश्वरीय भक्ति रस का सिंचन पाकर पल्लवित हुये। फलतः त्यागराज का संगीत उनकी आन्तरिक भावनाओं का प्रकट स्वरूप बन गया। जब आपके अन्दर संगीत प्रतिभा का विकास आरम्भ हो रहा था तो एक महान सिद्ध विभूति से आपकी भेंट हुई। और वे थे श्री रामकृष्णानंद; जिन्हें श्री त्यागराज ने अपनी रचनाओं में नारद का अवतार माना है। इन्हीं के द्वारा श्री त्यागराज को "स्वरार्णव" नामक संगीत का एक दिव्य ग्रन्थ प्राप्त हुआ, जिसमें स्वर विस्तार एवम् स्वर समूह के प्रकार और विभिन्न रागों में उनके प्रयोग का विवेचन था। श्री त्यागराज ने उस ग्रन्थ में दिये हुये संगीत से बहुत लाभ उठाया। कहा जाता है कि यह अपूर्व ग्रन्थ आगे चलकर खो गया। किन्तु श्री त्यागराज ने उस ग्रन्थ में दिये हुये अनेक रागों को अपनी रचनाओं में यत्न पूर्वक सुरक्षित रक्खा। इस प्रकार नारद के रूप में श्री कृष्णानंद ही उनके गुरू थे।

त्यागराज ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, धर्म आदि गूढ़तम विषयों पर हजारों पद बनाये। इनके पदों का एक विशाल संग्रह राग, स्वर और ताल के नाम सहित 'त्यागराज हृदय' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। आप संगीतज्ञों में संत और संतों में संगीतज्ञ थे। श्री त्यागराज रचनात्मक संगीत को आध्यात्मिक महत्व प्रदान करके अपना नाम अमर कर गये। लगभग ८० वर्ष की अवस्था में त्यागराज विरक्त से होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे थे कि हे भगवान! मुझे ज्ञान प्रदान करो, अब इस संसार में नहीं रहा जाता। ईश्वर ने त्यागराज की प्रार्थना स्वीकार कर ली, और उन्हें स्वप्न हुआ कि सन्यास आश्रम ग्रहण करो, आज से आठवें दिन तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगी। इस प्रकार उन्हें अपने भौतिक जीवन का अन्त निकट आता हुआ ज्ञात हो चुका था। उन्होंने सन्यास ले लिया और अपने समस्त शिष्यों को बुलाकर कहा "पुण्य शुद्ध

पंचमी को एक महत्व पूर्ण घटना होने वाली है, उस दिन प्रातः काल से ही सब लोग इकट्ठे रहें ।" उनकी आज्ञानुसार समस्त शिष्य समुदाय उस दिन इकट्ठा हो गया और श्री त्यागराज ने उस अवसर पर घटित घटना के उपलक्ष में बनाये हुए अपने दो पद गाये, जिनमें से एक राग धन्यासी में 'श्याम सुन्दरांग ·····'पद है। इसके पश्चात उनके शिष्य, भक्त तथा मित्र उनके चारों ओर नाम संकीर्तन करते रहे और श्री त्यागराज प्रभु भक्ति में तल्लीन हो बैठे हुये थे। सहसा ब्रह्म रंध्र के द्वारा प्राण वायु उनकी नश्वर देह को त्याग कर ब्रह्म में जा मिली।

इस प्रकार पौष कृष्णा पंचवीं सम्वत १९०४ (सन् १८४७) को यह महात्मा मोक्ष को प्राप्त हुये।

त्यागराज की समाधि आज भी कावेरी नदी के किनारे बनी हुई है। यद्यपि आपको स्वर्गवासी हुए एक शताब्दी हो चुकी तथापि उनकी कीर्त्ति और नाम अब भी अमर है।

★

दिरंग खां

आप भी अपने समय के बड़े प्रतिभावान और मधुर गायक हो गये हैं। मुगल बादशाह शाहजहाँ (सन् १६२७–१६५६ ई०) का आपको आश्रय प्राप्त था। आप ध्रुपद गाया करते थे। उस समय शाहजहाँ के दरबार में कविराज जगन्नाथ नाम के एक हिन्दू गायक भी रहते थे। बादशाह की इन दोनों संगीतज्ञों पर विशेष कृपा थी और वह इन दोनों के गायन को विशेष रुचि के साथ सुना करते थे। संयोग से एक बार इनके गायन का कार्यक्रम ऐसा चमत्कार पूर्ण एवं आश्चर्य जनक हुआ कि शाहजहां ने इनको रुपयों से तौलने की आज्ञा दे दी। १४ मार्च सन् १६३६ ई० को राजाज्ञानुसार दिरंग खाँ को रुपयों से तौला गया। तुलने के समय इनके साथ एक बारह वर्षीय बालक भी था। पुरस्कार की लगभग साढ़े चार हज़ार रुपये की धनराशि को पाकर दिरंग खाँ बहुत ही प्रसन्न हुए।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में खाँ साहब दिल्ली नगर में ही परलोक सिधारे।

★

दिलावर खाँ

आप बड़े मोहम्मद खाँ के प्रपौत्र (नाती) थे। आपके पिता का नाम मुबारिक अली खाँ था। गाने की तालीम आपने अपने विद्वान पिता से ही हासिल की थी। अपने घराने की गायकी पर आपका हक़ था। एक मिठास और बेफिक्री के साथ गाते हुए आप श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया करते थे। आपकी तानों का ढंग बड़ा वैचित्र्यपूर्ण था। ऐसे मधुर और हृदयस्पर्शी गायक वर्तमान समय में नहीं के बराबर हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में लखनऊ में ही आप स्वर्गवासी हो गये। निस्सन्देह आपने वर्तमान ख्याल गायन पद्धति को अपने जीवन काल में बहुत कुछ समृद्ध किया।

★

दिलीपचन्द्र वेदी

पंजाब के ऐतिहासिक नगर श्री आनन्दपुर में २४ मार्च १६०१ ई० को आपका जन्म हुआ। आपके पिता बाबा सन्त रामवेदी श्री गुरु नानक देव के वंशज तथा आनन्दपुर के सुप्रसिद्ध धनाढ्य व्यापारी थे।

दिलीप जब केवल ६ वर्ष के बालक थे तभी आपके माता-पिता का देहान्त होगया। आपके मौसा, पंजाब के प्रसिद्ध जागीरदार थे, इन्होंने ही वेदी जी को शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमृतसर भेज दिया, जहां पर आपने ८ वर्ष की आयु से ही ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन, गज़ल इत्यादि गायकियों का शिक्षण ७ वर्ष तक लिया।

आपके प्रथम गुरु उस्ताद उत्तमसिंह जी (प्रसिद्ध तलवराडी घराने के) ध्रुपद गायन में तथा ख्याल गायन में दिल्ली के तानरम खां घराने के शिष्य तथा संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे।

१६१८ ई० में संगीत महासभा जालन्धर के वार्षिकोत्सव पर भारत के अद्वितीय ख्याल गायक पं० भास्करराव बखले ने वेदी जी को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया और १६२२ तक उनसे संगीत शिक्षण लेते रहे। उनके देहान्त के पश्चात् वेदी जी के बड़ौदा जाने पर उस्ताद फ़ैयाज खां ने वेदी जी को सुना तथा बड़ौदा में ही रहने का आग्रह किया। यहां पर वेदी जी को संगीत शिक्षण के अतिरिक्त मराठी के संगीत ग्रन्थों का अध्ययन करने का सुयोग भी प्राप्त हुआ। साथ ही स्व० अल्लादिया खां तथा हैदरखां से भी आपको तालीम प्राप्त हुई। आपने पंजाबी, हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी के ग्रन्थों का और संस्कृत के अनुवादित ग्रन्थों का अध्ययन करके अपने संगीत ज्ञान को परिपक्व किया तथा भारत के अनेक संगीत पंडितों से वार्तालाप तथा शास्त्रार्थ भी किया।

१६२४ ई० में महाराजा पटियाला ने वेदी जी को अपना दरबारी गायक नियुक्त किया और १६२५ की अ० भा० संगीत परिषद लखनऊ में आपने अपनी कला प्रदर्शित करके अच्छी ख्याति तथा स्वर्ण पदक प्राप्त किये।

१६२७ ई० में कराची की सिंध संगीत कान्फ्रेंस कमेटी ने आपको "माहताबे-मौसीकी" तथा १६३१ में गुरुकुल कांगड़ी संगीत सम्मेलन की ओर

से "संगीतशृङ्गार" की उपाधियों से विभूषित किया । इसी वर्ष महाराजा मैसूर तथा वहाँ की संगीत कमेटी ने आपका स्वरचित राग "वेदी की ललित" सुनकर प्रथम पुरस्कार प्रदान किया ।

इनके अतिरिक्त बंगलौर, धारवाड़ आदि स्थानों पर भी आपको सम्मानित किया गया । १६३४ की छटी अ. भा. संगीत परिषद बनारस के मंत्री ने तथा स्व० नसीरुद्दीनखां ने आपको परिषद का "सर्वश्रेष्ठ ख्याल गायक" मानकर प्रमाण पत्र दिये । १६३८ में कलकत्ता संगीत कान्फ्रेंस की निर्णायक कमेटी द्वारा वेदी जी को "किंग वाजिदअली शाह गोल्ड मैडिल" भेंट किया गया ।

भारत के अनेक संगीत विद्वानों ने आपको गायनाचार्य संगीत सुधाकर, संगीत रत्न तथा संगीत प्रवीण आदि उपाधियां देकर सम्मानित किया है ।

संगीत के विभिन्न विषयों पर वेदी जी ने अनेक लेख लिखे जो पत्रों में प्रकाशित हुए एवं अपने संगीत भाषणों द्वारा भी संगीत का पर्याप्त प्रचार किया । इस प्रकार—वेदी जी एक सफल गायक के साथ-साथ संगीत के शास्त्रीय ज्ञाता भी हैं ।

भारत सरकार की "संगीत नाटक अकादमी" काउन्सिल में पंजाब प्रदेश के प्रतिनिधि भी आप ही हैं । यूं तो आप सभी प्रचलित रागों को भलीभांति

गाते हैं,किन्तु रामकली,देसी टोड़ी, जोगिया,आसावरी, शुद्ध सारंग, तानसेनी टोड़ी व मल्हार, तुषारी, हिन्डोल, मारवा, कल्याण, छायानट, बिहाग, बागेश्वरी, चन्द्रकौंस, खमाज, पीलू व भैरवी आदि रागों पर आपको विशेष अधिकार है।

वेदी जी के शिष्यों में—श्रीमती माणिक वर्मा, ललिता आयंगर, गौतम अय्यर, एस० शंकरराव, प्राणनाथ भगवानदास सैनी, तथा म्यूज़िक डाइरेक्टर हुस्नलाल-भगतराम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

नत्थन खां

मरहूम खाँ साहब नत्थनखाँ आगरा घराने के रत्न थे। अपनी बुद्धि और परिश्रम द्वारा आपने एक विशेष प्रकार की गायकी को जन्म दिया, जिसका प्रभाव उ० फैयाज़ खाँ की गायकी पर भी परिलक्षित होता था।

नत्थन खां का जन्म सन् १८४० के लगभग हुआ। आपकी वंश परम्परा मलूकदास के घराने से आरम्भ होती है। आपके पूर्वज राजपूत हिन्दू थे, किन्तु मुसलमानी अत्याचारों के कारण बाद की पीढ़ियां मुसलमान हो गईं। आपके पिता का नाम शेर खाँ और बाबा का नाम जंगू खाँ था। नत्थन खाँ की आयु दो वर्ष की थी, तब उनके पिता बम्बई गये। आठ साल बम्बई में रहने के बाद आगरा चले आये और आगरा आने के कुछ समय बाद ही शेर खाँ की मृत्यु हो गई अतः नत्थन खाँ की तालीम का भार गुलाम अब्बास खाँ के ऊपर पड़ा। गुलाम अब्बास खाँ अत्यन्त तेज मिज़ाज़ के थे। वे इन्हें तालीम देने लगे। वे इन्हें अपने सामने ही रियाज़ कराया करते थे। आगरे में जब कोई संगीतज्ञ आता तो इनके यहां उसकी दावत ज़रूर होती और संगीत की बैठक भी जमती।

नत्थन खां बड़े ध्यान से गवैयों के गाने सुना करते थे और विभिन्न गायकों की शैली अपनाने की चेष्टा करते रहते थे। फतेहपुर सीकरी के घसीट खां ध्रुपदिये से भी इन्होंने कुछ चीजें हासिल कीं।

१२ वर्ष तक आगरे में शिक्षा पाकर नत्थन खां संगीत शिक्षा के लिये जयपुर पहुँचे। उन दिनों जयपुर में संगीत की धूम मची हुई थी। महाराज रामसिंह को स्वयं गाने का शौक़ होने के कारण जयपुर दरबार में बराबर महफिलें होती रहती थीं। जयपुर दरबार के जागीरदार नवाब कल्लन खां भी संगीत के विशेष प्रेमी थे। उनकी कोठी पर रोजाना जल्से होते थे। इन महफ़िलों में उच्चकोटि के बड़े-बड़े गवैये भाग लेते। नत्थन खां भी इस सुअवसर से पूरा पूरा फायदा उठाने लगे। वे तानपूरा लेकर गवैयों के पीछे बैठ जाते और बड़े ध्यान से उनकी गायकी सुनते।

स्वर और लय का ज्ञान तो इन्हें पहले से ही था, अतः जयपुर में विभिन्न गायकों की गायकी सुन सुन आप अपना रियाज़ बढ़ाते रहे। हर समय आप गाने ही के रंग में रंगे रहते। गायकी में इन्होंने अपना एक निराला ही ढंग अपनाया, अत्यन्त विलम्बित लय रख कर उसमें चौगुन, अठगुन तथा आड़ी फिरत करके लय में बँधी हुई तानों और बोल तानों द्वारा उन्होंने अपनी गायकी का ढंग विचित्र बना लिया; इसमें आपको सफलता भी खूब मिली।

जयपुर में दस, बारह वर्ष बिताने के बाद आप विभिन्न स्थानों का दौरा करके संगीत के दरबारी जल्सों में भाग लेने लगे। इससे इनका नाम रियासतों में खूब फैल गया। इसके बाद आप दिल्ली पहुँचे और वहाँ भी अपनी कला का दिग्दर्शन करा कर संगीत प्रेमियों को चकित कर दिया। यहाँ से फिर भ्रमण करते हुये बड़ौदा पहुँचे, वहाँ पर बड़ौदा दरबार में आपका गाना हुआ। बड़ौदा महाराज ने इनके संगीत से प्रसन्न होकर इनको एक गल हार उपहार स्वरूप प्रदान किया। यहाँ पर आपने भास्कर बुआ बखले को भी संगीत की तालीम दी। इसके पश्चात् कुछ समय बम्बई में रहने के बाद आप मैसूर गये, वहाँ पर महाराजा ने आपका गाना सुना और नौकरी भी दे दी। मैसूर दरबार में नत्थन खाँ की नियुक्ति हो जाने पर इनका साथ देने के लिये हैदर खाँ सरंगिये व कल्लन खाँ तबलिये की भी नियुक्ति हो गई।

एक बार मैसूर महाराज ने नत्थन खाँ को एक सोने का कड़ा भी इनाम में दिया था, साथ ही महाराज की यह भी आज्ञा थी कि दरबार में जब कभी

जलसा हो तो इस कड़े को पहन कर आइये। किन्तु एक बार दरबार के जलसे में खाँ साहब कड़ा पहन कर नहीं गये तो महाराज ने पूछा कि खाँ साहब वह कड़ा कहां गया ? खाँ साहब ने जवाब दिया "सरकार वह तो बच्चे के पेट में गया।" महाराज समझ गये कि खाँ साहब उसे बेच कर खा गये। आपको शराब पीने की भी लत थी और उसी के नशे में घन्टों गाते रहते।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ विलायत हुसैन खाँ आपके ही सुपुत्र हैं। जब विलायत हुसैन की उम्र छः सात वर्ष की थी तभी (सन् १९०० ई० में) खां साहब नत्थनखाँ का देहान्त साठ वर्ष की उम्र में हो गया। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनका सब खानदान धारवाड़ आया और फिर वहाँ से बम्बई चला गया। नत्थन खां के कुल छैः लड़के और एक लड़की थी, जिनमें से अब केवल विलायत हुसैन ही जीवित हैं और वे अपने संगीत द्वारा अपने पिता मरहूम नत्थन खां की गायकी को जीवित रक्खे हये हैं।

★

नत्थन पीरबख्श

नत्थन पीर बख्श अपने समय के बहुत उच्चकोटि के ख्याल गायक एवं संगीत शास्त्र के विद्वान हुए हैं। पहिले आप लखनऊ निवास करते थे किन्तु बाद में घरानों की दलबन्दी एवं गायकी में परस्पर तीव्र विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण आपको लखनऊ छोड़ना पड़ा और महाराजा ग्वालियर के आश्रय में आ गये। आपके पिता का नाम मक्खन खाँ था। मक्खन खाँ के समकालीन शक्कर खाँ नामक एक प्रसिद्ध ख्याल गायक उस समय लखनऊ में मौजूद थे। उन दोनों में अपने-अपने घरानों की गायकी को श्रेष्ठ मनवाने के प्रश्न पर शत्रुता सी पैदा हो गई थी। कुछ लोगों का कहना है कि नत्थन पीर बख्श के पुत्र क़ादिरबख्श को शक्कर खाँ के घराने वालों ने किसी युक्ति से मौत के घाट उतार दिया। नहीं कह सकते कि इस घटना में कहा तक सत्यता हो सकती है, लेकिन यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नत्थन पीरबख्श इस चोट से तिलमिला उठे और अपने दोनों प्रपौत्रों (नातियों) को लेकर ग्वालियर जा पहुँचे। वहाँ इनके नातियों ने यथेष्ट कीर्ति प्राप्त की एवं विरोधियों को नीचा दिखाया। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नत्थन पीरबख्श ग्वालियर में ही स्वर्गवासी हो गये।

★

नत्थे खाँ

आप हद्दू खाँ और हस्सू खां के चचेरे भाई थे। इनकी शिक्षा दीक्षा एवं गायन अभ्यास का क्रम इन्हीं लोगों के साथ चला। यह भी कहा जाता है कि ग्वालियर के महाराज जयाजीराव ने नत्थे खां को अपना गुरु मानकर उनका गंडा बाँध लिया था। नत्थे खां भी अपने समय के संगीत के उद्‌भट विद्वान एवं लोकप्रिय कलाकार थे। गुरु होने के नाते महाराज इनका विशेष सम्मान करते थे। राज्य की ओर से सवारी के लिए इन्हें हाथी मिला हुआ था, जिसका खर्च राज्यकोष से ही चलता था। इनके गायन से प्रसन्न होकर एक बार महाराज ने इनके घर बहुत से चांदी के वर्तन भी भिजवा दिये थे।

महाराज ग्वालियर के आश्रय में रहकर इन लोगों का रहन-सहन बिल्कुल हिन्दुओं जैसा हो गया था। कहा जाता है कि इन तीनों भाइयों ने अपनी दाढ़ियाँ साफ करा ली थीं और मस्तक पर चंदन धारण करके अन्य हिन्दुओं के समान ये लोग भी कीर्तन एवं भजन आदि में भाग लिया करते थे। नत्थन खाँ स्वभाव के बहुत नम्र और मिलनसार तबियत के थे। दीर्घायु प्राप्त कर, सन् १८७० ई० के लगभग ग्वालियर में ही इनका देहावसान हो गया। इनकी मृत्यु से इनके चचेरे भाई हद्दू खाँ तथा महाराज को भयंकर कष्ट हुआ। ऐसी विभूतियाँ इस लोक में बहुत कम और कभी-कभी ही जन्मती हैं। नत्थे खाँ संतान हीन थे, किन्तु इनकी शिष्य परम्परा बहुत विशाल है।

★

नसीर मुईनुद्दीन-अमीनुद्दीन डागर

ये दोनों कलाकार बन्धु, इन्दौर के स्वर्गीय नसीरुद्दीन खाँ के पुत्र और सुप्रसिद्ध कलाविद अल्लाबन्दे खाँ के पौत्र हैं। इस प्रकार इनका सम्बन्ध एक ऐसे घराने से है, जिसका आलाप और ध्रुपद की गायकी पर प्रभुत्व है।

इन दोनों भाइयों ने संगीत की प्रारम्भिक तालीम अपने पिता स्व० नसीरुद्दीन खाँ से ही प्राप्त की। तत्पश्चात जयपुर के उस्ताद रियाजुद्दीन खाँ तथा उदयपुर के ज़ियाउद्दीन खां के शिष्य हुए। ध्रुपद और धमार की गायकी में ये दोनों बड़े दक्ष हैं और वर्तमान समय में इनकी गणना इस गायकी के प्रतिनिधियों में होती है। आकाशवाणी तथा देश में सर्वत्र संगीत समारोहों में भाग लेकर आपने अपनी प्रतिभा का परिचय देकर ध्रुपद धमार की लुप्त प्राय: प्राचीन गायकी का दिग्दर्शन कराकर संगीत के प्रति फिर से जनता को जागरूक कराया है।

★

नारायण मोरेश्वर खरे

महाराष्ट्र के सतारा जिले के तास गांव में, एक साधारण स्थिति के ब्राह्मण परिवार में सन् १८८९ ई० में पंडित खरे का जन्म हुआ। इनके पिता की चार सन्तान थीं (१) श्री विनायकराव (२) नारायण राव मोरेश्वर (३) शंकर राव (४) सुन्दरा बाई।

खरे जी के नाना श्री केशव बुवा एक प्रसिद्ध गायक थे। नारायण राव की माता का कंठ भी मधुर था। नारायण राव में संगीत के संस्कार पूर्व से ही विद्यमान थे, अतः बचपन से उन्हें भजन और गीत गाने का शौक था। स्वाभाविक रूप से आपका कंठ मधुर था। मन्दिरों में जाकर कीर्तन करना तथा भजन गाना आपकी दिनचर्या का प्रमुख व आवश्यक भाग था।

जब श्री खरे दसवीं कक्षा में पढ़ रहे थे, तब श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का एक जल्सा मिरज में हुआ। पलुस्कर जी का संगीत सुनने के लिये खरे जी भी उस जल्से में गये। संगीत सुनने के बाद आपने भी दो–तीन भजन सुनाये, इनका मधुर कन्ठ और संगीत में विशेष रुचि देखकर पं० पलुस्कर जी ने कहा कि तुम संगीत सीखना चाहो तो मेरे पास आ सकते हो। खरे जी ने अपने घर वालों से इसके लिये आज्ञा मांगी तो पहले कुछ आना कानी हुई, किन्तु इनके विशेष आग्रह पर आज्ञा मिल गई और तब आप पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के पास संगीत शिक्षा लेने जाने लगे।

सन् १९०७ ई० में खरे जी लाहौर गये और नियमानुसार–पलुस्कर जी के शिष्य बन गये। आपने अपने गुरू के साथ भारत–भ्रमण कर काफी अनुभव प्राप्त किया।

सन् १९०८ ई० में पं०विष्णु दिगम्बर जी ने बम्बई में गांधर्व विद्यालय की स्थापना की थी। पंडित जी की कीर्ति और विद्यालय का कार्य अधिक बढ़ जाने के कारण सन् १९१२ से नारायण राव खरे को गुरू जी की आज्ञा से उस विद्यालय की व्यवस्था सँभालनी पड़ी। इस कार्य में आपकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीबाई भी सहयोग देती थीं।

सन् १९१५ ई० में महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। आश्रम में जो प्रार्थनायें होती थीं उनमें महात्मा जी को ताल स्वर की कमी खटकती थी, इस कमी को दूर करने के लिये बापू ने श्री० विष्णु दिगम्बर से एक ऐसा संगीतज्ञ देने को कहा कि जो आश्रम की प्रार्थना ताल स्वर के साथ कर दिया करे। अतः दिगम्बर जी ने अपनी शिष्य मंडली में से पं० नारायण राव खरे को चुनकर भेज दिया।

इस प्रकार सन् १९१८ ई० में आप आश्रम में आगये। पंडित जी के आश्रम में आजाने से राष्ट्रीय शिक्षण एवं प्रार्थना में संगीत की जो कमी थी वह दूर हो गई। आश्रम में रहते हुये प्रार्थना के अनुकूल आपने बहुत से भजन बनाये और उन्हें शास्त्रीय रागों के अनुकूल ताल स्वर में बद्ध कर उपयोग में लाने लगे। आपके बनाये हुये लगभग चार सौ भजनों का संग्रह "आश्रम भजनावली" के नाम से नवजीवन प्रकाश मंदिर अहमदाबाद से प्रकाशित हो चुका है! इनमें भजनों की स्वरलिपि तो नहीं हैं फिर भी यह संग्रह भजन गायक संगीतज्ञों के लिये अत्यन्त लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

सन् १९२० में गुजरात विद्यापीठ की अहमदाबाद में स्थापना हुई, इसमें संगीत परीक्षा का कार्य पं० खरे जी ने किया, इसके पश्चात् आपने गुजरात और सौराष्ट्र में भ्रमण किया। इस भ्रमण में आप अपने भक्तिमय संगीत से जनता को लाभान्वित करते रहे। आपके इस प्रयास से गुजरात में संगीत कला का खूब प्रचार हुआ। सन् १९२२ ई० में अहमदाबाद में आपने एक संगीत मंडल की स्थापना की। इस मंडल के कार्य से भी संगीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

महात्मा गांधी की ऐतिहासिक दांडी यात्रा में भी आप उनके साथ थे। यद्यपि इस यात्रा में जाने के समय ही खरे जी का छोटा लड़का चल बसा था, फिर भी इन्होंने दांडी यात्रा में जाने का अपना निर्णय नहीं बदला। दांडी यात्रा में महात्मा जी के साथ साथ आप भी गिरफ्तार हो गये और कुछ समय बाद जेल मुक्त होने पर आपने अपना कार्य फिर आरम्भ कर दिया।

अगस्त १९३१ ई० में आपके गुरु पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर स्वर्गवासी हो गये तो उनके संगीत कार्य को आगे बढ़ाने के लिये खरे जी ने अपने समस्त गुरु भाइयों को इकट्ठा करके विचार विनिमय किया, जिसके फलस्वरूप 'गांधर्व महा विद्यालय मंडल' की स्थापना हुई। खरे जी मंडल के अध्यक्ष चुन लिये गये।

सन् १९३३ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में पंडित जी फिर जेल गये, जेल से छूटने के बाद बिहार के भूकम्प में भी पीड़ितों की सहायता में आपने हाथ बटाया, फिर कुछ समय बाद अपने गुरु भाइयों के सहयोग से संगीत के पाठ्यक्रम के लिये 'संगीत बालविनोद' तथा 'संगीत राग दर्शन' के तीन भाग प्रकाशित किये। इसके पश्चात् १९३५ में आपने अहमदाबाद में गांधर्व महाविद्यालय का उद्-घाटन किया।

सन् १९३८ ई० में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हरिपुरा में हुआ था उसमें संगीत के कार्यक्रम के लिये खरे जी तीन-चार दिन के लिये गये। हरिपुरा में आपको सर्दी लग कर निमोनियाँ हो गया और एक सप्ताह तक बीमार रहने के बाद ४९ वर्ष की आयु में, ६ फरवरी १९३८ ई० को पं० खरे स्वर्गवासी हो गये।

★

नारायण राव व्यास

प्रो० नारायण राव व्यास का जन्म कोल्हापुर में १६०२ ई० में हुआ था। आपकी पैत्रिक सम्पत्ति भी कोल्हापुर प्रान्त में है। आपके वंशधर पौराणिक शास्त्री थे। आपके स्व० पिता, संगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता और सितार के विशेष प्रेमी थे।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" कहावत आप पर पूर्णतः चरितार्थ हुई, आपकी अवस्था आठ वर्ष की भी न होने पाई थी कि आपको गान विद्या सीखने की प्रबल इच्छा हुई। संगीत के प्रति रुचि, मधुर दोष-रहित आवाज़ इत्यादि गुण विरले ही भाग्यशाली व्यक्तियों में पाये जाते हैं। आप नियमित रूप से अध्ययन करने लगे। पद और गीत इतनी सुन्दरता से गाते कि श्रोता अवाक् रह जाते और कहते कि यह बालक एक दिन असाधारण सफलता प्राप्त करेगा। आपको उन्नतशील देखकर एक नाटक कम्पनी ने अपने यहाँ रखना चाहा, परन्तु आपने उसे स्वीकार नहीं किया; क्योंकि उन दिनों उच्च घराने के युवक के लिये नाटक कम्पनी में काम करना उस समय अपमानजनक समझा जाता था।

आपने संगीत शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया तो कुलीन वंशज ऐसा करने में आना कानी करते रहे। क्यों कि उस समय कोल्हापुर में

केवल मुसलमान ही इस कला की शिक्षा दिया करते थे। ऐसी स्थिति में बालक का दुराचारी होना संभव हो सकता था। इस कारण प्रोफेसर साहब के संरक्षकों ने संगीत शिक्षा न दिलाने का संकल्प किया; किन्तु थोड़े ही दिनों बाद यह कठिनाई दूर हो गई और शिक्षा का समुचित प्रबंध कर दिया गया। सन् १६१० में स्व० पं० विष्णु दिगम्बर जी कोल्हापुर आये, यहाँ उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया। उस प्रदर्शन में नारायण राव भी सम्मिलित हुये थे। स्वर्गीय पंडित जी के साथ अल्पावस्था के शिष्य भी थे, जो नियम पूर्वक गाया करते थे। उनका शिष्यों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और उच्च कोटि की शिक्षा देने का सरल ढंग देख व्यास जी के संरक्षक महोदय ने दोनों बालकों (प्रो० नारायणराव व्यास और इनके बड़े भाई शंकरराव व्यास) को उनके पास भेजने का निश्चय किया।

सन् १६१०-१६१३ में क्रमशः प्रो० शंकरराव व्यास और नारायणराव व्यास गांधर्व महाविद्यालय में प्रविष्ट करा दिये गये। नौ वर्ष तक पंडित जी ने इन दोनों भाइयों को शिक्षा दी। इसी बीच चार बार सम्पूर्ण भारत का भ्रमण भी किया और अन्य प्रान्तों में जाकर राग रागनियाँ गाने का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया। सन् १६२१ में दोनों भाइयों ने सफलता पूर्वक अध्ययन समाप्त कर "संगीत प्रवीण" पदवी भी प्राप्त की तथा जार्ज लाईड साहब के कर कमलों द्वारा स्वर्ण पदक प्राप्त किये। सन् १६२३ में दोनों भाइयों ने अहमदाबाद में "संगीत विद्यालय" का श्री गणेश किया, जिसके द्वारा भारतीय नवयुवक संगीत कला का ज्ञान प्राप्त कर सके। इस विद्यालय में प्रो० नारायणराव व्यास ने लगभग चार साल तक कार्य किया।

यह समझ कर कि बम्बई व्यापारिक केन्द्र है, यहाँ संगीत कला का प्रदर्शन सफलता पूर्वक किया जा सकता है प्रो० नारायण राव व्यास सन् १६२७ ई० में बम्बई आगये। अब तक केवल पंजाब, संयुक्त प्रांत और सिंध में ही आपकी ख्याति थी। बम्बई में भिन्न भिन्न स्थानों पर सभा–सोसाइटियों में सम्मिलित होकर गाना गाते और जनता से वाह वाही लेते। शनैः शनैः ग्रामोफोन कम्पनियों ने आपको बुलाना आरम्भ किया। रेडियो पर भी आप जा पहुंचे। सन् १६२७ में "हिज़ मास्टर्स वॉयस" कम्पनी ने आपके गानों को स्थाई रूप देना आरम्भ किया। आपके दो रिकार्ड सर्वप्रिय होकर खूब ही चमके। तत्पश्चात आपके गानों के अनेक रिकार्ड तैयार हो गये। वर्तमान समय में "हिज़ मास्टर्स वॉयस" कम्पनी के भारतीय विभाग में आपकी गणना सर्वप्रथम है।

'संगीत परिषद जालंधर' जिसका अधिवेशन प्रतिवर्ष हुआ करता है, आप उसमें तीन या चार बार प्रथम श्रेणी के गायक घोषित किये जा चुके हैं। अनेक संस्थाओं ने आपको पदक प्रदान किये हैं। व्यास जी अनेक महाराष्ट्रीय संस्थाओं को आर्थिक सहायता भी दे रहे हैं। आंध्र देश की जनता ने संगीत कला का प्रदर्शन करने के लिये आपको निमन्त्रित किया। प्रयाग और कानपुर की संगीत परिषदों के वार्षिक अधिवेशनों में आपको प्रथम श्रेणी के पदक प्रदान किये गये। प्रयाग विश्व विद्यालय ने पिछले कुछ वर्षों से संगीत विद्या को सर्व प्रिय बनाने के लिये एक विभाग खोला, जिसमें श्री व्यास को उसका परीक्षक नियत किया। अनेक स्थानों पर आपने सामाजिक उत्सवों में भी भाग लिया। परन्तु साथ ही साथ स्थानीय संगीत प्रेमियों से इस विषय पर विवाद करते रहते हैं और भारतीय गान विद्या को सर्व प्रिय बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं। जिस समय किसी संगीतज्ञ से आप संगीत चर्चा करते हैं, उस समय आपकी योग्यता का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है।

नारायण राव व्यास के बड़े भाई रामभाऊ जी को संगीत शास्त्र का अनुभव कम है। वे सदैव कोल्हापुर रहते हैं और अपनी जागीदारी का कार्य करते हैं। दूसरे भाई प्रो० शंकर राव व्यास अच्छे गुणी हैं और अहमदाबाद में निरन्तर गान विद्या की शिक्षा देते हैं। स्व० पंडित विष्णु दिगम्बर जी के आप कृपा पात्र शिष्यों में रहे। मृत्यु समय तक आप पंडित जी की सेवा करते रहे। आप हिन्दी भाषा में कविता भी करते हैं। "मुरली की धुन" नामक गीत जो प्रो० नारायण राव व्यास ने रेकार्ड में गाया है, आपका ही बनाया हुआ है। अब तक कई पुस्तकें भी आपने लिखी हैं।

प्रो० नारायण राव व्यास को मल्हार, मालकोष, दुर्गा, गौडसारंग, बागेश्वरी, टोड़ी और मालगूजरी अधिक प्रिय हैं। आपके गायन में दोष रहित आवाज, स्वर का नीचा, ऊंचा एवं मध्यम करना, शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण इत्यादि ऐसी बातें हैं जो श्रोताओं को आसानी से आकर्षित कर लेती हैं।

★

निसार हुसेन खाँ
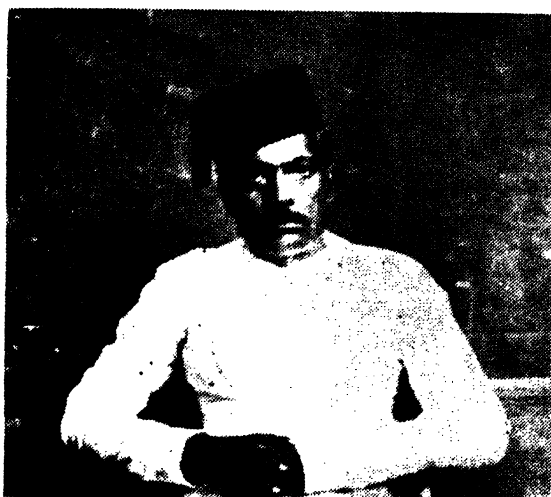
ग्वालियर राज्य पूर्व से ही संगीत का घर रहा है। यहां पर अनेक प्रसिद्ध कलावन्त हुए। तानसेन की जो वंश परम्परा चली आ रही है वह यहाँ आज तक वर्तमान है।

खां साहेब निसार हुसेन का जन्म सन् १८४४ ई० में हुआ। आप उस्ताद नत्थे खाँ के "दत्तक" (गोद लिये हुये) पुत्र थे। बाल्यकाल से ही आपकी बुद्धि तीव्र थी और संगीत में रुचि रखते थे। बारह वर्ष की उम्र से आपने संगीत की तालीम अपने अब्बाजान से लेनी शुरू करदी। जब निसार हुसेन संगीत कला में प्रगति करने लगे तो उस्ताद नत्थे खां ने अपने खानदान की खास गायकी इनको बतानी आरम्भ करदी।

खाँ साहब नत्थे खाँ इन को रोज प्रातः काल जगाकर नियमित रूप से रियाज़ कराया करते थे। उनकी आज्ञा थी कि संगीत का अभ्यास सूर्योदय से पूर्व ही समाप्त हो जाना चाहिये, इनके पिता निसार हुसैन को जयाजीराव महाराज की कोठी पर भी अपने साथ ले जाया करते थे। एक दिन महाराजा ने उस्ताद नत्थे खां से पूछा कि निसार कुछ गाने लगा है या नहीं? इस पर नत्थे खां ने जवाब दिया हाँ सरकार, अब वह कुछ तैयार हो गया है और उसका पहला गाना आपको ही सुनवाना चाहता हूं, अभी महफ़िलों में गाने की मैंने उसे इजाज़त नहीं दी है।

एक दिन बाप–बेटे दोनों दरबारी पोशाक पहन कर, हाथी पर सवार हो राजमहल में जा पहुंचे। महाराज ने पूछा कि खाँ साहेब आज इतनी

सवेरे ही सवेरे कैसे ? खाँ साहब ने जवाब दिया कि सरकार के पास आज निसार हुसेन को गाना सुनाने के लिये लाया हूँ। उस समय महाराज पूजा पाठ कर रहे थे। गाने की तैयारियाँ आरम्भ हुईं, साज़ मिले और निसार हुसैन ने अपने मधुर स्वर से "करुणाकर माधवा" यह भैरवी का भजन प्रारम्भ किया। समस्त दीवान खाना गूँज उठा। इस भजन से महाराज अत्यन्त प्रभावित हुये और बोले—"निसार अब तुम अच्छा गाने लगे हो, अपना रियाज़ जारी रखते हुये खां साहब की पूरी गायकी हासिल कर लो।"

इसके पश्चात् इनके पिता ने महफ़िलों में गाने की इनको आज्ञा दे दी। दिन ब दिन निसार हुसेन खाँ का यश बढ़ने लगा। इन दिनों भी आपने रोजान । पांच घंटे का अपना रियाज़ जारी रक्खा और कड़े परिश्रम द्वारा उस्ताद खाँ साहेब नत्थे खाँ से शीघ्र ही उनकी चीजों का पूरा भंडार प्राप्त कर लिया।

एक दिन आपके मन में आया कि चलो बम्बई चलें। दूसरे दिन बिना टिकिट के ही रेल में सवार हो गये, रास्ते में टिकिट चैकर ने आपको गाड़ी मे उतार दिया। खाँ साहब उतर पड़े और प्लेट फार्म पर अपना तान-पूरा निकाल कर जम गये। वहीं पर आपने गाना शुरू कर दिया तो शीघ्र ही यात्रियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। गाड़ी में मे निकल निकल कर यात्री प्लेट-फार्म पर आ गये और खाँ साहब के मीठे स्वरों का आनंद लेने लगे। उधर गाड़ी छूटने का समय हो गया था; किन्तु मुसाफिर प्लेट फार्म से हटते ही नहीं थे। स्टेशन के कर्मचारी बाबू लोगों ने जब इस भीड़ का कारण मालूम किया तो पता चला कि एक मशहूर गवैया प्लेट फार्म पर गा रहा है, इसलिये भीड़ नहीं हटती। जिस टिकिट चैकर ने खाँ साहब को गाड़ी से नीचे उतारा था, उसने स्टेशन मास्टर तथा गार्ड मे कहा कि इनके पास टिकिट नहीं थी, इसलिये मैंने इन्हें गाड़ी से उतार दिया था। बाद में बाबू लोगों ने आपस में बातचीत करके उनको फिर गाड़ी में बैठा दिया, तब सब लोग गाड़ी में बैठे और गाड़ी चली।

नत्थे खाँ साहेब का जब देहावसान हो गया तो महाराजा जयाजीराव ने निसार हुसैन खां को दरबार में रख लिया। वेतन के अतिरिक्त इन्हें खाना पीना—कपड़ा तथा रहने के लिये मकान की सुविधा भी प्राप्त थी। महाराजा की जब इच्छा हो, तब उन्हें गाना सुना देना, बस यही काम निसार हुसेन का

था। जब महाराजा जयाजीराव की मृत्यु हो गई तो उस समय महाराजा माधवराव की आयु राज्य काज चलाने योग्य न थी, अतः राज-काज पंचों के सुपुर्द हो गया, और पंच कमेटी ने व्यय घटाने की एक योजना बनाई, जिसकी चपेट में खाँ साहेब भी आगये। इनका और सब खर्चा तो बन्द कर दिया गया केवल ५०) मासिक ही दिये जाने स्वीकृत हुए। अतः निसार हुसेन साहब ने इस कमी को अपनी शान के ख़िलाफ समझ कर वह नौकरी छोड़दी।

सन् १८८६ ईसवी में दरबार की नौकरी छोड़कर एक दिन आप विष्णु पंडित (शंकर पंडित के पिता) के यहाँ पहुँचे और उन्हें सब माजरा सुनाया। विष्णु पंडित पहिले से ही चाहते थे कि किसी प्रकार उस्ताद निसार हुसेन से मैं अपने लड़कों को शिक्षा दिलाऊँ, किन्तु एक दरबारी गवैये से ऐसा कहने का उनका साहस नहीं होता था, उस दिन अचानक ही वे घर पर आये तो विष्णु पंडित फूले नहीं समाये और अपनी इच्छा भी प्रकट करदी। इस पर खाँ साहेब ने कहा—"मैं दरबार की नौकरी छोड़कर अब यहीं रहने के लिये आया हूँ और आज से ही शंकर की तालीम शुरू करूंगा।" इस प्रकार निसार हुसेन से शंकर पंडित संगीत शिक्षा ग्रहण करने लगे और तन-मन से उनकी सेवा करने लगे। पं० शंकरराव जी के यहां ४-५ वर्ष रह उन को आपने अपनी सम्पूर्ण विद्या का भंडार दे दिया। वृद्धावस्था में खाँ साहेब स्पष्ट रूप से कह देते थे कि मेरी जवानी का गाना सुनना हो तो शंकरराव का गाना सुनो। परदा डालकर सुना जाये तो मुझ में और शंकरराव में कोई फर्क नहीं बता सकता।

उस्ताद निसार हुसेन कुछ सनकी तबियत के थे। आप कहा करते थे कि मैं असल में ब्राह्मण हूँ और मेरा असली नाम तो "सुलतान भट्ट" है। मुसलमान के घर सिर्फ गाना सीखने के लिये मैंने जन्म लिया है। वे प्रायः पंडिताई ढंग की धोती बाँधकर जनेऊ के कई जोड़ा भी लटका लिया करते थे और जब कभी मौका आ जाता तो संस्कृत के श्लोक उच्चारण करके लोगों को आश्चर्य चकित कर देते थे। निसार हुसेन ब्राह्मणों से विशेष प्रेम करते थे और ब्राह्मण बालकों को संगीत शिक्षा देने के लिये हमेशा तत्पर रहते थे।

कहा जाता है कि कलकत्ते में एक बार बंगाल के तत्कालीन गवर्नर के यहाँ आपके गाने का प्रोग्राम हुआ, तो आपने एक गाना ऐसा गाकर सुनाया, जिसमें ग्वालियर से कलकत्ते तक के खास-खास स्टेशनों के नाम बड़े मजेदार

ढंग से आ गये । गवर्नर साहेब इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । गाना समाप्त हो जाने के बाद गवर्नर ने पूछा खाँ साहब आपको क्या चाहिये ? तो खां साहेब ने जवाब दिया, "साहब मुझे तो रेल में बैठने का शौक है" यह सुनकर गवर्नर ने कहा-"अच्छा आप रेल में खूब बैठिये और चाहें जहाँ जाइये ।" कहा जाता है कि गवर्नर ने उनके लिये एक पहले दर्जे का और दो दूसरे दर्जे के फ्री पास तमाम भारत में कहीं भी आने जाने के लिये दिलवा दिये ।

खां साहेब निसार हुसैन के पास पुरानी चीजों का एक विशाल संग्रह था । आप प्रत्येक ढंग की गायकी सफलता पूर्वक गाते थे । आवाज़ लम्बी, दमदार तथा प्रभावशाली थी इसलिये दो सप्तक वाली तान बड़ी आसानी से घुमा लेते थे । ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी टप्पा, भजन, दादरा आदि सब कुछ गाते थे ।

आपके शिष्य समुदाय में श्री शंकरराव पंडित, भाऊ राव जोशी, शंकरराव हरदेकर, रामकृष्ण बुवा वझे आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । संगीत के इस प्रसिद्ध कलावन्त का दिसम्बर सन् १६१६ ई० में, ग्वालियर में देहावसान हो गया ।

★

निसार हुसेन खां (बदायूं)

सन् १६०६ ई० के लगभग बदायूँ में उस्ताद फिदा हुसेन खाँ के घर में आपका जन्म हुआ। संगीत शिक्षा का आरम्भ ५ वर्ष की ही आयु में इनके बाबा हैदरखाँ के द्वारा हुआ। ११ साल की उम्र में अपने बाबा के साथ आप दिल्ली आये यहाँ पर आपका गायन सुनकर बड़ौदा के एक यूनानी संगीतज्ञ मि० फ़ेडलिस्ट की सिफ़ारिश पर महाराज शेवाजीराव अपने साथ इन्हें दरबार में लाये। और यहाँ आकर आपने अपने पिता से पुनः संगीत शिक्षा आरम्भ की।
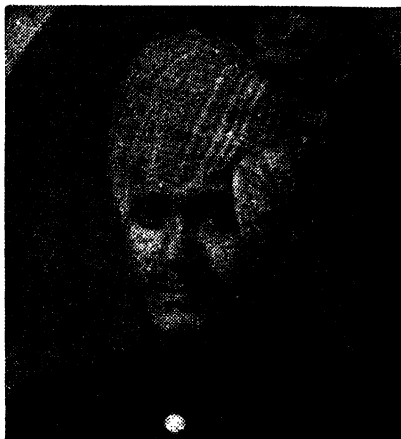
आप सेनी घराने के संगीतज्ञ हैं। इनके गायन में गमक, बोलतान और सरगम की बड़ी विचित्रता है, आपकी गायकी में स्थाई अन्तरों का भराव बड़े सुन्दर स्वर विस्तार के साथ होता है। आवाज में स्वच्छ प्रकार का आकार, मन्द्र षडज से अति तार सप्तक के षडज तक की तानों की सफाई, सरगम, नवीनता, बोलतान का अनूठापन, कठिन स्वर समुदायों की तानें तथा दानेदार तानें आपकी कला में विशेष आकर्षक ढंग से पायी जाती हैं। उ० बहादुरखाँ के रबाब के नोम तोम आलाप की झलक आपकी कला में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मींड़, तार और सूत का काम बड़ी सफाई से आप अदा करते हैं। आपका तराना अत्यंत प्रभावोत्पादक तथा मनमोहक होता है। तराना में जब लय तीव्र हो जाती है तो सितार का काम भी स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। तराना में बोलों की सफाई तथा ज़बान का काम अति तीव्र लय में भी स्पष्ट रूप से सुनने को मिलता है।

आपके ग्रामोफोन रिकार्ड तथा रेडियो रिकार्ड काफी संख्या में विभिन्न रेडियो स्टेशनों में संग्रहीत हैं। देश के प्रमुख रेडियो स्टेशनों से आपका कार्यक्रम प्रसारित होता है। "राष्ट्रीय कार्यक्रम" में भी आपको तीन बार अवसर

प्राप्त हुआ है। देश के प्रायः सभी प्रमुख शहरों के संगीत सम्मेलनों में आप आमन्त्रित रहते हैं। आपके प्रिय राग हैं—मालकोश, देशी, गौड़सारंग।

आपके जीवन की विशेष घटनायें दो हैं। पहिली, शिक्षा के समय आपने सात साल तक केवल गौड़सारंग का अभ्यास किया और दूसरी सन् १९३४ की बात है कि उ० जमालुद्दीन खाँ के निवास स्थान पर एक संगीत कार्यक्रम का आयोजन हुआ। जिसमें उ० फैयाज खां भी उपस्थिति थे। इस कार्यक्रम में खां साहब के गायन का समय एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ के गायन के पश्चात् रखा गया परन्तु प्राचीन प्रथा के अनुसार पूर्व गायक के गायन की समाप्ति पर तानपूरा उलट कर रख दिये गये। इसके माने यह होते हैं कि अब इसके बाद गाना व्यर्थ है और यह कार्य इस बात का सूचक है कि उपस्थित संगीतज्ञों में इससे अच्छी कला प्रस्तुत करने वाले का अभाव है; परन्तु थोड़ी ही देर बाद खाँ साहेब ने बड़ी हिम्मत से तानपूरा सीधा किया और बहुत सोच समझकर राग बसन्त आरम्भ किया और नेत्र बन्द करके करीब १॥ घण्टा तक तन्मयता से केवल आलाप किया। इस आलाप का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? यह बात खां साहेब को तब मालूम हुई जब स्थाई के लिये ताल का संकेत तबले वाले को देने के वास्ते आपने आंखें खोलीं तो सभी श्रोताओं की आंखें आंसुओं से डबडबाई हुई थीं।

उस्ताद निसार हुसेन की उम्र इस समय (१९५६ ई० में) लगभग ८७ वर्ष है। स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण शारीरिक गठन सुदृढ़ और सुन्दर है। बड़ौदा में आपके दैनिक कार्यक्रम का कुछ आभास एक शिष्य ने इस प्रकार दिया है—प्रातःकाल ५ बजे उठकर ५॥ से ८ बजे तक मन्द्र षड्ज की साधना, ८ बजे से ११ बजे तक घर गृहस्थी का कार्य तथा मिलने वालों से भेंट करना। ११ से १२ बजे तक स्नान नमाज आदि। दोपहर को एक बजे खाना तथा २ से ३ बजे तक आराम। ३ बजे से ५॥ बजे तक गाने का रियाज़ अथवा अपने शागिर्दों को तालीम देने का कार्य। शाम को ६ से ८ तक बड़ौदा के स्टेट संगीत कालेज में शिक्षा फिर रात्रि को ९॥ से १२ बजे तक संगीत की बैठकों में भाग लेना।

महाराज सयाजी राव का स्वर्गवास होजाने के पश्चात् आपने बड़ौदा की नौकरी छोड़ दी और अब अपने जन्म स्थान बदायूं में ही रहने लगे हैं। अब तो सदा के लिये बदायूं ही उनका निवास स्थान बन गया प्रतीत होता है। आपके ५ पुत्र और ३ कन्या हैं। आपके प्रमुख शिष्यों में हाफिज अहमदखां, गुलाम मुस्तफा तथा आपके पुत्र सरफराज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

"प्यारे साहब"

प्यारे साहब, अवध के अन्तिम सम्राट नवाब वाजिद अली शाह रंगीले के वंशजों में से थे। मटियाबुर्ज में नवाब साहब ने अपना बंदी जीवन व्यतीत किया था, प्यारे साहब का स्थाई निवास यहीं था और पूरा पता 'गार्डेन रीच' मटिया बुर्ज (कलकत्ता) था।

पहले तो आप केवल शौकिया संगीत प्रेमी ही थे, किन्तु बाद में आपने इसको जीविकोपार्जन का साधन बना लिया। आप विशेषतः गजल और दादरा गायन शैली में पारंगत थे। गायन को समाप्त करने की आपकी पद्धति बड़ी मनोहर और आकर्षक होती थी।

आपने स्वर्गीय महाराज यतीन्द्रमोहन टैगोर की सेवा करना स्वीकार किया जिसके फल स्वरूप उनकी छत्रछाया में रहते हुए आपको भारत के महान संगीतकारों से संगीत कला के अध्ययन का सुयोग प्राप्त हुआ।

हैदराबाद, मैसूर, काश्मीर, भूपाल आदि के महाराजाओं ने और अन्य भारतीय धनियों ने समय-समय पर आपकी संगीत कला से प्रभावित होकर स्वर्ण पदक प्रदान किये।

कहा जाता है कि प्यारे साहब ने संगीत व्यवसाय से प्रचुर धनोपार्जन किया। आज भी आपके गाने के अनेक ग्रामोफोन रिकार्ड सुरक्षित हैं।

आपने अपने गाने की फ़ीस काफ़ी बढ़ा-चढ़ाकर रक्खी थी, यही कारण था कि साधारण जनता आपके प्रत्यक्ष गायन के आनन्द से वञ्चित रह कर ग्रामोफोन रेकर्डों से ही आपकी कला का रसास्वादन प्राप्त कर लेती थी।

पुरन्दर दास

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण में एक उत्कृष्ट और भक्त संगीतज्ञ पुरन्दर दास हुए हैं। महाराष्ट्र में रामदास और तुकाराम को जो स्थान प्राप्त है एवं उत्तर भारत में सूरदास और तुलसीदास की गणना जिस श्रेणी में होती है, दक्षिण भारत में वही स्थान श्री पुरन्दर दास को प्राप्त हुआ। कर्नाटक संगीत पद्धति के आप ही जन्मदाता थे, ऐसा माना जाता है।

आपका जन्म सन् १४८० ई० में पुरन्दर गढ़ नामक उस ऐतिहासिक स्थान पर हुआ जहां किसी ज़माने में शिवाजी का किला था। आपने एक धनी जौहरी परिवार में जन्म लिया था जिसका सम्बन्ध राजाओं तथा बड़े-बड़े धनाढ्यों से था। आपका पूर्व नाम श्रीनिवास था और इनकी जवाहिरात की दूकान थी। पुरन्दर दास प्राय: विजय नगर के राज दर्बार में जाया करते थे, वहां एक दिन इन्हें एक भिक्षुक ब्राह्मण मिला जो इनसे कुछ याचना करने लगा। आपने भिक्षावृत्ति की कटु आलोचना करते हुए उसे फटकार दिया, तब उस भिक्षुक ने अपने अपमान का बदला लेने के लिये एक विचित्र चाल चली। वह पुरन्दर दास की पत्नी के पास पहुँचा और अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने लगा। देवी का कोमल हृदय पिघल गया, उसने अपनी नथ (नकफूल) उतारकर उस भिक्षुक को दे दी। वह उस नथ को लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ और नथ में से मोती निकालकर पुरन्दर दास की दुकान पर पहुंचा और कहने लगा, मैं इस मोती को बेचना चाहता हूँ। वह मोती उन्होंने पहचान लिया कि यह तो मेरी पत्नी की नथ का मोती है। उससे पूछा कि यह तुमने कहां से प्राप्त किया ? तो भिक्षुक ने कुछ ऐसी बातें बनाईं जिनसे पुरन्दर दास को अपनी पत्नी के चरित्र पर कुछ शंका

हुई। जब उन्होंने घर जाकर पत्नी से इस विषय में कहा सुनी की तो निर्दोष पत्नी ने मिथ्या आरोप एवं अपमान से दुखित होकर आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया, किन्तु आत्म हत्या से पूर्व ही एक विचित्र घटना घटी कि वह नथ किसी प्रकार लौटकर पत्नी के पास आगई और उसका मोती जिसे पुरन्दर दास ने प्रमाण स्वरूप दुकान की तिजूरी के ताले में बन्द करके रक्खा था, ताले में से ग़ायब होकर नथ में यथा स्थान पर पहुंच गया।

इस विचित्र घटना से पुरन्दर दास की श्रद्धा अपनी पत्नी पर बहुत बढ़ गई और वे अपनी दूषित शंका को धिक्कारने लगे। उसी समय से उनके जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। अपना सब धन उन्होंने गरीब और अनाथों में बांट दिया और भगवत् भजन एवं साधना में रत होकर संगीत अराधना करने लगे।

पुरन्दर दास जी ने हजारों गीतों की रचना की। राग नियम और लक्षण गीत भी बनाये। सरगम की प्रथम पाठमाला जो दक्षिण में प्रारम्भिक विद्यार्थियों को सिखाई जाती है, उसके आविष्कारक पुरन्दर दास ही थे। यह रचना माया मालव गौड़ राग के रूप में है। उत्तर हिन्दुस्तानी पद्धति में जो स्वर भैरव राग के हैं वे ही स्वर दक्षिणी पद्धति में मालव गौड़ राग में हैं।

७२ थाटों के जनक यद्यपि व्यंकटमखी पंडित माने जाते है, किन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि पुरन्दर दास जी व्यंकटमखी से बहुत पहले हुए हैं और पुरन्दरदास जी के एक गीत में "छत्तीस रागों के दुगने" ऐसा वाक्य मिलता है, इससे सिद्ध होता है कि व्यंकटमखी से पहले थाट पद्धति का ज्ञान आपको था। दक्षिण के प्रसिद्ध विद्वान त्यागराज ने अपनी एक कृति में पुरन्दरदास जी की महत्ता स्वीकार करते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। पुरन्दरदास का संगीत भक्तिमय, आध्यात्मिक और सात्विक था। उनके भजनों का हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ता था। उन्होंने तालों को नियमबद्ध करके दक्षिणी संगीत में एक चमत्कार पैदा कर दिया। पुरन्दरदास की रचनाएं विलम्बित, मध्य और द्रुत तीनों लयों में पाई जाती हैं, अतः दक्षिण का संगीत समुदाय अब तक आपकी रचनाओं से लाभ उठा रहा है और उठाता रहेगा।

पुरन्दरदास ने अपनी समस्त कृतियों की रचना सीधी-सादी लोक भाषा में की थी, इसी कारण उसे साधारण व्यक्ति भी ग्रहण करने में समर्थ हुये।

जिस प्रकार हमारे यहां सूर और तुलसी के पद गरीबों की झोंपड़ी से लेकर अमीरों के महलों तक प्रवेश कर गये हैं उसी प्रकार दक्षिण में पुरन्दरदास और त्यागराज की रचनाएं जन साधारण के अन्तर में प्रविष्ट होगई हैं।

पुरन्दरदास ने एक महान् संगीतज्ञ और वाग्गेयकार के रूप में हजारों कीर्तन, गीत, प्रबन्ध आदि रचे थे, जिनमें से आजकल लगभग ८०० प्राप्य हैं। आपकी रचनाएं कन्नड़ भाषा में हैं, जो वेद और उपनिषद् के गूढ़ रहस्यों को सरलता पूर्वक प्रगट करती हैं। इस प्रकार पुरन्दरदास जी कर्नाटक संगीत के पितामह कहे जाते हैं। आप सन् १५६६ ई० के लगभग निर्वाण प्राप्त कर गये।

★

प्रसिद्धू मनोहर

भारत की पावन भूमि काशी (बनारस) जहां अपनी धार्मिकता एवं पवित्रता के लिये प्रसिद्ध है, वहाँ यह नगरी कला के क्षेत्र में भी पीछे नहीं रही। यहाँ भारत–प्रसिद्ध तबला वादकों के अतिरिक्त गायक भी बड़े बड़े नामी हो गये हैं। ऐसे ही कलाकारों में प्रसिद्धू मनोहर का नाम भी उल्लेखनीय है। यह दोनों भाई साथ–साथ जुगलबन्दी के रूप में गाते थे जो अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कलाकार माने जाते हैं। कहा जाता है कि इनके संगीत आश्रम का खर्च काशी नरेश स्वयं चलाते थे और ये दोनों भाई विभिन्न स्थानों पर घूम घूम कर संगीत कला का प्रचार किया करते थे।

इनके पिता श्री ठाकुर दयाल ख्याल के प्रवर्तक अदारंग–सदारंग के शिष्य थे। ३०–३५ वर्ष तक संगीत की कठिन साधना करने पर भी जब इन्हें कला सिद्धि होती हुई दिखाई नहीं दी तो आत्म ग्लानि का अनुभव करके ठाकुर-दयाल एक दिन आत्म हत्या करने पर उतारू हो गये। सामने ही गणेश जी की मूर्ति थी, जिसका बड़ी श्रद्धा से यह पूजन किया करते थे। बताया जाता है कि आत्म हत्या का आयोजन करते ही आकाशवाणी हुई कि "तुम्हारी संगीत आकांक्षा तुम्हारे पुत्र पूर्ण करेंगे।"

ठाकुर दयाल के तीन पुत्र हुये—मनोहर मिश्र, हरिप्रसाद मिश्र और विश्वेश्वर मिश्र। इनमें से हरिप्रसाद जी अपनी प्रसिद्धि के कारण प्रसिद्धू मिश्र के नाम से विख्यात हुये। गायन की प्रारम्भिक शिक्षा आपने अपने पिता ठाकुर–दयाल से ही प्राप्त की। बाल्यकाल से ही गायन में रुचि होने के कारण संगीत कला में आप बराबर प्रगति करते रहे और कुछ समय में ही अच्छे गायकों में इनका नाम लिया जाने लगा। अयोध्या के तत्कालीन नवाब सादतअली खां ने इनकी कला से प्रभावित होकर इनको अपना दरबारी गायक नियुक्त किया। सौभाग्य से उन्हीं दिनों टप्पा के प्रसिद्ध गायक शोरी मियाँ से इनका परिचय हुआ। शोरी मियाँ ने इनको ७ वर्ष तक टप्पा गायन की तालीम दी। कुछ समय पश्चात जब दिल्ली पति बहादुरशाह ने इन तीनों भाइयों का नाम सुना तो इन्हें बुलाकर अपनी संगीत सभा में नियुक्त कर लिया तथा स्वयं बहादुरशाह ने प्रसिद्धू जी से संगीत शिक्षा भी प्राप्त की। यहाँ से इनको बहुत सा धन प्राप्त हुआ तथा तीनों भाइयों को तीन गांव भी मिले, जो बनारस जिले में हैं। उन गावों के नाम हैं—शिवपुर, जुड़पुर और परमपुर। बाद में विश्वेश्वर मिश्र को जमींदारी का प्रबन्ध सौंप कर प्रसिद्धू–मनोहर काशी चले आये।

एक बार पटियाला नरेश महाराज महेन्द्रप्रताप सिंह ने ४० दिन का एक विराट संगीत समारोह किया। जिसमें भारत के बड़े बड़े नामी कलाकार लगभग १४०० की विशाल संख्या में उपस्थित हुये थे। देश में जितनी गायन शैलियाँ उस समय प्रचलित थीं उन सब घरानों के प्रतिनिधि इस संगीत समारोह में आमंत्रित थे। यह संगीत समारोह एक प्रतियोगिता के रूप में था, जिसमें यह निर्णय होना था कि इस समय देश में प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के कौन से कलाकार हैं।

पूरे ४० दिन तक यह संगीत अनुष्ठान चलता रहा, किन्तु प्रसिद्ध–मनोहर ने इसमें क्रियात्मक रूप से भाग नहीं लिया और एक तरफ बैठे बैठे सबके गाने-बजाने सुनते रहे। ४१ वें दिन निर्णायक मंडल ने तानरस खां को सर्वश्रेष्ठ गायक घोषित किया, तो महाराज को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि काशी के कलाकार चुपचाप बैठे हुये हैं और इन्होंने अपना संगीत इस सभा में प्रस्तुत नहीं किया है। तब महाराज के आग्रह पर प्रसिद्ध–मनोहर ने उस विशाल समारोह में १४०० कलाकारों के सम्मुख गाना आरम्भ किया। आश्चर्य और कमाल की बात यह थी कि उन्होंने अपना निजी कोई गाना न गाकर उन गवैयों द्वारा गाये हुए १५ गाने हूबहू गाकर सुना दिये, जोकि उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ गायक कहे जा सकते थे। गाने के साथ प्रसिद्ध मनोहर ने हाव–भाव तथा अंग–प्रत्यंगों सहित उन गवैयों की चीजें ऐसी खूबी से अदा करके सुनादीं कि महाराज के साथ के सभी गायक और श्रोतृवृन्द दंग रह गये। महाराज की सम्मति से निर्णय रोक दिया गया। बाद में इन्होंने अपनी गायकी सुनाकर सभी श्रोता और गायकों को विमोहित कर दिया, तब पुनः विचार विमर्श हुआ और प्रसिद्ध मनोहर ही इस प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ गायक घोषित किये गये। सभी ने यह स्वीकार किया कि यह दोनों गायक–बन्धु ही सफल "श्रुतिधर" हैं, जो कण्ठगीत यह सुनते हैं तत्काल ही उसकी हूबहू पुनरावृत्ति करके सुना देते हैं। ऐसे चमत्कार की सामर्थ्य यहाँ किसी और में नहीं है, अतः प्रथम श्रेणी का प्रमाण पत्र इन्हें ही मिलना चाहिये। कहा जाता है पटियाला नरेश महाराजा महेन्द्र सिंह ने इनका शिषत्व ग्रहण करके गुरु दक्षिणा में इनको सवालाख रूपया तथा जवाहिरात भेंट किये।

जब इनकी कला अपनी चरम सीमा को स्पर्श कर रही थी तब यह नैपाल चले गये। और जीवन के अन्तिम दिनों तक वहीं पर दरबारी गायक के रूप में रहे।

★

फिदा हुसेन खां

उस्ताद फिदाहुसेन खां का जन्म सन् १८८३ ई० में रामपुर में हुआ। अपने पिता उ० हैदर खाँ से आपने प्रारम्भिक शिक्षा ली, फिर उ० इनायत हुसेन खाँ तथा मोहम्मद हुसेन खाँ से संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

आपकी आवाज प्रारम्भ में बिल्कुल खराब थी। और इसी कारण कोई भी उस्ताद इनको सिखाता नहीं था। परन्तु आपको लगन अधिक थी, अतः आपने कठिन तपस्या का व्रत लिया और अपने निश्चय के अनुसार रात–रात भर साधना में जुटे रहते थे। आपने करीब १० साल तक केवल स्वर साधना और अलंकारों का अभ्यास किया। आपके मतानुसार रात के रियाज़ से संगीतज्ञ को इन बातों का लाभ होता है:–

(१) ब्रह्मचर्य का पालन सरलता से होता है क्योंकि रात का समय विषय वासनाओं को जन्म देता है और यदि इस समय साधक साधना पर है तो वह इन व्यसनों से बचेगा।

(२) भगवान की आराधना दृढ़ता और लगन से होती है।

(३) साधना के लिये शांत एकान्त वातावरण मिलता है।

(४) और इन सब कारणों से मन केन्द्रित होता है।

आपकी कठिन साधना का ही फल था कि साधना पूर्ण होने के बाद आपको जो आवाज मिली, कुछ लोगों की धारणा है कि आज तक ऐसी चमत्कारिक आवाज फिर नहीं सुनने को मिली। आप अपने पिता के साथ नेपाल गये पर वहाँ भी आप रात को नहीं सोते थे। यहाँ पर आप उ० मुश्ताक हुसेन खाँ के साथ साधना भी करते और इनको बताया भी करते थे। रामपुर से आप बड़ोदा आये और यहाँ पर राज गायक की पदवी पर २० साल तक नौकरी की। यहां पर आप उ० फैयाज खां के समकक्ष थे। सन्–१९४० ई० में रामपुर के नवाब रजाअली खां के निमन्त्रण पर दरबार के

राज गायक हो गये। सन् १९४१ मे आपने रेडियो में प्रोग्राम देने आरम्भ किये और थोड़े ही दिनों बाद रामपुर की नौकरी छोड़कर बदायूं आगये और मृत्यु पर्यन्त यहीं रहे। सन् १९४८ में आपकी मृत्यु हो गई।

रियाज के आप बड़े पक्के थे। आपको संगीत से इश्क था। हर समय तानपूरा आपके साथ रहता था। मृत्यु के समय तक आप रोजाना ६ घण्टे का अभ्यास करते थे। आप हमेशा बहुत ऊँचे स्वर से गाते थे। आपकी आवाज में गांभीर्य तथा गुंजन था। बिना तानपूरा के भी जब आप गाते थे तो एक प्रकार की ऐसी गूँज सुनाई पड़ती थी जैसी तानपूरे से निकलती है। अति तार सप्तक के सां तक जाने में आपको तनिक भी कठिनाई नहीं मालूम होती थी और मन्द्र षड्ज से लेकर अति तार सा तक सभी स्वरों के लगाने में एक ही (Breadth) रहती थी। स्वर को प्रथम और लय को द्वितीय स्थान आप देते थे। आप हमेशा मीनें की गायकी गाते थे और गले की गायकी को दोषमय मानते थे। आपकी आवाज़ उ० हद्दू हस्सू खां की तरह थी। आपके प्रिय राग थे भैरव, यमन, अल्हैयाबिलावल तथा गौड़मल्हार। आपके मुख्य शिष्यों के नाम ये हैं:—

उ० निसार हुसेन खाँ, उ० रशीद अहमद खा, हफीज अहमद खा, गुलाम साबिर, गुलाम मुस्तफा तथा सरफराज।

★

फैय्याज़ खां

उस्ताद फैय्याज खाँ का घराना पहले हिन्दू सम्प्रदाय में ही था। आपके पूर्वज हाजी सुजान साहब का विवाह संगीत सम्राट तानसेन की पुत्री के साथ हुआ था। तानसेन की पुत्री संगीत कला में पारंगत थी अतः पत्नी द्वारा ही पति को संगीत शिक्षा प्राप्त हुई। हाजी सुजान साहब ने १२५ वर्ष की दीर्घायु पाई थी। सुजान साहब के पिता का नाम अलखदास और चाचा का नाम मलूकदास था। कुछ विशेष कारणों से इन्हें हिन्दू धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म ग्रहण करना पड़ा, तभी से यह घराना मुस्लिम धर्म में प्रवेश कर गया।
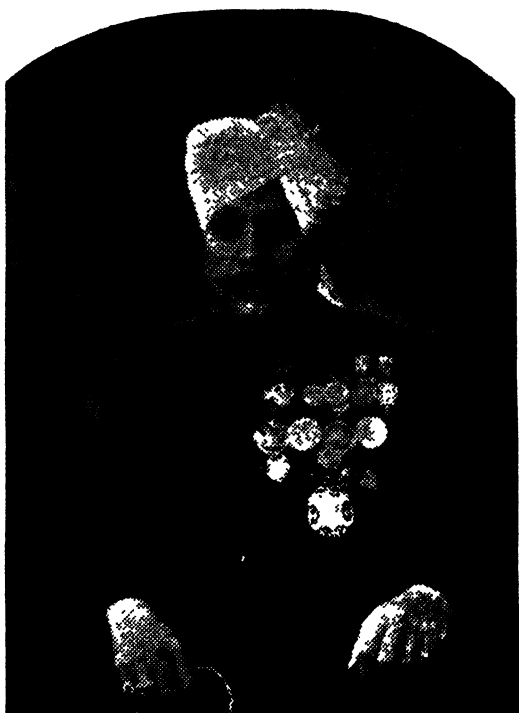
सन् १८८६ ई०, में आगरा में अपने मामा के घर ही फैयाज़ खां का जन्म हुआ था। आपके जन्म से तीन चार महीने पहले ही आपके पिता गुजर चुके थे, अतः आपके नाना गुलाम अब्बास खाँ साहब ने आपका पालन पोषण किया और ५ वर्ष की उम्र से २५ वर्ष तक उन्होंने ही आपको तालीम दी। गुलाम अब्बास आगरा रहते थे, वहीं पर आपके रिश्तेदारों में से नत्थन खाँ (उस्ताद विलायत खाँ के पिता) का सत्संग आपको मिला और इनके चचा फिदा हुसैन कोटा वालों से आपको संगीत शिक्षा प्राप्त हुई। आपके माता-पिता का घराना ध्रुपदियों का होने के कारण वैसे ही संस्कार आपके बनते गये।

मूल रूप में फैय्याज खाँ आगरा निवासी थे। मुहर्रम के दिनों में वे आगरे अवश्य जाया करते थे। इसी कारण फैय्याज खां की शिष्य परम्परा तथा उनकी शैली का गायन आगरा घराने का गायन कहलाता था।

बड़ौदा की नौकरी से पहिले उस्ताद फैय्याज खाँ मैसूर में थे। सन् १९०९ में दरबार से उन्हें एक मैडिल और १९११ में "आफताबे मौसीकी" उपाधि मिली। उसी वर्ष सयाजीराव महाराज की वर्ष गाँठ के अवसर पर खाँ साहब बड़ौदा आये थे। महाराज आपके गाने से बहुत प्रभावित हुये जिसके फलस्वरूप बड़ौदा में दरबारी गवैये के स्थान पर आप नियुक्त हो गये।

सन् १९३५ में अखिल बंगाल संगीत परिषद तथा इलाहाबाद विश्व-विद्यालय ने खाँ साहब को प्रशंसा पत्र देकर सम्मानित किया। बड़ौदा सरकार द्वारा आपको 'ज्ञानरत्न' की उपाधि भी प्राप्त हुई।

कुछ समय बाद दरबार की आज्ञा लेकर खाँ साहब बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, लखनऊ तथा लाहौर रेडियो स्टेशनों से अपने प्रोग्राम ब्रौडकास्ट करते रहे। गाते समय आपके दो शागिर्द रेडियो स्टेशन पर भी साथ रहते जिनसे आपको आलाप में सहायता मिलती रहती थी और रंग भी जमा रहता था।

ध्रुपद तथा ख्याल शैली के इस श्रेष्ठ गायक का अपनी कला पर पूर्ण अधिकार था, फिर भी अपने सरल स्वभाव के कारण श्रोताओं के आग्रह पर ग़ज़ल भी सुना देते थे। उस्ताद की ग़ज़ल सुनकर श्रोता गण आश्चर्य चकित होकर यह सोचते थे कि शास्त्रीय संगीत की जीवन भर उपासना करने वाला यह गायक ग़ज़ल भी किस खूबी से गाता है!

फैय्याज खाँ का व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावशाली था। लगभग ६ फीट का क़द, बड़ी बड़ी छल्लादार मूछें, पुष्ट शरीर, साफा और शेरवानी से वे दूर से ही पहिचाने जा सकते थे। इत्र से उन्हें बहुत मुहब्बत थी। विशेष कर जाड़े के दिनों में हिना की एक शीशी हमेशा उनकी पाकिट में रहती थी। जब कोई परिचित मित्र उन्हें मिलता तब वे इत्र द्वारा उसकी खातिर अवश्य करते।

एक बार एक प्रश्न के उत्तर में खाँ साहब ने फ़रमाया कि संगीत से मनुष्य की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियों को बल मिलता है और जब सच्चा स्वर लगता है तो उसमें खुदा की झलक दिखाई देती है।

तोड़ी, जयजयवन्ती, पूरिया, खट, सिंदूरा, ललित, दरबारी, परज, सुघराई इत्यादि उस्ताद फैय्याज खाँ के प्रिय राग थे। इन रागों में आपकी आलापचारी, तीया लगाने का ढंग, स्वरों की स्थिरता और उलट–पलट तथा फिरकत सुनते ही बनती थी। ठुमरी, गजल और कव्वाली भी खूब गाते थे।

हिन्दुस्थान रिकार्ड कम्पनी ने आपके कुछ रिकार्ड बनाये थे, जिनमें से "झन झन झन पायल बाजे" इस रिकार्ड की तो बहुत ही अधिक बिक्री हुई। संगीत के साथ साथ कविता का भी आपको शौक था। लगभग दो सौ, ढाई सौ चीजों की बन्दिश आपने "प्रेम पिया" नाम से की है। जयजयवन्ती की एक चीज "मोरे मन्दिर अबलों नहीं आये" तथा सुघराई की "ऐ मोरी छोड़ो' आदि चीजों की बन्दिश तो बहुत ही चित्ताकर्षक हुई है। इन चीजों में उनके घराने की गायकी के सभी चिन्ह मौजूद हैं। आपकी शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है, जिनमें से कुछ नाम इस प्रकार हैं:—१–दिलीपचन्द्र वेदी (२) उस्ताद निसार हुसैन (३) बम्बई के अजमत हुसैन (४) प्रिंसिपल रातन-जंकर (५) बशीर खाँ (६) अता हुसैन (७) महताब हुसैन (८) आगरे की प्रसिद्ध मालिका जान इत्यादि।

उपरोक्त शिष्य सुमुदाय ने आपके घराने की गायन शैली को जीवित रखकर आपकी कीर्त्ति को अमर बनाया है।

फैय्याज खाँ जैसा नोम् तोम् शैली का अलाप करने वाला दूसरा गायक भारत में अभी तक पैदा नहीं हुआ। जिन कला मर्मज्ञों ने उनके नोम् तोम् के आश्चर्यजनक अलापों को सुना है वे उन्हें जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकेंगे।

रंगीले घराने के इस यशस्वी गायक का शरीरांत ५ नवम्बर १९५० को बड़ौदा में हो गया। मृत्यु के समय आपकी उम्र लगभग ६४–६५ साल की थी।

★

बक्सू ढाड़ी

बक्सू ढाड़ी ग्वलियर नरेश, राजा मान (१४८६–१५१६) के दर्बार गायक थे। राजा के बाद उनका पुत्र विक्रमाजीत गद्दी पर बैठा, परन्तु यह शीघ्र ही शत्रुओं द्वारा पराजित होगया और गद्दी हाथ से निकल गई। इस परिवर्तन के कारण बक्सू को ग्वालियर दर्बार छोड़ना पड़ा। इसके बाद आप कुछ दिनों तक कालिंजर के राजा के आश्रय में रहे। अन्त में आप गुजरात के शासक सुलतान बहादुर के यहाँ पहुँच गये। इसकी राजधानी अहमदाबाद थी। सुल्तान बहादुर गायन प्रेमी होने के साथ–साथ क़द्रदान भी था, अतः उसने बक्सू को सहर्ष अपने यहाँ रख लिया। यहाँ आकर बक्सू साहब को अपने प्रचार एवं विकास का अच्छा अवसर मिला। इसी समय आपने तोड़ी राग का एक नवीन प्रकार तैयार किया, इसको अपने आश्रय दाता बहादुर के नाम पर ही चलाया जो आजकल भी 'बहादुरी तोड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। पर्याप्त अवस्था पाने के उपरांत सन् १६३५ ई० के लगभग आप अहमदाबाद में ही स्वर्गवासी होगये।

पूर्व काल में पेशेवर गायक तथा वादकों को 'धाड़ी' अथवा 'ढाड़ी' कहा करते थे। इन लोगों की एक ख़ास क़ौम थी। वैसे यह लोग प्रारम्भ में हिन्दू थे परन्तु बाद में मुसलमान होगये। ये लोग 'करका' नामक गीत गाया करते थे। उपरोक्त कलाकार बक्सू इसी जाति में पैदा हुए, इसलिये इन्हें बक्सू ढाड़ी कहा जाता था। उस समय कुछ लोग यह भी अनुमान लगाते थे कि बक्सू 'तानसेन' के गुरू होंगे। परन्तु तानसेन का जन्म सन् १५३२ ई० में ग्वालियर में हुआ था, बक्सू साहब १५३५ ई० के लगभग अहमदाबाद में स्वर्गवासी हुए, इसलिये ३ वर्ष के तानसेन ने इनसे क्या सीख लिया होगा? वस्तु स्थिति के अनुसार यह कथन असत्य प्रतीत होता है।

★

बड़े आग़ा

विख्यात संगीतज्ञ बड़े आग़ा सन् १८६२ ई० में बग़दाद में पैदा हुए थे। ७ वर्ष की अवस्था से ही आपको गाने बजाने का शौक लग गया और यहूदी गायकों द्वारा आप संगीत की शिक्षा प्राप्त करने लगे। जब आपकी उम्र ६ वर्ष के लगभग थी तभी आपके पिता और चाचा का देहान्त होगया, इससे इन्हें अपने बचपन में बड़ी कठिनाइयों और मुसीबतों का सामना करना पड़ा। इनकी दयनीय दशा देखकर बग़दाद के एक औलिया फ़कीर ने इन पर दया दिखाते हुए कहा—"बेटा, फ़िक्र मत कर, तू हर दिल अजीज होगा और तेरी इज़्ज़त बढ़ेगी, तेरी जिन्दगी सुफल होगी।"

१५ वर्ष की अवस्था होने पर बड़े आग़ा बग़दाद छोड़कर भारत चले आये। भाग्य से इनकी भेंट राजा नवाब अली लखनऊ वालों से होगई, उन्होंने संगीत के प्रति आग़ा की रुचि देखकर इन्हें हर प्रकार की सहायता प्रदान की और तालीम का भी प्रबन्ध कर दिया। साथ ही अन्य संगीतज्ञों को सुनने तथा उनसे वार्तालाप करने का सुअवसर भी इन्हें प्राप्त हुआ। कुछ समय के लिये आपने स्व० भातखंडे जी से भी संगीत शिक्षा प्राप्त की और उनके अनुभवों से लाभ उठाया। उस्ताद वजीर खाँ का सहवास भी आपको प्राप्त हुआ।

इस प्रकार आग़ा साहेब अपनी आयु वृद्धि के साथ-साथ संगीत कला में उन्नति करते गये। आपने खास तौर पर टप्पा गायन में विशेष रूप से नाम पाया। कहा जाता है कि आग़ा साहेब इतने अच्छे ढङ्ग से टप्पा गाते कि बड़े-बड़े पंजाबी-उस्ताद भी उन्हें मान गये थे।

भारत के विभिन्न संगीत सम्मेलनों के अतिरिक्त विदेशों में भी आप अपनी कला का प्रदर्शन कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। भातखंडे संगीत महाविद्यालय लखनऊ के आप प्रोफेसर रह चुके हैं। आपकी लिखी हुई एक पुस्तक 'गुलदस्तए-नग़मात' भी प्रकाशित हो चुकी है, जिसमें आपकी अच्छी-अच्छी चीजें स्वर-लिपि बद्ध हैं।

★

बड़े गुलाम अली खां

आपका जन्म सन् १९०३ ई० में लाहौर में हुआ। आपका मूल निवास स्थान पंजाब में 'कसूर' नामक गाँव है। इनके पिता अली बख्श और चाचा काले खाँ थे। गुलाम अली खां के तीन भाई बर्कत अली खाँ, मुबारक अली खां, अमान अली खां भी अच्छे संगीतज्ञ हैं।

गुलाम अली खां इन सब भाइयों में बड़े हैं। अपने चाचा काले खाँ साहब से बचपन में इन्होंने संगीत शिक्षा पाई। इसके बाद आप लाहौर चले गये। जब गुलाम अली की उम्र २० वर्ष की थी, उस समय इनके पिता अली बख्श ने दूसरा विवाह कर लिया था। सौतेली मां का व्यवहार इनके प्रति अच्छा नहीं था। साथ ही इनकी सगी माता के प्रति भी सौतेली मां की अनबन रहती थी, इस पर इनकी सगी मां ने एक दिन कहा कि गुलाम अली तू किसी तरह सारंगी ही बजाना सीखले; क्योंकि अब तुझे ही कमाई करके मेरा और अपने छोटे भाई का पेट भरना पड़ेगा। माता की यह बात उनके हृदय में चुभ गई और वे सारंगी बजाना सीखने लगे। सारंगी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्हें जहां-तहां सारंगी बजाने का काम मिलने लगा। उससे जो आमदनी होती, उसके द्वारा माँ-बेटे अपना पेट भरने लगे। सारंगी बजाने के समय में भी ये गाने का रियाज नहीं छोड़ते थे।

कुछ समय बाद गुलाम अली खां बम्बई आये तो वहाँ पर सिन्धी खां से इनकी मुलाक़ात हुई और उनके पास सीखने लगे। उसके कुछ ही दिनों बाद अली बख्श साहब के साथ फिर लाहौर चले गये। पंजाब में कुछ समय तक अपना गाना सुनाने के बाद इनका नाम पहली बार कलकत्ता के संगीत सम्मेलन (सन् १९४०) में प्रसिद्ध हुआ। इसके पश्चात अन्य स्थानों से भी इन्हें निमन्त्रण

मिलने लगे। नवम्बर १९४३ में गया जी की म्यूज़िक कान्फ्रेन्स में और इसी वर्ष कलकत्ता की एक संगीत सभा में, जनवरी १९४४ के बम्बई अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में, नवम्बर १९४४ में बंगाल तथा बिहार में होने वाले संगीत सम्मेलनों में आपने भाग लिया। कई स्थानों पर आपने प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त किये।

सन् १९४५ में महात्मा गांधी ने बम्बई में आपका गाना दो बार सुना और प्रशंसा पत्र दिया। फरवरी १९४६ के अन्त तक ये बम्बई में रहे। इस बीच बम्बई रेडियो स्टेशन से कई बार इनका गाना ब्रौडकास्ट हुआ।

खां साहब अत्यन्त उदार और सरल स्वभाव के हैं। बम्बई में चौपाटी पर जाते समय रास्ते में कोई भिखारी मिलता तो जेब में हाथ डाल कर रेज़गारी या नोट जो कुछ भी आता उसे भिखारियों को दे डालते।

शरीर स्थूल होने के कारण आप झूमते हुये चलते हैं इससे कौतूहल वश आपको देखकर लोग हंसा भी करते हैं; किन्तु इससे उन्हें कोई दुख नहीं होता बल्कि सर्वदा प्रसन्न ही रहते हैं।

आपके डील डौल के अनुसार ही आपका भोजन भी होता है। कहा जाता है कि उनकी खुराक़ साधारण व्यक्तियों से दुगनी, तिगुनी है।

खाँ साहब रियाज़ करने पर बहुत जोर दिया करते हैं। एक बाजा उन्हें विशेष प्रिय है, जिसका नाम है "वाद्य—कानून"। स्वर मंडल से इसकी शकल मिलती जुलती है। इस बाजे पर अपनी सरगमों के साथ आप रियाज़ किया करते हैं। एक बार आप बम्बई के प्रसिद्ध संगीतज्ञ प्रि० देवधर साहब के विद्यालय में पधारे। देवधर जी से आपका अच्छा परिचय था और खुले दिल से उनसे बातें करते थे, कोई बात छिपाने की भावना हृदय में नहीं रहती थी। विद्यालय पहुंच कर बोले, चलिये देवधर साहब तम्बूरा निकलवाइये मैं आपको रियाज करने का ढंग बताता हूँ। तम्बूरा मिलाने के बाद आपने कहा कि मेरे गुरू और चाचा काले खाँ ने अगर मुझे कुछ सिखाया है तो वह है आवाज़ का लगाव। यही एक खास चीज है। फिर आपने देवधर जी से कहा कि पूरी आवाज खोलकर सरगम कहिये और साथ—साथ आप भी बुलन्द आवाज़ से सरगम बोलने लगे। कुछ समय तक इन्होंने इतने जोर से आवाज़ खोली कि सरगमों से ही वह कमरा गूंज उठा। एक तो वैसे ही दमदार आवाज़ और फिर पूरी आवाज़ फेंककर जब सरगम बोलें तो क्या ठिकाना! सरगम

बोलने के बाद आप प्रत्येक स्वर कण युक्त लगाने लगे। सा के साथ रे का कण, तथा ग के साथ मध्यम का। इस प्रकार स्वर लगाते हुये तार सप्तक के षड्ज तक पहुंच गये और फिर उसी प्रकार अवरोह करते हुये मध्य सप्तक के षडज पर आ गये। कण स्वर लगाने का ढंग आपका ऐसा था, जिससे यह मालूम होता था कि षडज को रिषभ का धक्का लग रहा है। इसके पश्चात् आपने उल्टे कण लगाना शुरू किया तथा बराबर वाले स्वर का कण न लगाकर तीसरे स्वर का कण लगाने लगे। अर्थात् ग पर स का कण, म पर रे का कण, प पर ग का कण इत्यादि। खां साहब का कहना है कि अपने भारतीय संगीत में कण युक्त स्वर लगाने का बड़ा महत्व है। आवाज का लगाव यानी Voice Production यही गायकी का सर्वस्व है। जिस प्रकार अन्य वस्तुओं के कण भीगते–भीगते नरम हो जाते हैं वैसे ही आवाज़ भी विभिन्न प्रकार से मोड़ मोड़ कर कमानी पड़ती है। आवाज़ लचक और आप से आप बल नहीं खाती, इसलिये कण स्वरों के धक्कों से उसमें लचक और तोड़ मोड़ पैदा करना पड़ता है। महफ़िल में गाने की आवाज़ कैसी रखनी चाहिये यह बात तो अपनी शक्ति और अनुभव से ही जानी जा सकती है। मेरे चाचा काले खां साहेब कहा करते थे कि एक जोरदार तान को पांच, छै अलापों के बराबर दम–सांस की ज़रूरत होती है।

बड़े ग़ुलाम अली की आयु इस समय लगभग ५३ वर्ष की है। आपके दो पुत्र हैं। इस समय आप पाकिस्तान में ही भ्रमण करते रहते हैं। कभी–कभी भारत में संगीत सम्मेलनों में जब आपको निमंत्रित किया जाता है तो आ जाते हैं और थोड़े से दिन में ही अपने प्रेमियों को तृप्त करके पाकिस्तान लौट जाते हैं।

★

बड़े मुन्ने खाँ

आपकी शिष्य परम्परा भी बड़े मोहम्मद खाँ के घराने से सम्बन्ध रखती है। बताया जाता है कि आपके नाना, जिनका नाम सुलेमान खाँ था इसी घराने से तालीम पाये हुए थे।

खाँ साहब अधिकतर ख्याल गाया करते थे, आपकी आवाज़ बड़ी सुरीली और आकर्षक थी और इसी कारण आप अपने जमाने में सारे उत्तर में विख्यात थे। सुन्दर कण्ठ और उत्तम कोटि की गायन पद्धति, यदि किसी कलाकार को उपलब्ध हो जाय तो उसे भाग्यशाली ही कहना पड़ेगा। यह विशेषता मुन्ने खां साहब में थी और इसी चमत्कार के फल स्वरूप उन्हें सारा उत्तर भारत मानता था। आप लखनऊ के निवासी थे अतः आपके विकास में निवास स्थान का वातावरण भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ, क्यों कि लखनऊ प्रारम्भ से ही ख्याल गायकी का गढ़ बना हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (सन् १८१२ ई० के लगभग) आपकी मृत्यु हो गई।

★

बड़े मुहम्मद खां

ख्याल गायकी के प्रतिष्ठापकों में आपका नाम भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। आपका गायन चमत्कार पूर्ण एवं जनमनरंजक होता था। ख्याल गायकों में तानों की तैयारी विशेष गुण माना जाता है। यह गुण आपके अन्दर विशेष रूप से विद्यमान था। कहा जाता है कि उस समय आपके समान तैयार, स्पष्ट और मधुर तान लेने वाला कोई दूसरा गायक नहीं था। मियां की तोड़ी गाने में आप विशेष दक्ष थे।

प्रारम्भ में आप ग्वालियर नरेश के दरबारी गायक रहे। उस समय ग्वालियर दरबार में कई सुप्रसिद्ध गायक रहते थे, जिनमें नत्थन पीरबख्श के प्रपौत्र हद्दू खां—हस्सू खां का नाम उल्लेखनीय है। चूँकि मोहम्मद खां का घराना इन लोगों के घराने से भिन्न था, इसलिये मोहम्मद खां ने हमेशा अपनी गायकी को इन लोगों से बचाने का प्रयत्न किया। फिर भी एक दिन हद्दू खां और हस्सू खाँ ने चोरी से आपका गायन सुन ही लिया और मोहम्मद खां के समक्ष गायन प्रतियोगिता में, भरे दरबार में काफी प्रशंसा प्राप्त की। मोहम्मद खाँ इस घटना से अप्रसन्न हो गये और ग्वालियर दरबार की नौकरी छोड़कर रीवा नरेश के यहां आश्रय प्राप्त किया। यहां भी आपको पर्याप्त यश और सम्मान की प्राप्ति हुई। दीर्घायु पाकर इसी स्थान पर आपका देहावसान होगया।

मोहम्मद खां के चार पुत्र हुए थे, मुरादअली, कुतबअली, मुनव्वर और मुबारक अली। ये चारों ख्याल गायन में दक्ष थे। इनके पिता का नाम शक्कर खाँ था। यह लखनऊ के रहने वाले थे और बहुत उच्चकोटि के गायकों में थे। इनकी भी इच्छा थी कि ख्याल गायन पद्धति को प्रचार में लाया जाय। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये आपने अपने पुत्र मोहम्मद खां को स्वयं गायन-शिक्षा दी थी।

*

बड़े रामदास

श्री भास्कर नंद स्वामी नामक महात्मा ने आपके पिता पं० शिव-नंदन मिश्र के संगीत को सुनकर आशीर्वाद दिया था कि उन्हें बड़ा ही भाग्यशाली पुत्र प्राप्त होगा। ऐसे सिद्ध महात्मा का यह आशीर्वाद कब मिथ्या होने वाला था। ईश्वरानु-कम्पा से पं० शिवनंदन मिश्र के वे शुभ दिन भी आगये जबकि उन्होंने बड़ी धूमधाम से पुत्रोत्सव मनाया।

रामदास जी का जन्म सम्वत १९३३ माघ-कृष्ण पक्ष में, षडतिला एकादशी के दिन हुआ। यही नहीं, महात्मा भास्कर जी ने स्वयं ही बच्चे का नाम करण संस्कार भी किया और इच्छा-नुसार बच्चे का नाम 'रामदास' रखा।

जब इनकी अवस्था पांच वर्ष की हुई तब इनकी विलक्षण बुद्धि तथा संगीत-प्रेम को देखकर, सभी कहने लगे कि यह बालक बड़ा ही प्रतिभा संपन्न तथा कुशल गायक होगा। जहाँ भी संगीत का आयोजन होता, वहां पर आपके पिता आपको ले जाया करते। आप बड़े चाव से संगीत-रस लेते हुए उसमें निमग्न रहते थे। गाने में जब कभी इनके पिताजी नहीं ले जाते थे तो आप हठ पूर्वक रोने लगते।

लगभग दस-बारह वर्ष की अवस्था में आपको बनारस की गुड्डी-परेता का शौक हुआ। लेकिन आपके पिता एक कुशल अभिभावक भी थे इसलिये उनके संरक्षण ने उन्हें पुनः विद्या साधना की ओर उन्मुख किया। कुछ समय बाद जब आप समझदार हुए तो आपको स्वयं ही संगीत से प्रेम हुआ और खेल-कूद छोड़कर हर समय गाने-बजाने में रत रहने लगे।

विशेष शिक्षा तो आपको अपने पिता जी से ही मिली थी। इनके अतिरिक्त इन्होंने अपने श्वसुर पं० जयकरन जी, जिनको लगभग डेढ़हज़ार ध्रुपद

धम्मार याद थे, उन से चार–पाँच सौ ध्रुपद–धमार तथा विभिन्न तालों की चीजों का ज्ञान प्राप्त किया। कहते हैं, आप जिस समय संगीत–साधना में लग जाते थे, उस समय सब कुछ भूलकर आपका ध्यान एकमेव साधना की ओर रहा करता था। इस प्रकार कभी–कभी तो आपकी साधना का समय अठारह घण्टे तक पहुँच जाता था। इस प्रकार तीस वर्ष की अवस्था तक आपकी साधना इसी स्तर पर आरूढ़ रही।

उस समय आपके संगीत की चर्चा प्रत्येक जगह होने लगी। इसी समय आपके पास महाराजा नैपाल का निमन्त्रण आया। जिस समय नैपाल में आपका मधुर गायन प्रारम्भ हुआ महाराज स्वयं और अन्य दरबारी गण मुग्ध हो गये। इसके फल स्वरूप आप वहाँ के राज–गायक के पद पर सुशोभित किये गये। महाराज पटियाला के कुंवर के विवाहोपलक्ष में भी आपको निमंत्रित किया गया। उनकी शादी में अनेक राजा महाराजा पधारे थे उसमें भी आपने अपनी स्वर माधुरी द्वारा सबको विमुग्ध कर लिया था। इस प्रकार आप रामपुर स्टेट आदि में भी बहुत समय तक रहे। आपके संगीत की प्रशंसा स्व० विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर ने नजीबाबाद में "हिन्दू जाति का झंडा" कहकर की थी। इसके अतिरिक्त आपने कई कान्फ्रेन्सों में भाग लेकर अपूर्व सम्मान प्राप्त किया। इस तरह १२–१३ वर्ष तक नैपाल में रहकर पुनः काशी चले आये और भगवान् विश्वनाथ की उपासना तथा संगीत–दान में लग गये।

कहा जाता है कि आपको एक दिन भगवान् विश्वनाथ ने स्वप्न दिया कि वे स्वयं कुछ रचनायें करें। अतः आप अपने इष्टदेव का संबल लेकर रचनायें करने लगे। आपने केवल पद ही नहीं बनाए बल्कि उनकी बन्दिशें भी अत्यंत रोचक और पांडित्य पूर्ण तैयार कीं। इस प्रकार आप पचास वर्ष की अवस्था से ही संगीत विद्या का दान देने में संलग्न हैं। इस समय आपकी अवस्था लगभग ८० वर्ष की है लेकिन प्रातःकाल ४ घण्टे और सायं ६ घंटे, हाथ में माला लिये, बाघम्बर पर आसन जमाए, अपने शिष्यों को गायन–वादन की शिक्षा देते रहते हैं।

आपके रचित–पदों में बड़े ही सुकोमल भावों का समावेश है। शब्दों से ईश्वर–भक्ति तथा संगीत–प्रेम प्रकट होता है। पद के अन्त में प्रायः 'रामदास के मोहन प्यारे' या 'रामदास के गोविन्द स्वामी' जुड़ा रहता है। इस अवस्था

तक भी आपकी स्वर माधुरी में वही ओज, लालित्य और रस मौजूद है । वैसे तो आप चारों अङ्ग के गायक हैं । किन्तु 'ख्याल' पर आपका विशेष अधिकार है । आपकी कुछ महत्वपूर्ण बातें हैं, जिन्हें आप अपने शिष्यों को बताया करते हैं:—

१—गाते समय अपनी वाणी एवं मुद्रा पर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

२—'कहन' अच्छी होनी चाहिये ।

३—"गुरु से कपट मित्र से चोरी" नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि इसका परिणाम भयंकर होता है ।

४—तानों का पिछला मुँह स्पष्ट होना चाहिए ।

५—नशा आदि दुर्व्यसन संगीत–साधना में अत्यन्त बाधक होते हैं ।

६—संगीत से ईश्वर को सहज ही प्रसन्न किया जा सकता है ।

७—अभिमान नहीं करना चाहिए । क्योंकि भक्त प्रहलाद ने हिरण्यकश्यप को दिखा दिया था—"हम में तुम में खड्ग खंभ में, घट–घट व्यापक राम" । अतएव हमारा अभिमान करना राम से द्रोह करना है ।

८—गाना आरम्भ करने के पूर्व आलाप में "ॐ अनंत नारायण नरहरि नारायण" कहना अत्युत्तम है ।

९—संगीत–साधना में जिस दिन अपनी आँखों से स्वयं अश्रु प्रवाहित हो जांय, उस दिन समझना चाहिए कि अब सफलता मिल रही है ।

आपके उत्तराधिकारी पं० हरि शंकर मिश्र गायनाचार्य आपके सुपुत्र हैं । इनके अतिरिक्त आपकी शिष्य परम्परा भी बहुत विशाल है, जिसमें आजकल कई प्रतिष्ठित संगीतज्ञ हैं ।

★

बन्ने खाँ

आपका निवास स्थान ग्वालियर था। सौभाग्य से आपका जन्म ऐसे युग में हुआ जबकि ग्वालियर संगीत की सर्वतोन्मुखी उन्नति का केन्द्र बना हुआ था। इस समय ग्वालियर के शासन की बागडोर महाराजा जयाजीराव शिन्दे के हाथों में थी। हद्दू खाँ और हस्सू खाँ भी उन दिनों गवालियर दरबार में मौजूद थे। बन्ने खाँ का जन्म २५ दिसम्बर १८३५ ई० को नौशहरा नंगली जिला अमृतसर में हुआ। आपके पिता खां साहब अमाम खां एक महान ख्याल गायक कलाकार थे।

बन्ने खाँ को बाल्यावस्था में ही प्रगति करने की ऐसी राह मिल गई जो किसी को प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल पाती। बन्ने खाँ जब बालक ही थे, उस समय उनकी भेंट ग्वालियर दरबार के प्रसिद्ध गायक हद्दू खाँ साहब से हुई। गरीब घराने का यह मुसलमान बालक पहिली मुलाकात में ही खां साहब हद्दू खाँ की निगाहों में समा गया। खां साहब इस बालक पर महरबान हो गये और बन्ने खाँ को अपने घर रख लिया। बन्ने खां भी बड़े प्रतिभावान एवं कुशाग्र बुद्धिवाले थे, अतः शीघ्र ही सेवा सुश्रूषा एवं आज्ञा पालन के गुणों द्वारा हद्दू खां साहब के हृदय में अपने लिये उन्होंने स्थान प्राप्त कर लिया। खाँ साहब ने प्रसन्न होकर इन्हें संगीत की शिक्षा देनी प्रारम्भ करदी। बन्ने खां शीघ्रता से प्रगति करने लगे। रूपवान और गुणी होने के कारण इनका व्यक्तित्व भी दिन पर दिन प्रखर होने लगा। अब तक खाँ साहब हद्दू खाँ के कोई संतान नहीं हुई थी। अतः खाँ साहब के हृदय में इन्हीं को अपना दत्तक पुत्र बनाने की इच्छा जागृत हुई। लेकिन कुछ दिनों बाद भगवत कृपा से उनके घर पुत्र जन्म हो गया, इसलिए बन्ने खाँ को गोद लेने का विचार समाप्त हो गया।

पुत्रोत्पत्ति के बाद हद्दू खाँ का प्रेम बन्ने खाँ के प्रति कम नहीं हुआ। खाँ साहब ने मुक्त हृदय से बन्ने खां को संगीत की शिक्षा प्रदान की और इनकी शादी करके रहने के लिए एक मकान भी दे दिया। बन्ने खाँ इस समय तक ऐसे महान उस्ताद की खिदमत करके और उनके संरक्षण में गायकी का अभ्यास करते हुए उच्चकोटि के कलाकार बन चुके थे। अतः जीवनयापन (गुज़ारा) के लिए इन्हें किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न हुई। संगीत

के विभिन्न जल्सों में आप निमंत्रित किये जाने लगे, जिनमें भाग लेने के बाद आपको यथेष्ट धन और कीर्ति प्राप्त होती रही। आपके पास विभिन्न अंगों की बहुत सी चीज़ों का विशाल संग्रह था। आप तान बाजी में सुरीलेपन को विशेष महत्व दिया करते थे। उस युग के सभी कलाकार आपकी तैयार और घरानेदार गायकी का हृदय से सम्मान करते थे।

जीवन का बहुत बड़ा भाग ग्वालियर में व्यतीत करने के पश्चात् बन्ने खाँ हैदराबाद दक्षिण की ओर चले गये और १६१० ई० में उधर ही आपका स्वर्गवास हो गया।

बलवतराव केलकर

यह भी अपने समय के एक ख्याति प्राप्त महाराष्ट्रीय गायक हो गये हैं। यह रामदुर्ग के निवासी और श्री अंतू बुआ आप्टे के प्रमुख शिष्य थे। इनके पास परम्परागत घराने दार चीजों का विशाल संग्रह था। यद्यपि यह एक पेशेवर गायक थे, किन्तु इनका रहन-सहन, आचार-विचार एवं लोक व्यवहार सब एक सम्मानीय और सभ्य गृहस्थ के समान थे। बलवंतराव एक उच्चकोटि के ख्याल गायक होने के साथ-साथ संगीत के शिक्षण कार्य में भी निपुण थे। इनके गायन में एक विशेषता थी–यह अपने गले से वीणा के षडज (मंद्र सप्तक) का कार्य बड़ी खूबी के साथ, बिलकुल वैसा ही कर लिया करते थे। इस चमत्कार के द्वारा महाराष्ट्र में आपको यथेष्ट ख्याति प्राप्त हुई। आपके दो पुत्र थे, जो आगे चलकर गायन कला में प्रवीण हो गये। श्री केलकर ने बहुत से शिष्यों को भी संगीत की शिक्षा दी; इस प्रकार संगीत के क्षेत्र को अपनी सेवाओं द्वारा समृद्ध बनाते हुए, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इनका शरीरान्त हो गया।

★

बहराम खाँ

माहाराज सवाई रामसिंह के शासन काल में जयपुर नगर संगीत का केन्द्र बना हुआ था। उन दिनों वहां पर बहुत से गायक, वादक एवं नर्तक मौजूद थे। इन लोगों में धाढ़ी घराने का एक बहुत उच्चकोटि का संगीत विद्वान एवं संगीत शास्त्रज्ञ व्यक्ति भी था, जिसका नाम था बहराम खाँ। बहराम खाँ की आवाज़ यद्यपि विशेष मधुर और आकर्षक नहीं थी तथापि इन्हें संगीत शास्त्र की विस्तृत जानकारी थी। आपने बारह वर्ष तक काशी में रह कर अनेक संगीत ग्रंथों का अध्ययन किया था। इनकी गायकी भी बड़ी मंजी हुई, शोधपूर्ण एवं प्रमाण-युक्त थी।

इन्होंने अपने युग में बहुत से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध रागों की चर्चा करने के बाद जयपुर की एक विशिष्ट गायन पद्धति का निर्माण किया, तब से जयपुर के संगीतज्ञ इन्हीं के पद चिन्हों पर चलने लगे। जयपुर में वही पद्धति आज भी परम्परा के रूप में चली आ रही है। वहाँ के गायक आज भी बहराम खां के नाम का बड़ा सम्मान करते हैं। दीर्घ आयु प्राप्त करके आपकी मृत्यु सन् १८५२ई० में हो गई। बहराम खाँ की शिष्य परम्परा भी बहुत विस्तृत है।

बहराम के प्रमुख शिष्यों में उनके सुपुत्र ज़कीरुद्दीन और अलाबन्दे तथा हैदरबख्श और आलमसेन प्रमुख हुए। मुसलमान होते हुए भी बहराम खाँ के समस्त आचरण हिन्दू धर्मानुसार थे।

★

ब्रह्मानन्द गोस्वामी
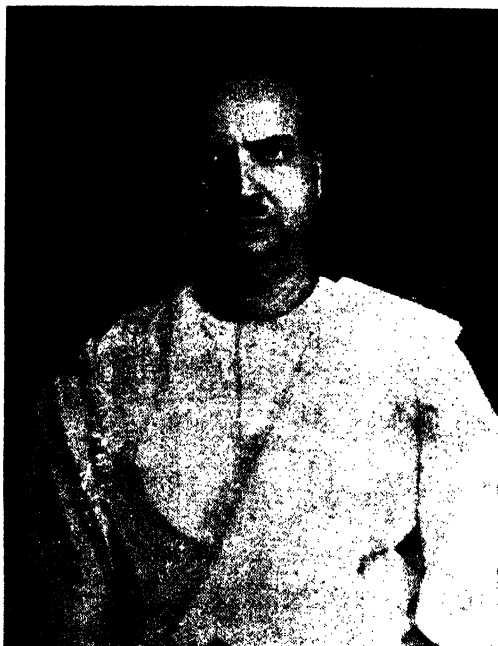
आपका जन्म ८ फरवरी सन् १९०७ ई० को हैदराबाद सिंध में हुआ था। आपके पितामह गो० घनश्याम गिरि सिंध में मठाधीश और एक श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे। आपके पिता संगीताचार्य महन्त चैतन्य देव जी कंठ संगीत, सितार वादन तथा मृदङ्ग वादन में विख्यात थे। उन्होंने मृदङ्ग की शिक्षा नाना साहब पानसे के घराने मे प्राप्त की थी।

ब्रह्मानन्द जी जिस समय २।। वर्ष के थे उसी समय आपकी माता जी का स्वर्गवास हो गया। आपके पिताजी ने आपको ५ वर्ष की आयु में ही ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रविष्ट करा दिया। तीन साल तक आश्रम में रहने के बाद अपने पिताजी के पास लौट आये, इसके बाद १८ वर्ष की आयु में आपने एन० एच० एकैडमी हाई स्कूल हैदराबाद से मैट्रिक किया।

बालक ब्रह्मानन्द को संगीत के संस्कार अपने पिता से ही प्राप्त हुये थे। पिताजी के मठ में आने वाले कलाकारों को सुनते रहने से चार वर्ष की छोटी सी आयु में ही आपकी संगीत निष्ठा बलवती होगई।

ब्रह्मानन्द की प्रतिभा तथा सुमधुर कण्ठ से आकर्षित होकर अनेक कलाकारों ने आपको संगीत सिखाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु इनके पिताजी ने धन्यवाद के साथ उन गवैयों की इस उदारता को अस्वीकृत कर दिया

और वे स्वयं ही आपको संगीत शिक्षा देने लगे। पिता के अनुशासन में बालक ब्रह्मानन्द को प्रातःकाल ४ बजे ही उठना पड़ता और नित्यक्रम से निवृत्त होकर वे अपने पिता के निरीक्षण में संगीत का अभ्यास करते। इसके साथ ही साथ उन्हें गीता तथा रामायण का भी पाठ करना पड़ता।

कुछ समय में ही ब्रह्मानन्द ने संगीत में अच्छी उन्नति करली। कण्ठ संगीत के अतिरिक्त विभिन्न वाद्यों को बजाने में भी आप कुशल होगये। सितार आपका प्रिय वाद्य है, मृदङ्ग तथा तबला वादन में भी आप प्रवीण हैं। सन् १९३३ के लगभग आपने सिंधी भाषा में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के रागों के कुछ ग्रामोफोन रेकार्ड भी दिये। आपकी संगीत सम्बन्धी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं (१) संगीत सार प्रकाश प्रथम भाग (२) संगीतसार प्रकाश दूसरा भाग और (३) संगीत रसिकावली। सन् १९४७ के दंगे में आपने सिंध प्रान्त छोड़ दिया। आजकल आप जयपुर में निवास कर रहे हैं।

संगीत आपका स्वतंत्र व्यवसाय है। आप सामवेदी परम्परा के संगीतज्ञ हैं। अपनी परम्परा के संगीत का प्रचार करने के हेतु सन् १९२५ के लगभग आपने सिंध में श्री० नाद ब्रह्म विद्यालय खोलकर अनेक विद्यार्थियों को कुशल गायक बनाने का श्रेय प्राप्त किया है। यह विद्यालय सन् १९४७ तक सुचारु रूप से चलता रहा। आपके ४ पुत्र तथा २ पुत्रियां इस समय उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। संगीत की शिक्षा आप उन्हें स्वतः प्रदान कर रहे हैं। आपकी पुत्री कुमारी चन्द्रकान्ता तथा पुत्र चि० मोहन कुमार तैयारी के साथ गाते बजाते हैं।

गोस्वामी जी ने भारत भ्रमण करके विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर अक्षय कीर्ति प्राप्त की है।

*

बाई नार्वेकर

कारवार जिले में अंकोला नामक एक शहर है, यहीं पर आपका जन्म सन् १९०५ ई० में हुआ। आप मराठा जाति की काश्यप गोत्रीय महिला हैं।

आपके पिता का नाम है श्री सुब्बराव नाडकर्णी और माता जी का शुभ नाम है श्रीमती सुभद्राबाई। आपकी माता जी प्रसिद्ध गायिका थीं अतः ध्रुपद धमार आदि कठिन गायन प्रकार माता जी से ही इन्हें प्राप्त हुए। बाई नार्वेकर की संगीत शिक्षा प्रथम बार इनकी माता जी से ही आरम्भ हुई बाद में स्व० बालकृष्ण बुआ, मुहम्मद खाँ, नत्थन खाँ, शालिगराम बुवा आदि से भी शिक्षा पाई। अन्त में आपकी संगीत साधना विशेष रूप से श्री विलायत खाँ के द्वारा हुई, जिनके पास आपने १२ वर्ष तक तालीम ली। इसके फलस्वरूप आपकी आवाज़ में अच्छी दमदारी आगई। आजकल जो कुछ आप गाती हैं उस पर उस्ताद विलायत खाँ की गायकी की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

प्रायः सफ़ेद पांचवीं पट्टी में आप गाती हैं। दोपहर को ३ घंटे नित्य प्रति अभ्यास करने की प्रथा का पालन आप गत २०

साल से कर रही हैं। पहले आपका शौकिया संगीत प्रेम था किन्तु अपनी दमदार आवाज़ तथा विशिष्ट प्रभावशाली गायकी से आप शीघ्र ही जनता में लोक-प्रिय हो गईं। और अब तो संगीत आपका व्यवसाय ही हो गया है।

दिल्ली, इलाहाबाद, बड़ौदा, इन्दौर आदि बड़े बड़े शहरों में आपके संगीत कार्यक्रम कई बार हो चुके हैं। आपकी शिष्या कु० शालिनी नार्वेकर ने भी यथेष्ट प्रगति की है।

श्रीमती नार्वेकर का मत है कि प्रचलित संगीत में सुधार तो हो ही रहा है, किन्तु आज का फ़िल्म संगीत हमारे शास्त्रीय संगीत का गला घोंटकर उसे गिरा रहा है। जब तक हमारी सरकार सिनेमा संगीत के भद्दे गायनों को कानून द्वारा हटा देने का प्रयत्न न करेगी, तब तक भारत की स्वतन्त्रता का आनंद शास्त्रीय संगीत प्रेमी और गायक नहीं ले सकते।

★

बाज बहादुर

अपने सम्मान की सुरक्षा के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देने वाले राजा बाज बहादुर का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिये। यह मालवा राज्य के अंतिम शासकों में थे। इनका राज्य काल १५५४ ई० से १५६४ ई० तक माना जाता है।

इनकी पटरानी का नाम रूपमती था। रूपमती अत्यंत रूपवान होने के साथ–साथ संगीत कला में भी प्रवीण थी। राजा को भी संगीत से विशेष प्रेम था। इसके अतिरिक्त यह दम्पति काव्य कला में भी दक्ष था। संगीत की स्वर-लहरियों से युक्त एक दूसरे को आपस में कविताएं सुनाना इनके जीवन की एक बहुत बड़ी रंगीनी कही जा सकती है। ऐसी भी किंवदन्ती है कि अपने राज्य में रानी रूपमती ने भूपाली राग को बहुत लोक प्रिय बनाया। कुछ भी सही, इसमें सन्देह नहीं कि इन लोगों ने ख़्याल गायन के प्रचार एवं उसे लोकप्रिय बनाने में काफ़ी परिश्रम किया। ख्याल गायन के जन्मदाता एवं प्रचारकों में राजा बाजबहादुर का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। जिस प्रकार ध्रुपद की चार वाणियाँ प्रसिद्ध हैं; उसी प्रकार ख़्याल गायन की भी कुछ वाणियाँ हैं, उनमें से एक वाणी का नाम 'बाजरवाणी' भी है। यह नाम इसी राजा के नाम पर प्रचलित हुआ।

एक बार बहादुरशाह के दर्बारी गायक मान ख़ां ने अकबर बादशाह के सम्मुख रानी रूपमती के सौंदर्य तथा संगीत पटुता की प्रशंसा की। फिर क्या था, विलासी अकबर ने राजा बाजबहादुर के पास तुरन्त फर्मान भेजा कि रूप-मती को फ़ौरन दिल्ली भेज दो। उत्तर में बाज बहादुर ने इस आज्ञा के बिल्कुल विपरीत लिखा कि "बादशाह सलामत! अपने हरम में से आप ही कोई ख़ूबसूरत और संगीत प्रवीण स्त्री मेरे पास भेज दें।" उत्तर पढ़कर अकबर की क्रोधाग्नि भड़क उठी और उसने सन् १५६४ ई० के लगभग मालवा पर चढ़ाई करदी। कहां दिल्ली का शाहंशाह कहां एक छोटा सा राजा? आख़िरकार युद्ध में बाज बहादुर मारे गये और उनकी पटरानी रूपमती ने आत्म–हत्या कर ली।

★

बाबा दीक्षित

मियाँ हस्सू खाँ के शिष्यों में से बाबा दीक्षित एक उच्चकोटि के ख्याल गायक हो गये हैं। आपका निवास स्थान अहमद नगर जिले के अन्तर्गत श्री गोन्दे नामक नगर था। इस छोटे से नगर को किसी समय राजधानी जैसा वैभव प्राप्त हो गया था क्योंकि शिन्दे सरकार ने राजमहल आदि बनवा कर यहाँ अपना थाना कायम किया था। यहाँ की घुड़साल (अस्तबल) में ही बाबा दीक्षित के पिता कर्मचारी थे। घुड़साल के पास ही हद्दू खाँ और हस्सू खाँ का निवास स्थान था। यह लोग जब रियाज़ किया करते थे तो बाबा दीक्षित वहाँ बैठकर बड़ी देर तक सुना करते। इन्हें आवाज़ की ईश्वरीय देन थी। ऐसी पहलदार, भरी हुई और मधुर वाणी हर एक को नसीब नहीं होती। गाना सुनते सुनते आपको आश्चर्य जनक अनुकरण शक्ति प्राप्त हो गई थी। गाना सुनना और अपने अस्तबल में लौटकर सुनी हुई चीज़ों को दुहराना तथा उनका रियाज करना आपका दैनिक कार्यक्रम बन गया था।

एक बार हद्दू खां–हस्सू खां के समक्ष बाबा दीक्षित ने उनके यहां आये हुए एक बहुत उच्चकोटि के गायक की ऐसी हूबहू नकल करके सुनाई कि सभी आश्चर्य चकित हो गये। उत्तम आवाज़ और अलौकिक प्रतिभा देखकर हस्सू खां साहब इन पर प्रसन्न हो गये और विधिवत संगीत–शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। गुरु कृपा से अल्पकाल में ही बाबा दीक्षित बड़े योग्य, मधुर एवं प्रभावशाली गायक बन गये। एक बार महाराज के समक्ष आपका गायन हुआ। गायन समाप्त होने के पश्चात् सभी लोगों को यह कहते हुए सुना गया कि ऐसा गाना आज तक नहीं सुनने में आया। यह बात खां साहेब हद्दू खां को खटक गई और उन्होंने कपट पूर्वक गुरु दीक्षा में बाबा दीक्षित से महाराज के सम्मुख न गाने का वचन ले लिया, ब्राह्मण का वचन ही जो ठहरा। इस घटना के बाद बाबा दीक्षित ने फिर कभी महाराज के सम्मुख अपना गायन प्रस्तुत नहीं किया। यदि कोई अवसर आया भी तो उसे बुद्धिमानी के साथ टाल गये। कुछ दिनों बाद महाराज को इस घटना का पता भी लग गया किन्तु लोगों के कथनानुसार महाराज ने इस ब्राह्मण के वचन की रक्षा की और चोरी से बाबा के घर के नीचे कई बार उनका गाना सुना।

वृद्धावस्था में आप काशी निवास करने चले गये। यहां भी आपका यथेष्ट सम्मान हुआ। सन् १८८३ ई० के लगभग बाबा दीक्षित काशी में ही स्वर्गवासी हो गये।

★

बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर

उत्तम गायक एवं गायन कला मर्मज्ञ श्री इचलकरंजीकर अखिल भारत के संगीत कला कोविदों की प्रथम श्रेणी में गिने जाते हैं। प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० विष्णु-दिगम्बर पलुस्कर के गुरु होने का सौभाग्य आपको प्राप्त है। आपका जन्म कोल्हापुर के पास चन्दूर नामक ग्राम में रामचन्द्र बुवा के यहां सन् १८४९ ई० में हुआ था। आपके पिता स्वयं एक अच्छे

गायक थे। अतः आपके हृदय में भी बाल्याकाल से ही संगीत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो गई थी। पांचवें वर्ष में प्रवेश करते ही आपकी शिक्षा इसी गांव में आरम्भ हो गई। आपके पिताजी की प्रबल इच्छा थी कि इस बालक को संगीत की शिक्षा दी जावे, किन्तु बालकृष्ण की माता जी इसके विरुद्ध थीं। उनका विचार था कि इतनी छोटी उम्र से इस बालक को संगीत शिक्षा देना ठीक न होगा। इसी प्रश्न को लेकर पति-पत्नी में कुछ दिन झगड़ा चलता रहा और इसी विवाद में तीन वर्ष निकल गये। दैव इच्छा से आपकी माता जी का असमय में ही देहावसान हो गया और फिर अपनी संगीत जिज्ञासा पूरी करने के लिये आप भ्रमण को निकल पड़े।

घर छोड़कर आप म्हैसाल पहुंचे। यहां पर विष्णु बुआ जोगलेकर नामक एक प्रसिद्ध गायक रहते थे। उन्होंने इस संगीत जिज्ञासु बालक को आश्रय दिया। इस समय बालकृष्ण की आयु केवल दस वर्ष की थी। मधुर आवाज़ और संगीत साधना की इच्छा इन दो विशेषताओं के साथ एक प्रसिद्ध गायक का शिक्षण यह तीसरी विशेषता मिल गई। अतः दो वर्ष में ही बालकृष्ण ने बहुत कुछ सफलता प्राप्त करली। इसके कुछ समय बाद आप अपने पिता जी के आग्रह पर उनके पास चले गये; किन्तु एक वर्ष के भीतर ही आपके पिता जी भी परलोक सिधार गये।

संस्थान के श्री मंत सरकार उफले की बालकृष्ण पर कृपा दृष्टि थी। उन्होंने अनाथ बालकृष्ण को संस्थान बुलवा लिया और वहाँ के स्टेट गायक अलीदत्त खाँ के पास इनकी संगीत शिक्षा का प्रबंध कर दिया; किन्तु खाँ साहब हमेशा अपनी ही धुन में मस्त रहते थे, अतः वहाँ पर भी इनकी विशेष प्रगति न हो सकी।

इसके बाद आप कोल्हापुर गये। वहां के प्रख्यात गायक भाऊ बुआ कागवाडकर की सेवा करके इस जिज्ञासु किशोर ने संगीत कला सीखने का प्रयत्न किया। बालकृष्ण अपने गुरू जी का प्रत्येक छोटे से छोटा कार्य भी करते थे। एक दिन चिलम भरने में कुछ देरी हो जाने पर गुरू जी महाराज इनसे रुष्ट हो गये और कहा कि तुम जैसे नालायक को इस जन्म में संगीत विद्या कदापि नहीं आ सकती। तेजस्वी बालक को इस बात से धक्का लगा, किन्तु इससे विचलत न हो कर तत्काल आपने जवाब दिया ठीक है गुरू जी ! किन्तु देखिये अब मैं इस विद्या में प्रवीण हुये बिना आपको मुँह भी नहीं दिखाऊँगा।

कोल्हापुर से भी आप चल दिये और सांगली पहुंचे, सांगली में पंढरपुर गये और फिर शोलापुर व अक्कलकोट होते हुये—माणिक प्रभु पहुँचे, किन्तु कहीं भी इन्हें अपने ध्येय की पूर्ति के साधन उपलब्ध नहीं हुये। फिर भी इस साहसी बालक ने धैर्य नहीं छोड़ा और अपना भ्रमण जारी रखते हुये औंध, नासिक घूमते हुये लौट कर धार के देव जी बुवा के पास पहुँचे। यहां पर इनकी संगीत शिक्षा की व्यवस्था हो गई। देव जी बुवा अच्छे ध्रुपदिये थे। हद्दू खां, हस्सू खां से इन्होंने ख्याल की तालीम पाई थी, अतः ध्रुपद, धमार, ख्याल और टप्पा इन चारों ही अंगों के आप कलावन्त थे।

इस प्रकार देव जी बुवा के यहां बालकृष्ण की संगीत शिक्षा आरम्भ हो गई। भोजन बनाना, पानी भरना, बर्तन मलना, कपड़े धोना, लकड़ी काट कर लाना, इत्यादि कार्य भी इन्हें स्वयं करने पड़ते थे। संगीत साधना के लिए यह सभी कार्य आप आनंदपूर्वक करने लगे। इनकी संगीत साधना की तीव्र उत्कण्ठा एवं गुरू सेवा ने देव जी बुवा को शीघ्र ही आकर्षित कर लिया। इधर इनकी गुरु पत्नी बड़ी विकट थीं, वह तालीम शुरू होते ही कभी कभी कमरे में घुसकर तानपूरे के तार तोड़ डालती थीं। अथवा पति देव का मुँह अपना हाथ रख कर बंद कर देती थीं। इससे तंग आकर गुरू जी अपने शिष्य को बाहर घुमानें ले जाते और वहीं पर चलते-चलते शिक्षा भी देते रहते, किन्तु यह गाड़ी अधिक समय तक न चली और गुरु पत्नी का स्वभाव भी नहीं बदला, अतः कुछ दिनों में बालकृष्ण जी को यह घर भी छोड़ना पड़ा।

वृक्ष को छोटी अवस्था में इधर-उधर से काट दिया जाता है तो वह और भी वेग से बढ़ने लगता है। इसी प्रकार बालकृष्ण को दुर्दैव के ज्यों-ज्यों थपेड़े लगते गये, इनका उत्साह दुगुना बढ़ता गया। संगीत तपस्या के लिये इन्होंने संकल्प कर लिया और वहाँ से गवालियर को रवाना हो गये। यहाँ पर वासुदेव राव जोशी के पास पहुंच कर गाना सीखने की प्रार्थना की, किन्तु यहां पर भी सफलता न मिली।

बालकृष्ण जी की संगीत यात्रा फिर आरम्भ हुई और स्वप्न में शारदा माता ने उनसे कहा "तू क्यों भटक रहा है काशी क्षेत्र में जा, वहां तुझे जोशी बुवा से स्थाई संगीत शिक्षा मिलेगी।" उधर जोशी बुवा को भी ऐसी ही प्रेरणा मिली कि तुझे इस बालक को संगीत शिक्षा देनी ही चाहिये। फलतः काशी पहुँच कर आप संगीत शिक्षा नियमित रूप से लेने लगे। परिश्रम का

वृक्ष फला-फूला और कुछ ही समय में हमारे बालकृष्ण बुवा गायनाचार्य बन गये। संगीत कला के प्रदर्शनों आदि से आपको जो कुछ पारिश्रमिक मिलता रहा, उसे अपने गुरू जी को ही भेंट करते रहे।

इस प्रकार संगीत प्रवीण होकर तथा गुरू जी का आशीर्वाद प्राप्त करके आपने समस्त हिन्दुस्तान व नेपाल का भ्रमण किया। बम्बई में आपने "गायन समाज" की स्थापना की और "संगीत दर्पण" नाम का एक मासिक पत्र भी चलाया; किन्तु श्वास रोग के कारण बम्बई छोड़नी पड़ी। बाद में आप औंध स्टेट के वैतनिक गवैये हो गये। फिर मिरज के अधिपति से आपकी मुलाकात हुई और उनकी औषधि के द्वारा आपका श्वास रोग भी दूर हो गया। अतः तब से आप मिरज छोड़कर औंध के स्टेट गायक नियत हो गये। प्रातःकाल अपना रियाज करते और दिन में शिष्यों को पढ़ाते; इस प्रकार औंध में आपके काफी शिष्य हो गये। पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, प्रो० अनन्त मनोहर जोशी, श्री नीलकंठ बुवा जङ्गम, श्री वामनराव चाफेकर, प्रो० यशवंत सदाशिव मिराशी, भाटे बुवा, रा० दत्तोपंत इत्यादि प्रसिद्ध कलाकार आप ही के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त अपने सुपुत्र अण्णाबुवा को भी आपने ही संगीत शिक्षा दी।

कुछ समय बाद आपने मिरज छोड़कर इचलकरंजी में स्थाई रूप से राज गायक की पदवी स्वीकार करली। तभी से आप "इचलकरंजीकर" के नाम से प्रसिद्ध हो गये और फिर आपने समस्त भारत वर्ष की यात्रा करके यश प्राप्त किया।

इसी बीच में आपको भारी धक्के लगे, यानी आपके एक मात्र सुपुत्र का निमोनियां से यकायक देहान्त हो गया तदनन्तर आपकी एक सुपुत्री भी चल बसी। इन विपत्तियों से आपके स्वास्थ्य को भारी हानि पहुँची जिसके फल-स्वरूप सन् १९२६ में (शाके १८४८ माघ शुक्ला ८) आप स्वर्गवासी हो गये।

आज आप हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु आपका शिष्य सम्प्रदाय पीढ़ी दर पीढ़ी आपके नाम को अमर बनाये रक्खेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। आपके प्रमुख शिष्य स्व० पलुस्कर जी ने हिन्दुस्तान के घर-घर में संगीत का प्रचार करके संगीत कला का जो उपकार किया वह भुलाया नहीं जा सकता।

बाला भाऊ उमडेकर

आपका जन्म श्रावण कृष्णा ५ सम्वत १९५९ वि० को लश्कर (ग्वालियर) में हुआ। आपके पूज्य पिता जी का नाम श्री नत्थू भैया तथा माता का नाम श्रीमती कमलाबाई है। निजाम हैदराबाद का उमड़ ग्राम आपका खास गाँव है। सम्भव है इसी से उमडेकर नाम प्रसिद्ध हुआ हो। इस गांव के एक प्रख्यात गायक श्री० राजेश्वर राव तैलंग थे, ग्वालियर के महाराजा दौलतराव जी ने इनके संगीत पर मुग्ध होकर लश्कर बुलवाया, तभी से वे ग्वालियर दरबार के आश्रित होगये।

पंडित जी के पिता जी संगीत के अच्छे कलावन्त थे। *जब उमडेकर जी* केवल पाँच वर्ष के ही थे, आपके पूज्य पिताजी स्वर्गवासी होगये, अतः आपकी बाल्यावस्था बहुत कठिनाई में बीती। आपके पालन पोषण का सभी भार श्री० वे० शा० सं० महादेवकर शास्त्री पर पड़ा और वहां से ही इनकी विद्या का श्रीगणेश हुआ। वेद शास्त्र के अभ्यास के साथ-साथ आपने मैट्रिक तक शिक्षा भी प्राप्त की। संगीत का प्रारम्भिक अध्ययन आपने अपने दादा से किया। पश्चात् उस्ताद निसार हुसैन खाँ के पास आपने डेढ़ साल तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद श्री० बाला साहब गुरू जी, श्री पांडु रंग बुवा क्षीर सागर (ध्रुपदिये) तथा उस्ताद फ़िदा हुसैन से भी शिक्षा पाई।

सन् १९१८ में ग्वालियर में "माधव संगीत विद्यालय" की स्थापना हुई। वहां पर आपने शिक्षा पाकर सन् १९२३ में "संगीत-रत्न' की परीक्षा पास की। इसके बाद अपने गुरु भाई श्री० मोरेश्वर विनायक के साथ रह कर संगीत का अभ्यास तथा संगीत ग्रन्थों का अध्ययन किया।

सन् १९३८ में आपने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी साल आपने एक महत्वपूर्ण ग्रंथ "राग सुमन माला" (भाग १) प्रकाशित किया। इस ग्रंथ के द्वारा आपने दक्षिणी रागों का विशेष प्रचार किया। देवरंजनी, चक्रधर, सरस्वती, कमलमनोहारी आदि रागों का आविष्कार आपने बहुत ही सुन्दर किया है। इस ग्रन्थ में प्रकाशित रागों की बन्दिशें खुद आपकी हैं, जिससे आपके संगीत ज्ञान और लेखन शैली का आभास अच्छी तरह मिल जाता है।

संस्कृत भाषा पर भी आपका अधिकार है। इस ग्रन्थ में आपने अपना जो परिचय दिया है, वह सम्पूर्ण संस्कृत काव्य रूप में ही दिया है। श्री जयाजी राव महाराज सिंधिया ने इस उत्तम ग्रंथ पर १०००) रुपये पुरस्कार देकर लेखक को सम्मानित किया था।

सन् १९४१ तक आपके कार्यक्रम आल इण्डिया रेडियो देहली स्टेशन से प्रसारित होते रहे हैं। किन्तु आगे कई कारणों से आपने कार्यक्रम देना बन्द कर दिया।

ग्वालियर दरबार की गत १२ वर्ष से आप सेवा कर रहे हैं। इससे पहले ९ साल तक माधव संगीत विद्यालय में अध्यापक रहे एवं नागपुर

यूनिवर्सिटी और आल इण्डिया संगीत विद्यापीठ के परीक्षक होने का भी आपको सम्मान प्राप्त हुआ।

संगीत प्रचार के हेतु आपने "चतुर अकादमी ऑफ इन्डियन म्यूज़िक" नाम की संस्था स्थापित करके बहुत से विद्यार्थियों को तैयार किया है। बम्बई के रेडियो आर्टिस्ट श्री युत जी० एम० खाजगी वाले, नैपाल के उस्ताद राम प्रसाद, वर्धा के श्री० "संगीत", लश्कर के श्री० भगवत आदि कलावन्तों ने भी आपसे शिक्षा पाई है, इनके द्वारा आपकी गायकी का प्रचार सर्वत्र होरहा है।

बाला साहेब गुरुजी

राणा जी शिन्दे के राज्यकाल में आप ग्वालियर के एक प्रसिद्ध और उच्चकोटि के गायक होगये हैं। आपके पूर्वज महाराष्ट्र के निवासी थे और ग्वालियर राज्य के बड़े-बड़े ओहदों पर काम किया करते थे। इनका गोत्र "वत्स" था। बाला साहेब भी अपने पूर्वजों के समान ग्वालियर राज्य के उच्च कर्मचारी रहे। इन्हें तथा इनके भाई पन्ना गुरुजी को संगीत का बड़ा भारी शौक था। इन्होंने गायन कला का बहुत अच्छा अभ्यास किया था। इनकी आवाज में पहाड़ी शैली पाई जाती थी। महाराज माधवराव आप लोगों पर विशेष रूप से प्रसन्न रहा करते थे। यह ख्याल गाया करते थे। महफ़िलों में निर्भीक होकर गाना इनका स्वाभाविक गुण था। सामवेद को गायन पद्धति से पढ़ने का इन्हें खूब अभ्यास था।

बाला साहेब का व्यक्तित्व बड़ा रौबदार एवं आकर्षक था। साथ ही आप बड़े स्वाभिमानी तथा उदार हृदय के व्यक्ति थे। उस युग के अनेक हिन्दू मुसलिम गायकों के साथ आपकी गायन प्रतियोगिता हो चुकी थी, अतः सभी लोग बाला साहेब की प्रतिभा का लोहा मानते थे। आपने बहुत से शिष्य भी तैयार किये। सन् १६०१ ई० में आपने रामेश्वरम् की यात्रा की उस अवसर पर यह कई महीने पूना में भी रहे और वहां के गायन प्रेमी समाज में आपका यथेष्ट सम्मान हुआ। सन् १६१६ ई० के लगभग स्वर्गवासी होगये।

★

बासत खां

तानसेन के पुत्र–वंश (रबाबी-वंश) में बासत खाँ १९ वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध संगीत–कलाकार हुए हैं। बासत खां का जन्म लगभग १७८७ में हुआ था। आपके पिता छज्जू खां तत्कालीन दिल्ली दरबार में प्रतिष्ठित गायक और वादक थे। इससे प्रतीत होता है कि बासत खां का जन्म भी संभवतः दिल्ली में ही हुआ। छज्जू खां के पिता के दूसरे भाई ज्ञान खां निःसंतान और फकीर थे, इसलिए बासत खां को बाल्यावस्था में ही छज्जू खां से ज्ञान खां ने दत्तक पुत्र के रूप में गोद ले लिया, अतः ज्ञान खां के द्वारा ही बालक बासत शिक्षित और दीक्षित हुआ।

यद्यपि बासत खां के भाई जाफ़र खां और प्यार खां ने संगीत–कला में असाधारण–ज्ञान प्राप्त करके ख्याति पाई तथापि, बासत खां की शिक्षा और भी सर्वतोन्मुखी थी। गाने बजाने के अतिरिक्त ये संस्कृत–धर्म–शास्त्र तथा फारसी भाषा के भी विलक्षण–विद्वान थे, अतः संगीत के साथ–साथ आपके अन्दर धार्मिक ज्ञान भी भली प्रकार विकसित हो चुका था, इसलिये वयस्क होने पर बासत खां एक योगी–पुरुष की श्रेणी में आ गये।

ज्ञान खां स्वाभाविक–रूप से ही नाद–योगी थे। वे बासत खां को बाल्य-काल में अपनी गोद तथा कन्धे पर बैठाकर शिक्षा देते थे। बासत खाँ पर उनका स्नेह बहुत अधिक था। कहा जाता है कि बासत खां को अपनी शिक्षा आरम्भ होने के पश्चात् बारह वर्ष तक रबाब में केवल सरगम और विभिन्न अलंकारों का ही अभ्यास करना पड़ा था। उसके पश्चात विविध प्रकार के राग–रागनी बजाने की शिक्षा प्राप्त हुई। रबाब मे आपका हाथ जितना मीठा था, उतना ही मधुर इनका कंठ भी था; किन्तु एक घटना के कारण यौवन–काल में ही बासत खां को रबाब–वादन छोड़ना पड़ा। कहा जाता है कि एक बार लखनऊ–दरबार में एक मृदंग–वादक सन्यासी ने आकर प्रतियोगिता के लिए सभी संगीतज्ञों को बुलाया। उनके मृदंग की संगत के लिए कोई गुणी गाने–बजाने में समर्थ नहीं हुआ, क्योंकि उस साधू का लय पर जैसा विलक्षण–अधिकार था उसका हाथ भी वैसा ही विलक्षण तैयार था। जब सब गुणी एक-एक कर परा-जित हो गये, तब बासत खां रबाब लेकर प्रतियोगिता के लिए बैठे। बासत खां ने तुरन्त ही साधू को परास्त कर दिया। तब उस साधू ने बासत खां के विरुद्ध

यांत्रिक अनुष्ठान किया, जिससे बासत खां के दाहिने हाथ को लकवा मार गया इसलिए शेष जीवन तक वे रबाब बजाने से वंचित रहे, किन्तु अपने अन्तिम दम तक अपनी गायकी से संगीत–प्रेमियों को मुग्ध करते रहे। कहा जाता है कि एक बार नवाब वाजिद अली शाह ने जब इनका देश-राग सुना, तो उसी समय प्रभावित होकर अपना बहुमूल्य हीरों का हार बासत खां के गले में डाल दिया।

लखनऊ–दरबार समाप्त होने के पश्चात् बासत खाँ कलकत्ता जाकर रहने लगे। वहाँ भी आपने खूब नाम पैदा किया और अनेक शिष्य तैयार किये, जिनमें राजा हरकुमार ठाकुर, कासिम अली खाँ रबाबी, नियामतउल्ला खाँ सरोदिये के नाम उल्लेखनीय हैं।

मटिया–बुर्ज कलकत्ता में वाजिद अली शाह की संगीत सभा में भी बासत खाँ डेढ़ वर्ष तक रहे, और फिर रानाघाट चले गये। वहाँ रानाघाट के जमींदार पाल चौधरी महोदय ने आपको सम्मानित करके रखा, और स्वयं संगीत शिक्षा ग्रहण की।

बासत खाँ संगीत–शिक्षा के तीव्र–इच्छुक विद्यार्थियों को निष्कपट तथा हृदय खोल कर शिक्षा देते थे, किन्तु जिन लोगों में संगीत साधना की प्राकृतिक–भावना नहीं थी, तथा जो केवल शौक के लिए कुछ दिन संगीत सीखना चाहते थे, उन्हें वे संगीत–शिक्षा नहीं देते थे।

बंगाल में डेढ़ वर्ष रहने के पश्चात् टिकारी–राज्य के अधिपति द्वारा बासत खां को निमन्त्रण प्राप्त हुआ, और मृत्यु पर्यन्त वे वहीं रहे। यहां पर आपके चमत्कारिक संगीत से प्रभावित होकर कई शिष्य बन गये एवं महाराजा द्वारा आपको बहुत सी भूमि भी प्राप्त हुई। वृद्धावस्था में आप टिकारी के पास ही गया जाकर नाम–जप करते हुए, संगीत के साथ–साथ प्राणायाम अभ्यास भी करते रहे। आपने बहुत से भक्ति रस के ध्रुपद भी बनाये। अन्त में सन १८८७ ई० में बासत खाँ १०० वर्ष की दीर्घायु पाकर परलोक वासी हुए।

आपने अपने पीछे तीन पुत्र और एक कन्या छोड़ी। आपके तीन पुत्रों के नाम (१) अली मुहम्मद खां (बड़कू मियां) (२) मुहम्मद अली खां (३) रियासत अली खां इस प्रकार थे। बड़कू मियां को बाद में इनके मामू प्यार खां ने गोद ले लिया और अपनी संगीत–विद्या का उत्तराधिकारी बनाया।

बासदेव बुवा जोशी

बम्बई प्रान्त में थाना नामक एक जिला है, उसमें नांगाँव नामक एक छोटी सी बस्ती है। बासदेव बुवा जोशी यहीं के रहने वाले थे। "चित्तपावन" जोशी ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ था। बाल्यकाल में ही संगीत के प्रति इनकी प्रगाढ़ अभिरुचि देखकर अनुमान होता था कि यह बालक बड़ा होकर निश्चय ही एक दिन प्रतिभाशाली गायक बनेगा। संयोग से इनके यहाँ एक कथावाचक आये। उस समय इनकी अवस्था केवल १५–१६ वर्ष की ही थी और ये केवल प्रारम्भिक शिक्षा ही समाप्त कर पाये थे, कि उस कथावाचक के द्वारा इन्होंने गायन कला के सम्बन्ध में ग्वालियर नगर और वहाँ के संगीतज्ञों की विशेष प्रशंसा सुनी। फिर क्या था, बासदेव बुवा को तुरन्त ही ग्वालियर पहुंचने की धुन सवार हुई और ये संगीत शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य लेकर पैदल ही ग्वालियर के लिये निकल पड़े। उस समय आवागमन के साधन इतने सुलभ नहीं थे जितने कि आजकल हैं। फिर भी लगन के सच्चे और धुन के पक्के बासदेव उस अपरिपक्व अवस्था में ही विन्ध्याचल, सतपुड़ा जैसी पर्वत मालाओं और नर्मदा, ताप्ती जैसी वेगवाहिनी नदियों को पार करके ग्वालियर पहुँच ही तो गये।

सरल स्वभाव, मिलनसार तबियत एवं लगनशील होने के कारण इनके भोजन अथवा निवास स्थान का भी वहां किसी न किसी प्रकार प्रबन्ध हो ही गया। कठिन प्रयत्नों के बाद, जैसे–तैसे खां साहेब हद्दू खां से आपका परिचय हो सका। बासदेव बुवा ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये इन्हीं के घर डेरा डाल दिया। बहुत समय तक सेवा एवं सुश्रूषा के पश्चात् हद्दू खां को प्रसन्न करने में इन्हें सफलता प्राप्त हो पाई। गुरु प्रसन्न हुए और शिक्षा क्रम चलने लगा। उन दिनों बासदेव बुवा पर केवल दो ही कार्य थे, प्रथम गुरु सेवा और द्वितीय संगीत की शिक्षा ग्रहण करना, अतः बासदेव दिन भर अपने उस्ताद हद्दू खां के मकान पर ही पड़े रहते थे। संगीत शिक्षा के प्रति बासदेव की अटूट लगन देखकर ग्वालियर के एक प्रतिष्ठित सज्जन ने भोजन तथा वस्त्र का प्रबन्ध कर दिया। थोड़े दिनों के बाद इन्हीं सज्जन के परामर्शानुसार अपने, गाँव जाकर बासदेव ने अपना विवाह कर लिया और पुनः ग्वालियर आकर अपनी पत्नी सहित एक अलग मकान में रहने लगे। अब तक बासदेव बुवा संगीत के क्षेत्र में काफी प्रगति कर चुके थे,

अतः ग्वालियर के कुछ धनी-मानी व्यक्तियों ने अपने मंदिरों में गायन करने के निमित्त इन्हें नियुक्त कर लिया; इस प्रकार इनका निर्वाह होने लगा। यह सब करते हुए भी बासदेव बुवा ने गुरु सेवा में कमी नहीं आने दी। अतः हद्दू खां साहेब ने इनके लिये मुक्त हृदय से संगीत की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। गुरु कृपा और अपने नियमित अभ्यास के बल पर बासदेव बुवा शीघ्र ही उच्चकोटि के गायक एवं हद्दू खां के प्रमुख शिष्यों में गिने जाने लगे। आगे चलकर आप अपने गुरु के साथ गाने के लिये ग्वालियर दरबार में जाने लगे।

बासदेव बुवा जोशी ने अपने जीवन काल में संगीत के क्षेत्र को समृद्ध बनाने में यथेष्ट सहयोग दिया। आपने बहुत से शिष्य भी तैयार किये, उनमें महाराष्ट्र के ख्याति प्राप्त बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर का नाम उल्लेखनीय है। आपके शिष्यों ने बुवा जोशी को महाराष्ट्र में भी बुलाया था। वहां सतारा नरेश के नवनिर्मित राजभवन में आपके गायन का मनमोहक कार्यक्रम रक्खा गया। अपने शिष्य बालकृष्ण बुवा के साथ श्री बासदेव बुवा जोशी एकबार महाराज नैपाल के आमंत्रण पर नैपाल भी गये। वहाँ आपकी गायन कला का यथेष्ट सम्मान किया गया। एक बार पूना में जाकर भी जोशी बुवा ने दरबारी राग की 'मधुवा भरदे' नामक चीज़ गाकर ऐसा अपूर्व रस बरसाया कि श्रोतागण आत्म-विभोर होकर मुक्त हृदय से इनकी प्रशंसा कर उठे। आपके प्रमुख शिष्यों में कृष्ण शास्त्री शुक्ल तथा लक्ष्मणराव का नाम भी उल्लेखनीय है। सन् १८९० ई० के लगभग ग्वालियर में ही आपका स्वर्गवास होगया।

★

बिलास खाँ

तानसेन के चार पुत्रों में बिलास खाँ सबसे छोटे पुत्र थे । प्रसिद्ध राग "बिलासखानी तोड़ी" के निर्माता यही थे ।

जब तानसेन वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तो अपने चारों पुत्रों को लेकर बादशाह के दर्बार में उपस्थित हुए और कहा कि अन्नदाता ! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरी शक्ति भी क्षीण होती जा रही है, अतः अब मुझे छुट्टी देकर इन चारों पुत्रों को आशीर्वाद प्रदान करें । तब बादशाह के सम्मुख बारी–बारी से चारों ने अपना गाना सुनाया । सूरतसेन, शरतसेन, तरंगसेन जब गा चुके, तब बिलास खाँ का गाना हुआ । इनका संगीत सुनकर बादशाह तथा अन्य गुणीजन आश्चर्य चकित हो गये । बादशाह ने प्रसन्न होकर कहा कि तानसेन और स्वामी हरिदास के पश्चात् ऐसा संगीत मैंने आज ही सुना है । तानसेन ! तुम्हारा यह चौथा लड़का ही तुम्हारे यश एवं कीर्ति में वृद्धि करेगा । तब तानसेन ने बादशाह को झुककर सलाम किया, और फिर चारों भाइयों को बादशाह ने पुरस्कृत करके प्रत्येक का ५००) मासिक वेतन निर्द्धारित करके दर्बार में रख लिया । इससे तानसेन को परम संतोष हुआ ।

कहा जाता है कि जब तानसेन मरणासन्न अवस्था में थे, तब उन्होंने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरे शव को बीच में रखकर तुम सब अपना–अपना संगीत सुनाना । जिसके गाने से मेरा सीधा हाथ ऊपर की ओर उठ जायेगा उसी की वंशावली में संगीत साधना चमकती रहेगी । यह कहते हुए (फरवरी सन् १५८५ ई० में) जब तानसेन महा प्रयाण कर गये, तब उनके आदेशानुसार चारों पुत्रों ने शव को बीच में रखकर अपना–अपना गायन सुनाया । सब से पीछे बिलास खाँ ने अपना गायन "कौन भ्रम भुलाया मन अज्ञानी" टोड़ी रागिनी की यह ध्रुपद गाई तो मृत तानसेन का सीधा हाथ ऊपर उठा । उस समय यूरोप के एक राजदूत भी वहां उपस्थित थे । इस आश्चर्यजनक चमत्कार को देखकर सब चकित हो गये और बिलास खाँ को तानसेन के संगीत का यथार्थ उत्तराधिकारी घोषित कर दिया गया । यही टोड़ी बाद में "बिलास खानी टोड़ी" के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

बिलास खां एकान्त प्रिय संगीतज्ञ थे, अतः अपनी संगीत साधना अधिकतर जंगल में रहकर किया करते थे । एक विरागी की तरह रहकर ,गृहस्थाश्रम से अलग, भगवत भजन में रत रहते । इनके पुत्र दयाल सेन और उदय सेन दो हुए, जिसमें से उदय सेन से ही आगे का तानसेनी वंश चला ।

★

बी. आर. देवधर

वर्तमान भारतीय संगीतज्ञों में श्री बी० आर० देवधर को प्रमुख स्थान प्राप्त है। संगीत के क्रियात्मक अंग को प्रबल रखते हुए शास्त्र अंग पर भी विशद अधिकार रखना सरल कार्य नहीं। इस प्रकार के परिश्रमी और प्रतिभाशील कलाकारों की संख्या बहुत ही कम है, श्री देवधर में यह दोनों ही विशेषतायें पर्याप्त प्रमाण में विद्यमान हैं।

सन् १६०१ ई० के लगभग दक्षिण भारत के मिरज नामक स्थान पर आपका जन्म हुआ था। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपको श्री अन्ना जी पंत सुखदेव से प्राप्त हुई थी। तत्पश्चात् कुछ समय तक श्री नीलकण्ठ बुवा (स्व० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के गुरु भ्राता) ने भी इन्हें संगीत-शिक्षा दी, कुछ दिनों तक मिरज में श्री विनायक राव पटवर्धन से भी गायन शिक्षा प्राप्त करने का आपको सुअवसर मिला। इन्हीं दिनों आप श्री विष्णु दिगम्बर के साथ बम्बई चले गये थे।

बम्बई पहुँचकर, भारतीय संगीत के अध्ययन के साथ-साथ प्रो० जी० स्क्रिन्जी के सहयोग से श्री देवधर को पाश्चात्य संगीत के अध्ययन का भी अवसर मिला। इसके बारे में आपका कहना है कि जिन्हें योरोपीय संगीत सीखना हो वे हिन्दुस्तानी संगीत सीखने से पहले ही उसे आरम्भ करें अर्थात् बाल्यावस्था में ही, जब तक कि भारतीय संगीत की छाप हृदय पर न पड़ने पाये उससे पूर्व ही योरोपीय संगीत सीखने में कुछ सफलता मिल सकती है। "हारमनी" हिन्दुस्तानी संगीत की चीज़ नहीं है। हमारा भारतीय संगीत मैलॉडी अर्थात् राग-रागनियों का है। क्रियात्मक संगीत के लिये कठिन साधना करते हुए इन्होंने संगीत शास्त्र का भी विशेष रूप से अध्ययन किया है। भारत में प्रचलित विभिन्न घराने की गायकी तथा उनकी विशेषताओं का गहन अध्ययन करने में इन्हें विशेष रुचि रही। यही कारण है कि श्री देवधर

एक कुशल गायक होने के साथ–साथ उच्चकोटि के संगीत शास्त्रज्ञ भी माने जाते हैं। इन सब शिक्षाओं के वावजूद आपका अंग्रेजी भाषा का अध्ययन भी चलता रहा और परिणाम स्वरूप सन् १६३० ई० के लगभग आपने बी० ए० की परीक्षा पास करली। पढ़ाई का खर्च चलाने के लिये आपने तत्कालीन फ़िल्मों के लिये वाद्यवृन्द की कुछ आकर्षक रचनायें भी तैयार कीं जिन्हें बहुत पसंद किया गया। कृष्णा फ़िल्म कम्पनी में इन्हें संगीतकार का स्थान भी प्राप्त होगया। यहाँ आपको फ़िल्म निर्माण का शौक़ भी पैदा होगया और कुछ समय वाद इन्होंने 'लीला' नामक एक चित्र भी तैयार कर लिया, किन्तु इस कार्य में इन्हें काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ी और बहुत दिनों तक फ़िल्म सम्बन्धी ऋण को चुकाते रहे।

सन् १६३२ ई० के लगभग इटली के फ्लोरेंस नगर में संगीत सम्मेलन हुआ, उसमें आपने भारतीय संगीतज्ञ के नाते भाग लिया। उस समय स्वर्गीय सुभाषचन्द्र बोस भी वहीं पर थे, उनके सहयोग से श्री देवधर को वहाँ के उच्चवर्गीय और संगीत कला प्रेमी सज्जनों से भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहां की विभिन्न संगीत गोष्ठियों में भाग लेकर इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य संगीत के तुलनात्मक विषय पर प्रभावशाली भाषण भी दिये।

आजकल आप बम्बई में ही निवास करते हैं। गांधर्व महाविद्यालय मण्डल के अध्यक्ष हैं तथा मण्डल की ओर से प्रकाशित "कला विहार" मासिक का योग्यता पूर्वक सम्पादन कर रहे हैं। बहुत से गायक जो आजकल सर्व साधारण में लोक प्रियता प्राप्त किये हुए हैं, आपके पास संगीत की उच्च शिक्षा लेने के लिये आते ही रहते हैं। स्कूल ऑफ इण्डियन म्युजिक बम्बई के आप संचालक हैं। आपकी लिखित तीन पुस्तकें रागबोध भाग १–२ तथा ३ से संगीत के विद्यार्थी यथेष्ट लाभ उठा रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि श्री देवधर का बाल्यकाल से अब तक का जीवन पूर्ण रूपेण, भारतीय संगीत का अध्ययन, उसकी अभिवृद्धि के प्रयत्न तथा प्रचार कार्य में ही व्यतीत हुआ है। देश के लिये ऐसी विभूतियों से अनेक आशायें होती हैं।

बैजू बावरा

प्रसिद्ध गायक बैजू बावरा के विषय में जनश्रुतियों के आधार पर तरह तरह की बातें सुनाई देती हैं। कुछ लोग बैजू को तानसेन का समकालीन मान कर तानसेन से उसकी प्रतिद्वन्दिता सिद्ध करते हैं तो कुछ लेखकों का कहना है कि बैजू बावरा का समय तानसेन से पहिले का है, किन्तु अधिकतर विद्वानों ने बैजूबावरा, तानसेन, गोपाललाल और अकबर बादशाह सभी समकालीन माने हैं अर्थात् यह सब विभूतियां १५००-१६०० ई० के बीच प्रकट हुईं। बैजू बावरा की रची हुई प्राचीन ध्रुपद जो उपलब्ध हैं, उनमें "कहत बैजू बावरे सुनो हो गोपाललाल..." इस प्रकार गोपाल का नाम आता है और गोपाल के ध्रुपदों में अकबर की प्रशंसा "दिल्लीपति नरेन्द्र अकबर शाह..." ऐसा उल्लेख मिलता है। इन तथ्यों के आधार पर बैजू का समय अकबर और तानसेन से पूर्व का कैसे माना जाय? यह प्रश्न उपस्थित होता है। श्री एस० बी० बब्बन जी ने अपने एक लेख में बैजू बावरा का जो चरित्र दिया है वह भी हमारे उक्त मत की पुष्टि करता है। उनके लेख का सार कुछ-कुछ इस प्रकार है:—
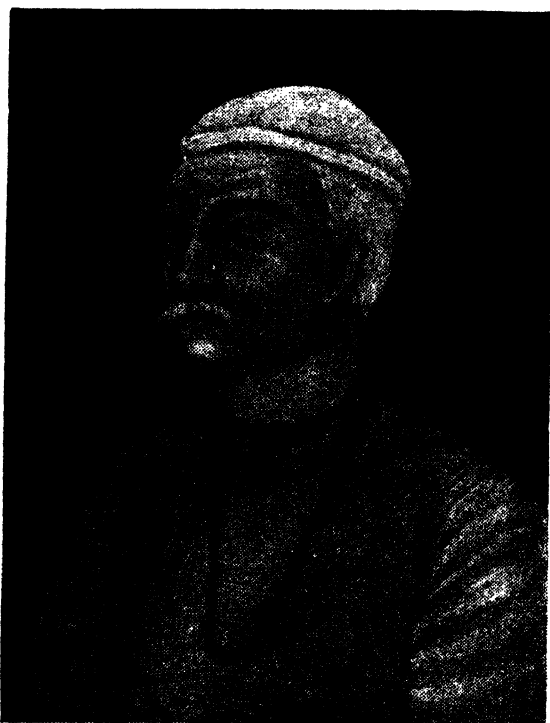
"बैजू बावरा का जन्म गुजरात के अन्तर्गत चापानेर ग्राम के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। बैजू का असली नाम बैजनाथ मिश्र था। बाल्यकाल में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। बैजू की माँ धार्मिक मनोवृत्ति की तथा

भगवान मुरलीमनोहर की उपासिका थीं। उन्हीं के स्नेहांचल में बैजू बढ़ने लगे। बालक बैजू के मनोरंजनार्थ उनकी माँ बहुधा उन्हें भगवान बालकृष्ण का पवित्र चरित्र सुनाया करती थीं, अस्तु बाल्यकाल से ही बैजू भगवान कृष्ण की ओर आकृष्ट होने लगे। कुछ दिवसोपरान्त पारिवारिक असुविधाओं के कारण बैजू की मां सब कुछ परित्याग कर अपनी आयु की शेष अवधि भगवान बांके-बिहारी की शरण में बिताने का निश्चय कर वृन्दावन की ओर चल पड़ी। बैजू भी उनके साथ चले। जमुना के सुरम्य तट पर वृन्दावन के निकट-वर्ती वन में संगीताचार्य रसिक शिरोमणि स्वामी हरिदास जी का आश्रम था। लम्बी यात्रा करने के कारण बैजू की माँ बहुत थक गई थीं, अतः विश्राम के हेतु उसी बन में ठहर गईं। उसी समय जमुना स्नान कर स्वामी हरिदास जी अपने आश्रम की ओर लौट रहे थे। स्वामी जी की दिव्य दृष्टि ने बैजू की आन्तरिक प्रतिभा को देख लिया और उस विलक्षण बालक को अपनी शरण में आश्रय दिया।

बैजू की मां भगवान बांकेबिहारी की सेवा में रत हो गईं और बैजू स्वामी जी की पवित्र छत्र-छाया में दिनोंदिन बढ़ने लगे और उनकी संरक्षता में संगीत साधना करने लगे। गुरु के आशीर्वाद से उन की कला निखरने लगी और कालोपरान्त वह एक सुघर गायक होगये। स्वामी जी के दिव्य संगीत आश्रम का पवित्र जीवन, और भगवान कृष्ण की अविरल भक्ति के संयुक्त प्रभाव के कारण बैजू का मन संसार से विरक्त होने लगा और वह भक्ति योग की ओर आकृष्ट होने लगे।

एक दिन बैजू जमुना के निर्जन तट पर केदारा रागिनी साध रहे थे। कुछ दूर पर उन्हें किसी नवजात बालक का रोदन सुन पड़ा। आश्चर्य चकित हो वह उस ओर बढ़े। थोड़ी दूर पर उन्होंने एक अज्ञात शिशु को एकाकी तथा निस्सहाय अवस्था में रोते पाया। बालक सुन्दर था, बैजू ने उसे उठा लिया और आश्रम पर ले आये। गुरु की आज्ञा से उस अज्ञात बालक का नाम गोपाल रखा और स्वयं उसकी देख भाल करने लगे। बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगा और बैजू के संरक्षण में स्वर-साधना करने लगा एवं कठिन साधना के प्रभाव से गोपाल का स्वर परिमार्जित होकर निखरने लगा।

बैजू ने भी गुरु की कृपा और अनवरत स्वरसाधना के प्रभाव से अनेक राग और रागिनियों को सिद्ध कर लिया तथा उन राग-रगिनियों के शास्त्र-वर्णित गुण और प्रभाव का सृजन करने में भी उन्हें सफलता मिलती गई।

कुछ समय बाद कछवाह वंशज जमीदार राजसिंह के विशेष आग्रह पर वैजू और गोपाल चँदेरी चले गये। चन्देरी में वैजू के निवास स्थान के निकट कला और प्रभा नाम की दो अपूर्व सुन्दरी और अविवाहिता कन्यायें थीं। वे दोनों बहनें बैजू से संगीत सीखने लगीं। कालोपरांत गोपाल और प्रभा का विवाह होगया।

कुछ दिनों के उपरांत प्रभा को एक कन्या उत्पन्न हुई। वैजू ने उस नवजात कन्या का नाम 'मीरा' रखा। मीरा चन्द्रकला की भांति बढ़ने लगी और बैजू का सारा स्नेह और सम्पूर्ण आशायें मीरा में केन्द्रित हो गयीं। धीरे-धीरे मीरा का स्नेह ही वैजू का एक सीमित संसार बन गया।

उसी समय ग्वालियर के राना मानसिंह तोमर ने गूजर वंश की एक ग्राम-वालिका के साथ, जिसका नाम मृगनयनी था, जो अपने रूप लावण्य, साहस, वीरता, बल, धैर्य, शील और अनुपम लक्षभेद के कारण विख्यात हो रही थी, उसके गुणों पर मुग्ध होकर विवाह कर लिया। उस विवाहोत्सव के अवसर पर वैजू जी आमंत्रित थे। वैजू के अद्भुद संगीत से राजा मानसिंह और महारानी मृगनयनी बहुत प्रभावित हुए। महारानी मृगनयनी ने बैजू से संगीत कला सीखने की अपनी प्रबल अभिलाषा राजा मानसिंह के सामने प्रकट की। राजा ने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपनी अनुमति दी और वैजू को सादर आग्रह पूर्वक बुलाकर महारानी मृगनयनी को संगीत शिक्षा देने की प्रार्थना की। अब वैजू ग्वालियर में रहने लगे और महारानी को संगीत सिखाने लगे।

महाराजा मानसिंह बैजू के संगीत पर मुग्ध थे और सदा वैजू को आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ग्वालियर के तत्कालीन प्रमुख गायकों में विजय जङ्गम का स्थान सर्वोपरि था। वह सदा बैजू से होड़ लिया करता और उसकी प्रतिद्वन्दिता किया करता था। इससे उत्तेजित होकर बैजू ने होरी गायकी की एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया जो बहुत ही आकर्षक प्रमाणित हुई। इसके अनन्तर उसने "गूजरी टोड़ी", "मृगरंजनी टोड़ी", "मङ्गल गूजरी" आदि अनेक नये रागों को बनाया। प्रचलित "धमार ताल" का भी निर्माण बैजू ने ही किया। होरी गायकी और धमार ताल में दक्षता केवल बैजू और गोपाल को ही थी। धीरे-धीरे उसका प्रचार बढ़ने लगा। बैजू की इस विलक्षण प्रतिभा के आगे उसके समकालीन सभी गायक नत मस्तक हो गये और मुक्तकण्ठ से उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार

गोपाल अधिकतर अपने परिवार के साथ चन्देरी में ही रहता था। एक दिन वह बड़ी तन्मयता के साथ चन्देरी के निकटवर्ती बन में "कल्याण" राग का आलाप कर रहा था। उसके स्वर के प्रभाव से सारा वन संगीतमय हो रहा था। उसी समय कुछ काश्मीरी व्यापारी, उसी मार्ग से होकर व्यापार के निमित्त, ग्वालियर की ओर जा रहे थे। वे सब उसके संगीत पर विमुग्ध हो गये। महाराजा काश्मीर की गुणग्राहकता की बड़ाई करते हुये उसे भांति भांति का प्रलोभन दिखा कर अपने साथ काश्मीर चलने के लिये बहकाने लगे। वैभवयुक्त उज्वल भविष्य की महत्वाकांक्षा तथा स्वतंत्र जीवन की मधुरिम आशा ने उसके मन को चंचल कर दिया। प्रभा और उसकी कन्या मीरा ने उसके इस असंगत विचार का घोर विरोध किया किन्तु उसने किसी की एक न सुनी। और जब व्यापारी काश्मीर वापस लौटने लगे तो गोपाल, बैजू के वात्सल्य, स्नेह, उपकार और उदारता की अवहेलना कर तथा स्त्री और लड़की के विरोध करने पर भी गुप्त रूप से सपरिवार काश्मीर चला गया। यहां तक कि उसके जाने की सूचना स्वयं राजसिंह को नहीं हुई जिसकी छत्रछाया में वह सपरिवार अपना आनन्दमय जीवन बिता रहा था।

बैजू की प्रतिभा को अमर और चिरस्थाई बनाने के उद्देश्य से महारानी मृगनयनी और मानसिंह ने ग्वालियर संगीत विद्यापीठ नामक एक संगीत संस्था को जन्म दिया और उसके पाठ्य-विषय में "होरी गायकी" और 'धम्मार' ताल को भी समाविष्ट कर दिया।

यह वह काल था जब बैजू की कला अपने उच्चतम शिखर पर पहुंच चुकी थी। हठात् बैजू को गोपाल के विश्वासघात और कृतघ्नता की सूचना मिली। वह इस भयंकर आघात को, विशेष कर अपनी स्नेहमयी मीरा का बिछोह सहन न कर सका और पागल हो गया। तभी से लोग उसे 'बैजू बावरा' कह कर पुकारने लगे। महारानी मृगनयनी ने उसके उपचार में कोई बात उठा न रखी, किन्तु व्यथित बैजू की अवस्था में कोई परिवर्तन न हो सका। उसका पागलपन बढ़ता ही गया और वह जंगल, पहाड़ तथा नदी के कछारों में अपनी स्नेहमयी मीरा और गोपाल के शोक में भटकने लगा।

बैजू के पागल होने का सम्वाद स्वामी हरिदास जी को वृन्दावन में मिला। उस समय तन्नामिश्र जो इतिहास में तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हैं, स्वामी जी के चरणों में निवास करते हुए संगीत साधना कर रहे थे। बैजू के पागल होने का सम्वाद सुन कर स्वामी हरिदास जी विचलित और क्षुब्ध हो उठे और

उनकी आंखों से आंसू की धारा बह चली। तब तानसेन ने घटना की गम्भीरता का अनुमान किया। पता लगाने पर उन्हें बैजू की प्रतिभा, त्याग, चरित्रबल, महानता और सर्वप्रियता की धीरे-धीरे सब बातें मालूम हो गयीं। अपने गुरु-भाई के प्रति उनके मन में श्रद्धा हो आई और उनके दर्शनों के लिये एक प्रबल अभिलाषा जाग उठी।

उधर गोपाल जब काश्मीर पहुंचा तो उन व्यापारियों ने उसे, एक अनुपम रत्न कह कर महाराज काश्मीर के सम्मुख उपस्थित किया। महाराज गोपाल का संगीत सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और अपने दरबार का प्रधान दरबारी गायक बना कर उसका सम्मान किया। महाराज ने गोपाल के संगीत से आकृष्ट होकर कई बार उसके गुरू का नाम जानने की चेष्टा की, किन्तु कृतघ्न गोपाल ने यही कहा कि मेरा कोई गुरू नहीं है।

अपना अध्ययनकाल समाप्त कर के जब तानसेन ग्वालिर लौटे तो कुछ दिनों तक बैजू द्वारा स्थापित ग्वालियर संगीत विद्यापीठ में रह कर होरी गायकी और धमार ताल का भी उन्होंने अभ्यास किया। कुछ दिन वहां रहने के उपरांत तानसेन अपने गुरु भाई को ढूंढ निकालने का दृढ़ संकल्प कर ग्वालियर से निकल पड़े। घूमते-घूमते रीवां रियासत की राजधानी बांदोगढ़ पहुँचे। वहां के राजा रामचन्द्र बघेला ने तानसेन के संगीत पर मुग्ध होकर उन्हें अपने दरबार का दरबारी गायक बनाकर उनका सम्मान किया। किन्तु किसी तरह भी तानसेन को शांति न मिली और अन्त में राजा राम के परामर्श से संगीत दिग्वजय की ओट में बैजू को ढूंढ़ने का निश्चय कर बान्दोगढ़ से रवाना हो गए। रियासत-रियासत घूम-घूम कर वहां के संगीतज्ञों को पराजित किया किन्तु फिर भी उन्हें बैजू का दर्शन न हुआ।

इधर बैजू बावरा, गोपाल और मीरा के स्नेह में पागल होकर बन, पर्वत, तराई, नदी-नाला आदि में भटकते-भटकते पुनः वृन्दाबन पहुँचे। वृद्धा माता के स्नेह और गुरुवर स्वामी हरिदास जी के देवदुर्लभ आशीर्वाद तथा उपदेशों के प्रभाव से उनके उन्माद में कुछ कमी अवश्य हो गयी, किन्तु फिर भी मीरा के प्रेम और स्मृति को वह अपने मन से दूर न कर सके।

१५५६ में हुमायूँ के मरने के उपरान्त अकबर महान दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। इधर तानसेन ने आगरे में पहुँचकर दिल्ली दरबार के गायकों का संगीत प्रतियोगिता के लिये आह्वान किया। किन्तु तानसेन की प्रतिभा

और संगीत के गुण माधुर्य के आगे, तत्कालीन दिल्ली दरबार के गायकों में किसी को भी तानसेन की प्रतिद्वन्दिता में जाने का साहस नहीं हुआ। अकबर ने अपने दरबारी गायकों की दुर्बलता का अनुभव किया और मुक्तहृदय से तानसेन की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली।

किन्तु जब बैजू को यह ज्ञात हुआ कि तानसेन भारत में संगीत दिग्विजय के लिये निकला है तो उसकी कलात्मक भावनाओं को भयानक ठेस लगी और वह प्रतिद्वन्दिता के लिये तैयार हो गया। सम्राट के आदेशानुसार आगरा के निकटवर्ती वन में संगीत प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

प्रातःकाल का समय था। सम्राट अकबर तथा उनकी रानियां, सभासद तथा दर्शकवृन्द सभी वहां उपस्थित थे। उसी समय बैजू भी अपने फटे-पुराने वस्त्रों में उपस्थित हुए। तानसेन ने साश्चर्य बैजू की ओर देखा और उसका हृदय किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा बैजू की ओर आकर्षित होने लगा किन्तु पूर्व परिचय न होने के कारण वह उसको न पहचान सका।

प्रतियोगिता आरम्भ हुई। सम्राट के आदेशानुसार सर्व प्रथम तानसेन ने 'टोड़ी' राग गाया। उसके प्रभाव से मृगाओं का एक झुण्ड समीपवर्ती वन से आकर तानसेन के पास एकत्रित हो गया। तानसेन ने एक हार लेकर एक संगीतमुग्ध हिरण के गले में डाल दिया। संगीत समाप्त होते ही हिरण जनसमूह देख कर पुनः जंगल में भाग गये।

इसके उपरान्त बैजू ने सम्राट को लक्ष्य कर कहा—"तानसेन" ने 'टोड़ी' राग गाकर मृगाओं को संगीतमुग्ध कर दिया और उन्हें बन से बुला लिया—अब मैं 'मृगरञ्जनी' राग गाऊँगा जिसके प्रभाव से केवल वही मृग आयेगा जिसके गले में हार पड़ा है। इसके बाद बैजू ने 'मृगरञ्जनी टोड़ी' का आलाप प्रारम्भ किया। उसी समय अकेला वही मृग, जिसके गले में हार पड़ा था, बन से दौड़ता हुआ आया और पूर्वपरिचित की भांति बैजू के निकट बैठ गया। उसके गले का हार उतार कर बैजू ने सम्राट अकबर को दे दिया। इस अद्भुत चमत्कार को देख कर तानसेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके अनन्तर सम्राट ने बैजू को संकेत कर कोई राग गाने के लिये कहा—जिसका उत्तर तानसेन देंगे। बैजू ने कहा "सम्राट! अब मैं मालकोश राग गाऊँगा जिसके प्रभाव से सामने पड़ा हुआ पत्थर मोम के समान पिघलेगा।

में अपना तानपूरा उसमें गाढ़ दूंगा। संगीत समाप्त होने के बाद वह गला हुआ पत्थर फिर जम जायेगा । बिना पत्थर को तोड़े–फोड़े तानसेन मेरे तानपूरे को बाहर निकाल दें।

बैजू ने 'मालकोश' राग का आलाप आरम्भ किया और धीरे–धीरे वह पत्थर पिघलने लगा। उसी क्षण तानसेन बैजू के चरणों में गिर पड़े और बड़े आदर से कहा, "मेरे आचार्य ने मुझसे कहा था कि तुमसे सुघर गायक तेरा बड़ा गुरु भाई है, जिसका नाम बैजनाथ है। आप कौन हैं ?" यह सुनकर बैजू ने तानसेन को उठा कर हृदय से लगा लिया और अपना परिचय दिया। तानसेन का हृदय परिचय पाकर आनन्द से गद्‌गद् हो गया और उनकी आँखों से आनन्दाश्रु की धारा बह चली।

कुछ समय बाद बैजू को जब यह ज्ञात हुआ कि गोपाल लाल काश्मीर में दरबारी गायक के पद पर आसीन है तो वे उससे मिलने तथा मीरा और प्रभा को देखने के लिये काश्मीर पहुँचे। वहीं पर भरे दरबार में गोपाल लाल से इनकी गायन प्रतियोगिता हुई। गोपाल ने महाराजा काश्मीर से पहिले कह रक्खा था कि मेरा कोई गुरू नहीं है, किन्तु जब बैजू ने अपने प्रभावशाली ध्रुपद वहां सुनाये तो यह बात सबके सामने खुल गई कि गोपाल के गुरू यही हैं। गोपाल की कृतघ्नता और फिर उसकी मृत्यु से इनके हृदय को इतना धक्का लगा कि इन्होंने सन्यास ले लिया और कश्मीर के जंगल तथा पहाड़ियों में विलीन होकर अन्तरध्यान होगये।

★

भास्कर बुवा बखले

भास्कर बुवा का जन्म १७ अक्टूबर सन् १८६६ ई० को बड़ौदा रियासत के कठोर नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता जी एक साधारण सी नौकरी करते थे, अतः आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे अपने पुत्र को अंग्रेजी स्कूल में दाखिल न करा सके। उन्होंने बड़ौदा में ही पं० राजाराम शास्त्री की संस्कृत पाठशाला में भास्कर को प्रविष्ट करा दिया। संस्कृत शिक्षा के जीवन में ही यह विद्यार्थी संस्कृत के श्लोक लय व स्वर के साथ बोलने लगा, साथ ही साथ हरिदास जी के कीर्तन में भी इसकी रुचि विशेष रूप से रहने लगी और संस्कृत अध्ययन की ओर से भास्कर उदासीन हो गये। तब इनके अध्यापक ने इनको सम्मति दी कि तुम्हारा चित्त गायन की ओर अधिक है अतः तुम्हें संगीत सीखना चाहिये। इनको उस समय के प्रसिद्ध गायक विष्णु बुवा पिंगले के पास भेज दिया। दूसरे दिन से ही भास्कर का संगीत अध्ययन शुरू हो गया। कुछ समय बाद प्रख्यात संगीतज्ञ मौला बख्श जी से आपने संगीत सीखना आरम्भ कर दिया। इनके द्वारा भास्कर जी ने अपने परिश्रम और लगन से अच्छी योग्यता प्राप्त करली। मौलाबख्श की गायन पाठशाला के एक वार्षिक उत्सव में भास्कर बुवा का गायन हुआ, जिसे श्रोताओं ने बहुत पसन्द किया। अब धीरे-धीरे आप प्रकाश में आने लगे।

महाराष्ट्र में उन दिनों सुप्रसिद्ध "किर्लोस्कर नाटक कम्पनी" आई हुई थी। उसमें एक ऐसे लड़के की आवश्यकता थी, जिसकी आवाज़ सुरीली हो। आप उस

नाटक कम्पनी में भर्त्ती हो गये। नाटक कम्पनी में रहते हुये भी आपने अपना संगीत अभ्यास बराबर जारी रक्खा। जब कम्पनी किसी बड़े शहर में जाती थी तब वहाँ के संगीत कलाकारों से आप अवश्य मिलते और उनकी कला से लाभ उठाते।

नाटक कम्पनी जब इन्दौर में थी, उन दिनों इन्दौर के खां साहब बन्दे अली खां नाटक देखने आते थे। एक दिन स्टेज पर इनका गाना सुनकर वे बहुत ही प्रभावित हुये और रात भर कम्पनी में ही रहे। सवेरे जब सभी एक्टर खां साहब के पास गये तब खाँ साहब ने पूछा कि वह छोकरा कहां है, जिसने "नैन चकोर" वाला गाना गाया था। तब खां साहब के सामने भास्कर जी को उपस्थित कर दिया गया।

खां साहब ने कहा कि इस लड़के की आवाज़ में एक विशेष प्रकार का खिचाव और मिठास है अतः मैं इसे गाने की तालीम देना चाहता हूँ। उन्होंने भास्कर के गंडा भी बांध दिया। जब तक कम्पनी वहां रही तब तक खां साहब से इन्हें बराबर संगीत शिक्षा प्राप्त होती रही। कुछ समय पश्चात् नाटक कम्पनी वहां से दूसरे स्थान को चली गई और खां साहब की शिक्षा से ये वंचित हो गये।

इसके बाद भास्कर की आयु बढ़ जाने के कारण इनकी आवाज़ फटने लगी, तब इन्होंने अनुभव किया कि यदि स्वर साधन द्वारा परिश्रम नहीं किया तो आवाज़ बिल्कुल बेकार हो जायगी। अतः इन्होंने स्वर साधन और गाने का अभ्यास बढ़ाना चाहा; किन्तु कम्पनी के मैनेजर ने इसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप भास्कर जी ने कम्पनी से नौकरी छोड़ दी और फिर बड़ौदा पहुंच फैजमुहम्मद खां साहब के पास जाकर संगीत शिक्षा आरम्भ की; किन्तु खां साहब पुराने ज़माने के गायक थे, उन्होंने भास्कर को केवल राग रूप का एक छोटा सा ख्याल ही सिखाया। नियमित शिक्षा न देकर खां साहेब अधिकतर इनसे अपने घरेलू काम लिया करते थे, किन्तु श्री तैलंग साहब के विशेष कहने सुनने पर खां साहब ने भास्कर को नियमित रूप से सिखाना आरम्भ किया। फिर उन्होंने अनेक राग भास्कर जी को सिखाये और अपमी मींड़ प्रधान गायकी की विशेषता से अच्छी तरह परिचित करा दिया। थोड़े समय में ही भास्कर जी ने अच्छी उन्नति कर ली और लोग इन्हें भास्कर बुवा कहने लगे।

कुछ समय बाद धारवाड़ के ट्रेनिंग कालेज में आप संगीत शिक्षक नियुक्त हो गये। मैसूर के दरबार गायक नत्थन खां से भी आपका परिचय धारवाड़ में ही हुआ, अतः उनसे भी भास्कर जी ने संगीत प्राप्त किया। नत्थन खां की मृत्यु के बाद कोल्हापुर के खां साहब अल्लादिया खां से भी आपने संगीत की शिक्षा पाई। खाँ साहब अल्लादिया खाँ बम्बई में भास्कर बुवा के यहां ही रहते और रात को इन्हें तालीम भी देते थे।

इस प्रकार विविध उस्तादों से इन्हें अनेक घरानेदार चीजें प्राप्त हो गईं। लयकारी, बोलतान आदि विशेषताओं से आपकी गायकी आगे बढ़ती गई।

सन् १९१७ में भास्कर बुवा के संगीत की कीर्ति उत्तर हिंदुस्तान में भी फैल गई। पंजाब और सिंध में आपके गायन के कार्यक्रम हुये और उनमें आपको अत्यन्त सफलता मिली। उस समय आप की आयु ४७-४८ वर्ष के लगभग थी अतः आपकी गायकी में परिपक्वता आ चुकी थी। गाते समय उसका स्वरूप आप साक्षात देखते थे। स्वरों में आप लीन हो जाते थे। पंजाब के अली बख्श खां साहब भास्कर बुवा का गाना सुनकर बहुत प्रभावित हुये थे।

भास्कर बुवा के संगीत से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य हो गये। आपकी शिक्षण पद्धति एक विशेष ढंग की थी। सबसे पहले आप राग के राग-वाचक पल्टे तैयार कराते थे और तब राग सिखाते थे। श्री रमेशचन्द्र ठाकुर, मास्टर कृष्णराव, दिलीपचन्द वेदी, श्री० गोविन्दराव टेंबे आदि बड़े बड़े प्रसिद्ध गायक आपके ही शिष्यों में से हैं।

संगीत के इस कलावन्त का स्वर्गवास ८ अप्रैल सन् १९२२ को रक्त क्षय की बीमारी से पूना में हो गया। आपकी मृत्यु से महाराष्ट्र के संगीत की जो क्षति हो गई वह पूर्ण नहीं की जा सकती। ८ अप्रैल को प्रतिवर्ष आपकी जयन्ती पूना में मनाई जाती है।

★

भीष्मदेव वेदी
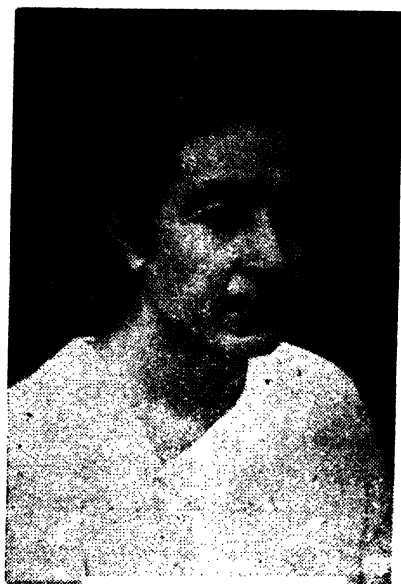
आपका जन्म दिल्ली के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वेदी घराने में हुआ। आप गौड ब्राह्मण हैं। आपके पिता पंडित आत्माराम वेदी पहिले दिल्ली में इंजीनियर थे, फिर कोल्हापुर के चीफ इन्जिनीयर रहे।

प्रारम्भ से ही आपकी रुचि संगीत की ओर थी, हाईस्कूल परीक्षा के बाद माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध छोटी आयु में ही घर छोड़कर काफी समय तक मुरादाबाद रहे। उन दिनों मुरादाबाद में रामपुर दरबार के कारण उच्चकोटि के गायकों का आना-जाना रहता था। यहां पर वजीर खाँ, नजीर खां, छज्जू खां मुबारक अलीखाँ आदि कलाकारों की गायकी से श्री वेदी लाभ उठाते रहे।

सर्व प्रथम सितार की शिक्षा आपको दिल्ली में पंडित नन्द किशोर जी से प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त दिल्ली के अन्य कलाकारों से भी आपने बहुत कुछ प्राप्त किया। मुरादाबाद में पं० बुलाकी गुरू से, पंडित लक्ष्मीशंकर नागर के आश्रम में पुत्र समान रहकर गायन की शिक्षा प्राप्त की।

तबला वादन की शिक्षा रामपुर के लच्छी गुरू तथा मुरादाबाद और दिल्ली के अन्य कलाकारों से प्राप्त हुई। आपको उन्नति एवं ख्याति के शिखर पर पहुंचाने का आधिकांश श्रेय स्व० पं० महादेव प्रसाद मइहर वालों को है जोकि घराना प्रेमदास भवानी दास के सुप्रसिद्ध कलाकार थे।

पंजाब, बंगाल, बम्बई, दक्षिण, बिहार और उत्तर प्रदेश का भ्रमण करके आप अपनी कला का प्रदर्शन कर सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। आप भारत के प्रत्येक प्राचीन घराने की गायकी से परिचित ही नहीं प्रत्युत

उनके सफल अभिव्यक्ता भी हैं। आपकी स्वयं की गायकी भारत की प्रसिद्ध पद्धतियों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। वास्तव में आप एक विलक्षण गायक हैं। साथ ही हारमोनियम तथा तबला वादन में भी अपूर्व क्षमता रखते हैं। कुछ समय पूर्व आपने एक ऐसे हारमोनियम का भी आविष्कार किया है जिसमें भारतीय संगीत की २२ श्रुतियां प्राप्त हो सकती हैं।

इस समय (१९५६ में) आपकी आयु लगभग ४८ वर्ष की है, अभी आप संगीत कला में और भी उन्नति करेंगे ऐसा पूर्ण विश्वास है। राष्ट्र को भविष्य में आपसे बहुत कुछ आशा है। वर्तमान समय में आप अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गीत महा विद्यालय कानपुर के प्रिन्सिपल हैं।

★

भैया जोशी

आपको प्रसिद्ध गायक बासदेव बुवा जोशी के पुत्र होने का सम्मान प्राप्त है। बुवा जोशी ने अपने पुत्र भैया जोशी को संगीत की शिक्षा स्वयं दी थी। प्रतिभावान और कुशाग्र बुद्धि होने के कारण भैया जोशी अल्प अवधि में ही संगीत के उच्चतम कलाकार हो गये। थोड़े दिनों बाद हिन्दू मुसलमान सभी गायक, भैया जोशी का सम्मान करने लगे। उस समय बोल-तान का काम भैया जोशी के समान अन्य कोई गायक नहीं कर सकता था। इनकी आवाज़ बहुत बुलन्द और सुरीली थी। इनका गायन बड़ा प्रभावशाली और रसोत्पादक होता था। पिता की कृपा से आपको परम्परायुक्त दुर्लभ एवं उच्चकोटि की गायकी प्राप्त हुई थी, इसलिये भैया जोशी अपने घराने की गायकी का वैचित्र्यपूर्ण प्रदर्शन करने में समर्थ थे।

गान विद्या में प्रवीण होने के साथ-साथ भैया जोशी संस्कृत के व्याकरण के विद्वान भी थे। ग्वालियर दरबार के शास्त्रियों एवं उच्चकोटि के विद्वानों में आपको स्थान प्राप्त था। आगे चलकर आपको उन्माद का रोग हो गया। उस अवस्था में आपके द्वारा जितनी भी बातें सुनने को मिलतीं वे सभी उच्चकोटि की एवं महत्वपूर्ण होतीं। एक बार बालकृष्ण बुवा ने भी आपसे बहुत सी चीज़ें प्राप्त कीं। आप पूना में आकर प्रमुखतः बालकृष्ण बुवा के पास ही ठहरा करते थे। अन्त में भैया जोशी बम्बई रहने लगे और सन् १९२० ई० के लगभग वहीं आपका देहान्त होगया।

★

भोलानाथ भट्ट

श्री भोलानाथ भट्ट उर्फ भोला जी के पूर्वज मारवाड़ के फतेहपुर—सीकरी ग्राम के निवासी थे। बाद में इलाहाबाद के कराली गांव में भी रहे। आपके वंश में पहले से ही गाने बजाने का कार्य व्यवसायिक रूप में होता आया है। आपके पितामह(बाबा) श्री साधो भट्ट, महाराजा दरभंगा के दरबार में थे। भोला जी का जन्म सन् १८६१ई. में दरभङ्गा में ही हुआ। आपके पिता का नाम है श्रीगंगादीन भट्ट।

वैसे तो आपके घराने में केवल ध्रुपद गायकी का ही रिवाज था, परन्तु बाद में बड़े मुन्ने खाँ साहब से और औलिया फतेह खां साहब के घराने से आपके वंश में ख्याल और टप्पे का भी प्रवेश हुआ। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा पहले आपके घर में ही हुई, उसके बाद उस्ताद बिन्दू खां, वजीर खाँ, मिट्ठू खाँ तथा दतिया के विलास खां से भी सीखा। सन् १९१० से टप्पा और ध्रुपद की तालीम श्री गरणपत राव से ली। मोहिउद्दीन साहब से आपने ६ वर्ष ठुमरी सीखी। इसके बाद आप भारतीय रियासतों में भ्रमरण करते रहे। इस भ्रमरण के अठारह वर्षों में आपने अच्छा अनुभव प्राप्त किया और फल स्वरूप आपके पास बहुत सी अप्राप्य चीजें, अनेक नायकों की गायकी, गायन के चारों अङ्गों का स्वर विस्तार एवं ध्रुपद और ठुमरी आदि का इतना विशाल भंडार है कि बहुत से गायक आपका लोहा मानते हैं। उस्ताद फैयाज़ खाँ के अभिन्न मित्रों में आपका प्रथम स्थान था। आजकल आप प्रयाग में ही रहते हैं।

★

मंजी खां

मंजी खाँ के पूर्वज हिन्दू थे और स्वामी हरिदास जी से इनकी वंश परम्परा मानी जाती है। आदि काल में आपके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण थे, जिनका शान्डिल्य गोत्र था किन्तु औरंगजेब के जमाने में उन्हें बल पूर्वक मुस्लिम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया गया। तब से यह 'मुसलमानी घराना हो गया।

मंजी खाँ के पिता उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब और चचा हैदर खाँ प्रथम बार जब दक्षिण में आये तब भी वे राजपूती पोशाक धारण किये हुये थे।

ध्रुपद गायकी की तालीम मंजी खाँ ने अपने चचा हैदर खाँ से प्राप्त की। उसके बाद उन्होंने अपने पिता से संगीत-शिक्षा ली। उन्हीं दिनों मरहूम रहमत खाँ का गाना सुनने का मौक़ा मंजी खां को मिला और उन्हें वह बहुत पसंद आया। इसलिये वे उनकी गायकी को कंठस्थ करके बड़े चाव से गाया करते थे। इनके पिता अल्ला-दिया खां साहब को यह बात पसंद नहीं आई कि हमारा लड़का किसी दूसरे व्यक्ति की गायकी को अपनाये। फलस्वरूप बाप बेटे में झगड़ा हो गया और अनबन रहने

लगी। इसके प्रतिवाद में मंजीखां ने गाना ही छोड़ दिया और ७ वर्ष तक संगीत से बिलकुल विरक्त रह कर कोल्हापुर दरबार में जंगल अधिकारी की नौकरी करते रहे। अन्त में बापू साहब कागलकर जी के समझाने बुझाने पर आपने अपनी शपथ तोड़ी और तब सरकारी नौकरी छोड़कर स्थाई रूप से आप बम्बई रहने लगे; वहां पर आपने अपना रियाज बढ़ाया तथा संगीत के विविध कार्यक्रमों में भाग लेने लगे।

मंजी खां की आवाज सब प्रकार की गायकी के योग्य थी। ख्याल और ध्रुपद गायकी के लिये गले में जिस विशेषता की आवश्यकता होती है, वह उनमें विद्यमान थी। गले की मीड़, सुरीलापन तथा कंठ माधुर्य उनके पास भरपूर था। स्वरों पर कंपन देकर उन्हें झुलाना मंजी खाँ को सहज साध्य था। यद्यपि उनकी आवाज कुछ भर्राई हुई निकलती थी, फिर भी वह अच्छी मालूम होती थी। उनकी तान, मुरकियां साफ और सुरीली निकलती थीं। तार सप्तक के गंधार, पंचम, मध्यम, धैवत, आदि स्वरों पर आन्दोलन करते समय उनकी आवाज इतनी कोमलता और माधुर्य के साथ उठती कि श्रोतागण प्रसन्न होकर रोमांचित हो उठते।

घरानों की साम्प्रदायिकता उनके हृदय में बिलकुल नहीं थी। अपने घराने के अतिरिक्त अन्य घरानों की विशेषतायें ग्रहण करने में वे कभी न चूकते थे। यही कारण था कि उनकी गमकों में रहमत खां साहब की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। आपकी गायकी में तानबाजी रहते हुये भी गीत के बोल स्पष्ट सुनाई देते थे। नत्थन खां आगरे वाले के घराने की बोल–तानों के अनुसार आपने बोलतानें भी तैयार कीं जिनमें विचित्रता के साथ–साथ लय के विविध प्रकार सम्मिलित हैं।

आपके घराने का गायन ध्रुपद, धमार ख्याल और होरी का है। यद्यपि मजी खां के घराने में ठुमरी नहीं गाई जाती तथापि वे स्वयं बड़ी मज़ेदार ठुमरी गाते थे, जिसमें मुरकियां, खटके, स्वर कंपन आन्दोलन आदि, रस परिपोषक तत्व भरपूर रहते थे।

मंजी खां के घराने की गायकी क्लिष्ट तथा पेचदार है। मालश्री, देशकार, हिन्डोल, जयत-कल्याण, जयजयवन्ती, शहाना, नायकी–कानड़ा, काफी–कानड़ा, बागेश्री–कानड़ा, हेमनट तथा हेम कल्याण आदि उनके घराने के खास राग हैं। शास्त्रीय गायन को आप जितना पसन्द करते थे उतनी ही सरल संगीत में भी रुचि रखते थे।

आपने बहुत से गीत और ग़ज़ल भी तैयार किये। सन् १९३० के स्वाधीनता संग्राम में आपने अपना बनाया हुआ गीत "चरखे की करामात से लेंगे स्वराज्य लेंगे" स्वयं गाया था और प्रभात फेरी के बाल गोपालों को सिखाया था। तराने आप पसन्द नहीं करते थे। इसके बारे में उनका कहना था कि आजकल के अर्थ हीन तराने फ़ार्सी तरानों की नक़ल हैं। वे मुझे पसंद नहीं! मुझे केवल नटनारायण राग का एक तराना पसंद है और उसे ही मैं गाता हूँ। वह तराना अर्थपूर्ण है।

सन् १९३० से १९३५ तक अपने सुमधुर संगीत से मंजी खां साहेब ने बम्बई वालों को आकर्षित कर लिया था। आपने अनेक शिष्य भी तैयार किये। आप सीधे सादे और दिल के साफ़ थे, इसी कारण आपके मित्र और प्रशंसकों की संख्या भी अधिक थी। दोस्तों में विशेषतः हिन्दुओं की संख्या का बाहुल्य था।

★

मनरंग

भारतीय संगीत को समृद्ध बनाने के लिए अपने युग में जिस प्रकार सदारंग और अदारंग ने कार्य किया था लगभग उसी प्रकार की सेवाएँ संगीत के लिए मनरंग द्वारा की गई प्रतीत होती हैं। ये सदारंग के पुत्र थे, अपने पिता की भांति इन्होंने भी बहुत सी चीजें स्वयं तैयार कीं। इनके गीतों में भी सदारंग अदारंग की तरह बादशाह के नाम की छाप पाई जाती है। यह चीजें आजकल भी प्रचिलित हैं और अधिकांशतः जयपुर के गायकों द्वारा सुनने में आती हैं।

मनरंग अपने ज़माने का बहुत ही विद्वान और क्रियात्मक संगीत में निपुण हुआ प्रतीत होता है। इनका असली नाम था भूपत खाँ, मनरंग तो उपनाम था। इसके अतिरिक्त इनके पूरे नाम निवास स्थान एवं जन्म सम्वत् आदि के विषय में ठीक ठीक पता नहीं चलता, फिर भी इतिहासकारों के मतानुसार यह दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह के समय में हुए, ऐसा प्रमाण मिलता है। इस बादशाह ने सन् १७१९–१७४८ ई० तक राज्य किया अतः इसी अधार पर मनरंग का समय अठारवीं शताब्दी का मध्यकाल निश्चित किया जा सकता है।

मनरंग के २ पुत्र थे जीवनशाह और प्यार खां "अँगलीकट"। बालकपन में एक बार प्यार खां मार्ग में खेल रहे थे उसी समय एक बैलगाड़ी से प्यार खां के दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली कट गई। इसलिये उनका नाम 'अँगली कट' पड़ गया। इस कारण प्यार खां ने बहुत समय तक वीणा नहीं बजाई। इनके भाई जब वीणा में विख्यात हुए तब इन्होंने अपने पिता "मनरंग" से दुखी होकर कहा कि हमारा जीवन वृथा ही जायगा, अँगुली के बिना मैं वीणा अब कैसे बजाऊंगा ? तब मनरंग ने अपने पुत्र की कातरता देखकर उसको आश्वासन देते हुए कहा—"घबराओ मत बेटे ! छैः महीने के अन्दर तुमसे ऐसी वीणा बजवा दूंगा कि हिन्दुस्तान में तुम्हारे बराबर वीणा वादक शायद ही कोई निकलेगा।" वस्तुतः ऐसा ही हुआ। मनरंग ने प्यार खां की कटी हुई तर्जनी अँगुली में एक बड़ा लम्बा मिजराब पिरोकर उनकी वीणा चालू कर दी। फिर तो कटी हुई अँगुली वाले प्यार खां ऐसे वीणा वादक हुए कि उनका नाम विख्यात हो गया।

★

मनहर बर्वे

वर्तमान भारतीय संगीतज्ञों में श्री—मनहर बर्वे अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। आपकी स्वर—लहरी में माधुर्य के साथ—साथ एक विशेष आकर्षण भी है।

२० दिसम्बर १६१० ई० को भारत के वैभवपूर्ण नगर बम्बई में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता श्री गणपत राव गोपाल बर्वे भी संगीत के असाधारण प्रेमी थे। उनकी प्रबल आकांक्षा थी कि मेरा मनहर एक दिन सफल शास्त्रीय संगीतज्ञ बने। उनका यह स्वर्णिम् स्वप्न शीघ्र ही पूर्ण हो गया। बाल्यकाल में ही मनहर बर्वे के अन्दर विलक्षण प्रतिभा दृष्टिगोचर होने लगी। ऐसी विलक्षण प्रतिभा कदाचित ही किसी कलाकार में दृष्टिगत हुई हो। किसी भी व्यक्ति द्वारा गाये गये कठिन से कठिन गीत की साथ—साथ ही स्वरलिपि बना देना तथा विभिन्न वाद्यों को एक दक्ष कलाकार की भांति बजाना मनहर बर्वे के लिये सरल था। आवाज़ का गुण तो आपको ईश्वर प्रदत्त था। आश्चर्य होता है कि बालक मनहर को लगभग ६ वर्ष की आयु में ही संगीत के क्षेत्र में आशा से अधिक ख्याति प्राप्त हो गई थी। सर्व प्रथम श्रीमती सरोजनी नायडू ने आपको "बालस्वर—भास्कर" की उपाधि से विभूषित किया। इसके पश्चात् तो श्री बर्वे पर उपाधियों एवं पुरस्कारों की वर्षा सी होने लगी। इस बीच आपके द्वारा किया हुआ देश व्यापी भ्रमण विशेष

उल्लेखनीय है। इस भ्रमण के द्वारा जहां श्री बर्वे के सम्मान और यश की अविवृद्धि हुई, वहाँ संगीत के प्रचार और प्रसार में भी ठोस काम हुआ। आपकी यह सेवायें सदैव स्मरणीय रहेंगी।

पिता की मृत्यु के पश्चात आपकी बड़ी बहिन श्रीमती मनोरमा काले तथा उनके पतिदेव श्री माधव नाथ काले ने श्री बर्वे को अपने संरक्षण में रक्खा। दुर्भाग्यवश कुछ दिनों पश्चात् श्री काले भी स्वर्गवासी होगये। उनकी आकस्मिक मृत्यु से मनहर बर्वे तिलमिला उठे और उनकी मनःस्थिति डाँवाडोल होने लगी। कुछ समय के लिये प्रगति की गति मन्थर होगई।

श्री बर्वे के जीवनकाल में संगीत सम्बन्धी कुछ चमत्कारपूर्ण घटनायें भी हुई हैं। जिनमें से उन्हीं के बताये अनुसार एक घटना इस प्रकार है:— "मैं सन् १९४२ में लोना वाला गया था, लड़ाई का ज़माना था। जंगल में हमारा क्वार्टर था, शाम हो रही थी। समय काटने के लिये मैंने 'दिलरुबा' हाथ में ले लिया। बजाते–बजाते मैं अपने में खोने लगा। उसी बीच संगीत की स्वर लहरियों से मुग्ध एक सांप कुण्डली मार कर मेरे सामने बैठ गया। थोड़ी देर बाद जब मेरी दृष्टि उस नागराज पर पड़ी तो इच्छा होते हुए भी मैं वहां से न उठ सका और बजाता ही रहा। मेरे बहनोई श्री काले ने मुझे सूचित किया कि रात काफी जा चुकी है। अब बन्द करदो। मैंने नागराज की ओर संकेत करते हुए कहा कि बन्द कैसे करूं। नाग देवता तो सामने बैठे हैं। अन्त में स्वर लहरियाँ धीमी हुई और सर्प देवता चले गये।"

श्री मनहर बर्वे की सांगीतिक प्रतिभा के विषय में हमें अधिक कुछ बताने की आवश्यकता नहीं। भारतीय आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होने वाले आपके कार्यक्रम ही आपकी प्रभावशाली, मधुर तथा रसोत्पादक गायकी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं इस समय आप बम्बई में ही निवास करते हैं। ३ मार्च सन १९३९ ई० को बैरिस्टर श्री जी० डी० महता के वरद हस्त द्वारा "मनहर संगीत विद्यालय" की स्थापना हुई थी। उसी के आप संचालक, शिक्षक एवं जन्मदाता हैं।

★

मल्लिकार्जुन मंसूर

मल्लिकार्जुन मंसूर यद्यपि कन्नड़ साहित्य के ज्ञाता हैं, किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत से आकर्षित होकर आपने नीलकण्ठ बुवा मिरज वाले, उस्ताद मंजी खां तथा उस्ताद भुर्जी खां से संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

आपका जन्म धारवाड़ जिले के अन्तर्गत मंसूर नामक ग्राम के एक साधारण एवं संभ्रांत परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री–मीमरायप्पा मंसूर है। मल्लिकार्जुन की जन्म तिथि ३१ दिसम्बर सन् १९१० ई० है। बाल्यकाल में शिक्षा की सुविधायें गांव में प्राप्त न हो सकने के कारण धारवाड़ आकर आपकी प्राथमिक शिक्षा शुरू हुई, किन्तु स्कूली तालीम में आपका मन अच्छी तरह नहीं लगता था। संगीत कला के लिये आन्तरिक स्फूर्ति होने के कारण आप गायन–वादन में रुचि लेने लगे और पुस्तकीय ज्ञान से मुंह मोड़ लिया। इनके भाई बसवराज एक उच्च कलाकार थे। भाई ने इनको संगीत शिक्षा के लिये प्रसिद्ध कलाकर श्री नीलकण्ठ बुवा के पास भेजा। इनके भाई बसवराज की रुचि नाटक व अभिनय की ओर थी, किन्तु अपने छोटे भाई की रुचि को पहचानकर उसे नाटकीय क्षेत्र से अलग ही रक्खा।

नीलकंठ बुवा से संगीत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मल्लिकार्जुन मंसूर ने बम्बई, कलकत्ता, नागपुर, दिल्ली आदि प्रसिद्ध नगरों में घूमकर अपनी

कला का प्रदर्शन किया । कन्नड़ साहित्य में 'वचन' और "रगड़े" शैली को, जिनमें कि गद्य भाग अधिक होता है, संगीत की शैली में ढालकर उनको लोकप्रिय बनाया, इनमें से कुछ को रेकार्ड भी किया जा चुका है। कुछ समय तक हिज़मास्टर्स वॉयस कम्पनी में आप म्यूज़िक डाइरैक्टर के पद पर भी रह चुके हैं। पम्पा पिक्चर्स के "चंद्रहास" चित्र का संगीत निर्देशन आपने ही किया था।

मल्लिकार्जुन मंसूर की गायकी जयपुर-ग्वालियर घराने की है। आप अधिकतर ख्याल गाते हैं। बिलावल, टोड़ी, बिहाग, कानड़ा और मल्हार आपके प्रिय राग हैं। गत ३० वर्षों से संगीत की ठोस सेवा करते हुए विविध संगीत सभाओं द्वारा आप 'संगीत रत्न', 'गंधर्व रत्न' आदि उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं। कठिन से कठिन रागों को सुन्दरता से प्रस्तुत करने की आप अपूर्व क्षमता रखते हैं तथा तानें विलक्षण और विशेषता लिये हुए होती हैं।

★

मस्सू ख़ाँ

सैनियों का घराना, दिल्ली वालों का घराना, ग्वालियर वालों का घराना जैसे संगीत कला के क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं वैसे ही कव्वालबच्चों का घराना भी बहुत प्रसिद्ध है। इस घराने में उस्ताद तानरस खां साहेब दिल्ली वाले एक प्रमुख गायक हो चुके हैं जिनके शागिर्द श्री अलिया खां, फत्तू खां ने काफी ख्याति प्राप्त की। अधिकांश पंजाबी गायक इसी घराने के हैं। कव्वालबच्चों का यह घराना उस्ताद एहमद खां—मोहम्मद खां का घराना भी कहलाता है। स्व० चांद खां, मोहम्मद खां आदि मशहूर गवैये इसी घराने में हुए हैं। उस्ताद बड़े गुलामअली खां साहेब, जो कि वर्तमान श्रेष्ठतम गायकों में से हैं, इसी घराने का गौरव बढ़ाते हैं। इस घराने में लय और ताल की कठोर साधना तथा स्वरों को जमकर मधुरता के साथ लगाने के अभ्यास के कारण, इस घराने के गायक कभी बेताले नहीं होते व उनका ख्याल गायन रस एवं रन्जकता से ओतप्रोत पाया जाता है। जलद की चीजें तथा तराने अनुद्रुत लय तक में गाये जाने के कारण ही कदाचित् इस घराने का नाम कव्वालबच्चों का घराना पड़ा होगा।
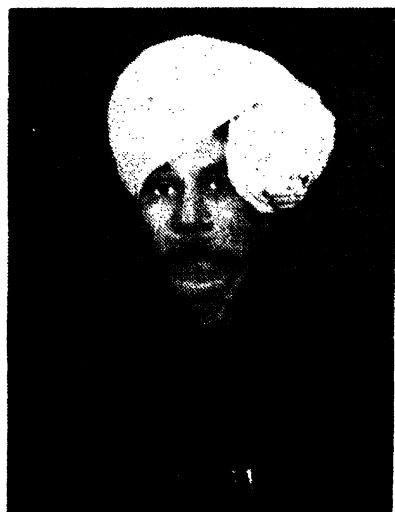
उस्ताद तानरस खां के शिष्य उस्ताद एहमद खां से श्री पंचम खां ने शिक्षा ग्रहण की थी। स्व० पंचम खां साहेब, श्री मस्सू खां के पिता तथा गुरू थे। श्री मस्सू खां को अपने पिता से चार गायकी की विशेपताएं विरासत में प्राप्त हुईं। क्यों कि स्व० पंचम खां ने उस्ताद एहमद खां से ख्याल गायन की विशेपताएं तथा उस्ताद केसर खां और जुग्गन खां से ध्रुपद व होरी की विशेताएं प्राप्त कीं थीं व उनकी अपनी भी कुछ विशेपताएं थीं। इस कारण उस्ताद मस्सू खां के गायन में ओज है, माधुर्य है, लयकारी है तथा वे सब बातें मौजूद हैं जो एक सफल गायक में होनी चाहिये। शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त आप मराठी की

चीजें भी बड़ी मधुरता के साथ गाते हैं। एक सफल गायक होने के साथ ही साथ आप सफल नायक भी हैं। कई पद स्वयं ने बृजभाषा में रचकर भिन्न भिन्न रागों में उनकी बड़ी सुन्दर बन्दिश की है, जिनको आप व आपके शिष्यगण गाते हैं।

आपका जन्म बरसाना जिला मथुरा में हुआ। इस कारण भगवान कृष्ण की बृजभूमि तथा बाबा हरिदास स्वामी की गद्दी एवं उनकी चली आ रही गायन परम्परा से आप अत्यधिक प्रभावित हैं, और शायद इसीलिये आप पर अध्यात्म का कुछ रंग चढ़ा हुआ दिखाई देता है। बृजभूमि के बड़े–बड़े मन्दिरों से आपको निमंत्रण आते थे और आप वहां बड़े प्रेम से भजन गाया करते थे। आपकी परमेश्वर में पूर्ण आस्था है। जब कोई विद्यार्थी आपके पास संगीत सीखने जाता है और वह यह पूछता है कि "उस्ताद साहेब आपके पास सीखने की क्या फीस होगी?" तो उस्ताद तुरन्त मुस्कराकर यही उत्तर देते हैं, "बेटा, हमने आज तक किसी के सामने हाथ नही फैलाया, सिवाय उस मालिक के। उसको हमारी बहुत फिकर है और हमें देने वाला वही है।"

धोलपुरवाड़ी, जयपुर तथा रेवई के महाराजाओं का राज्याश्रय प्राप्त होने से स्व० पंचम खाँ को अपने प्रिय पुत्र के साथ बरसाना छोड़ना पड़ा था। तभी से उस्ताद मस्सू खां राज्याश्रय में पलते रहे और फिर बरसाना जाकर नहीं बसे। इन्दौर के महाराज तुकोजीराव आपके गायन पर मुग्ध थे। आपके ताया श्री महबूब खां अतरौली वाले संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। उन्होंने कई पद रचे हैं जिनको आप गाते हैं। ये महबूब खां लगभग ३० वर्षों से उज्जैन में हैं तथा वहां पर अपनी संगीत कला की साधना में लीन हैं। इस समय आपकी उम्र लगभग ५२ वर्ष है। आपके रहन–सहन में अत्यन्त सरलता, विचारों में सात्विकता तथा व्यवहार में विनय है।

अपने पिता की तरह आप भी स्वयं का प्रचार कुछ कम पसन्द करते हैं। खां साहेब के पास कई रेकार्ड भरने वाले व रेडियो अधिकारी आये, किन्तु उन्होंने महज़ इसलिये इन्कार कर दिया था कि वो अपनी जाहिरात बाजी नहीं चाहते। श्री मस्सूखां साहेब के तैयार किये हुए अनेक गायक–वादक शिष्य हैं जिनमें से कुछ बम्बई, बड़ौदा आदि रेडियो स्टेशन पर कार्य कर रहे हैं।

★

महादेव बुवा गोखले

महाराष्ट्र में ख्याल की गायकी का श्री गणेश गायनाचार्य पं० महादेव बुवा गोखले द्वारा ही हुआ, अतः उधर के निवासी आपको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं। गोखले जी का जन्म सन १८१३ ई० के लगभग रत्नागिरी जिले के अन्तर्गत खोल नामक गांव में हुआ।

जबकि आपकी आयु केवल १२ वर्ष थी, किसी बात पर आपके नाना और पिता में कहा-सुनी होगई, महादेव बुवा ने अपने पिता का पक्ष लेते हुए नाना जी से कुछ कटु शब्द कह डाले। वे शब्द ऐसे अप्रिय थे जो कि उन्हें चुभ गये और उन्होंने गोखले जी को घर से निकाल दिया। वहां से आप अपने पिता के साथ मिरज आये और लगभग ४ वर्ष रह कर मिरज के श्रीमन्त के गायकों द्वारा संगीत सीखते रहे।

सन् १८३६ के लगभग आप हैदराबाद के लिए चल पड़े। इनके पिता जी इस यात्रा के विरुद्ध थे, उन्होंने तरह-तरह के डर इन्हें दिखलाये, समझाया, किन्तु यह टस से मस नहीं हुये! अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए जब ये हैदराबाद पहुँचे तो वहां एक दिन श्री पेस्टिन जी भाई तारापुरवाला के यहां आयोजित कीर्तन में सम्मिलित होने का सुअवसर इन्हें प्राप्त हुआ। वहां पर गोपाल बुवा ने इनका परिचय दिया कि यह ध्रुपद-धमार के गायक हैं और अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए इधर आये हैं। इनकी सुरीली आवाज और तैयारी देख कर पारसी लोग बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें अपने यहां घुड़सवारी की नौकरी में स्थान दे दिया। कुछ दिनों में वहां कोशिश करके ये जैनुल अब्दीन खां उर्फ "बड़े मियां" के पास आने-जाने लगे और उनसे गाना सिखाने की प्रार्थना की। मियां साहब ने कहा-मैं अपना गाना किसी को भी नहीं सिखाता। पहले आप और गवैयों का गाना सुनिये उसके बाद यह सोचना कि

किससे गाना सीखना चाहिए । इस प्रकार कुछ समय तक इन्होंने इधर-उधर के गायकों का गाना सुना और फिर निश्चय किया कि ध्रुपद-धमार की उत्तम गायकी केवल मियां साहब ही सिखा सकते हैं । एक दिन जब लौटकर ये मियां साहब के पास फिर पहुंचे तो कहने लगे कि हम तो आपसे ही सीखेंगे और किसी को उस्ताद बनाने को जी नहीं चाहता । इस पर मियां साहब तीन शर्तों पर इन्हें शिक्षा देने के लिए राजी हो गये, वे शर्तें मियां साहब ने इनके आगे रखीं । १—मैं तुमको सिखाऊं या न सिखाऊं लेकिन इस मामले में तुम कभी शिकायत न कर सकोगे । २—हाजिरी रोजाना देनी होगी । ३—मैं चाहे जितनी देर तक सिखाऊं तुमको जम कर बैठना पड़ेगा और मेरी बिना आज्ञा के उठ न सकोगे । मियां साहब की ये सभी शर्तें गोखले साहब ने चुपचाप स्वीकार करलीं ।

इनकी संगीत शिक्षा चालू होगई । शुरू में मियां साहब ने इन्हें यमन राग का प्रसिद्ध ख्याल "मुहम्मद या रवी या नबी" बताया और फिर कुछ दिन बाद इसी राग में "डरोरी नहीं इन ननदिया सौं" यह चीज़ सिखाई, इन्हीं दोनों चीजों का रियाज ये बहुत दिनों तक करते रहे । जब २ वर्ष बीत गये और ये ऊब कर रुकने लगे तो मियाँ साहब ने डांट लगाते हुए कहा—रुको मत, इन्हीं चीज़ों का रियाज़ करते रहो । डर के मारे ये मियाँ साहब से कुछ कह नहीं सकते थे । अब यह चिन्तित रहकर सोचने लगे कि तालीम आगे कैसे बढ़े ? सौभाग्य से एक दिन मियां साहब की बीबी मियां जी को ताना मारते हुए कहने लगीं कि दो साल हो गये इनको कुछ और भी बताओगे या ये ही दो गाने गाते रहेंगे, अगर और कुछ नहीं बताना चाहते हो तो मैं उनसे जाकर कहे देती हूँ कि वह कल से आना बन्द करदें । इस पर फौरन ही मियां जी बोले, अरे ! नहीं-नहीं ऐसा मत करना मैं तो इनको परख रहा था, अब ये जम गये हैं, इसलिये कल से अच्छी तरह बताऊँगा ।

फिर तो इनकी तालीम शीघ्रता से आगे बढ़ने लगी और लगभग ६ माह के अन्दर ही दो सौ के लगभग चीजें मियां साहब ने सीनाबसीना रियाज़ कराकर सिखा दीं । इस प्रकार ३ वर्ष बीत जाने पर यह बहुत अच्छे तैयार होगये और फिर ये उनकी आज्ञा लेकर सतारा लौट आये । उन दिनों इनकी शादी की बातचीत चल रही थी । यकायक इनके पिताजी का देहान्त होगया, माता के विशेष प्रयत्न पर कुछ दिनों बाद इनकी शादी भी होगई । इसके कुछ दिनों पश्चात् माताजी का भी स्वर्गवास हो जाने के कारण ये फिर

हैदराबाद चले गये और मियां साहब से तालीम लेने लगे। जब आप गायकी में पूरी तरह तैयार होगये तो एक दिन इनके उस्ताद मियां साहब ने दुलार का हाथ फेरते हुए कहा कि महादेव तुम अब पूरी तरह तैयार होगये हो इसलिये अब कमाने खाने जाओ, पर एक बात का ख्याल रखना कि अपने लड़कों को संगीत कला के अलावा और कुछ न सिखाना। इस प्रकार मियां साहब का आशीर्वाद प्राप्त करके महादेव बुवा मिरज लौट आये।

कुछ समय बाद हैदराबाद में दंगे आदि बढ़ जाने के कारण मियां साहब तालिकोट में जाकर बस गये और विशेष आग्रह पूर्वक महादेव बुवा को भी अपने पास बुला लिया। उस समय छोटे मियां मुजफ्फर खां भी वहीं रहते थे उनसे भी महादेव बुवा को सैकड़ों चीज़ें प्राप्त हुईं।

कुछ दिनों बाद गोखले जी स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय करने लगे। प्रथम गणेशवाडी और मिरज आदि स्थानों में घूमते रहे, इसके बाद कुछ दिनों बम्बई में रहे और अन्त में जमखण्डी के दरबारी गायक बन कर स्थायी रूप से वहीं रहने लगे। कुछ समय पश्चात् आप कोल्हापुर राज्य के दरबार गायक बन कर रहे। वहाँ उन्होंने अपने चारों पुत्रों को अपने घराने की गायकी सिखाई। इनके पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र कृष्णबुवा स्वतन्त्र रूप से संगीत व्यवसाय करते थे। उनकी गायकी पर भी मियां साहब की छाप दृष्टि-गोचर होती थी। पं० कृष्णबुवा से श्री भातखंडे जी ने अनेक चीज़ें लेकर अपनी पुस्तकों में दी हैं। गोखले जी के सबसे बड़े पुत्र गणपतबुवा कोल्हापुर में काफी समय तक दरबार गायक रहे। सन् १६०१ ई० में मिरज में आपका देहावसान होगया।

गोखले घराने के उक्त गायकों ने अपने घराने के बाहर विशेष रूप से कोई शिष्य तैयार नहीं किया, इसलिये इस घराने की गायकी सीमित होकर रह गई और अब कभी-कभी विश्वनाथ बुवा गोखले और धारवाड़ के प्रिन्सीपल जठार साहब द्वारा इस घराने की गायकी की एक झलक मिल जाती है।

★

महीपति

यह भी बादशाह अकबर के दरबारी गायक थे। प्रारम्भ में महीपति गुजरात के शासक स्लामशाह के आश्रय में रहते थे और रामदास के समकालीन थे। कुछ दिनों के बाद रामदास के साथ ही यह भी दिल्ली आये और बादशाह अकबर को पसंद आने पर रामदास के साथ ही साथ आपको भी दिल्ली राज्य का दरबारी गायक बना लिया गया। उस समय के हिन्दू गायकों में आपकी गणना भी प्रथम श्रेणी के गायकों में की जाती थी। आप ध्रुपद गाया करते थे। आपकी आवाज़ बड़ी मीठी और दमदार थी। गायकी का ढंग भी बड़ा मनमोहक था। अकबर को महीपति का गायन बहुत प्रिय लगता था।

अकबर के शासन काल में ही इनकी मृत्यु हो गई।

★

मानतोल खाँ

जोधपुर के महाराज मानसिंह जिनका मान करते थे, वे अतरौली के खाँ साहेब मानतोल खाँ साधुवृत्ति के एक प्रसिद्ध गायक हो गये हैं। गाना सिखाना और कसरत करना बस इसी मस्ती के आलम में आपके जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत हुआ। आपके गाने में यह विशेषता थी कि श्रोताओं की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो जाती थी। जब इनके यहाँ एक पुत्र पैदा हुआ तो आपने अपनी बीवी से कहा—"लो अब तुम जानो और यह जाने, हमारा रास्ता तो अब अलग हुआ।" और उसी दिन से उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण करके ग्रहस्थाश्रम छोड़ दिया। राजदर्बारों में भी आप जब जाते थे तो इसी फकीरी वेष में नंगे सिर और नंगे पैर जाते। आप "रुलाने वाले फक़ीर गवैये" के नाम से प्रसिद्ध थे।

एक बार अलवर के महाराज बनेसिंह को जब यह मालूम हुआ कि मानतोल खाँ गाना गाकर रुलाने की सामर्थ्य रखते हैं तो उन्होंने इन्हें लेने के लिये दूत भेजे किन्तु यह आने को राज़ी न हुए, और बहुत दिन तक टालमटोल करते रहे। तब इनको कई व्यक्तियों ने समझाया कि महाराज आपका खर्चा तीन साल से उठा रहे हैं और आप एक बार उन्हें गाना सुनाने को भी नहीं जाते, यह बात नामुनासिब है। इस पर उन्होंने लापरवाही से कहा "फिर कभी देखेंगे अब नहीं जाते।" अन्त में बड़ी कठिनाई से राज़ी करके इन्हें अलवर के दर्बार में इनके पुत्र करीम बख्श लिवाकर ले गये। इनके अन्दर गाने का मूड पैदा करने के लिये प्रथम इनके पुत्र करीम बख्श स्वयं गाने लगे। तब ये बीच में एक दम बोले "अरे ऐसे नहीं देखो ऐसे" और खुद शुरू हो गये। फिर तो बराबर तीन चार घंटे तक आपने गाया और ऐसा गाया कि महाराज और दर्बारियों का रोते रोते बुरा हाल हो गया। तब महाराज इनसे बहुत प्रभावित हुए और बोले—"खाँ साहेब हमने जैसा सुना था वैसे ही आप निकले। वाह, क्या कहने हैं आपके ! बोलो क्या चाहते हो ?" खाँ साहेब मानतोल खाँ बड़ी गम्भीरता से कहने लगे—"सरकार मुझे कुछ नहीं चाहिये, बस यही मांगता हूं कि मुझे फिर कभी याद न फरमाएं और मुझे मेरे बच्चों के पास भेज दिया जाय।" आपकी इस विचित्र मांग को सुनकर सब हँस पड़े और महाराज ने यथेष्ट धन देकर उन्हें विदा किया।

एक बार यह प्रभावशाली कलाकार जोधपुर के महाराज द्वारा भी पुरस्कृत हुआ। महाराज मानसिंह ने आपको इनाम में जब गाँव और जायदाद देने की

इच्छा प्रकट की तो आपने उसे लेने से इन्कार करते हुए कहा कि महाराज इनसे तो बच्चे आपस में लड़ेंगे, इसलिये माफ कीजिये और मेरे हाथ बस यह तानपूरा ही रहने दीजिये। आपकी त्याग वृत्ति का यह एक ज्वलंत उदाहरण है। अन्त में जोधपुर नगर में ही आपका देहावसान हुआ। आपके घराने के व्यक्ति अभी तक यहां मौजूद हैं। उस्ताद भुर्जी खां के सुपुत्र, प्रसिद्ध संगीतज्ञ अजीजुद्दीन खां कोल्हापुर वाले इस घराने की गायकी को जीवित रक्खे हुए हैं।

★

मिराशी बुवा

स्व० बालकृष्ण बुवा की परम्परा के विद्वान गायक मिराशी बुवा एक ऐसे संगीतज्ञ हैं, जिनमें बाल्यकाल से संगीत की भावना लेश मात्र भी नहीं थी, बल्कि वे गाने के नाम से चिढ़ते थे। अतः आपके चरित्र से पाठकों को यह विदित होगा कि प्रयत्नशील व्यक्ति युवा अथवा प्रौढ़ावस्था में भी संगीत कला प्राप्त करके यश प्राप्त कर सकते हैं। आपका जन्मकाल सन् १८८३ ई० के लगभग बताया जाता है। एक बार स्व० बालकृष्ण बुवा इचलकरंजी में पधारे और अपने परिवार सहित मिराशी बुवा के मकान के सामने ही एक मकान लेकर रहने लगे। बालकृष्ण बुवा का चेहरा बड़े-बड़े गलगुच्छों के कारण एक विचित्र प्रकार का लगता था और जब वे गाते थे तो उनके चेहरे को देखकर बालक यशवन्त (मिराशी बुवा) को बड़ा मज़ा आता। ये उनके घर तो जाते नहीं थे क्यों कि इन्हें उनके गाने से चिढ़ थी, अपने घर में ही बैठे-बैठे आड़ा-टेढ़ा मुँह करके उनका मज़ाक बनाया करते। बालकृष्ण बुवा का गाना प्रायः हर समय होता ही रहता था और मकान सामने ही होने के कारण, अनिच्छा रहते हुए भी इनके कानों में उनका गाना प्रवेश करता ही था। इसका परिणाम यह हुआ कि ये उनकी चीज़ों को सुनकर नक़ल करके गाने लगे, यद्यपि यह नक़ल मज़ाक के रूप में मित्र मण्डली को खुश करने के लिये ही की जाती थी। यह खबर जब बाल कृष्ण बुवा के कानों तक पहुंची तो यशवन्त (मिराशी बुवा) को एक दिन उन्होंने अपने यहां बुलाया और अपने गाने की नकल सुनाने के लिये कहा—किन्तु यशवन्त को बुवा साहब के डर के कारण गाने की नक़ल सुनाने में भय लग रहा था, किन्तु उनके अभय-दान तथा विशेष आग्रह पर इन्होंने गाया। उसे सुनकर बालकृष्ण बुवा आश्चर्य चकित रह गये कि बिना तालीम के ही यह मेरे गाने की नक़ल किस खूबी से करता है। यशवन्त से उन्होंने कहा कि यदि तू गाना सीखने का प्रयत्न करे तो तुझे बहुत अच्छा गाना आ सकता है।

बुज़ुर्गों की वाणी में प्रभाव होता ही है, वह काम कर गया और यश-वन्त (मिराशी बुवा) बाल कृष्ण बुवा के यहाँ गाना सुनने जाने लगे,

किन्तु कुछ दिनों बाद बालकृष्ण बुवा ने वह मकान छोड़ दिया । इधर यशवन्त भी कोल्हापुर में अँग्रेजी पढ़ने के वास्ते चले गये, किन्तु घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण इचलकरंजी वापिस आ गये और बालकृष्ण बुवा के यहाँ फिर जाने लगे, साथ ही आपकी संगीत शिक्षा भी इन्होंने शुरू कर दी।

इनके खानदान में परम्परागत नौकरी पेशा चला आ रहा था। अतः घर वाले संगीत शिक्षा के विरुद्ध थे, वे तो इन्हें अंग्रेजी पढ़ाकर नौकरी कराना चाहते थे। जब घर वालों को मालूम हुआ कि यह गाना सीखने जाता है और बालकृष्ण बुवा के कपड़े धोना, पानी लाना, आदि जैसे क्षुद्र कार्य करता है तो उन्होंने इसे अपने कुल का अपमान समझा और वहाँ जाने से रोक दिया- संगीत-शिक्षा की धारा टूट गई। कुछ समय बाद इन्हें एक नौकरी मिल गई, इस प्रकार २-३ वर्ष बीत गये।

कुछ समय पश्चात इचलकरंजी के दरबार में एक मस्तिष्क-परीक्षक आये, उन्होंने ५-६ व्यक्तियों के मस्तक की परीक्षा ली, जिनमें यशवन्त भी शामिल थे। यशवन्त के मस्तक की परीक्षा करके उस विशेषज्ञ ने बताया कि यह एक नामी गवैया बनेगा। उन्हीं दिनों भारत वर्ष का दौरा करते हुये पंडित विष्णु- दिगम्बर पलुस्कर अपने गुरू बालकृष्ण बुवा के पास यहाँ आये थे, उन्होंने बुवा से कहा कि यहां का भी कोई नागरिक ऐसा है जो संगीत में तैयार किया जा सके। बुवा साहब ने कहा कि हाँ मिराशियों का यशवन्त तैयार हो सकता है।

श्रीमंत बाबा साहब इचलकरंजीकर बड़े गुणी व्यक्ति थे, उन्हीं के यहाँ यशवन्त नौकरी पर था। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि पं० विष्णु दिगम्बर और बालकृष्ण बुवा की इच्छा इसे संगीतज्ञ बनाने की है तो उन्होंने यशवन्त को ३ वर्ष तक सवेतन छुट्टी दे दी और अपने महल में ही बालकृष्ण बुवा द्वारा इनकी संगीत-शिक्षा का प्रबन्ध करा दिया। धीरे-धीरे ये संगीत में उन्नति करने लगे। जब तैयार हो गये तो इचलकरंजी छोड़कर भ्रमण के लिये चल दिये और बीच में दो, एक स्थानों पर होते हुये सतारा पहुचे। वहां पर इनके संगीत कार्यक्रम सफलता पूर्वक हुये तथा इनके कंठ माधुर्य से प्रसन्न हो कर श्री क्षत्रपति सरकार ने अपने दरबार में गायक के पद पर इन्हें नियुक्त करने की इच्छा प्रगट की। इस पर यशवन्त जी ने कहा कि महाराजा इचलकरंजीकर की आज्ञा से मैं दौरे पर निकला हूँ, अतः एक बार वहां वापिस पहुँचना

आवश्यक है। पीछे मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो सकूंगा। इसके बाद आप अन्य अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए सतारा महाराज के दरबार में गायक का पद स्वीकार करने के लिये जाने ही वाले थे कि उन्हें महाराजा इचलकरंजीकर का तार मिला जिसमें नाट्य कला प्रवर्त्तक मण्डली में काम करने के लिये भेजने का आदेश था। उनकी आज्ञा को टालने का साहस इनमें नहीं था, क्यों कि उन्हीं की कृपा से इन्हें संगीत–शिक्षा प्राप्त हुई थी। निदान सन् १६११ ई० में आपने नाटक कम्पनी में प्रवेश किया। आपके अभिनय की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी, इनके गाने से श्रोतागण आनन्द विभोर हो जाते थे। आप जगह–जगह यशवन्त मिराशी बुवा के नाम से प्रसिद्ध होगये। सन् १६३२ में इन्होंने यह नाटक कम्पनी छोड़ दी।

इस प्रकार सन् १६११ से १६३२ तक अपनी युवावस्था के २०–२१ वर्ष नाटक कम्पनी में व्यतीत करने के कारण मिराशी बुवा एक सफल अभिनेता और गायक बन गये थे। यद्यपि नाटक कम्पनी के ३–४ लोगों को इन्होंने गायकी की शिक्षा दी थी, फिर भी इनकी इच्छा थी कि मेरे द्वारा शिक्षा पाकर कुछ और विद्यार्थी तैयार हों। नाटक कम्पनी छोड़ने के पश्चात् मिराशी बुवा पूना में रहने लगे। वहां उन्होंने बहुत से शिष्य तैयार किये। आपके शिष्यों में बेलगाँव के प्रसिद्ध गायक श्री० उत्तरकर, बम्बई के पराड़कर बुवा, पंडितराव नगर कर, श्रमती गंगूबाई इनामदार आदि के नाम प्रमुख हैं। आपकी शिक्षण पद्धति ऐसी सुव्यवस्थित और सुलभ है कि वह विद्यार्थियों के कण्ठ में सरलता से उतारी जा सकती है।

ग्वालियर घराने की बहुत सी चीज़ों का संग्रह स्वरलिपि सहित प्रकाशित करके आपने एक बहुत बड़ा काम किया है।

*

मीरअली

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह एक उच्चकोटि के लोकप्रिय गायक हो गये हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि उस समय उत्तर भारत में आपके समान मधुर ख्याल गायक कोई दूसरा नहीं था। मीरअली ने मियां शोरी से टप्पे, छज्जू खां सेनिये से ध्रुपद और गुलाम रसूल साहब से ख्याल गायकी की शिक्षा प्राप्त की थी। इससे सिद्ध होता है कि गायकी के विभिन्न अङ्गों पर आपका अच्छा अधिकार रहा होगा। श्रेष्ठतम गायक होने के साथ-साथ आप फ़ारसी के भी अच्छे विद्वान थे। आप लखनऊ के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम ख्वाजा वाशिद पीरज़ादा था।

मीरअली लखनऊ के नवाब मोहम्मद अलीशाह के आश्रय में रहे। आपको बारहसौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। आपने अपनी जिन्दगी में कभी किसी के घर जाकर गायन प्रदर्शन नहीं किया। साधारण लोगों के घरों की तो बात ही क्या इतनी बड़ी तनख्वाह पाते हुए, आप नवाब के महल तक में भी गाने के लिये नहीं जाते थे। एक बार नवाब साहब के दीवान नासिर-उद्दीन को मीरअली का यह व्यवहार असह्य हो गया। अतः उनका वेतन कम कर दिया गया। नौबत यहां तक आई कि आपको नवाब की ओर से लखनऊ नगर छोड़ देने की आज्ञा दे दी गई। लखनऊ के धनी-मानी एवं कला प्रेमियों को यह आज्ञा बहुत बुरी मालुम हुई तथा लोगों में एक प्रकार की हलचल सी मच गई। परन्तु राजाज्ञा के समक्ष कोई भी मुँह न खोल सका। मीरअली लखनऊ छोड़ने की तैयारी करने लगे। नवाब साहेब ने जब देखा कि मीरअली वास्तव में लखनऊ छोड़कर चले जा रहे हैं, तो उनके हृदय ने ऐसे महान् कलाकार को लखनऊ से दूर करने की गवाही नहीं दी। अतः उन्होंने उस आज्ञा को तुरन्त ही रद्द कर दिया और मन ही मन मीरअली के दृढ़ निश्चय की प्रशंसा करने लगे। इस घटना से मीर के अडिग विचार और गायन कला की श्रेष्ठता का अनुमान भलीभांति किया जा सकता है। लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह के शासन काल में आपका स्वर्गवास होगया।

*

मीराबाई

संगीत और भक्ति काव्य के समन्वय की दृष्टि से सोलहवीं शताब्दी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी शताब्दी में जहां तुलसी-सूर-कबीर आदि सन्तों ने अपने सुमधुर भक्ति काव्य से संगीत को गौरवान्वित किया, वहाँ राजस्थान की प्रेमदिवानी मीराबाई ने अपनी गीतिमई वाणी द्वारा भारत के जन मानस में

प्रभु भक्ति का प्रकाश फैलाया, जिसे आज तक "मीरा के भजनों" के रूप में हम विभिन्न संगीतज्ञों द्वारा श्रवण करके आनन्द विभोर होते रहते हैं।

मीरा का जन्म राजस्थान की जोधपुर रियासत में, मेड़ता के अन्तर्गत कुड़की नामक गांव में, राठोरवंश में, सम्वत *१५५९ विक्रम में हुआ। बाल्यकाल से ही मीरा की रुचि भगवान की पूजा में रहने लगी थी। कहा जाता है कि एक समय उनके पड़ौस में ही एक कन्या का विवाह हो रहा था, मीरा अपनी माता के साथ उस विवाह में सम्मिलित हुई। घर आकर भोली बालिका मीरा ने अपनी माता से पूछा "माँ मेरा दूल्हा कौन है" ? उनकी माता जी ने हँसकर कोने में रक्खी हुई कृष्णमूर्ति की ओर इशारा करते हुए कहा—"यह है तेरा दूल्हा" माता की यही बात मीरा का जीवन आधार बन गई और तब से मीराबाई गिरधर नागर को ही अपना पति मानने लगीं। बचपन में ही इनकी माता का देहान्त हो गया।

कुछ समय बाद जब मीरा विवाह योग्य हुईं, तो इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र युवराज भोजराज से, सम्वत १५७३ में कर दिया गया। किन्तु ये तो गिरधर नागर को अपना पति मान बैठी थीं, अतः लोकाचार के रूप में युवराज उनके पति अवश्य थे किन्तु मीराबाई उनसे उदासीन रहकर कृष्ण भक्ति में ही तल्लीन रहती थीं। विवाह के पश्चात यह चित्तौड़ में रहने लगीं। दैवयोग से कुछ समय बाद युवराज की मृत्यु हो गई, तब तो मीरा की कृष्ण भक्ति और भी बढ़ गई। उनका पूरा समय भगवान के भजन गाने और साधु संतों की संगति में बीतने लगा। उस समय मीराबाई का देवर विक्रमाजीतसिंह मेवाड़ का महाराणा था। उसे मीरा का दिन रात साधु सन्तों के साथ रहना तथा गाना बजाना अरुचिकर प्रतीत होने लगा। राजवंश के अन्य व्यक्ति भी मीरा के विरुद्ध होगये। मीरा को हर प्रकार से समझाया गया, डराया गया, रोका गया, अनेक यातनाएँ दी गईं, यहां तक कि विष का प्याला तक उन्हें दिया गया, किन्तु मीरा की कृष्ण भक्ति बढ़ती ही गई। अब तो वे मन्दिरों में जाकर पैरों में घुंघरू बांध और हाथ में इकतारा और करताल लेकर "मैं तो गिरधर आगे नाचूंगी" गाते हुए नाचने लगीं। नाचते नाचते वे तन्मय होकर बेसुध होजातीं और फिर नाचने लगतीं।

***मीराबाई के जन्म सम्वत के विषय में मतभेद पाये जाते हैं। श्री हरविलास सारदा के अनुसार इनका जन्म सं० १५५५ माना जाता है।**

कुछ समय बाद अपनी ससुराल और मैके को छोड़कर मीराबाई भगवान कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा में चली आई और मथुरा वृन्दाबन के मन्दिरों में ही भगवान के आगे "म्हाने चाकर राखोजी" गाते हुए प्रभु की चाकरी करने लगीं।

इस प्रकार अपने जीवन को सार्थक करती हुई वे बहुत समय तक वृजभूमि में गिरधर नागर के गुण गान करती रहीं। इनके संगीत का वृजवासियों पर विशेष प्रभाव पड़ा, यही कारण है कि अब तक मीरा भजनों का जितना प्रचार उत्तर-प्रदेश और वृजभूमि में है उतना अन्यन्त्र नहीं है।

कुछ समय पश्चात मीराबाई ब्रजभूमि को छोड़कर द्वारिकाजी चली गई और वहां रणछोड़ जी के मन्दिर में प्रभु गुणगान में लवलीन रहने लगीं। इस बीच मीराबाई की ख्याति देश भर में फैल चुकी थी, अतः जब इनके घर वालों को मीरा की प्रशंसा के और सच्ची प्रभु भक्ति के ऐसे समाचार मिलने लगे तो उन्हें अपनी भूल मालुम हुई और उन्होंने अपने यहाँ के ब्राह्मणों को आदेश दिया कि जिस प्रकार से हो समझा बुझाकर मीरा को सम्मान के साथ यहां ले आओ। किन्तु मीरा अपने भगवान का दरबार छोड़कर जाने को उद्यत नहीं हुई। कहा जाता है कि जब ब्राह्मणों ने उनसे चलने का विशेष हठ किया तो वे मन्दिर के भीतर यह कह कर चली गई कि मैं "भगवान से आज्ञा ले आऊँ" और वहीं प्रभुमूर्ति में विलीन हो गई। मीरा का स्वर्गवास सम्वत १६३० विक्रम (ई० सन् १५७३) के आसपास माना जाता है।

मीराबाई कवियत्री के साथ साथ एक सफल गायिका और संगीतज्ञ भी थीं। संगीत का ज्ञान इन्हें अपने मैके और ससुराल दोनों ही जगह प्राप्त हुआ। मेवाड़ के महाराजा कुम्भ तो स्वयं ही बड़े संगीतज्ञ थे, यद्यपि मीरा के वधू बनकर आने से पहिले ही स्वर्गवासी हो चुके थे तथापि उनकी संगीत परम्परा जो राजवंश में चालू थी उससे मीरा ने यथेष्ट लाभ उठाया। मीरा के रचे हुए प्रभु भक्ति के पद अनेक राग और तालों में बंधे हुए मिलते हैं। मीरा की मल्हार प्रसिद्ध ही है, इसकी रचयिता स्वयं मीराबाई थीं। कहा जाता है कि एक बार इनके संगीत की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन अकबर बादशाह और तानसेन इनका गायन सुनने आये थे, इससे स्पष्ट है कि मीराबाई का संगीत कितना आकर्षक था।

वास्तव में प्रभु भक्ति की पीर ने ही उन्हें कवियत्री और गायिका बना दिया था। कृष्ण प्रेम में पगी हुई उनकी संगीत धारा पदों और भजनों के रूप में उनके होटों से निकली जो राजस्थान के रेगिस्तान से फूटकर भारत के जन मानस को आप्लावित करती हुई आजतक प्रवाहित हो रही है।

★

मुजफ्फर खाँ

मुजफ्फर खाँ का जन्म सन् १८५८ ई० में हुआ। आप दिल्ली निवासी थे, आपने ध्रुपद और ख्याल गायकी की शिक्षा अपने पिता मस्ते खाँ से ली। दस वर्ष की अवस्था से अपनी शिक्षा आरम्भ की और बीस वर्ष तक इसका अनवरत अभ्यास किया, फिर आपके पिता जी का देहान्त हो गया। इस वंश का व्यवसाय संगीत ही है, जिसे ख्याल गायकी के क्षेत्र में पैतृक अधिकार प्राप्त है। मुजफ्फर खाँ ने अपने आपको ख्याल व आलाप दोनों शैलियों में लोक प्रिय बना लिया था। आपका गमक, तान, मुरकी और जोड़ का काम वास्तव में प्रशंसनीय था। आपकी ध्रुपद शैली, ख्याल शैली से किसी प्रकार कम चमत्कार-पूर्ण नहीं थी। आपके चचा स्व० तन्नू खाँ एक प्रसिद्ध ख्याल गायक थे। आप जूनागढ़ के नवाब के यहाँ दरबारी गायक के पद पर दस वर्ष तक रहे, तत्पश्चात् हैदराबाद के निजाम के यहाँ बीस वर्ष तक रहे। आपके दो पुत्र थे-मनवर और अनवर। उन्होंने आप से ही शिक्षा प्राप्त की। आपके अन्य शिष्यों में बहरामपुर के श्री गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, कलकत्ता के दिलीपकुमार राय, दरियाबाद की अच्छन बाई तथा मोतीलाल जौहरी के नाम उल्लेखनीय हैं। आपको लखनऊ की अखिल भारतीय संगीत परिषद् द्वारा स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया था।

मुरादअली खां

अपने पिता के पदचिन्हों पर चलने वाले मुराद अली खाँ एक मधुर और उच्चकोटि के ख्याल गायक हो गये हैं। आप प्रसिद्ध ख्याल गायक बड़े मोहम्मद खाँ के चतुर्थ अर्थात् सबसे छोटे पुत्र थे। बताया जाता है कि यह मोहम्मद खाँ की रखैल स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। सबसे छोटे होने के कारण अथवा प्रेमिका के पुत्र होने के कारण, आपको अपने पिता का सब भाइयों से अधिक प्रेम प्राप्त था। पिता ने बड़े लाड़-प्यार और आत्मीयता के साथ इनको गाने की तालीम दी। ज़हीन और तीव्र बुद्धि वाले होने के कारण मुराद अली खाँ शीघ्र ही अपने घराने की विद्या में प्रवीण हो गये। अपने समय में इन्होंने पिता के समान ही लोक प्रियता एवं ख्याति प्राप्त की। यह बड़े बुद्धि-मान और रसीले गायक थे। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, लखनऊ में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

मुश्ताक हुसैन खां

ख्याल गायकों में उस्ताद मुश्ताक हुसैन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। आप सहसवान जिला बदायूँ के रहने वाले हैं, आपके पिता का नाम कल्लन खां था। आपका जन्म सन् १८८० के लगभग हुआ था। आपने अपने पिता के अलावा कई उस्तादों से संगीत की शिक्षा प्राप्त की, किन्तु विशेषतः आपने खां साहेब इनायत हुसैन खां से संगीत की तालीम ली। उस्ताद इनायत हुसैन खां प्रसिद्ध गायक हद्दू खां ग्वालियर वालों के शिष्य थे। इनके अलावा मुश्ताक हुसैन ने अतरौली वाले खां साहेब पुत्तन खाँ, महबूब खां से भी संगीत की शिक्षा ली। इनायत खां के भाई मुहम्मद हुसैन खां से जो प्रसिद्ध बीनकार थे, तथा रामपुर के प्रसिद्ध ध्रुपदिये उस्ताद वज़ीर खां के पास इन्होंने ध्रुपद-धमार की तालीम ली। इनके अतिरिक्त इन्होंने और भी अपने कई उस्ताद बनाये। मुश्ताक हुसैन साहब का कहना है कि संगीत विद्या एक ही घराने में नहीं मिलती। विविध ढंग की गायकी प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न उस्तादों से तालीम लेना जरूरी होता है।

उन दिनों (सन् १८६४ के लगभग) खां साहब इनायत हुसैन खां का नाम सुनकर नेपाल के महाराजा वीर शम्शेर जंग बहादुर ने राज घराने के

सम्बन्धियों को संगीत सिखाने के लिये उन्हें अपने यहां बुला लिया था। अतः उस्ताद के साथ-साथ मुश्ताक हुसैन खां भी नैपाल चले गये। उस समय इनकी उम्र केवल १४ वर्ष की थी। आगे चलकर इनायत हुसैन ने मुश्ताक हुसैन को अपना दामाद बना लिया।

नैपाल में एक दिन मुश्ताक हुसैन की आवाज़ अचानक ही फट गई, इनको किसी भी स्वर पर जमना कठिन होगया। इनायत हुसैन साहेब ने ६ माह तक इनसे षड़ज साधन की मेहनत कराई, तब धीरे-धीरे आवाज़ काबू में आने लगी। तीन, चार वर्ष नैपाल में रहने के बाद इन उस्ताद-शागिर्दों ने नैपाल छोड़ दिया और फिर १० वर्ष तक हैदराबाद रहे। इसके बाद इनायत खां रामपुर दरबार में रहे और मुश्ताक हुसैन भी आपके साथ-साथ रामपुर रहने लगे।

खां साहेब मुश्ताक हुसैन की उम्र इस समय लगभग ७७ वर्ष की है। गाने में खाना-पीना भी भूल जाते हैं। इस उम्र में भी आप खूब दमदारी से गाते हैं। ध्रुपद-धमार से लेकर ठुमरी तक, सब प्रकार की गायकी आप कुशलता पूर्वक गाते हैं।

आपके पास बहुत सी चीजों का भंडार तो है ही, रागों की विभिन्न किस्मों का भंडार भी है। अच्छी से अच्छी बन्दिशें आपको याद हैं, ख्याल की शैली के सभी मुख्य सिद्धांतों का पालन आप बड़े ही कलात्मक ढङ्ग से करते हैं।

खां साहब प्रत्येक राग में सपाट तान लेते समय आरोह-अवरोह के नियमों पर विशेष ध्यान न देकर सीधे सा रे ग म प ध नि सां इस प्रकार जाते हैं। उनका कहना है कि आलाप करते समय ही प्रत्येक राग का स्वतंत्र रूप रह सकता है, लेकिन तानों में राग स्वरूप स्थिर रहना कठिन है। उनकी राय में सपाट और तीन सप्तक की तान लेते समय सब स्वर सम्मिलित कर लिये जांय तो अनुचित नहीं। पुराने गवैये सपाट तानों में स्वरों का प्रयोग इसी प्रकार करते थे। आपका कहना है कि इस प्रकार के प्रयोग में हमारा थाट तो कायम रहता ही है, इसलिये ऐसा करने में कोई हानि नहीं।

खां साहेब के उपरोक्त विचार से बहुत से गायक सहमत नहीं हैं, किन्तु उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं।

आपका स्वभाव अत्यन्त विनम्र है, अतः आप जिस किसी से मिलते हैं प्रेम से मिलते हैं। पिछले ४० वर्ष से खां साहेब रियासत रामपुर के दरबारी कलावन्त हैं और भारत में होने वाले संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर सङ्गीत-प्रेमियों को अपनी चतुरंगी गायकी (ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी) का रसास्वादन कराते रहते हैं। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा भी आपका संगीत यदा-कदा प्रसारित होता रहता है। 'रागसागर' प्रदर्शित करते समय विभिन्न कठिन रागों का समन्वय आप बड़ी खूबी से करते हैं और उसके गायन में विशेष रुचि भी रखते हैं।

★

मेंहदी हुसैन खां

इनके पिता का नाम गुले इमाम खां और पितामह यानी बाबा का नाम हस्सू खां था। निवास स्थान ग्वालियर था। ख्याल गायकी इन्हें पैतृक—संपत्ति के रूप में प्राप्त हुई। इस कारण इस विद्या में इनका प्रवीण होना स्वाभाविक ही था। आपकी आवाज़ बड़ी उत्तम एवं प्रभावशाली थी। ग्वालियर घराने की गायकी पर आपका अच्छा अधिकार रहा। आपने अपने जीवन काल में कई शिष्य तैयार किये, उनमें से मंगूबाई अब भी मौजूद हैं। मंगूबाई की गायकी द्वारा बड़ी आसानी से अनुमान किया जा सकता है कि इनके उस्ताद मेंहदी हुसैन खां किस स्तर के गायक रहे होंगे। सारंगी वादन पर भी आपका अच्छा अधिकार था।

सन् १९२० के लगभग मेंहदी हुसैन खां ग्वालियर में ही स्वर्गवासी होगये। आप बहुत ही नम्र स्वभाव वाले एवं मिलनसार व्यक्ति थे।

मोघूबाई कुर्डीकर

महिला गायिकाओं में शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत करने वाली श्रीमती मोघूबाई—कुर्डीकर को जिन व्यक्तियों ने सुना है उन्हें भली—प्रकार विदित है कि संगीत की बैठकों में आदि से अन्त तक शास्त्रीय संगीत के प्रेमी कितने दत्त—चित्त होकर आपका गायन सुनते हैं। गत ५० वर्षों की संगीतोपासना में मोघूबाई का संगीत विभिन्न संस्कारों को आत्मसात कर चुका है; इस प्रकार आपकी गायन शैली परिमार्जित होकर चमत्कृत और आकर्षक बन गई है।

आपका बाल्यकाल गोआ के अन्तर्गत कुर्डी नामक एक गाँव में व्यतीत हुआ, सम्भवत: इसीलिये आपकी प्रसिद्धि कुर्डीकर नाम से हुई। अर्थाभाव के कारण प्रारम्भ में ही आपको "पर्वतकर नाटक मंडली" में अभिनय करने के लिये प्रविष्ट होना पड़ा। इसके कुछ दिन बाद "सातारकर संगीत मंडली" में काम करने लगीं, वहां चितोपन्त दिवेकर नामक अभिनेता का संगीत शिक्षण इनके लिये लाभदायक सिद्ध हुआ। संगीत के संस्कार इनके हृदय पटल पर ऐसे अंकित हुए कि अभिनय कला को छोड़कर ये संगीत के क्षेत्र में आगईं।

एक बार प्रसिद्ध गायक उस्ताद अल्लादिया खाँ को मोघूबाई का गाना सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इनकी सुरीली आवाज़ से उस्ताद बहुत प्रभावित हुए और इन्हें तालीम देने तथा अपनी गायकी सिखाने के लिये तैयार होगये। कुछ समय तक उस्ताद से संगीत शिक्षा पाने के पश्चात् मोघूबाई बम्बई जाकर रहने लगीं और अल्लादिया खाँ की शिक्षा का तारतम्य टूट गया। बम्बई में मोघूबाई ने उस्ताद बशीर खाँ तथा आगरे वाले विलायत

हुसेन साहब से तालीम लेना शुरू किया। यह क्रम कुछ दिन तक ही चला था कि उस्ताद अल्लादिया खाँ भी बम्बई आकर रहने लगे। मोघूबाई ने जब उनसे अपनी तालीम को फिर से जारी करने की प्रार्थना की, तो उन्होंने कहा कि तुम्हारी तालीम का घराना अब बदल चुका है, अब फिर से हमारे घराने की तालीम हासिल करने में तुम्हें कठिनाई होगी; किन्तु मोघूबाई के विशेष आग्रह और अनुनय विनय करने के पश्चात् उस्ताद अल्लादिया खाँ का शिक्षण फिर चालू होगया। यद्यपि मोघूबाई को घराना बदलने में बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ा, लेकिन इन्होंने हर प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए तथा अपने उस्ताद के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते हुए तालीम जारी रक्खी। गोद में बच्चा और एक हाथ में तानपूरा लेकर आप रियाज करती थीं तथा अपने घर गृहस्थी के सभी कामों को पूरा करते हुए संगीत शिक्षा के लिये समय निकाल लेती थीं। मोघूबाई का संगीत के प्रति अटूट अनुराग देखकर अपने घराने की कठिन गायकी को उस्ताद ने इन्हें लगन से आत्मसात कराया।

आज खाँ साहेब अल्लादिया खां के घराने की गायकी को सही रूप में प्रदर्शित करने वाली गायिकाओं में मोघूबाई कुर्डीकर और केसर बाई केरकर के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। मोघूबाई ने अपनी बुद्धिमत्ता, दृढ़–संकल्प और अथक परिश्रम के द्वारा संगीत के क्षेत्र में एक विशेष स्थान बना लिया है। कौनसा स्वर किस परिमाण में, कितने समय तक और कितने विस्तार में लेना चाहिये, यह आपकी गायकी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसे मोघूबाई भलीप्रकार निभाती हैं। श्रोताओं के ऊपर स्वरों का अनुकूल प्रभाव डालने में जिस संयम और धैर्य की आवश्यकता होती है उसे भी मोघूबाई अच्छी तरह समझती हैं। ताल की एक आवृत्ति में किसी भी मात्रा से सम पर आते समय मुखड़े की बंदिश में बारम्बार नवीनता पैदा करना मोघूबाई की मौलिक कल्पना शक्ति का परिचायक है।

यह देखकर और भी प्रसन्नता होती है कि मोघूबाई की कन्या किशोरी भी कुछ समय से कार्यक्रमों में अपनी माता के साथ बैठकर भाग लेती हैं। इनकी आवाज़ में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो ख्याल गायकी की किसी गायिका में होने चाहिये। आशा है निकट भविष्य में संगीत की यह कली विकसित होकर इस घराने के नाम और अपनी माता की प्रतिष्ठा का सुयोग्यता से प्रति–पादन करेगी।

★

मुहम्मद अली खां

यह अपने समय के एक प्रतिभाशील और विद्वान गायक हुए हैं। यह स्वयं को 'मनरंग' घराने का बतलाया करते थे। गायकी आपके यहाँ परम्परा से चली आई थी। मुहम्मदअली खां का जन्म सन् १८२५ ई० के लगभग हुआ बताया जाता है। इनके पिता जयपुर के बड़े विख्यात गायक थे। उन्होंने स्वयं ही इन्हें संगीत की शिक्षा दी थी। अनुभवी पिता के द्वारा दो वर्ष तक आप अपने घराने के संगीत की खास तालीम लेते रहे। इस अवधि में मुहम्मदअली खां के लिए केवल स्वराभ्यास ही कराया गया। दो साल तक केवल स्वरों को ही घोंटते हुए मोम्मद अली ऊब गये; किन्तु इन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और संयम से काम लेते रहे। थोड़े दिनों की प्रतीक्षा के बाद ही आपका गला एकदम सुरीला और तैयार होगया। चाहे जैसे कोमल स्वरों के क्लिष्ट पलटे, किसी भी लय में बड़ी आसानी के साथ लेने लगे और फिर मामूली सी ही तालीम के बाद आपको द्रुत–गति से अपने घराने की चीज़ों पर अधिकार प्राप्त होने लगा। अल्प अवधि में ही मोहम्मद अली खां एक उच्चकोटि के गायक बन गये। इन्हें ध्रुपद भी आते थे, किन्तु मुख्य शिक्षा इनको ख्याल की ही प्राप्त हुई थी। इनके पास चीज़ों का इतना विशाल भंडार था कि जयपुर के गायकवर्ग में आप 'कोठीवाला' नाम से विख्यात होगये।

स्वर्गीय भातखण्डे जी को भी आपके द्वारा बहुतसी चीज़ों की तालीम प्राप्त हुई थी। साथ ही बहुत सी चीज़ों के रिकार्ड भी आचार्य भातखण्डे को इनके द्वारा मिले। आपको ८० वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त हुई और सन् १९०५ ई० के लगभग जयपुर में ही आपका स्वर्गवास होगया।

★

मौलाबख्श

प्रसिद्ध गायक और वीणा वादक उस्ताद मौलाबख्श का संगीत यद्यपि दक्षिणी संगीत पद्धति से अलग था, फिर भी अनेक दक्षिणी संगीतप्रेमी विद्वान उनकी कला से प्रभावित थे। संगीत की साधना में आपको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, तब आपने इस क्षेत्र में ऐसी ख्याति पाई जो बिरले ही संगीतज्ञों को प्राप्त होती है। मौलाबख्श ने अपनी एक स्वतन्त्र स्वरलिपि पद्धति पहले-पहल चालू की थी।

आपका जन्म भिवानी के एक जागीरदार वंश में सन् १८३३ ई० में हुआ था। आरम्भ में आपको पहलवानी और कसरत का शौक़ था। एकदिन एक फक़ीर भिवानी में आ पहुँचे। मौलाबख्श ने उनकी आवभगत की। फक़ीर ने मौलाबख्श से कुछ गाना सुनाने को कहा तो मौलाबख्श बोले—बाक़ायदा गाना तो मैं नहीं जानता, कुछ शेरो शायरी का शौक़ मुझे जरूर है, वह आपको सुनाता हूं। यह कहकर फक़ीर को आप शैर सुनाने लगे। इनकी मीठी और पैनी आवाज़ सुनकर फकीर ने कहा कि तुम पहलवान बनने का इरादा छोड़कर गवैया बन जाओ। कुछ परिश्रम करने पर तुम एक नामी गवैये हो जाओगे। फक़ीर की बात मौलाबख्श को जँच गई और तब से आप गाना सीखने की धुन में रहने लगे, किन्तु प्रश्न यह था कि गाना किससे और कैसे सीखा जाय ?

उस जमाने में कोई भी गवैया आसानी से अपनी कला दूसरों को नहीं सिखाता था। मौलाबख्श को मालूम हुआ कि घसीट खां नामक एक अच्छे विद्वान गायक हैं, उनसे मिलना चाहिये। साथ ही इन्हें यह भी मालूम हुआ कि घसीट खां किसी और को गाना नहीं सिखाते, फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी

और घसीट खां के एक अफीमची नौकर से इन्होंने दोस्ती पैदा करली। घसीट खाँ रोज रात को बारह बजे अपने गाने का रियाज करने बैठते और दरवाजे पर अफ़ीमची नौकर को पहरे पर बिठाल देते, जिससे कि कोई आने न पावे। मौलाबख्श की दोस्ती अफीमची नौकर से हो चुकी थी, इसलिये दरवाजे पर तथा घर के इधर-उधर बैठकर मौलाबख्श घसीटखां का गाना सुना करते और फिर घर आकर सुने हुये गाने को अपने गले में उतारने की कोशिश करते। मेहनत और रियाज करते-करते इन्हें इतना अच्छा अभ्यास हो गया कि रास्ता चलते लोग इनका गाना सुनने के लिये रुक जाते और इस चक्कर में पड़जाते कि इस घर में घसीट खां का गाना कैसे हो रहा है? किन्तु वास्तव में बात यह थी कि घसीट खां की गायकी की नकल मौलाबख्श इतनी सफलतापूर्वक करने लगे थे कि लोगों को घसीट खां के गाने का भ्रम हो जाता था।

धीरे-धीरे गांव के संगीत प्रेमियों में चर्चा होने लगी कि दूसरे घसीट खां पैदा हो गये हैं। यह बात जब घसीट खाँ के कानों तक पहुंची तो उन्होंने सोचा कि मेरे नाम का गवैया और कौन पैदा होगया। चल कर उसे भी देखना चाहिये। पता लगाते हुये वे मौलाबख्श के घर पहुँचे। मौलाबख्श घसीट खा को देखकर आश्चर्य चकित हो गये और बड़े आदर पूर्वक उन्हें बैठाया। साथ ही अपना गाना भी सुनाया, जिसे सुनकर घसीट खाँ बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि यह तो बिल्कुल मेरी तरह गाता है। उन्होंने मौला बख्श से पूछा कि आप अपने उस्ताद की तारीफ बताने की महरबानी करेंगे? मौला बख्श ने कहा कि माफ़ कीजिये, मैं अपने उस्ताद का नाम नहीं बता सकूंगा। कुछ देर बाद घसीट खाँ के विशेष आग्रह पर मौला बख्श ने उस्ताद का नाम बताना स्वीकार कर लिया, साथ ही उन्होंने कहा कि आप मुझे यह वचन दीजिये कि उस्ताद का नाम बताने में अगर मेरे उस्ताद नाराज़ हुए तो आप मेरी सहायता करेंगे। घसीट खाँ ने कहा ज़रूर! तब मौला बख्श ने बड़े भावुक ढङ्ग से कहा कि सुनिये—मेरे उस्ताद का नाम है "घसीट खाँ"। यह सुनते ही घसीट खाँ चौंककर आश्चर्य करने लगे और कहने लगे नामुमकिन, मैंने तुम्हें कभी नहीं सिखाया। फिर मौला बख्श के पूरा हाल बताने पर तथा स्वर साधना की लगन का हाल मालूम होने पर घसीट खाँ इन्हें शिक्षा देने के लिये बाध्य हो गये। उन्होंने अपनी कला दिल खोलकर मौला बख्श को सिखाई।

उस्ताद घसीट खाँ की मृत्यु के बाद मौला बख्श दक्षिण भारत गये। वहाँ मैसूर दरबार में एक दिन आपका गायन हुआ। मौला बख्श का संगीत

दक्षिणी संगीत से बिल्कुल भिन्न था, फिर भी महाराज ने उसे बहुत पसन्द किया और इनको अपने दरबार में रख लिया। दरबारी गायक होने के एक दिन पहले मौला बख्श को मालूम हुआ कि मैसूर के दीवान जी की लड़की वीणा बजाने में बहुत प्रवीण है, और एक दिन जब उसका वीणा वादन सुना तो आप बहुत प्रभावित हुए और उस लड़की से कहने लगे कि तुम आज से मेरी उस्ताद हो। लड़की ने कहा कि वीणा वादन की कला सीखना चाहते हैं तो किसी ब्राह्मण के यहाँ जन्म लीजिये। मैं ब्राह्मणों के सिवाय यह कला किसी और को नहीं सिखाती। लड़की के यह वचन मौला बख्श के हृदय में तीर का काम कर गये। राज दरबार को छोड़ फौरन ही आप मैसूर से तन्जावर पहुँचे। वहाँ पर एक ब्राह्मण की सेवा करके उससे संगीत शास्त्र के बारे में बहुत सी गूढ़ बातें आपने मालूम कीं, उस ब्राह्मण ने संगीत की शास्त्रीय जानकारी में मौला बख्श को पारंगत कर दिया। वहाँ से आप पुनः लौटकर मैसूर गये। वहां के नरेश कृष्णराज ने आपका बहुत आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् बड़ौदा के महाराज ने भी आपको बुलवाया और वहाँ आपने अच्छे-अच्छे गवैयों के साथ संगीत प्रतियोगिता में भाग लेकर विजय प्राप्त की। मौलाबख्श ने एक पुस्तक संगीतानुसार "छन्दोमंजरी" भी लिखी थी।

लगभग ११ माह मैसूर में रहने के बाद इनकी ख्याति जब दूर–दूर तक फैलने लगी तो इनके पास बाहर से बुलावे आने लगे। खण्डे जी महाराज के बुलावे पर आप बड़ौदा पहुंचे। बड़ौदा दरबार में काजिम हुसैन, अलीहुसैन, बशीर खाँ, आदि गवैयों ने इनकी संगीत कला अच्छी तरह परखी। यहाँ भी मौलाबख्श ने अपनी विद्वता से सबको चकित कर दिया। बाद मे जब गद्दी पर सयाजी महाराज गायकवाड़ आये तो उनसे मौलाबख्श ने इच्छा प्रकट की कि दरबार की छत्रछाया में ही एक संगीतशाला खोली जाय, जिससे संगीत कला का विकास हो और संगीत प्रेमियों को लाभ पहुँचे। महाराज ने आपकी इच्छानुसार संगीतशाला आरम्भ करवा दी, जो अभी तक अपना काम कर रही है।

खाँ साहेब के खानदान में अब उनके सुपुत्र पठान बैंडमास्टर वर्तमान हैं। आपके शागिर्द भी बहुत से हुए, जिनमें मास्टर मनहर बरवे के पिता स्वर्गीय गणपतराव गोपालराव बरवे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अन्त में १० जुलाई सन १८९६ ई० को यह प्रसिद्ध संगीतज्ञ इस संसार से विदा हो गया।

★

रज्जबअली खाँ

उस्ताद रज्जबअली खाँ का निवास स्थान मालवा राज्य के अन्तर्गत देवास नामक स्थान माना जाता है। यह बड़े मोहम्मद खां की शिष्य-परम्परा में से हैं। इनके पिता बड़े मोहम्मद खाँ के होनहार शिष्य थे। इन्होंने संगीत का अभ्यास अपने पिता के पास ही किया था। १०-१२ वर्ष की आयु में ही आप अच्छा गाने लगे थे। आपने कुछ दिनों जयपुर के प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद बन्दे अली खाँ के पास रह कर बीन की शिक्षा भी प्राप्त की, तत्पश्चात् कोल्हापुर के महाराज इन्हें अपने साथ ले गये और उनकी कृपा से रज्जबअली खाँ को संगीत की उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

देवास के महाराज को जब अपने घर के इस प्रतिभावान कलाकार के विषय में परिचय प्राप्त हुआ तो उन्होंने इनको पुनः देवास बुला लिया और सम्मानपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दिया।

आपको अपने घराने की गायकी पर पूर्ण अधिकार है। यद्यपि इस समय आपकी आयु ८३-८४ वर्ष के लगभग है फिर भी आपका गायन प्रभावपूर्ण है।

सुरीली और तैयार तानें, जो आपके घराने की विशेष धरोहर है, उस्ताद रज्जब अली के कण्ठ से आज भी वैसी ही निकलती हैं। आप वर्तमान समय के लब्धप्रतिष्ठ ख्याल गायकों में से हैं। देश में होने वाले विभिन्न अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में आपको ससम्मान निमन्त्रित किया जाता रहा है। कई समारोहों में आपको अनेक उपाधियां भी प्राप्त हुई हैं। सन् १९०९ ई० में महाराजा मैसूर द्वारा "संगीत भूषण", काशी के स्वामी ज्ञानानन्द द्वारा "संगीत मनरंजन" और सन् १९३१ ई० में म्यूजिकल आर्ट सोसाइटी आफ बौम्बे द्वारा आपको "संगीत–सम्राट" की उपाधि से विभूषित किया गया था। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा भी आपको सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त होचुका है।

उस्ताद रज्जब अली खाँ बड़े मधुरभाषी और मिलनसार तबियत के कलाकार हैं। हिन्दी, उर्दू और मराठी भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार है। आप देवास में रहकर संगीत संसार के लिए आलोक प्रदान कर रहे हैं। आपकी शिष्य परम्परा बहुत विशाल है। श्री कृष्णराव मजूमदार गनपतराव देवासकर, गनपतराव बैहरे, गौतमलाल आदि आपके प्रमुख शिष्यों में से हैं। आपके लगभग सभी पारिवारिक सदस्यों में संगीत के संस्कार विद्यमान हैं। आपके बड़े पुत्र का नाम राजन् खाँ है, यह भी बीन तथा गायन कला में दक्ष हो गये हैं; किन्तु अपने पिता के स्थान पर पहुँचने के लिए अभी इन्हें अत्यन्त कठोर परिश्रम की आवश्यकता है।

★

रशीद अहमद खां

आपका जन्म १८९७ ई० में सहसवान जिला बदायूं में हुआ। आपने अपने पिता उ० हमीद खां से संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की, फिर क्रमशः हैदर खाँ, इनायत हुसैन खाँ तथा मुरादाबाद के उ० नजीर खाँ से पूर्ण शिक्षा सम्पन्न हुई। आप सन् १९२९ से १९३२ तक काश्मीर में राज गायक रहे तथा बीकानेर अलवर, रामपुर, जोधपुर, भरतपुर, तथा अन्य राज-दरबारों द्वारा समय-समय पर सम्मानित होते रहे। आप प्रारम्भ से ही रेडियो कलाकार हैं और ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, गजल आदि गायन के सभी अंगों से पूर्ण, चतुर्मुखी कलाकार हैं। आपकी आवाज़ में एक अजीब किस्म की रोशनी है।
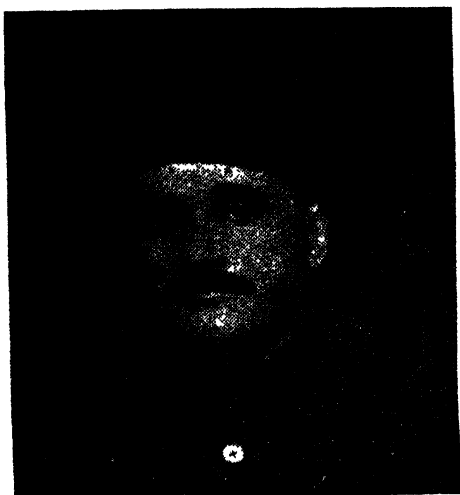
स्वर का सच्चा लगाव तथा सरगम का विशेष अभ्यास आपकी विशेषता है। जब आप केवल तीन चार स्वरों का ही दो-दो घंटे तक विस्तार करते हैं तो पता लगता है कि आपने मेरुखंड की तानों का अच्छा अभ्यास किया है। ख्याल और ठुमरी में आपने स्वयं स्वर और शब्द की रचनायें की हैं, जो बड़ी मनमोहक हैं और संगीत जगत में प्रसिद्ध हैं। सच्ची ठुमरी का प्रदर्शन आपके द्वारा कुशलता से होता है। आपके शिष्यों के नाम हैं:—गुलाम साबिर, गुलाम जाफर, हफीज अहमद खां।

आजकल आप कानपुर में रहते हुए संगीत के प्रचार में तत्पर रहते हैं।

★

रहमत खां

रहमत खां प्रसिद्ध ख्याल-गायक हद्दू खाँ के कनिष्ठ पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम छोटे मोहम्मदखां था। इनको भी गायकी का परम्परा युक्त गुण प्राप्त था। खां साहेब हद्दू खाँ ने अपने बड़े लड़के मोहम्मद खाँ के साथ-साथ इनको भी संगीत की मीना ब सीना तालीम दी थी। निसार हुसैन खां और विष्णु पंत छत्रे आपके सहपाठी थे। रहमत खाँ

की आवाज़ बड़ी मधुर, सुरीली और बारीक थी। इनकी स्वरलहरी को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे चूड़ियाँ खनक रही हों। कनिष्ठ पुत्र होने के कारण इनके पिता हद्दू खाँ इन्हें बड़े लाड़ चाव से रखते थे। रहमत खाँ का व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर और हृदयग्राही था। गौर वर्ण, उस पर कसा हुआ और बलिष्ठ शरीर देखने में ऐसा मालूम होता था जैसे—कोई राजकुमार हों, और फिर राजकुमार होने में कमी ही क्या थी। उस समय खाँ साहेब हद्दू खाँ का वैभव किसी नवाब से कम नहीं था। बचपन में अपने पिता के साथ-

साथ यह एक बार जयपुर भी गये और तत्कालीन जयपुर नरेश महाराजा सवाई रामसिंह इनके गायन को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

कालचक्र के प्रभाव से इनके बड़े भाई मोहम्मद खाँ तथा पिता हद्दू खाँ का देहान्त होगया। इन दुःखपूर्ण घटनाओं से रहमत खाँ के हृदय को भारी अघात पहुँचा और उनकी प्रवृत्ति में भी परिवर्तन होगया। ग्वालियर दरबार की ओर से पिता के सामने इन लोगों को जो सम्मान और वैभव मिला था उसका भी ह्रास होगया। रहमत खां ग्वालियर छोड़कर बनारस रहने लगे।

उपरोक्त घटनाओं के फलस्वरूप रहमत खाँ का हृदय खिन्न रहने लगा और वे कुछ चिड़चिड़े स्वभाव के बन गये। बनारस पहुँचकर उनको संगति भी बहुत हल्के और निम्नस्तर के व्यक्तियों की मिली। अतः रहमत खाँ की दशा अर्धविक्षिप्त जैसी होगई। एक फ़कीर को गाली देने पर इन्हें उसकी बद्दुआ का भी शिकार होना पड़ा। शाप के फलस्वरूप इनका गला और रूप—रङ्ग सभी कुछ नष्ट होगया। ऐसे समय में एक पड़ौसी ब्राह्मण ने इनकी सहायता की। ब्राह्मण ने उस फ़कीर की खुशामद करके रहमत खाँ के लिये आशीर्वाद दिलाया, तब कहीं आप बोलने योग्य हो सके। स्मरण शक्ति बहुत कम रह गई थी, मस्तिष्क विकृत सा हो रहा था, अतः रहमत खां बिल्कुल पागल भिखारियों जैसी जिन्दगी गुजारने लगे।

कुछ दिनों पश्चात् संयोग से काशी में विष्णुपंत छत्रे का सरकस आया। विष्णुपंत को मालूम हुआ कि इस नगर में एक भिखारी बड़ा अच्छा गाता है, अतः उन्होंने खोज करके रहमत खां से भेंट की। खां साहेब की पागलों जैसी दयनीय अवस्था होते हुए भी छत्रे जी ने अपने गुरु भाई को तत्काल पहिचान लिया और आँखों में आंसू भरते हुए उन्हें हृदय से लगा लिया, इनको समझा बुझाकर छत्रे जी ने अपने साथ ही कम्पनी में रख लिया। रहमत खाँ साहेब की कायापलट होगई। भोजन और वस्त्र का समुचित प्रबन्ध हो जाने पर स्वतः ही मनुष्य स्वस्थ होने लगता है, इसलिये रहमत खां भी शनैः शनैः स्वस्थ होने लगे।

सन् १६०० ई० में, नैपाल राज्य में संगीत का एक विशेष समरोह हुआ, रहमत खां भी उसमें आमंत्रित किये गये। इस अवसर पर आपका गायन अद्वितीय ठहराया गया और महाराज नैपाल की ओर से इनको प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। वहां से लौटकर खां साहेब बम्बई में विष्णुपंत छत्रे के पास ही

रहने लगे। बम्बई में आपके गायन के अनेक कार्यक्रम हुए। खानदानी गायकी, मधुर आवाज़, वैचित्र्यपूर्ण और तैयार तानें एवं मुद्रा दोष का अभाव आदि गुणों के कारण रहमत खां को यथेष्ट सम्मान एवं ख्याति प्राप्त हुई। इन्हीं दिनों कोल्हापुर के अल्लादिया खां से आपकी प्रतियोगिता हुई। गाने की इस बैठक में पूना के लगभग सभी विद्वान संगीतज्ञ उपस्थित थे। श्रोताओं के मतानुसार इस अवसर पर रहमत खां को ही विजयी ठहराया गया। सन् १६०५ ई० के लगभग रहमत खां के गुरुभाई श्री विष्णुपंत छत्रे का भी देहांत हो गया, परन्तु उनके छोटे भाई काशीनाथ पंत ने भी रहमत खां को किसी प्रकार की असुविधा न होने दी और उसी सम्मान तथा श्रद्धा के साथ अपने पास रक्खा। सन् १६०६ ई० के लगभग काशीनाथ पंत अपना सरकस लेकर पूना गये, साथ में रहमतखाँ भी थे। वहां संयोग से खाँ साहेब अब्दुल-करीम खां के समक्ष रहमत खां का गायन हुआ। अब्दुल करीम खां ने मुक्त हृदय से स्वीकार किया कि "रहमत खां साहेब बहुत उच्चकोटि के गायक हैं।"

कालचक्र ने काशीनाथ पंत को भी नहीं छोड़ा और रहमत खां के इस द्वितीय संरक्षक की भी मृत्यु होगई। इसके पश्चात् रहमत खाँ श्रीमन्त कुरन्दवाड़कर के आश्रय में रहने लगे। सन् १६२० ई० के लगभग आप पुन: बम्बई पहुंचे, तब तक यह काफी वृद्ध हो चुके थे। फिर भी वहां आपके गायन के कुछ रिकॉर्ड भरे गये। परन्तु इन रिकार्डों में वह बात पैदा न हो सकी जिसकी अपेक्षा थी। जून सन् १६२२ ई० में, कुरन्दवाड़ में ही आपका स्वर्गवास हो गया।

★

रहीमउद्दीन खाँ डागर

उस्ताद रहीमुद्दीन खां डागर स्वर्गीय अलाबन्दे खां के द्वितीय पुत्र और जकीरुद्दीन खां के भतीजे हैं। आपके पिता अलवर दरबार के गायक और प्रसिद्ध ध्रुपदिये थे तथा आपके परदादा बैराम खाँ जयपुर के प्रसिद्ध दरबारी गायक थे। अतः ध्रुपद-धमार की धीर-गम्भीर गायकी आपको पारिवारिक सम्पत्ति के के रूप में प्राप्त हुई।

रहीमउद्दीन खां का जन्म सन् १६०४ में उदयपुर में हुआ। संगीत की शिक्षा आपको अपने बड़े भाई नसीरुद्दीन तथा पिता अलाबन्दे खां से प्राप्त हुई अलीगढ़ यूनिवर्सिटी से बी० ए० की डिगरी प्राप्त करने के पश्चात् आप संगीत साधना में एक दम तल्लीन होगये और नित्य प्रति १८ घण्टों का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। परिणामतः आप कुछ समय पश्चात् इन्दौर के दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त हुए और वहाँ छः वर्ष तक रहे। तत्पश्चात् आपने भारत के विभिन्न संगीत सम्मेलनों तथा आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा अपनी अमोघ गायकी का प्रसारण कर पर्याप्त ख्याति अर्जित करली।

आपकी गायकी बड़ी दबङ्ग व श्रुतियों और गमक से परिपूर्ण होती है, जिसे सुनकर ध्रुपद-धमार का सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। रहीम उद्दीन खाँ का व्यक्तित्व पं० ओंकारनाथ ठाकुर के सदृष्य ही है। कभी-कभी भूल से संगीत सम्मेलन में लोग उन्हें पंडित जी कहकर पुकारने लगते हैं तो बड़ा मजा आता है; उस समय खां साहब कहते हैं "भैया आपको भ्रम होगया है, मैं ओंकारनाथ ठाकुर नहीं हूं रहीम उद्दीन खाँ डागर हूं।"

खाँ साहब के विचार रूढ़िवादिता को छू तक नहीं गये हैं, अच्छाई और विशेषताओं को आप सदैव मान्यता देते हैं। पाश्चात्य संगीत में भी

आपकी रुचि है और कभी-कभी उसकी विशेषताओं का क्रियात्मक प्रदर्शन भी कर दिखाते हैं। आपके विचार हैं कि जिस प्रकार काव्य में से एक शब्द के इधर-उधर हो जाने से उसका समस्त सौन्दर्य विनष्ट हो जाता है; उसी प्रकार ध्रुपद के दस सिद्धांतों के पालन में यदि ज़रा भी त्रुटि अथवा कमी रह जाय तो उसका रंजकत्व नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।

★

रागरस खां

आपके पिता का नाम नौबत खां और नाना का नाम तानसेन था। आपकी संगीत शिक्षा बाल्यकाल में ही आरम्भ हो गई थी। नाना को धेवते पर बहुत अधिक प्यार हुआ करता है सम्भवतः इसीलिये तानसेन ने स्वयं रागरस खां को अनेक ध्रुपद सिखाये। इनके पिता नौबत खां भी एक उच्चकोटि के वीणा वादक थे, इसलिये उन्होंने भी अपने पुत्र रागरस खां को वीणा वादन की शिक्षा दी। नाना की वसीयत 'गायकी' और पिता की धरोहर "वीणा–वादन" पाकर रागरस खाँ एक महान कलाकार बनकर प्रकाश में आये। राजा तथा प्रजा दोनों को ही आपकी कला से परम संतोष प्राप्त हुआ।

रागरस खाँ ने वीणा बजाने की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की थी और वीणा वादन में यह पूर्णरूपेण कुशल बन चुके थे। बादशाह के सामने भी कई बार इन्होंने वीणा–वादन प्रस्तुत किया था, जिसे सुनकर बादशाह बड़े प्रसन्न हुए। फिर भी रागरस खाँ स्वयं को गायक ही मानते थे। ईश्वर की कृपा से आपको सन्तान एवं पर्याप्त यश तथा कीर्ति मिली। इतनी विशेषताओं के होने पर धन और वैभव की ही क्या कमी रह सकती थी, अतः आप सब प्रकार सम्पन्न थे। आपने अपने जीवन काल में बहुत से शागिर्द तैयार किये, उनमें वीणा–वादकों का स्थान प्रमुख है। इनके रहन–सहन का ढंग और वेश भूषा भी बिलकुल अपने पिता तथा नाना तानसेन के समान ही थी। अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आप मृत्यु को प्राप्त हुए। काश! उस समय रिकॉडिंग मशीन का आविष्कार होगया होता तो वर्तमान संगीत प्रेमी भी ऐसी विभूतियों की कला का रसा–स्वादन कर लेते, परन्तु अब तो ऐसी विभूतियों के विषय में केवल कल्पना का सहारा ही लिया जा सकता है।

★

राजाभैया पूछवाले

राजाभैया के पूर्वज महाराष्ट्र के सतारा प्रान्त में "बालव ग्रष्ट" के इनामदार थे। आपके परदादा के पिता श्री केशवराव अष्टेकर पेशवा दरबार की ओर से बुन्देलखंड में श्री शिवराव भाऊ साहब (झाँसी वाली रानी के श्वसुर) के साथ आये थे। वहाँ उन्हें "पूछ" नाम का गाँव जागीर में प्राप्त हुआ। इसके बाद यह अष्टेकर घराना 'पूछवाले' नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् आपके दादा श्री रामचन्द्रराव १८५७ ई० के गदर में पूछ गाँव छोड़कर ग्वालियर चले आये और स्थाई रूप से यहीं रहने लगे।

रामचन्द्रराव जी के दो पुत्र थे, बड़े श्री गणपतिराव जी और छोटे श्री आनन्दराव जी। यही श्री आनन्दराव राजाभैया के पिताजी थे।

श्री राजाभैया का शुभ जन्म लश्कर (ग्वालियर) में अधिक श्रावण कृष्णा १४ सम्वत् १९३९ वि० (१२ अगस्त सन् १८८२) को हुआ। आपकी आयु जब केवल १॥ वर्ष की ही थी कि इनके एक पांव को लकवा मार गया, यह पैर इनकी पाँच वर्ष की उम्र तक निर्जीव रहा, बाद में धीरे-धीरे इसमें रक्त का संचार होने लगा और तब ये लँगड़ाते-लँगड़ाते चलने लगे।

आपके पिता श्री आनन्दराव जी को सितार बजाने का शौक था। घर पर जब संगीत चर्चा होती तो राजाभैया बड़ी एकाग्रता से उसे सुना करते थे। जब सितार बजता तो राजाभैया अपना खेल-कूद छोड़कर सितार सुनने के लिये आ बैठते; इस प्रकार आपके हृदय में संगीत का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। विद्या अध्ययन के साथ-साथ आपकी संगीत शिक्षा भी आरम्भ होगई।

खाँ साहेब मेंहदीहुसैन खाँ के शिष्य श्री बलदेव जी ही सर्व प्रथम आपके संगीत शिक्षक हुए।

कुछ समय में ही हारमोनियम वादन में आपने अच्छी प्रगति करली। जिसके फलस्वरूप शिंदे क्लब (ग्वालियर संगीत नाटक मण्डली) में हारमोनियम मास्टर के पद पर आपकी नियुक्ति होगई।

कुछ दिनों बाद आपकी माताजी का देहान्त होजाने के कारण तथा कौटुम्बिक और आर्थिक परिस्थिति बिगड़ जाने से आपके ऊपर कर्जा भी होगया, जिसके लिये आपको अपना गृह भी बेच देना पड़ा। उन दिनों आप क्लब के वेतन से ही, वहीं रहकर अपना निर्वाह करने लगे।

सन् १९०३ ई० में महाराज माधवराव के गणपति उत्सव में सम्मिलित होकर हारमोनियम बजाने लगे और साथ ही साथ पं० लालाबुवा के पास इनका संगीत शिक्षण भी चलता रहा। किन्तु १९०४ ई० में लालाबुवा की मृत्यु होगई। इसके बाद पण्डित वामनबुवा से संगीत शिक्षा लेने लगे। दुर्दैव से १९०७ में वामनबुवा भी स्वर्गवासी होगये। तब-तक लगभग ४०० चीजें आप उनके घराने की प्राप्त कर चुके थे।

उन दिनों सर्राफे में ग्रामोफोन की एक दूकान आई। पहिली बार ही जनता के सामने ग्रामोफ़ोन बाजा आया था। गाना उन्हीं को सुनाई देता था, जो अपने दोनों कानों में उस मशीन की नलिकाएँ (हैड फोन) लगा लेते थे। एक चीज सुनने के लिये एक आना देना पड़ता था। अकस्मात इसी दूकान की ओर राजा भैया भी जा निकले। कौतूहल प्रिय होने के कारण एक आना देकर आपने भी अपने कानों से हैडफोन लगा लिया और गाना सुनने लगे। संयोगवश वह रिकार्ड ग्वालियर के शंकरराव पण्डित की "कृष्ण मुरारि" नामक ठुमरी का निकला। यह ठुमरी राजाभैया को इतनी पसन्द आई कि आपने आठ आने खर्च करके इसे ८ बार सुना। आपने सोचा कि जब यह ठुमरी रिकार्ड में इतनी अच्छी मुझे लग रही है तो पण्डित जी के गले द्वारा सुनने से क्या हाल होगा ? आपकी संगीत जिज्ञासा जाग उठी और इसी चिन्ता में रहने लगे कि किसी प्रकार यह ठुमरी शंकरराव पण्डित के गले से सुनी जाये। उन दिनों विट्ठल मन्दिर में पण्डित शंकरराव नित्यप्रति गाते थे। राजाभैया भी वहाँ रोज़ाना जाने लगे। चेष्टा करने पर भी वह ठुमरी पण्डितजी के मुख से वहाँ सुनाई नहीं दी, तब आपने उनसे संगीत सीखने की इच्छा प्रकट की, किन्तु उन दिनों बिना अपना गंडा बाँधे कोई भी कलाकार किसी को अपना गाना नहीं सिखाता था। राजाभैया निराश नहीं हुए और प्रयत्न

करते रहे। अन्त में वे अपने प्रयत्न में सफल हुए और १६०७ ई० में उनके शिष्य बनकर संगीत शिक्षा ग्रहण करने लगे तथा हर प्रकार से अपने गुरूजी की सेवा सुश्रूषा करने लगे।

राजाभैया की सेवाओं से प्रभावित होकर एक दिन पंडित शंकरराव बोले "मैं क्या करूं रे राजा? बात यह है कि बाकायदा और प्रकट रूप से मैं तुझे तालीम नहीं दे सकता क्यों कि इसके लिये मैं वचनबद्ध हूँ। किन्तु तुम चिन्ता मत करो, किसी न किसी युक्ति से मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी करूंगा ही। मेरा गाना तुम ध्यान से सुना करो और उसी प्रकार उसे ग्रहण करते हुए परिश्रम भी किया करो तो तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी।" इस प्रकार ४ वर्ष बीत गये, राजाभैया ध्यानपूर्वक शंकरराव पंडित जी का गाना सुनते और उसे आत्मसात करते हुए बराबर परिश्रम करते रहे। आपका रियाज़ इस प्रकार होता था कि एक हाथ में तानपूरा और एक हाथ में डग्गा (बायां) लेकर एक ही हाथ से एकताल, तीनताल आदि तालों का ठेका देते हुए अभ्यास करते थे। परिश्रम करते–करते बहुत सी चीज़ें इनके हाथ लग गईं। १६१७ ई० में शंकर पण्डित भी स्वर्गवासी होगये।

कुछ समय बाद पंडित विष्णुनारायण जी भातखंडे ग्वालियर आये। महाराज माधवराव को संगीत से बहुत प्रेम था। भातखण्डे जी की नोटेशन पद्धति से संगीत शिक्षण देने की योजना महाराजा साहेब को बहुत पसन्द आई और ग्वालियर के कई सङ्गीतज्ञों का गाना भातखंडे जी को सुनवाया गया। भातखण्डे जी ने ७ संगीतज्ञों को चुना। महाराजा साहेब ने उन्हें छात्र वृत्ति देकर नोटेशन पद्धति सीखने के लिये भातखण्डे जी के पास बम्बई भेज दिया, इन ७ व्यक्तियों में राजाभैया भी थे।

स्वरलिपि का शिक्षण प्राप्त करके उक्त सातों संगीतज्ञों की मण्डली ३ मास पश्चात् बम्बई से ग्वालियर आई और १० जनवरी १६१८ को यहां पर 'माधव म्यूज़िक स्कूल' की स्थापना होगई, जिसमें श्री राजाभैया भी एक अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। १६४१ में राजाभैया की नियुक्ति माधव कालेज ऑफ म्यूज़िक के प्रिन्सिपल पद पर हुई। इस कालेज की आपके द्वारा यथेष्ट उन्नति हुई और बहुत से शिष्य तैयार होगये। अप्रैल १६४६ में आप माधव संगीत महाविद्यालय की सेवाओं से मुक्त होगये। आपने संगीत के विषय पर सात उपयोगी पुस्तकें भी लिखीं। १—तान मालिका भाग १, २—तान मालिका

भाग २, ३—तान मालिका भाग ३, पूर्वार्ध ४—तान मालिका भाग ३, उत्तरार्ध ५—संगीतोपासना, ६—ठुमरी तरंगिणी, ७—ध्रुपद–धमार गायन।

इसके पश्चात् श्री भातखण्डे जी द्वारा प्रचलित शिक्षण पद्धति के अनुसार कई जगह संगीत विद्यालय स्थापित हो गये, जिनके परीक्षक होने का सम्मान राजाभैया को प्राप्त हुआ। इस कारण आपकी अच्छी प्रसिद्धि होगई, सभी घरानों के गायक–वादक आपका आदर करने लगे। नागपुर के एक संगीत प्रेमी ने एक बार राजाभैया से कहा—आजकल चार छः घण्टे से अधिक गाने वाले नहीं मिलते। आपने उत्तर दिया—"गाने वाले तो हैं, किन्तु चार छः घंटे से अधिक सुनने वाले नहीं मिलते"। इसके उपरान्त आपने एक ही बैठक में पन्द्रह घण्टे तक लगातार गाकर समस्त श्रोतागण को चकित कर दिया। और भी ऐसी कई घटनायें हैं जिनसे उनके अलौकिक प्रभाव का आभास मिलता है। अप्रैल १९५६ में भारत के राष्ट्रपति ने राजाभैया को 'राष्ट्रपति पदक' तथा सर्व श्रेष्ठ गायक की उपाधि से विभूषित किया। आपकी मृत्यु भी १ अप्रैल १९५६ की रात्रि को आई और सदा के लिये राजाभैया को लेगई।

आपने अपने पीछे एक पुत्र, साध्वी पत्नी व दो पुत्रियों को छोड़ा। आपके प्रमुख शिष्यों में आपके सुपुत्र श्री बाला साहब तथा श्री निरंजन प्रसाद कौशल द्वारा ही आपका प्रतिनिधित्व हो रहा है।

★

रामकृष्ण देव 'देवजीबुवा'

स्वर्गीय पंडित रामकृष्ण देव एक ऐसे प्रचीन और महान संगीतज्ञ थे, जिन्हें स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के दादा गुरु और पंडित बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर के गुरु होने का सम्मान प्राप्त हुआ। आपने संगीत के क्षेत्र में पर्याप्त सृजनात्मक कार्य किया। अनेक रागों में सरगम युक्त नवीन बन्दिशें तैयार करके उन्हें प्रचार में लाने का सफल प्रयत्न किया। बहुत से शिष्यों को आपने ख्याल, ध्रुपद एवं टप्पा गायनशैली की शिक्षा देकर योग्य बनाया।

आपके पूर्वज पूना के निवासी थे, वे सभी सत्यनिष्ठ एवं सदाचारी थे। रामकृष्ण देव को बचपन से ही संगीत का शौक लग गया था, उन दिनों देवजी के मामा रामचन्द्र शास्त्री पेशवा के यहां कार्यकर्त्ता थे। अपने मामा के साथ यह भी दरबार में जाया करते थे। उन दिनों वहां चिन्तामणि मिश्र नाम के एक प्रसिद्ध ध्रुपदिये भी रहते थे। उनकी ओर आकर्षित होकर रामकृष्ण देव ने उनसे ध्रुपद शिक्षा लेनी आरम्भ करदी। लगातार चौबीस वर्ष तक तालीम लेते हुए उनसे सैकड़ों ध्रुपद प्राप्त की। जब इनके गुरु चिन्तामणि मिश्र की मृत्यु होगयी तो यह ग्वालियर आगये। यहां पर आपने प्रसिद्ध गायक हस्सू खां की सेवा में रहकर टप्पे की गायकी का चार वर्ष तक अभ्यास किया। इसके अतिरिक्त झांसी में तीन वर्ष रहकर उन्होंने धमार की शिक्षा प्राप्त की।

उन दिनों ग्वालियर में श्री० जनकोजी राव सिंधिया सरकार का शासन था, उनकी मृत्यु के बाद ग्वालियर दरबार से आप असन्तुष्ट होकर चले आये और धार आ पहुँचे। यहां के महाराज यशवन्त राव पवार आपकी गायकी से बहुत प्रभावित हुए और इन्हें अपने यहां रखकर स्वयं शिक्षा भी लेने लगे।

इन्हीं दिनों धार में बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर आपसे गायकी सीखने आया करते थे और अपने गुरुजी की बहुत सेवा किया करते थे। सेवा और परिश्रम से प्रसन्न होकर रामकृष्ण देव ने बालकृष्ण बुवा को चार वर्ष तक सहृदयता पूर्वक शिक्षा दी और लगभग चारसौ चीजें उनको सिखलाईं।

दुर्भाग्य से रामकृष्ण देव की पत्नी बालकृष्ण बुवा से रुष्ट रहा करती थीं, उन्हें उनका घर में आना बहुत ही खटकता था। आखिर एक दिन देवी जी ने विशेष आग्रह करके बालकृष्ण को वहां से हटने पर मजबूर कर ही दिया। फलतः बालकृष्ण को वह स्थान छोड़कर इनकी शिक्षा से वंचित होना पड़ा।

बालकृष्ण बुवा के अतिरिक्त पं० रामकृष्ण देव के कुछ अन्य शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं:—(१) श्री मालेराव (ठुमरी गायक) (२) श्री गणपतराव (धमार गायक) (३) श्री रावजी बुवा गोगटे (टप्पा गायक) (४) श्री–लालजी बुवा (ध्रुपद, धमार गायक)

आपके इन शिष्यों ने महाराष्ट्र में अच्छी ख्याति पाई। इनके अतिरिक्त नारायण बुवा फलटणकर (महाराष्ट्र के नामी टप्पा गायक) भी आपके ही शिष्य थे।

पं० रामकृष्ण देव के देहावसान के पश्चात् श्री० लाल जी बुवा ने उनकी गायकी एवं कला का प्रसाद अपने प्रमुख शिष्यों को बांटकर देवजी का नाम अमर कर दिया। लालजी बुवा के पुत्र पं० केशवगणेश कलकत्ते में रह कर विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा देते हैं। लालजी बुवा के एक और शिष्य पंडित दत्तोपन्थ दीक्षित अपने दादागुरु अर्थात् पं० रामकृष्ण देव की बाबत जब कभी शिष्यों से संगीत चर्चा करते हैं, तब देव जी बुवा के हृदय की विशालता और विद्वता का बड़ा सुन्दर चित्रण करते हैं।

★

पं० रामकृष्ण मिश्र

पं० रामकृष्ण मिश्र का घराना गोंडा बलरामपुर से संबंधित है। वहां से सन् १५३० ई० के लगभग इनके पूर्वज पं० दिलाराम मिश्र ने वृन्दावन में आकर वल्लभ संप्रदाय के आचार्य गोस्वामी श्री हित हरिवन्श जी से दीक्षा ली और उनके पास लगभग २५-३० वर्ष तक संगीत की शिक्षा प्राप्त की। पं०—दिलाराम मिश्र 'सेवक' नाम से प्रसिद्ध हुए। जिन प्राचीन ध्रुपदों में "सेवक" उपनाम लगा हुआ मिलता है, वे ध्रुपद उन्हीं के रचे हुए हैं। पं० दिलाराम के पुत्र जगमन मिश्र हुए, जिनके पुत्र ठाकुरदयाल मिश्र ने सदारंग के पास ख्याल शैली की शिक्षा ग्रहण की। कहा जाता है कि इन्हें फारसी भाषा के लगभग ३०० ख्याल और ब्रजभाषा के एक हजार ख्याल याद थे।

इस प्रकार मिश्र जी के घराने में आरम्भ से ही संगीत का वातावरण व्याप्त था। आपके पिता पं० शिवसेवक मिश्र भी बड़े विलक्षण गायक थे, इन्हें संगीत नायक की पदवी प्राप्त थी। इनकी गायकी और नायकी ऐसी विकट थी कि जिस महफ़िल में ये पहुंच जाते वहां पर और किसी का रंग जमना कठिन हो जाता था, इसलिये उस समय के गायक इन्हें "राक्षस" कह कर संबोधित करते थे। ऐसे ही उनके छोटे भाई पशुपति मिश्र थे। इन दोनों की गायकी "शिवापशुपति" घराने की गायकी के नाम से प्रसिद्ध थी।

पं० रामकृष्ण का जन्म नैपाल में संवत् १९९१ के चैत्र मास में हुआ था। ५ वर्ष की अवस्था से ही आपने अपने पूज्य दादा पं० रामसेवक जी से तबला व सरगम का पाठ लेना आरम्भ किया और दस वर्ष की अवस्था तक उनसे सीखते रहे। दादा की मृत्यु के बाद छै वर्ष तक सितार व ध्रुपद की तालीम अपने चचा पं० पशुपति जी से प्राप्त की एवं उन्हीं से स्वरलिपि का ज्ञान भी प्राप्त किया। तदुपरान्त १६ वर्ष की उम्र से २८ वर्ष की आयु तक अपने पिता पं० शिव सेवक जी से सीखते रहे। उन्होंने ध्रुपद, धमार, होली, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि विभिन्न गायनशैलियों की शिक्षा भली प्रकार दी; इस प्रकार अपने घराने की सफल शिक्षा पाकर पं० राम कृष्ण मिश्र एक कुशल गायक के रूप में जनता के सामने आये, फिर तो आपको विभिन्न संगीत सम्मेलनों से निमन्त्रण प्राप्त होने लगे। आपकी भव्य, गम्भीर और बुलन्द आवाज़ से संगीत सम्मेलनों में एक निराला समा बँध जाता था। ध्रुपद और धमार की गायकी को जितनी कुशलता से आप प्रस्तुत कर सकते थे उतनी ही खूबसूरती से आप साधारण ठुमरी भी गा सकते थे। ध्रुपद धमार की गायकी तथा ठुमरी की गायकी इन दोनों में महान अन्तर है, एक धूमधड़ाके की चीज़ है तो ठुमरी में नाज़ और सुकोमलता की आवश्यकता होती है। रामकृष्ण जी को इन दोनों पर समान अधिकार था, यह साधारण बात नहीं है।

प्रचलित रागों के अतिरिक्त कुछ अप्रचलित प्रकार भी आप बड़ी कुशलता से गाते थे। जिनमें राग पंचम, हेमक्षेम तथा सोमेश्वर नारायण मत का राग वसंत उल्लेखनीय है। आपने स्वतः भी कुछ नवीन रागों का निर्माण किया।

एक और विशेषता आपके अन्दर थी कि कुछ रागों को आप उल्टे–सीधे दोनों तरह से गाते थे। उदाहरणार्थ--ललित, कोमल धैवत से और तीव्र धैवत से, वसंत कोमल धैवत से व तीव्र धैवत से, इसी प्रकार पूर्वी कोमल धैवत व तीव्र धैवत दोनों तरह से आप गा सकते थे। कुछ संगीत कलाकार आपके इस कार्य को दोष दृष्टि से देखते थे, यह अलग बात है।

आपके शिष्यों में श्री शैलेन बनर्जी, शीतल कुमार घोष, प्रतापचन्द्र ब्रह्मचारी, कुमारी गंगा कल्याणपुर, श्रीमती प्रभा नाग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके कुछ शिष्य फिल्म क्षेत्र में भी संगीत निर्देशन करके

ख्याति प्राप्त कर रहे हैं, जिनमें श्री अनिल बिश्वास, रविन राय, जटाधर पाइन और सूर्य कुमार पाल आदि के नाम लिये जा सकते हैं। ये सभी शिष्य बड़े होनहार हैं, जिनके द्वारा पं० रामकृष्ण का नाम अमर रहेगा।

गत १५ सितम्बर १९५५ को कलकत्ता में, ५२ वर्ष की अवस्था में हृदय रोग के कारण आपकी मृत्यु होगयी, जिसके कारण "शिवा–पशुपति घराने" की ध्रुपद-धमार गायकी को जो क्षति पहुँची, उसकी पूर्ति कठिन ही है। मिश्र जी के सुपुत्र श्री मारुति सेवक मिश्र भी अपने घराने की गायकी को जीवित रखने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं।

★

रामकृष्ण वझे

आपका जन्म सन् १८७१ ई० में, सावन्तवाड़ी के ओंझा ग्राम में हुआ था। जब आप १० माह के शिशु थे, तभी आपके पिता स्वर्गवासी होगये, अतः इनका लालन-पालन माता के द्वारा होने लगा। जब इनकी अवस्था चार वर्ष की थी, तो इनकी माताजी इन्हें लेकर कागल नामक स्थान में आकर अन्नासाहब देशपांडे के यहां रहने लगीं।

छः वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन के हेतु आप पाठशाला में जाने लगे। वहां पर मराठी की चौथी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त हुई। गाने का शौक़ तो बचपन से ही था, अतः पाठशाला तथा रास्ते में भी आप तानें मारते-फिरते थे। इससे खिन्न होकर पाठशाला के अध्यापक ने इनकी माता जी से कहा—"इसे आप गाना सिखाइये, पाठशाला भेजने से कोई लाभ नहीं"। इनकी मनोवृत्ति देखकर मां ने भी समझ लिया कि रामकृष्ण तो गवैया ही बनेगा।

उस समय इनकी आर्थिक दशा अत्यन्त खराब थी। इनकी माता जी को केवल ३ रुपये मासिक वेतन मिलता था, अतः संगीत की शिक्षा कैसे चले? यह प्रश्न सामने उपस्थित हुआ। भाग्यवश उसी गांव में बलवन्तराव पोहरे नामक एक दरबारी गवैया रहते थे। उनके पास आप गाना सीखने को जाने लगे और २ वर्ष तक उनसे संगीत शिक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् मालवन में बिठोवा, अन्नाहड़प के पास एक वर्ष तक रहकर उनकी गायकी सीखी और फिर अपनी माताजी के बुलाने पर घर पहुंच गये।

केवल बारह वर्ष की उम्र में ही आपका विवाह करदिया गया। विवाह बन्धन में जकड़ जाने के बाद रामकृष्ण के मन में यह प्रश्न पैदा हुआ कि अपने यहां पैसे की हालत बहुत बुरी है, माता की मजदूरी पर कैसे दिन कट सकेंगे? अतः आप घर छोड़कर चल दिये और पैदल ही यात्रा करते–करते पूना होते हुये बम्बई पहुंचे।

बम्बई में गाना गा–गाकर दस बारह रुपये कमाये। वहां से आप इन्दौर गये, इन्दौर में नाना साहब पानसे के पास पहुंचकर उनसे कहा, मैं गाना सीखना चाहता हूँ। नाना साहब ने जवाब दिया कि मैं तो पखावज और तबला सिखाया करता हूं, तुझे गाना सीखना हो तो ग्वालियर जा! वहां बड़े अच्छे–अच्छे गवैये हैं।

नाना साहब के इस उत्तर से पं० रामकृष्ण निराश नहीं हुये और उनके पास चार माह तक रहे। वहीं पर इन्हें बन्देअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

कुछ समय बाद आप उज्जयनी पहुँचे। वहां नाना साहेब अष्टेकर के पास रहे और उन्हीं के साथ बनारस में विष्णुपंत छत्रे के यहां ठहरे। वहां पर इनको अनेक गुणी लोगों का संगीत सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बनारस से रहमत खाँ, विष्णुपंत छत्रे और खाँ साहब निसार हुसैन के साथ आप ग्वालियर आये। उन दिनों ग्वालियर संगीत कला के लिये प्रसिद्ध हो रहा था, जिधर देखो उधर गाने बजाने की धूम मची हुई थी। वहां से हटने को जी नहीं चाहता था; किन्तु पेट कैसे भरा जाय? यह प्रश्न सामने था। तब इन्होंने भिक्षा मांगना आरम्भ कर दिया, उसमें किसी–किसी दिन आधे पेट भोजन करके ही भूखा रहना पड़ता था। इस प्रकार के कठिन वातावरण में पं० रामकृष्ण ने पांच–छै वर्ष बिता दिये। जिस दिन भिक्षा बिलकुल नहीं मिलती थी, उस दिन आप किसी सदावर्त्त में जाकर भोजन करते थे। उस समय आपकी दशा अत्यन्त दयनीय होरही थी। न तन पर कपड़ा, न पेट भर अन्न। कई दिन तो केवल इन्होंने रो–रोकर ही निकाले। फिर भी संगीत का शिक्षण कार्य चलने दिया। आप लंगोटी लगाकर गांव में घूमा करते थे और तानें अलापा करते थे—तो गांव वाले कहते कि यह लड़का पागल हो जायगा।

ग्वालियर में उन दिनों किर्लोसकर नाटक कम्पनी आई हुई थी, अतः एक दिन बाला गुरू ने इनसे कहा "तुझे पक्का गाना तो नहीं आ सकता, तेरा

स्वरूप अच्छा है इसलिये तू नाटक कम्पनी में चला जा" ! इस पर इन्होंने एक स्वाभिमानी की तरह उनको जवाब दिया कि आप मेरा मज़ाक बनाते हैं यह ठीक नहीं, देखिये यहां पर जो पचास, साठ आदमी गाना सीखने के लिये आते हैं, उनमें से गाने वाला केवल मैं ही निकलूँगा ।

इन दिनों रामकृष्ण की आवाज में विकृति आ जाने के कारण आवाज़ कुछ भर्रा गई थी, जिसके पास भी ये जाते वही दुतकारने लगता ।

मुसलमान गवैये अपमान सूचक शब्दों में इनसे कहते:—"अबे लौंडे तू क्यों यहां आया है, तुझे गाना नहीं आयेगा" किन्तु ऐसे कठोर वाक्यों को सहन करते हुए भी आपने धैर्यपूर्वक अपनी संगीत साधना जारी रक्खी । कुछ समय बाद वे अपमान करने वाले ही कहने लगे—"अब तो भई इस लड़के ने अपनी आवाज़ बनाली !"

इस प्रकार कठिन तपस्या करके आपने ग्वालियर में ही रहते हुए, अनेक संगीतज्ञों के पास जा-जाकर सीखने का प्रयत्न किया, फिर भी इनकी विशेष श्रद्धा केवल खां साहब निसारहुसेन पर थी ।

सन् १६३३ में पं० रामकृष्ण बुवा ने अपनी कुछ स्मृतियाँ उस समय प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक "वसुन्धरा" में प्रकाशित कराईं, जिसमें उन्होंने लिखा है "कभी-कभी खां साहेब निसारहुसेन अपने गर्म स्वभाव के कारण कह बैठते थे—"यहाँ से निकल जा ! तेरे बाप के हम कोई नौकर हैं" परन्तु मैं गायन सीखने का संकल्प कर चुका था, अतः उनसे विनय पूर्वक कह देता "मैं गाना सीखे बिना नहीं जाऊँगा" । उनको प्रसन्न रखने के लिये मैं प्रतिदिन उनका घर झाड़ता, पानी भरता तथा बजार से लाकर मांस भी देता था, किन्तु उनके पास ४ वर्ष रहते हुए भी, जैसे-तैसे केवल ५ चीजें ही उन्होंने मुझे सिखाईं ।"

पहिले जमाने में विद्या अध्ययन कितना दुरूह था, तथा गुरू और उस्ताद हर प्रकार की उचित अनुचित सेवा लेते हुए भी शिष्य को कितना सिखाते थे ? यह उपरोक्त पंक्तियों से पाठकों को विदित होगया होगा, फिर भी संगीत के सच्चे जिज्ञासुओं की तरह इस कठिनाई को रामकृष्ण बुवा पार करते चले गये और उन्हें सफलता भी मिली ।

पुराने उस्तादों की इस मनोवृत्ति को देखकर उन दिनों प्रो० विष्णु-दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत विद्यादान यज्ञ प्रारम्भ कर दिया था, उधर

आचार्य भातखंडे जी ने भी प्राचीन उस्तादों की गायकी एवं शास्त्रीय संगीत की गूढ़तम बातें पुस्तकों में प्रकाशित करनी आरम्भ करदी थीं। ऐसे उदार हृदय व्यक्तियों का प्रभाव पं० रामकृष्ण पर भी पड़ा और आपने भी उदारता पूर्वक संगीत शिक्षा देने तथा पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया।

पं० रामकृष्ण बुवा एक तपस्वी संगीतज्ञ थे, उन्होंने अनेक कष्ट झेलकर तथा भिक्षा से पेट भर-भर कर संगीत विद्या प्राप्त की, उसका उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। ऐसी तपस्या के कारण वे एक उच्चकोटि के कलाकार होगये थे। उनके रोम-रोम में संगीत प्रवेश कर गया था। गाने के अतिरिक्त फिडल तथा सितार बजाने का भी उन्हें अच्छा अभ्यास था।

अन्त में उनका आर्थिक जीवन भी सुखमय हो गया था। स्वास्थ्य आरम्भ से ही अच्छा था और शारीरिक गठन भी सुन्दर थी, अतः उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था, वे रौबदार दिखाई देते थे। किन्तु बाद में उन्हें मधुमेह का रोग होगया, उस पर भी वे खाने पीने से परहेज नहीं करते थे— "खवैया सो गवैया" यह कहकर सामने आये हुए पकवान का फौरन ही आप सफ़ाया करते थे।

इस प्रकार अधिक भोजन और कुपथ्य के कारण उनका स्वास्थ्य शनैः-शनैः गिरता गया, इसके फल स्वरूप अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप अत्यन्त दुर्बल होगये, और तब रेडियो पर गाना भी बन्द कर दिया।

अन्त में ५ मई सन् १९४५ को पूना में आपका देहावसान होगया।

★

रामचन्द्र गोपाल भावे

भावे बुवा बनारस वाले ध्रुपदिये के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी आवाज गोल, मधुर और दमदार थी। कई तालों में आप ध्रुपद गायन करते थे। उस्ताद फैयाज खां इनके ध्रुपदों से प्रभावित थे। पूना की सुन्दरीबाई ने बनारसी ढंग की कुछ गायकी इनसे ही प्राप्त की थी।

रामचन्द्र गोपाल भावे का जन्म सन् १८८५ ई० के लगभग काशी में हुआ। बाल्यावस्था में ही आप अनाथ होगये, इसलिये आपके दिन बड़ी मुसीबत में कटे और इसी कारण आपका शिक्षा क्रम भी विशेष रूप से आगे न बढ़ सका। आरम्भ में ब्रह्मघाट के रामभट्ट पटवर्धन द्वारा आपका पालन-पोषण हुआ। रामचन्द्र की बचपन से ही सुरीली आवाज थी, जिससे गाना सीखने में उनकी स्वतः ही प्रवृत्ति होगई। प्रसिद्ध ध्रुपदिये विश्वनाथ बुवा बुरहानपुरकर से आपने ध्रुपद-धमार की गायकी प्राप्त की। कुछ समय कलकत्ते में रहने के पश्चात आपने महाराष्ट्र का दौरा आरम्भ किया। वहां विभिन्न स्थानों पर संगीत जल्सों में भाग लिया। उन दिनों ध्रुपद गायन के प्रेमी कम होने के कारण इनको बड़ी कठिनाई से प्रोग्राम मिलते थे, फिर भी जहां-तहां इनकी बैठक हो ही जाती थी। आप ध्रुपद के एक विलक्षण गायक थे और स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग इन चारों अङ्गों के साथ स्पष्ट वर्णोच्चार करते हुए ध्रुपद गाते थे। एक बार बम्बई के तत्कालीन गवर्नर सर फ्रैडरीक साइक्स जब सांगली पधारे, तो उस उपलक्ष में भरे दरबार में भावेबुवा का ध्रुपद गायन हुआ, वहाँ से आपको ख्याति के साथ-साथ अच्छा आर्थिक लाभ भी हुआ।

आपके साथ प्रायः सांगली-मिरज के प्रसिद्ध पखावजी रामभाऊ संगत करते थे, जिन्होंने ४० वर्ष तक गायनाचार्य बालकृष्ण बुवा का साथ किया था। आप विभिन्न तालों में सफलता पूर्वक ध्रुपद गान करते थे और जिस प्रकार कोई ख्यालिया चाहे जिस मात्रा से बोलतान लेकर अन्त में सम पर आजाता है, उसी प्रकार किसी भी मात्रा से उठकर ध्रुपद के सभी अक्षरों को लेते हुए एकसी लय में आप सम पर मिल जाते थे। उनकी आवाज की पहुँच लम्बी और प्रभावपूर्ण थी। जिस समय भावे बुवा निचले षड़ज से तार षड़ज तक या नीचे की पंचम से तार की पंचम तक मींड़ लेते थे, यह मालुम होता था

कि वीणा में मींड़ खींची जारही है। आपका बनारसी ढंग का गायन तो विशेष रूप से प्रसिद्ध था, जिसे सीखने के लिए अनेक गायक और गायिकायें उनके पास प्रायः आया करते थे।

ऐसे प्रसिद्ध गायक का जीवन दुख और निर्धनता में बीता, ये जानकर दुख होता है, इसीलिए संभवतः अपना जीवन चरित्र बताने में वे हिचकते थे। अन्त में सन् १९४८ ई० में आपका शरीरान्त होगया।

★

राम दास

यह बादशाह अकबर के बहुत होनहार एवं प्रतिभाशील दरबारी गायक थे। कुछ लोगों का ख्याल है कि तानसेन के बाद सर्वश्रेष्ठ गायकों में आपका ही नम्बर था। आपकी आवाज़ बुलन्द और मधुर थी। ध्रुपद गाया करते थे, गायकी का ढंग बहुत अच्छा था। आपने कुछ नवीन रागों का निर्माण करके उन्हें प्रचार में लाने का सफल प्रयत्न किया। इसका प्रमाण हमें 'रामदासी मल्लार' से मिलता है। मल्लार का यह भेद आजकल भी भलीभांति प्रचलित है।

आप हिन्दू कुल में उत्पन्न हुए थे और प्रारम्भ में कुछ समय तक गुजरात राज्य के दरबारी गायक रहे। उस समय तक गुजरात की राजधानी अहमदाबाद थी और गुजरात के शासक सलामशाह थे। एकबार अकबर बादशाह के निमन्त्रण पर रामदास सलामशाह के साथ दिल्ली पहुँचे। दरबार में रामदास का गायन हुआ, तभी से अकबार बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें अपने दरबार में रख लिया। तब से आप दिल्ली के निवासी हो गये और दीर्घायु प्राप्त करने के पश्चात् दिल्ली में ही आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अपने पीछे एक पुत्र भी छोड़ा, जिसका नाम सूरदास था। यह भी गायन कला में अपने पिता के समान ही श्रेष्ठ और प्रतिभावान हुआ। इसने भी सूरदासी मल्लार नामक एक राग प्रचलित किया जो आज भी प्रचार में दिखाई पड़ता है। यह जन्म के अन्धे थे, इसीलिए इनका नाम सूरदास रक्खा गया।

रामभाऊ अलीबागकर

कौन जानता था कि आवारा लड़कों के साथ घूमने के वाला और कथा-वाचकों के पीछे झांझ बजाने में मस्त रहने वाला बालक रामभाऊ एक दिन उच्चकोटि का संगीतज्ञ बन जायगा। किन्तु परिश्रम से प्रत्येक वस्तु साध्य हो सकती है, यही कहावत श्री रामभाऊ पर चारितार्थ हुई। आप महाराष्ट्र प्रदेश के कोंकण नामक स्थान के निवासी थे। पढ़ने लिखने में तनिक भी रुचि न होने के कारण बचपन में आपने किसी भी पाठशाला का द्वार नहीं देखा। दिनभर बराबर के ऊधमी लड़कों के साथ व्यर्थ ही घूमते रहना आपकी दिनचर्या थी।

एक दिन अकस्मात ही आपके हृदय में संगीत के संस्कार जागृत हुए और यह उसी समय ग्वालियर की ओर चल पड़े। ग्वालियर पहुंचकर लगभग ७ वर्ष तक इन्होंने कठिन परिश्रम और तन्मयता के साथ संगीत का अभ्यास किया। आवाज़ की ईश्वरीय देन थी, इसलिये शीघ्र ही आप एक लोकप्रिय गायक बन गये। संगीत समाज में आपको सम्मान एवं यश की प्राप्ति होने लगी। तत्पश्चात् आप पुनः महाराष्ट्र की ओर आए, परन्तु यहाँ जमने के लिये आपको उचित क्षेत्र न मिल सका। इसके पश्चात् यह बेल-गाँव में ज़ाकर रहने लगे। वहाँ इनका प्रभाव भली-भाँति जम गया, वहाँ के धनी-मानी व्यक्तियों से आपका परिचय हुआ, गायन के सफल कायक्रम हुए और सीखने के लिये योग्य शिष्य भी मिल गये। इस प्रकार आपको धन, सम्मान और यश की यथेष्ट प्राप्ति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आपका स्वर्गवास होगया।

★

लक्ष्मण प्रसाद

"गुणी गन्धर्व" लक्ष्मण प्रसाद का जन्म मारवाड़ प्रान्त में जयपुर बीकानेर के चन्द्रवरदाई वन्श में, पौष शुक्ला १५ संवत् १९७३ को हुआ। आपके पिता पं० बलदेव प्रसाद एक नृत्यकार थे जिन्होंने उस समय के सुप्रसिद्ध नृत्यकार श्री बिन्दा दीन महाराज से नृत्य शिक्षा पाई थी। उस समय के प्रकांड पं० बहराम खां एक कुशल गायक समझे जाते थे। आपके पिताजी ने इनके साथ रहकर उनकी गायकी को अपनाया, इसके पश्चात् वे प्रायः दरबारों में ही रहने लगे।

घर में आरम्भ से ही संगीत का वातावरण रहने के कारण पं० लक्ष्मण प्रसाद को बचपन से ही संगीत का विचित्र शौक़ था। जब इनकी आयु केवल सात वर्ष की थी और इनके पिता जी अपना अभ्यास करते थे, तो ये उनके साथ ही आ-आ करके उनके गानों की नक़ल करने का प्रयत्न करते। आपकी

यह विशेषता थी कि जिस गायक का गाना एक बार सुन लिया उसकी गायकी की नकल बड़े सुन्दर ढंग से कर लेते। जब आप नौ वर्ष के हुए, तब इनके पिता जी स्वर्गवासी होगये। अनाथ हो जाने के कारण कुटुम्ब का मोह छोड़कर इन्होंने रामलीला तथा नाटक कम्पनियों में काम करना आरम्भ कर दिया।

उस समय में श्री कृष्ण थियेटर कम्पनी कानपुर की

बड़ी ख्याति थी। इस कम्पनी के साथ रहकर लक्ष्मण प्रसाद मजनूँ के पार्ट में स्टेज पर आते थे। इनके अभिनय और आवाज से आकर्षित होकर जनता ने इनका अच्छा स्वागत किया और कई स्थानों से पारितोषिक भी प्राप्त हुए। आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाने के कारण आपका विवाह भी उस समय होगया। आपके श्वसुर पं० खेमचन्द्र प्रकाश (फिल्म म्यूजिक डायरैक्टर) अपनी कला में प्रसिद्धि पा चुके थे, जिनके प्रति लोगों में आज भी आदर भाव है। उसी समय गोस्वामी श्रीलाल जी महाराज (कुँवर शाम) देहली के शिष्यों से आपका सम्पर्क हुआ, इसके फल स्वरूप शास्त्रीय संगीत का अभ्यास आप बढ़ाते गये और फिर दिल्ली रेडियो से आपके प्रोगम भी होने लगे। बड़ी-बड़ी कान्फ्रेन्सों में गाने का अवसर भी आपको मिलता रहा। देहली रेडियो से लगभग १३ वर्ष तक आपका सम्बन्ध रहा।

सन् १६४६ ई० में दिल्ली रेडियो पर आप म्यूज़िक सुपरवाइज़र नियुक्त हुए। इस कार्य को योग्यता पूर्वक तीन वर्ष तक निभाकर आप अपने श्वसुर पं० खेमचन्द्र प्रकाश के पास बम्बई चले आये। किन्तु दुर्भाग्यवश ६ महिने बाद ही इनके श्वसुर का स्वर्गवास होगया, अब गत ५ वर्ष से आप बम्बई में ही रहते हैं और यदा-कदा बम्बई रेडियो से आपके प्रोग्राम प्रसारित होते रहते हैं, यहां पर आप विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा भी देते हैं। आपके प्रमुख शिष्यों में पं० राजाराम शुक्ल, श्री मुरली मनोहर और श्री दिनेश के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पं० लक्ष्मण प्रसाद जी ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी, भजन, गजल आदि सभी शैलियों में सफलता पूर्वक अपनी कला का प्रदर्शन करने में समर्थ हैं। हरवल्लभ कान्फ्रेंस जालन्धर से आपको "गुणी गंधर्व" की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है।

★

लक्ष्मीप्रसाद मिसिर
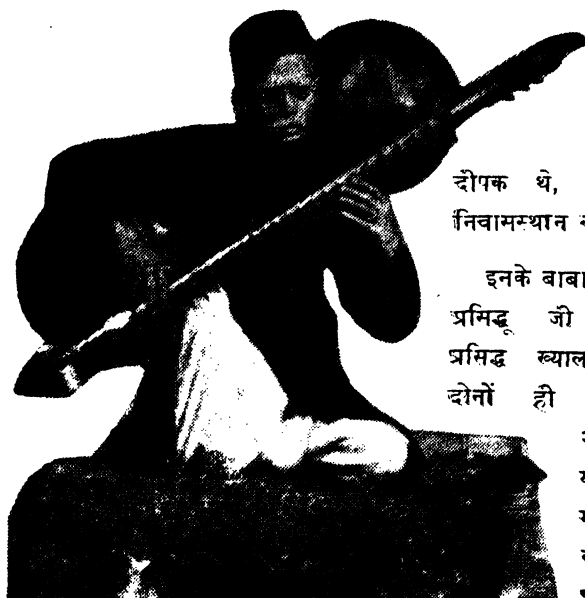
लक्ष्मीप्रसाद मिसिर बनारस कत्थक परिवार के कुल दीपक थे, आपका पैतृक निवासस्थान सोनपुरा था।

इनके बाबा मनोहरजी तथा प्रसिद्धू जी दोनों भाई प्रसिद्ध ख्याल गायक थे। दोनों ही नैपाल तथा महाराजा पटियाला के दरबारी गायक थे। आप दोनों ने महाराजा पटियाला के भाइयों में से एक को गायन भी सिखाया था। लखनऊ के रंगीले नवाब वाजिदअली के ३०० संगीतकारों में आप दोनों का प्रमुख स्थान था।

मनोहर जी का स्वर्गवास उस समय हुआ, जब लक्ष्मीप्रसाद चौदह वर्ष के थे।

लक्ष्मीप्रसाद के पिता ने ख्याल और ध्रुपद गायकी की शिक्षा अपने पिता (मनोहर जी) और चाचा (प्रसिद्धू जी) से प्राप्त की, साथ ही वीणा वादन भी इन्हीं से सीखा।

१४ वर्ष तक आप नैपाल के प्रधान मंत्री के पुत्र जनरल मुखिया के पास रहे। आपने वीणा वादन में विशेष प्रवीणता प्राप्त की, किन्तु स्वास्थ्य की खराबी के कारण आपको नैपाल छोड़ना पड़ा और शेष जीवन श्री कालीचरण टैगोर के पास बिताया। आपका शिष्य सम्प्रदाय विशाल रूप में था।

लक्ष्मीप्रसाद जी का जन्म १८६० ई० में हुआ। ख्याल, ध्रुपद गायकी और वीणा–सितार वादन की शिक्षा आपको अपने पिता जी से ही प्राप्त हुई। अतः पिता के समान ही वीणा वादन में आप भी सिद्धहस्त बने।

प्रारम्भ में आप महाराजा जौनपुर की सेवा में रहे और एक स्वर्णपदक प्राप्त किया। बाद में पूर्णियां के राजा नित्यानन्द के १२ वर्ष तक सितार शिक्षक रहे। इसके पश्चात् आप कालीकृष्ण की सेवा में आए, जहाँ इनके पिता भी रह चुके थे।

'संगीत संघ' तथा 'भवानीपुर संगीत सम्मेलन' जैसी प्रख्यात संगीत–संस्थाओं के शिक्षक पद पर भी आप रहे।

अनेक स्थानों से आपको स्वर्ण तथा रजत पदकों के पुरस्कार प्राप्त हुए। स्वर्गीय जगदीशचन्द्र घोष, मदनमोहन मिश्र, विनायक मिश्र, रामकृष्ण और श्यामचरन आपके प्रमुख शिष्यों में से थे। लक्ष्मीप्रसाद जी को ध्रुपद पद्धति के शास्त्रीय संगीत का प्रचुर ज्ञान था और पखावज तथा तबला वादन में पारंगत थे। यही कारण था कि आप बनारस के गायक वादकों में श्रेष्ठ माने जाते थे।

ध्रुपद, होली, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गायन शैलियों का अपार भण्डार लक्ष्मी जी के पास था।

आपका स्वर्गवास ७ दिसम्बर १९२९ ई० को कलकत्ता में हुआ।

★

लक्ष्मीबाई बड़ौदेकर

आपका मूल नाम है श्रीमती लक्ष्मीबाई जाधव कोल्हापुर राज्य में सन् १६०२ ई० में, मराठा कुल में आपका जन्म हुआ। आपकी माता का नाम यशोदाबाई तथा पिता का परशराम था। गायन सम्राट् स्व० अल्लादिया खाँ साहब के भाई, खांसाहेब हैदर खां के द्वारा आपने संगीत की शिक्षा ली।

सन् १६२२ से ४५ ई० तक बड़ौदा दर्बार में दर्बार गायिका के पद पर आप रहीं। तत्पश्चात् अपने मूल स्थान कोल्हापुर चली गईं। आपके संगीत कार्यक्रम मैसूर, इन्दौर, काश्मीर, नागपुर एवं राजपूताना और काठियावाड़ आदि स्थानों पर सफलतापूर्वक हुए, जिससे आपकी ख्याति चारों ओर फैल गई। हिज़मास्टर्स वॉयस तथा यंग इण्डिया कम्पनी द्वारा आपके लगभग ५०ग्रामोफोन रेकर्डस् प्रकाशित हो चुके हैं। आकाशवाणी बम्बई केन्द्र से आपके कार्यक्रम प्रसारित होते ही रहते हैं। ख्याल और ठुमरी गायन में आप विशेषता रखती हैं।

लक्ष्मीबाई की आवाज़ मीठी और सुरीली होने के कारण सारंगी के साथ ऐसे मिल जाती है, जैसे दूध में पानी। आपकी तानें दानेदार होती हैं जिनमें एक स्वाभाविक कम्पन भी पाया जाता है। आप एक व्यवसायिक गायिका हैं और कोल्हापुर में निवास करती हैं। 'कटवा गड गइलवा' यह देशकार की चीज़ आपकी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। ★

वज़ीर खां

प्रसिद्ध ख्याल-गायक बड़े मोहम्मद खाँ का नाम सभी संगीतप्रेमी जानते होंगे। वजीर खां रिश्ते में इनके भान्जे लगते थे। इनके एक छोटे भाई भी थे, जिनका नाम यूसुफ खां था। इनके पिता का नाम निज़ाम खां था और वे अपने जमाने के एक प्रसिद्ध ध्रुपद गायक थे। पिता ने स्वयं ही अपने दोनों पुत्रों—वज़ीर और यूसुफ को ध्रुपद गायन की शिक्षा दी। ख्याल गायकी की शिक्षा इन्हें अपने मामा बड़े मोहम्मद खां से प्राप्त हुई। इस प्रकार यह दोनों भाई गायकी के दोनों अङ्गों में पूर्णरूपेण दक्ष होगये। सुन्दर व्यक्तित्व के साथ-साथ इन दोनों का स्वभाव भी बहुत मीठा था। इनकी आवाज़ बड़ी मधुर, सुरीली एवं आकर्षक थी। यह दोनों प्रायः ध्रुपद और धमार ही गाया करते थे।

सर्व प्रथम आप लोगों का गायन बड़ौदा के श्री खंडेराव महाजन के समक्ष हुआ। तत्पश्चात् आप बम्बई पहुँचे और वहाँ श्रीयुत जीवनलाल महाजन के यहां आपके गायन का कार्यक्रम हुआ। यहाँ इनका गायन बहुत पसन्द किया गया तथा पुरस्कार में एक बड़ी रकम प्राप्त हुई। बम्बई के बाद इन लोगों ने क्रमशः पूना, भोर, सतारा इत्यादि नगरों का भ्रमण किया। भोर में इनके बहुत से कार्यक्रम हुए और इन्हें पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। वहां के गायक वर्ग एवं सम्भ्रान्त परिवारों द्वारा आप लोगों की खूब प्रशंसा हुई। कुछ दिनों बाद ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध ख्याल गायक सखाराम बुवा अलवारकर से वज़ीर खां की भेंट हुई, उस समय सखाराम ने इनके सामने बड़ी वैचित्र्यपूर्ण तानों का प्रदर्शन किया, तभी से वज़ीर खां के हृदय में ख्याल गायन पद्धति एवं ख्याल गायकों के प्रति सम्मान पैदा होगया।

कुछ दिनों के पश्चात् इनके छोटे भाई यूसुफ खां की मृत्यु होगई। जोड़ी बिछुड़ जाने से इनके गायन में कुछ कमी आगई। ईश्वर की ओर से इन्हें इतनी सुन्दर और दमदार आवाज मिली थी कि काफी समय तक अविरल गति से गायन करने पर भी उसमें कोई दोष नहीं आता था।

वहीद खां

प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ौदेकर के उस्ताद ख़ाँ साहब वहीद खां के नाम से बहुत से संगीत प्रेमी परिचित हैं। कोल्हापुर के प्रसिद्ध सारङ्गी-नवाज़ ख़ाँ साहब हैदर ख़ाँ आपके चचा थे। आप बाल्यकाल से ही अपने चचा के पास रहते थे और आपकी तालीम भी इन्हीं के द्वारा संपन्न हुई।

कोल्हापुर में वहीद खां ने अपना संगीत-ज्ञान विकसित किया। इनके चचा हैदर ख़ाँ साहब को बहुत सी घरानेदार चीज़ें प्रसिद्ध बीनकार बन्दे अली ख़ाँ
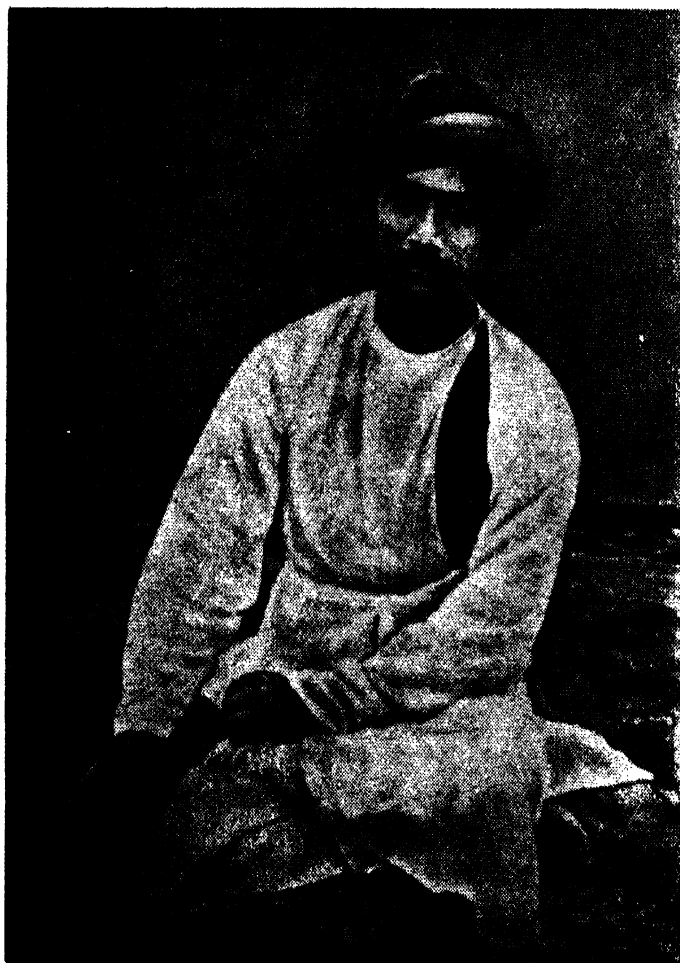
किराने वालों से प्राप्त हुई थीं, वे सबकी सब उन्होंने अपने भतीजे वहीद खाँ को सिखाईं। कोल्हापुर से आप बम्बई आये, बम्बई आकर कई वर्ष तक रहे। बम्बई में ही आपने हीराबाई बड़ौदेकर को संगीत की शिक्षा तीन वर्ष तक दी। बम्बई छोड़ने के बाद लाहौर रह कर आपने विशेष कीर्ति अर्जित की। खाँ साहब वहीद खां की गायकी का मुख्य अङ्ग उनका आलाप है। आप प्रायः बड़े-बड़े व प्रसिद्ध राग ही अधिकतर गाते थे। मालकोश मुलतानी, ललित, दरबारीकान्हड़ा, मियां मल्हार आदि उनके प्रिय राग थे। राग के एक-एक स्वर को लेकर तथा उसे प्रधानता देकर बारी-बारी से आप आलाप की बढ़त करते और एक राग को पूरे घण्टे भर तक गाते थे। यद्यपि लयकारी का अङ्ग उनकी गायकी में विशेष रूप से नहीं था, किन्तु उनकी तानें बड़ी विकट और चक्करदार होती थीं, जिन्हें सुनकर श्रोतागण आश्चर्य-चकित रह जाते थे।

वहीद खाँ साहब एक सफल गायक के साथ-साथ उच्चकोटि के संगीत शिक्षक भी थे। अपने शागिर्दों को सच्चाई के साथ, मन लगाकर तालीम देते और कोई बात छिपाने की चेष्टा नहीं करते थे। प्रसिद्ध संगीत दिग्दर्शक श्री० फीरोज निज़ाम आपके पट शिष्यों में से हैं। उन्हें खाँ साहब की बहुत सी चीज़ें याद हैं। और भी कई शिष्य आपकी गायकी को जीवित रक्खे हुए हैं। सन् १९४८ में बुढ़ापे में आपको एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ था। किन्तु उसके एक साल बाद ही खां साहब वहीद खाँ का निधन होगया। दिल्ली के अनेक गायक वादकों की ज़बान पर खाँ साहब का नाम अब भी रहता है और वे प्रायः उनकी याद करते रहते हैं।

★

वादीलाल नायक
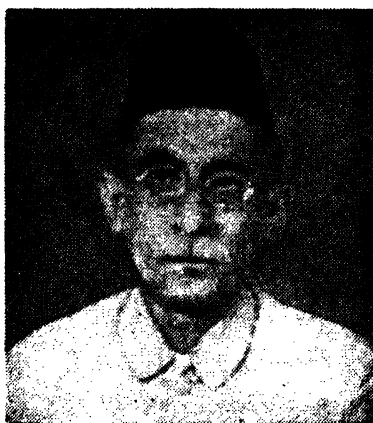
सरस्वती नदी के पावन तट पर स्थित सिद्धपुर नामक उत्तर गुजरात के प्रमुख तीर्थ में पं०-वादीलाल नायक का जन्म सन्-१९८२ में हुआ। आपके माता-पिता सदाचारी तथा धार्मिक प्रवृति के थे। इनकी माँ श्रीमती काशी-बाई इन्हें तथा इनके भाई श्री केशव-लाल को छोड़कर स्वर्गवासिनी होगई थीं। माता जी की मृत्यु के पश्चात् आपके पिता पं० शिवराम नायक ने आपको "दी बॉम्बे गुजरात ड्रामेटिक कम्पनी" में आजीविका कमाने के साथ-साथ अभिनय तथा नाट्य-संगीत सीखने सन् १८९२ में भेजा।

श्री वादीलाल नायक की रुचि शास्त्रीय-संगीत में थी, अतः वे स्वयं को एक अभिनेता अथवा मंच-गायक बनाना नहीं चाहते थे। संगीत सम्बन्धी बातों को हृदयंगम करके तुरन्त उन्हें उसी प्रकार प्रस्तुत करने की क्षमता आप में थी, इसी कारण वे बम्बई के स्वर्गीय उस्ताद नजीर खां से संगीत की दीक्षा लेने में सफल हो सके। उस्ताद नजीर खां अपने गाये हुए विभिन्न अन्शों को ठीक उसी प्रकार अपने निवास स्थान के बाहर से सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, और पं० वादीलाल को अपना शिष्य बना लिया।

बम्बई में प्लेग का प्रकोप होने के कारण उस्ताद नजीर खाँ का परिवार हैदराबाद दक्षिण चला गया। उस परिवार के साथ लगभग १२-१३ वर्ष के पं० वादीलाल भी गये थे। उस्ताद नजीर खाँ एक ख्याति प्राप्त कलाकार थे, अतः एक योग्य तथा कुशाग्र बुद्धिवाला शिष्य पाकर उन्होंने श्री नायक को संगीत की अच्छी तालीम दी थी। श्री वादीलाल जी ने उनकी तथा उनके सभी सम्बन्धियों की सेवा करके उस्ताद का सहज-स्नेह तथा गुरुपत्नी का आशीर्वाद प्राप्त किया था। दो वर्ष हैदराबाद रहकर सब लोग बम्बई लौट आये। पं० वादीलाल को विवश होकर उसी "नाटक कम्पनी" में पुनः

नौकरी करनी पड़ी। क्यों कि उनके समक्ष पिता की निर्धनता, छोटे भाई का भविष्य तथा अपने स्वयं के अध्ययन और उदर पोषण की समस्या थी। इस बार कम्पनी में उन्होंने गीतकार का कार्य अपूर्व सफलता के साथ किया।

स्नेहमयी मां को खोकर भी उन्हें पिता पर संतोष था, किन्तु क्रूर नियति ने १५ वर्ष की अवस्था में उनके पिता को भी छीन लिया, और वे जीवन की जटिल समस्याओं से जूझने को रह गये। फिर भी उन्हें अपनी कला तथा भाग्य पर विश्वास था। सन् १८८६ में वे पं० विष्णुनारायण भातखंडे के सम्पर्क में आये। भातखण्डे जी ही सैद्धांतिक रूप से नायक जी के पिता तथा गुरू थे। वादीलाल जी को जीवन में इतनी सफलता भातखंडे जी के प्रभाव तथा संरक्षण के कारण ही मिली थी। उन्होंने भातखण्डे जी से इच्छा प्रकट की कि वे उदयपुर राज्य के ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ श्री जकुरुद्दीन खां तथा जयपुर राज्य के उस्ताद मुहम्मद अली (कोठी वाला) से 'ध्रुवपद' तथा अलाप शैली की तालीम लेना चाहते हैं। पं० जी ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति दे दी, और आवश्यकता के समय यथायोग्य सहायता देने का भी वचन दिया। पं० वादीलाल जी दोनों जगह गये, किन्तु दुर्भाग्यवश वे उनसे अधिक सीख न सके। फिर बम्बई लौट गये, और पं० विष्णुनारायण भातखण्डे की शिष्यता ग्रहण की।

सन् १८९९–१९०० से १९२४ तक वे भातखण्डे जी के साथ रहे और उनसे अनेक घरानों की गायकी सीखी। साथ ही आपने संगीत विषयक अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अवलोकन भी किया।

बहुत समय तक श्री वादीलाल जी 'वनसदा राज्य संगीत विद्यालय' गुजरात के प्रिंसिपल भी रहे। महाराजा साहिब तथा शाही–परिवार के अन्य व्यक्ति आपकी प्रशंसा तथा सम्मान करते थे। वे स्वयं एक सदाचारी व्यक्ति को अन्य प्रकार के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक चाहते थे। वे सादा जीवन तथा उच्च विचार के मूर्त रूप थे और अध्ययन तथा सत्य को सबसे प्रमुख सम्मान देते थे, इसीलिए उनका जीवन सफल रहा। सन् १९४७ में भारत ने संगीत के इस महान पंडित को खो दिया। आप अपनी धर्मपत्नी तथा सुपुत्र श्री मफतलाल वादीलाल को अनाथ छोड़ गये हैं। आपने ६५ वर्ष की आयु तक संगीत जगत की सेवा की।

★

वामन नारायण ठकार

स्व० पं० नारायण शास्त्री के सुपुत्र वामन नारायण का जन्म १ दिसम्बर सन् १८९९ ई० को हुआ। बाल्यकाल्य से ही संगीत में रुचि होने से आप प्राय: स्कूल जाने की बजाय मन्दिरों में होने वाले कीर्तन में पहुँच जाया करते थे। इससे आपको दंड भी मिलना था, फिर भी संगीत रुचि कम न हुई। संगीत के प्रति आपका विशेष आकर्षण देखकर सन् १९१२ ई० में घर वालों ने आपको पं० विष्णुदिगम्बर जी के पास संगीत शिक्षा के लिये भेज दिया। आपने पण्डित जी के अन्य शिष्यों श्री० वामनराव पाध्ये और पं० ओमकारनाथ ठाकुर के साथ नासिक, नागपुर, अमरावती तथा कलकत्ता का दौरा किया। सन् १९१६ ई० में एक वर्ष तक पटवर्धन जी की अध्यक्षता में गांधर्व महाविद्यालय लाहौर में अध्यापन कार्य किया और सन् १९१८ ई० में पुन: पण्डित जी के साथ दौरे पर निकल गये। लगभग ५ वर्ष तक भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों का दौरा करके संगीत ज्ञान संचय किया। सन् १९२५ ई० में घर आने पर आपका विवाह हो गया और इसी वर्ष दिसम्बर में भाव नगर के एक विद्यालय में आप अध्यापक हो गये। यहीं पर आपने सौराष्ट्र संगीत विद्यालय खोला। इसी बीच श्री० कलाशकर जी ने आपसे संगीत समिति प्रयाग में आने की चर्चा की। अत: जुलाई सन् १९२९ में प्रयाग चले आये और १९४६ ई० तक आपने प्रयाग विश्वविद्यालय की अध्यापक रूप में सेवा की। सन् १९४७ से आप कायस्थ पाठशाला और संगीत समिति प्रयाग में योग्यता पूर्वक कार्य कर रहे हैं। आपके तीन पुत्र हैं जिनकी रुचि भी संगीत की ओर विशेष रूप से है। ठकार साहब का गला अत्यन्त मधुर और आकर्षक है।

वामन बुवा चाफेकर

ग्वालियर घराने के प्रभावशाली गायक पं० वामन-बुवा चाफेकर का गायन सुनकर कुछ लोग उन्हें 'आजकल के रहमत खाँ' की उपाधि दिया करते थे। आपकी अखंड गायकी, मधुर, स्पष्ट और सुरीली आवाज़ श्रोताओं को बरबस ही आकर्षित कर लेती।

आपकी जन्म-तिथि तथा माता-पिता के नामों के बारे में ठीक-ठीक पता नहीं चलता; क्योंकि यह बातें जब कोई उनसे पूछता तो वे मज़ाक के लहज़े में उसे इस प्रकार टाल देते—"अरे भाई मैं कब, कहाँ और किसके घर पैदा हुआ यह मुझे खुद नहीं मालूम, अलबत्ता पैदाज़रूर हुआ हूं इसमें कोई शक नहीं।"

आपने स्वर्गीय बालकृष्ण बुवा से कई वर्ष तक संगीत की शिक्षा प्राप्त की और उनकी गायकी में आप इतने दक्ष होगये कि हूबहू वैसा ही गाने लगे। स्व० अब्दुल करीम खां साहेब वामन बुवा का गाना बहुत पसंद करते और तरह-तरह की चीज़ें गाने की बारम्बार फर्माइश किया करते थे। इनकी सुरीली आवाज़ जिस समय तार षड्ज को स्पर्श करती तो ये बड़े-बड़े उस्तादों से भी दाद ले लिया करते थे। मिरज के भूतपूर्व राजा तांतिया साहब आपके विशेष सहायक रहे और बहुत समय तक जीवन निर्वाह के लिये इन्हें आर्थिक सहायता देते रहे।

स्वभाव से आपकी बालकों जैसी सरल प्रकृति पाई जाती थी, आपके हाथ की तमाम अंगुलियाँ सस्ती पीतल या चांदी की अंगूठियों से भरी रहतीं, यहाँ तक कि

किसी–किसी अंगुली में तो दो–दो तीन–तीन अंगूठी पहन लेते थे। इसके अतिरिक्त पुरानी या टूटी घड़ियां भी आप अपने पास रक्खा करते थे। जब कोई पूछता कि बुवाजी क्या टाइम है तो आप जेब में से घड़ी निकालकर एक झटका देते और कहते अरे चाभी लगाने की तो याद ही नहीं रहती।

कई वर्ष तक आप मिरज रियासत के दर्बारी गायक रहे, किन्तु आपके रहने की कोई भी स्थायी जगह नहीं थी, न आपका कोई घर ही था और न बीवी, न बच्चे। इस प्रकार यह कलाकार एकाकी जीवन व्यतीत करते हुए, कला की आराधना में, दुख–सुखों की परवाह न करके सन्तों जैसा जीवन गुज़ारता रहा।

चाफेकर जी के गाने का ढंग आमतौर पर शांत व गम्भीर रसानुकूल रहता था। आपकी गायकी प्रायः विलम्बित या मध्यलय से शुरू होती। अधिकतर तिलवाड़े के ख्याल आप गाते थे। राग की बढ़त में व्यर्थ की देर न लगाकर अपने राग को गाने में आध घण्टे से अधिक समय नहीं लेते थे। महफ़िल में उपस्थित श्रोताओं की रुचि पहचान कर आप अपना संगीत सुनाते थे, इसलिये कभी भी श्रोता आपसे ऊबते नहीं थे। गायन में आदि से अन्त तक रंग जमाये रखना आपकी विशेषता थी।

जिन्होंने आपसे संगीत की शिक्षा पाई है, अथवा कुछ चीज़ें आपसे प्राप्त की हैं, उनमें बम्बई के संगीताचार्य श्री बी. आर. देवधर तथा पूना के श्री मारुलकर के नाम उल्लेखनीय हैं। मिरज के श्री गोखले जी की पुत्री भी आपके पास संगीत शिक्षा लेती थी। इस बच्ची ने बारह–तेरह वर्ष की आयु में ही विभिन्न रागों की लगभग १५० चीज़ें इनसे प्राप्त कीं। इस लड़की की गायकी में चाफेकर साहब की पूरी छाप पाई जाती है। वामन बुवा के प्रिय रागों में तोड़ी, ललित, सारंग, मुलतानी, छायानट, भैरवी, पूरिया, सारंग, पूर्वी और मल्हार के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

वामन बुवा फलटणकर

प्राचीन गुणी एवं कलावन्तों में स्वर्गीय पंडित वामन बुवा एक प्रसिद्ध ध्रुपदिये होगये हैं, जिनको फलटणकर बुवा भी कहते थे। आपके पिता स्व० गोविन्द बुवा गोसानी फलटणकर लश्कर (ग्वालियर) में रहते थे। आपकी शिष्य परंपरा विशाल रूप में फैली हुई है। आपके कनिष्ठ पुत्र श्री विष्णु भैया, ग्वालियर के माधव संगीत विद्यालय के प्रधान अध्यापक तथा निरीक्षक पद पर रहकर, १५ वर्ष सेवा करके अच्छी ख्याति पा चुके हैं और विष्णु भैया के पुत्र अर्थात् वामन बुवा के पौत्र, सखाराम फलटणकर भी इसी विद्यालय के अध्यापक रहे हैं।

वामन बुवा का जन्म १८३० ई० के लगभग हुआ था। प्रसिद्ध ध्रुपद रचयिता पं० चिंतामणि के पट्ट शिष्य नारायण शास्त्री से आपने ध्रुपद शिक्षा प्राप्त की थी। कुछ समय बाद जब मथुरा में सेठ लखमीचन्द ने द्वारिकाधीश मंदिर की स्थापना की, तो उसमें संगीत सेवा के लिये वामन बुवा को लश्कर से मथुरा बुलाया गया। मथुरा जी में आपकी संगीत कला से आकर्षित होकर वहां के कई चौबे आपके शिष्य होगये। कुछ समय बाद करौली रियासत के महाराज मदनपाल जी जब तीर्थयात्रा के लिये मथुरा पधारे तो इन्हें फलटणकर जी का संगीत सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इनकी गायन शैली और सुरीला कंठ महाराज को बहुत पसंद आया, तब महाराज ने सेठ लखमीचंद जी से वामन बुवा को अपने यहां ले जाने के लिये मांगा। सेठ जी आपकी इच्छा को न टाल सके और वामन बुवा को महाराज के साथ करौली जाना पड़ा। फिर द्वारिकाधीश के मंदिर में सेवा के लिये सेठ जी ने वामन बुवा के लघुभ्राता भैयाजी को बुला लिया। भैया जी के भी बहुत से शिष्य मथुरा में हुए, जिनमें चन्दन चौबे का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

जब वामन बुवा करौली पहुंच गये तो महाराज के यहाँ उनका संगीत प्रदर्शन होने लगा। कुछ दिनों बाद एक विचित्र घटना ऐसी हुई जिसके कारण वामन बुवा विशेष रूप से प्रसिद्ध होगये। बात यों हुई कि एक दिन वामन बुवा का गाना होरहा था। गर्मी के कारण बाहर चौक में महफ़िल जमी हुई थी, पूर्णिमा की शुभ्र चांदनी छिटक रही थी। सेवक गण बड़े-बड़े पंखे लेकर उपस्थित श्रोताओं की हवा कर रहे थे; भयंकर गर्मी थी। महाराज कहने लगे कि वामन बुवा आज तो संगीत का कुछ चमत्कार दिखाओ। यह सुनकर वामन बुआ ने कहा कि महाराज मुझे थोड़ा सा समय दीजिये, मैं स्नान कर आऊँ। जब आप स्नान करके, शुद्ध पवित्र होकर अपने आसन पर पुनः विराजमान हुए तो तम्बूरा लेकर गुरुदेव का ध्यान करके आपने मेघमल्हार का आलाप छेड़ दिया। कुछ ही मिनटों के अन्दर शनैः शनैः आकाश मेघाच्छन्न होने लगा और जब पखावज के साथ मेघ मल्हार की ध्रुपद आरम्भ हुई तो रिम-झिम रिम-झिम बूँदें पड़ने लगीं। श्रोतागण तथा महाराज आश्चर्य-चकित होकर प्रफुल्लित होगये। जैसे-जैसे ध्रुपद की गति बढ़ती गई, वैसे ही वैसे वर्षा जोर पकड़ती गई और फिर ऐसा धुआधार पानी पड़ा कि सब लोग तरबतर होकर, उठकर भागने लगे।

उक्त चमत्कारपूर्ण घटना के बाद महाराज ने वामन बुवा के लिये ६०) मासिक पगार निश्चित करदी और करौली का श्री मुरलीधर मंदिर स्थायी रूप से वामन बुवा को पुश्तदरपुश्त के लिये सौंप दिया।

कुछ समय पश्चात्, करौली के महाराज मदनपाल के स्वर्गवासी होने के बाद लश्कर के महाराज जयाजीराव शिंदे ने वामन बुवा को अपने यहां बुला लिया और अन्य कलावन्तों के साथ अपने दरबारी संगीतज्ञों में इन्हें भी सम्मिलित कर लिया। ग्वालियर महाराज की आपके ऊपर अपार श्रद्धा थी। नित्य प्रति रात्रि को ८ बजे से महाराज के शायनागार के समीप ही वामन बुवा निद्रा समय तक महाराज को संगीत सुनाया करते थे।

संगीत की यह विभूति अपनी आयु के ७७ वें वर्ष में, अर्थात सन् १९०७ ई० में स्वर्गवासी होगई। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री शिवराम शास्त्री उर्फ़ लाला-भैया संगीत में प्रगति करते हुए अपने पिता की भाँति ही यशस्वी हुए। उनके रचे हुए कुछ तराने भातखंडे जी ने संग्रहीत करके क्रमिक पुस्तकों में दिये हैं। इस प्रकार वामन बुवा के संगीत प्रसाद से भावी पीढ़ी भी लाभ उठाती रहेगी।

★

वारिसअली खां

यह अपने समय के अद्वितीय ख्याल गायक होगये हैं। महाराष्ट्र में ख्याल को लोकप्रिय बनाने का श्रेय केवल आपको ही मिलना चाहिये। आप का निवास स्थान लखनऊ था। आप प्रसिद्ध ख्याल गायक बड़े मोहम्मद खाँ के घराने में से थे। ख्याल गायकी में यह घराना कितना प्रसिद्ध माना जाता है, यह बात संगीत प्रेमी भलीभांति जानते हैं। ख्याल गायन की विद्या इनको पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई। पुराने ज़माने में घरानेदार गायकों के लिये उनके पिता अथवा रिश्तेदार तीन प्रकार से गायकी की शिक्षा दिया करते थे। तालीम आम, तालीम खास और तालीम खासुलखास। अतः वारिसअली खाँ को भी इसी प्रकार (तीनों प्रकारों से) अपने पिता के द्वारा संगीत शिक्षा प्राप्त हुई।

शिक्षा की अवधि समाप्त होने के पश्चात्, ख्याति एवं अर्थ लाभ के उद्देश्य से वारिसअली खाँ को पर्यटन की इच्छा हुई। सर्व प्रथम आप, सन् १८६० ई० के लगभग पूना होते हुए सतारा पहुंचे। वहां उस समय माँ साहेब (महाराज आबा साहेब की माता) राज्य करती थीं। उन्होंने लखनऊ से आये हुए इस गायक का नाम सुना। उनके मस्तिष्क में यह विचार आया कि इस कलाकार को अपने यहाँ नौकर रख लिया जाय तो निःसंदेह हमारे राज्य की सम्मान वृद्धि होगी। इस विचार के फलस्वरूप मांजी साहिबा ने इनको अपने यहां नौकर रख लिया। उन दिनों सतारा में नवरात्रि उत्सव चल रहा था। वारिसअली खां का प्रथम कार्यक्रम दीवानखाने में स्थित देवी की मूर्ति के समक्ष हुआ। सौभाग्य से आपका पहिला कार्यक्रम ही ऐसा प्रभावशाली एवं चमत्कार पूर्ण हुआ कि वहाँ की जनता एवं राज्य के समस्त कर्मचारी वर्ग ने खां साहेब की भूरि-भूरि प्रशंसा की, माँ साहेब को भी हार्दिक संतोष हुआ।

सतारा में बहुत दिनों तक वारिसअली खां की तबियत नहीं लगी, इसी कारण आप गायन के लिये राजमहल में भी न जा सके। परन्तु राज्य की ओर से आपके ऊपर इस कार्य के लिये किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला गया। इससे विदित होता है कि सतारा राज्य में इनका बहुत सम्मान रहा होगा। संयोग से एक दिन लखनऊ से वारिसअली खां का एक प्रगाढ़ मित्र

पर्यटन करता हुआ सतारा में आ निकला। आखिरकार उसके अनुरोध पर खाँ साहेब राजमहल के अन्दर गाने के लिये पहुंच ही गये। वहां लगभग तीन घण्टे तक आपने अपनी गायकी का प्रदर्शन किया। इस अवसर पर खां साहेब का गाना सुनने के लिये राजमहल की सभी पर्दानशीन स्त्रियां, उच्चशासक वर्ग एवं सरदार, जागीरदार तथा नगर के विशेष धनीमानी व्यक्ति एकत्रित हुए। खाँ साहेब का गायन इतना श्रुतिमधुर तथा मनोरंजक हुआ कि सभी श्रोतागण आनन्द विभोर होकर हृदय से वाह–वाह कर उठे। इस कार्यक्रम को देखकर माँ साहेब को हार्दिक प्रसन्नता हुई और उनकी दृष्टि में वारिस अली पर किये हुए व्यय का सदुपयोग सिद्ध होगया। उस दिन के पश्चात् वारिस अली खां राजमहल में गायन के लिये आने लगे और सतारा का राज्य-महल समय–समय पर खां साहेब के संगीत से गुंजित होने लगा।

सन् १८७५ ई० के लगभग माँजी साहेब का स्वर्गवास होगया। अतः वारिसअली खाँ भी सतारा छोड़कर हैदराबाद चले गये और वहीं कुछ समय पश्चात् आपका देहान्त होगया। पूना के प्रसिद्ध गायक रावजी बुवा बेलबागकर कहा करते थे कि वारिसअली खां की सी टोड़ी मैंने अपने जीवन में कभी नहीं सुनी।

★

विनायकराव पटवर्धन

श्री विनायक राव पटवर्धन का जन्म मिरज के एक महाराष्ट्रीय कुटुम्ब में २२ जुलाई सन्–१८९८ ई० में हुआ था। सात वर्ष की अवस्था से आपने अपने चाचा स्वर्गीय केशवराव से संगीत सीखना आरम्भ किया। इसके बाद सन् १९०७ ई० से लाहौर में पं० विष्णु दिगम्बर जी के पास आपकी संगीत–शिक्षा आरम्भ होगई और उसके बाद गुरू जी की आज्ञानुसार आपने गांधर्व महा–विद्यालय की बम्बई, लाहौर, नागपुर शाखाओं में संगीत अध्यापन का कार्य किया। आपकी मधुर आवाज़ और प्रभावशाली गायन शैली से प्रभावित होकर नट सम्राट् बाल गंधर्व बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी गंधर्व नाटक मंडली में आपको सम्मिलित कर लिया। इस नाटक कम्पनी में रह कर आपका नाम तो खूब चमका, किन्तु आपके गुरू जी को यह व्यवसाय पसंद न होने से कुछ दिनों बाद नाटक कम्पनी से आप पृथक हो गये और सन् १९३२ ई० में गांधर्व महाविद्यालय पूना की स्थापना करके आजीवन संगीत सेवा करने का निश्चय किया। अब तक एकनिष्ठ रूप से उसी की सेवा करते चले आ रहे हैं। इस विद्यालय के लिये आपने अनेक पाठ्य पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें राग–विज्ञान के पांच भाग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संगीत सीखते समय विद्यार्थियों को किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिये, इसके उत्तर में आपका कहना है कि अभ्यास करने से पहले गुरुनिष्ठा बहुत आवश्यक है। पहले कम से कम १० वर्ष तक संगीत का अभ्यास करने के बाद ही संगीत सभा में भाग लेना चाहिये तथा संगीत जिज्ञासुओं को संगीत की शिक्षा देनी चाहिये। स्वर, ताल पर पूरा ध्यान देना चाहिये। किसी दूसरे गायक की निन्दा नहीं करनी चाहिये। गाते समय आवाज़ इतनी स्पष्ट निकलनी चाहिये कि सभी श्रोता गाने के बोल आसानी से सुनलें।

पंडित जी के घराने में विशेष रूप से जो राग गाये जाते हैं वे हैं:—
दरबारीकानड़ा, मल्हार, मुलतानी, जयजयवन्ती, मालकौंस, गांधारी तोड़ी, भैरवबहार, ललित, मारवा, हमीर, केदार, पूरिया आदि।

पटवर्धन जी की कला का सबसे आकर्षक भाग इनके तराने होते हैं, यह बहुत ही तैयार, बन्दिशपूर्ण और आड़ीलय से भरे होते हैं एवं तबलिये के लिये तो ये कसौटी का काम देते हैं। इनकी संगत करने वाला तबलिया अच्छा हो तो मज़ा आ जाता है; क्योंकि इनके तराने में केवल लयकारी की दौड़ और आड़ी–कुआड़ी बिआड़ी आदि के खेल ही होते हैं। जब आपका तराना द्रुतलय में पहुंचता है तो बस द्रि द्रि की एक लकीर ही बन जाती है। उस समय शास्त्रीय संगीत के समझदार श्रोताओं को तो आनंद आता ही है, साधारण श्रोता भी फड़क उठते हैं। आजकल आपके साथ गायन में आपके यशस्वी सुपुत्र श्री नारायणराव भी साथ देते हैं, उनकी गायकी में भी उन्नति के अल्वाणु स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री पटवर्धन रूस आदि देशों में भी भारतीय संगीत का प्रसार कर चुके हैं और अपने गुरुवर्य के पावन मार्ग पर दृढ़तर हैं।

★

विलायत हुसेन खाँ

उ० विलायत हुसेन खां का सम्बन्ध आगरा के उसी प्रसिद्ध घराने से है, जिसमें स्वर्गीय उस्ताद फैयाज खां जैसे उत्कृष्ट कलाकार हुए हैं।

आपके दादा शेर खाँ पहले–पहल बम्बई में आकर बसे थे। उसके पश्चात् खाँ साहब नत्थन खाँ बम्बई आये, यह नत्थन खाँ ही विलायत हुसेन के पिता थे। सन् १८९६ ई० के लगभग विलायत–हुसेन का जन्म हुआ। जब आपके पिता (खां साहेब नत्थन खां) मैसूर दर्बार की नौकरी में थे, तब वहीं पर सन् १९०१ ई० में उनका स्वर्गवास होजाने के कारण पुनः यह परिवार बम्बई में आकर रहने लगा। उस समय विलायत खाँ की आयु केवल ५ वर्ष की थी। आपके एक चचेरे दादा मौहम्मद बख्श उन दिनों जैपुर में रहते थे। अतः विलायत हुसेन उन्हीं के पास जाकर रहने लगे। मौहम्मद बख्श ने इन्हें दत्तक पुत्र के रूप में रख लिया और इनकी संगीत शिक्षा आरम्भ करदी गई।

सर्व प्रथम आपकी तालीम उ० करामत खाँ द्वारा प्रारम्भ हुई। तीन वर्ष तक इनसे तालीम पाने के पश्चात् आपको खां साहब मौहम्मद बख्श ही स्वतः होरी, ध्रुपद की तालीम देने लगे, तथा खाँ साहब कल्लन खाँ भी इन्हें कुछ बता दिया करते थे। कुछ समय तक जैपुर में शिक्षा क्रम चलने के बाद खां साहब फैयाज खाँ इन्हें अपने साथ दौरे पर लेगये, उस समय विलायत–हुसेन की आयु केवल १० वर्ष की थी। बाल्यावस्था की कोमल और मधुर आवाज में, जब ये नोमतोम तथा होली और ध्रुपद गाते थे तो श्रोतागण चकित होकर वाह–वाह किया करते थे। महफिल में जब उ० फैयाज खाँ का गायन

होता तो पहले इस बालक को थोड़ी देर तक गाने का मौक़ा देकर महफ़िल का रंग जमाया जाता, तब उस्ताद फैयाज खाँ गाने बैठते थे, और विलायत-हुसेन सरगम गाकर उनका साथ किया करते थे। इससे महफिल में एक सुन्दर वातावरण उपस्थित हो जाता था।

उस्ताद फैयाज खाँ के साथ रहते हुए विलायत हुसेन खां को गुलाम-अब्बास से भी तालीम हासिल हुई जो कि फैयाज खां के नाना थे। कुछ समय तक यह संगीत प्रवास चलता रहा और फिर आप जैपुर पहुँच गये। उन दिनों जैपुर में वहां के तत्कालीन महाराज सवाई रामसिंह जी संगीत के बड़े प्रेमी थे। उनके यहाँ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायक-वादक अपना कला प्रदर्शन किया करते थे। विलायत खाँ को उन कलाकारों के बिलकुल नजदीक बैठकर गायन सुनने का अवसर प्राप्त होता रहा, जिससे इनको आशातीत लाभ हुआ और इनकी कला दिनों दिन प्रखर होती गई।

सन् १९१४ ई० में आप बम्बई आकर अपने बड़े भाई मौहम्मद खाँ के पास रहने लगे। यहीं पर अपने बड़े भाई से तालीम लेना और खूब रियाज करने का क्रम लगभग ६ वर्ष तक जारी रहा। विभिन्न संगीत कार्यक्रमों में भी आप भाग लिया करते थे, इससे आपकी अच्छी ख्याति होगई। जब १९२० ई० में इनके बड़े भाई मौहम्मद खाँ साहब का देहान्त होगया तो समस्त परिवार का भार विलायत हुसेन के ऊपर ही आ पड़ा, तब ये अपना अधिक समय ट्यूशनों में लगाकर अर्थोपार्जन करने में संलग्न रहने लगे। बम्बई में आपने बहुत से विद्यार्थी तैयार किये, जिनमें श्रीमती अंजनीबाई जाम्बोलीकर, इन्द्राबाई बाडकर, सरस्वती बाई फाथरफेकर, श्रीमती नारवेकर, पंण्डित जगन्नाथ बुवा पुरोहित, दत्तू बुवा इचलकरंजीकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन् १९३५ से ४० तक आप मैसूर दर्बार में गायक पद पर रहे, एवं कुछ समय तक काश्मीर नरेश के यहाँ काश्मीर में रहकर उनके राजकुमारों को संगीत की शिक्षा दी। सन् १९५१ ई० के लगभग जब आप कुछ अस्वस्थ रहने लगे तो, विश्राम करने के लिये अपने मूल स्थान आगरे आगये और वहां ३ महीने तक रहने पर भी कुछ लाभ न हुआ तो पुनः बम्बई चले आये और यहाँ आकर शनैः शनैः स्वास्थ लाभ करने लगे।

वर्तमान समय में आगरा घराने के प्रतिनिधियों में आपका नाम सम्मान से लिया जाता है।

विश्वनाथ बुवा जाधव

प्रारम्भिक संगीत शिक्षा ग्वलियर घराने की होने पर भी किराना घराने की गायकी में, खाँ साहेब अब्दुलकरीम खां की शैली में सफलता पूर्वक गाने वाले पं० विश्वनाथ बुवा वृद्धावस्था में भी तार पंचम तक आवाज फेंकने में समर्थ हैं। मीठी और सुरीली आवाज़ तथा आपके हृदयस्पर्शी आलाप जिन्होंने सुने हैं वे आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

विश्वनाथ बुवा का जन्म कोल्हापुर राज्य के अन्तर्गत हुपरी नामक गांव में, सन् १८८८ ई० में हुआ। बाल्यावस्था में ही पिताजी का देहान्त हो जाने के कारण अपनी ननिहाल 'इंगली' नामक गाँव में आप चले गये। तत्पश्चात् आप की माताजी ने कोल्हापुर की एक पाठशाला में आपको—प्रविष्ट करा दिया। उन दिनों इस पाठशाला में गणेश उत्सव मनाया जाता था जिसमें बच्चों के गाने होते थे, आप भी उसमें भाग लेने लगे। आवाज़ अच्छी और सुरीली थी इसलिये सब

इनकी ओर आकर्षित हुए। उन्हीं दिनों एक नाटक मंडली कोल्हापुर आई थी, उसके मालिक ने इस बच्चे की आवाज़ सुनी तो अपनी कम्पनी में इनमें आने के लिये कहा। यह बड़ी उत्सुकता पूर्वक कम्पनी में जाने को उद्यत हुए। गाना गाने और नाटक देखने की तीव्र अभिलाषा इनके हृदय में थी; किन्तु इनकी माता जी नाटक कम्पनी में इनको नहीं जाने देना चाहती थीं। फिर भी बालहट के आगे माताजी की न चली और ये नाटक कम्पनी में भर्ती होगए। इस कम्पनी में छोटे बच्चों को संगीत सिखाने के लिये पं० दत्तोपन्त नामक एक गायक नियुक्त थे, उनसे विश्वनाथ भी गाना सीखते रहे तथा नाटक में अभिनय भी करते रहे। इस कम्पनी में आप लगभग ८ वर्ष तक रहे। फिर १९०८ ई० के लगभग एक दूसरी "नाट्यकला प्रवर्तक नाटक मण्डली" कोल्हापुर आई, इस कम्पनी के मालिक ने विश्वनाथ बुवा को गायन मास्टर के पद पर रख लिया। उन दिनों इसी कंपनी में सवाई गंधर्व भी अभिनय किया करते थे अतः सवाई गंधर्व से इनकी गहरी मित्रता होगई। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में दोनों रियाज़ किया करते थे; इस प्रकार आप धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे।

कुछ समय बाद जब उक्त नाटक मंडली पूना आई तो वहां इसमें खां-साहेब निसार हुसेन भी सम्मलित होगये। इस अवसर का लाभ उठाकर विश्वनाथ ने खाँ साहेब से गाना सीखना आरम्भ कर दिया और उनका गंडा भी बांध लिया। फिर एक वर्ष बाद इन दोनों गुरु-शिष्य ने यह कम्पनी छोड़दी।

उस्ताद निसार हुसेन का आपके ऊपर विशेष स्नेह था, अतः उन्होंने सहृदयता पूर्वक इनको संगीत की तालीम देकर अनेक प्रकार की चीजें व गायकी सिखाई। उस्ताद के साथ आप बहुत जगह घूमे, इससे भी आपको बहुत लाभ पहुँचा। कुछ समय बाद आप कोल्हापुर चले गये, वहां आपकी शादी होगई और वहीं स्थायी रूप से रहकर, शारदा संगीत विद्यालय खोलकर संगीत सेवा करने लगे। इन दिनों खां साहेब अब्दुल करीम खाँ मिरज में रहते थे और उनके संगीत प्रोग्राम इधर-उधर होते ही रहते थे। खां साहेब की गायकी का कुछ आभास आपको पहले ही सवाई गंधर्व द्वारा हो चुका था और जब प्रत्यक्ष उनका गायन इन्होंने सुना तो खाँ साहेब की गायकी की ओर यह विशेष रूप से आकर्षित होगये। रियाज़ और परिश्रम द्वारा आपने खाँ साहेब अब्दुल करीम खाँ की गायकी का बहुत कुछ अन्श प्राप्त कर लिया। फिर तो

कोशिश करते–करते खाँ साहेब से प्रत्यक्ष में भी आप गायन शिक्षा प्राप्त करने लगे और उनके साथ बाहर संगीत सम्मेलनों में भी जाने लगे।

सन् १९२२ ई० के लगभग आप छत्रपति शाहू महाराज के दर्बारी गायक बन गये और कई वर्ष तक उस राज घराने को संगीत शिक्षा देते रहे। मैसूर के राज दर्बार में जब आपका गायन प्रदर्शन हुआ तो महाराज ने पाँच सौ रुपये की थैली तथा एक बहुमूल्य शाल देकर आपको सम्मानित किया। इन्हीं महाराज के द्वारा आपको "प्रौढ़ गंधर्व" की उपाधि से भी विभूषित किया गया।

अप्रैल १९५२ में, जब गांधर्व महा विद्यालय मंडल का दिल्ली में सुवर्ण जयन्ती महोत्सव मनाया गया, उस अवसर पर आपको एक मानपत्र और शाल भेंट करके सम्मानित किया गया।

स्वभाव सरल और सीधा होने के कारण आप कई बार धोखा भी खा चुके हैं। किसी राज घराने से आपको पुरस्कार में हीरे की एक बहुमूल्य अंगूठी मिली थी, वहाँ रजवाड़े के एक धूर्त्त व्यक्ति ने बुवा साहब से कहा कि इस अंगूठी पर पालिश और होजाय तो क्या कहने हैं। भोले–भाले बुवा साहब नें पालिश कराने के लिये वह अंगूठी उस व्यक्ति को देदी। तीन चार दिन बाद पालिश होकर अंगूठी तो आगई लेकिन उसके अन्दर का असली हीरा नक़ली होगया।

सन् १९४७–४८ से आप सांगली में ही रहते हैं। सांगली की महारानी द्वारा आपको आर्थिक सहायता प्राप्त होती रहती है और वहाँ के ग़रीब विद्या–र्थियों को आप मुफ्त संगीत शिक्षा देते रहते हैं।

★

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

ग्वालियर घराने की गायकी का सूत्रपात प्रसिद्ध गायक हद्दू खां हस्सू खां द्वारा हुआ। इन्हीं भाइयों के द्वारा वासुदेव राव दीक्षित ने गायकी प्राप्त की और फिर उनसे यह गायकी बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर को प्राप्त हुई। इन्हीं बालकृष्ण बुवा महोदय से पं० विष्णु-दिगम्बर जी पलुस्कर ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

संगीताचार्य पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म महाराष्ट्र के कुरुन्दवाड नामक एक देशी राज्य में, १८ अगस्त सन् १८७२ को हुआ। इनके पिता श्री दिगम्बर पंत कीर्त्तनकार थे हरि कीर्त्तन उनका वंश परंपरागत धंधा था। पं०-जी जब १२-वर्ष के थे, दुर्भाग्य से दीपावली के अवसर पर आतिशबाजी चलाते हुए एक पटाखे के विषैले धुएं से इनके नेत्रों की ज्योति क्षीण होगई, जिसके फल स्वरूप इनकी अंग्रेजी शिक्षा बन्द हो गई। अतः पिता ने इन्हें मिरज में श्री बालकृष्ण बुवा इचल-करंजीकर के पास भेज दिया। पं० जी जितने

समय उनके पास रहे, उनसे संगीत का सभी प्रकार का ज्ञान-संपादन कर लिया। कुछ समय बाद इनके गुरू श्री बालकृष्ण बुवा मिरज पहुँच गये। अतः उनके साथ पंडित जी भी मिरज आ गये और यहां भी इनका संगीत शिक्षण जारी रहने लगा।

संगीत गोष्ठियों और बड़ी-बड़ी सभाओं में पंडित जी अपने गुरूजी के साथ रहते थे और उनकी इच्छानुसार ही कार्य करते थे। इस प्रकार गुरूजी के साथ रहने से उनकी गायन शैली पण्डित जी ने अच्छी तरह सीखली। विद्यार्थी दशा में आपका जीवन बहुत सादा और निर्मल था, उन्हें किसी प्रकार का भी व्यसन न था। ये संगीत शिक्षा और गुरु सेवा में ही तल्लीन रहते थे।

सन् १८९६ में पण्डित जी ने अपना संगीत शिक्षण समाप्त किया और तब वे महाराष्ट्र के गांवों में घूमने लगे। प्रवास काल में इन्होंने अनुभव किया कि समाज में गायकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। संगीतज्ञों का जैसा सम्मान होना चाहिये वैसा नहीं होता। इसके विरुद्ध गायकों को भले घरों में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इन अरुचिकर परिस्थितियों का आपके हृदय पर भारी प्रभाव पड़ा, अतः इन्होंने प्रतिज्ञा की कि "जब तक सम्मानित कुटुम्बों में संगीत का प्रचार और प्रतिष्ठा न हो जाय, तब तक चैन से नहीं बैठूंगा।"

अपनी इस प्रतिज्ञा एवं उद्देश्य पूर्ति के लिये उन्होंने गीतों में से श्रृंगार रस के भद्दे शब्दों को हटाकर भक्ति रस को स्थान दिया। इसके परिणाम स्वरूप इनके भक्तिमय गीतों का आकर्षण बढ़ने लगा और वे समाज में प्रचलित होने लगे। पण्डित जी को जगह-जगह से निमन्त्रण भी मिलने लगे, इस प्रकार कीर्त्तन और भजनों का खूब प्रचार होने लगा।

अपने चरित्र और कौशल से लाहौर के प्रतिष्ठित नागरिकों में पण्डित जी ने शीघ्र ही अपना विशेष स्थान बना लिया और ५ मई सन् १९०१ में वहां पर आपने 'गांधर्व महाविद्यालय' की स्थापना की। आपने अब तक की अपनी सम्पूर्ण कमाई इस संस्था को समर्पित कर दी। विद्यालय के लिये किराये पर एक मकान लिया, कुछ सामान और वाद्य यन्त्र इकट्ठे किये, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण विद्यालय सुचारु रूप से नहीं चल पाया। इसी समय इनके पूज्यनीय पितृदेव के अवसान का तार मिला; किन्तु पंडित जी इससे निराश नहीं हुये और विद्यालय के कार्य में जुटे रहे।

जब दस दिन तक एक भी विद्यार्थी इनके विद्यालय में प्रविष्ट न हुआ, तब वहां के जस्टिस चटर्जी ने पंडित जी से कहा कि मैं आपसे पहले ही कहता था कि यह शहर संगीत विद्यालय के योग्य नहीं है। पंजाबी लोग संगीत की कदर नहीं जानते। पंडित जी ने जवाब दिया "महोदय ! मैं तो यहीं रहूंगा, विद्यालय में कोई आये या न आये इसकी मुझे परवाह नहीं और कुछ नहीं तो मेरा तम्बूरा तो है ही, मैं इसी के साथ अपनी संगीत साधना जारी रक्खूंगा।" पंडित जी के इस दृढ़ निश्चय को देखकर चटर्जी महोदय अत्यन्त प्रभावित हुए और अगले ही दिन से विद्यालय में विद्यार्थी भी आने लगे। छः महीने में ही विद्यार्थियों की संख्या १०५ तक पहुंच गई। इस विद्यालय के द्वारा पंजाब में संगीत का खूब प्रचार हुआ, बीच-बीच में संगीत विद्यालय के लिये धन एकत्रित करने को पंडित जी बाहर दौरे पर भी जाते थे।

अक्टूबर सन् १६०८ में पण्डित जी बम्बई आये, यहां पर आपने विजया-दशमी के शुभ अवसर पर "गांधर्व महा विद्यालय" की शाखा स्थापित की। यद्यपि इस विद्यालय का कार्य लाहौर विद्यालय की शैली पर ही था; किन्तु लाहौर की अपेक्षा बम्बई में अच्छी सफलता मिली। विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी और लाहौर से भी अधिक विद्यार्थी बम्बई के विद्यालय में प्रविष्ट हुए। विद्यालय की सहायतार्थ जल्से करके पण्डित जी धन एकत्रित किया करते थे और विद्यार्थियों से कुछ फीस भी आती थी, इस प्रकार सन् १६१५ तक विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा।

सन् १६१५ में विद्यालय के लिये बम्बई में जमीन खरीदी गई, उसके लिये पंडित जी को एक मित्र ने कर्ज रूप में रुपये दिये और मकान भी बनवा दिया, सन् १६२३-१६२४ तक वह मकान विद्यालय के अधिकार में रहा। इसी बीच विद्यालय का मकान आपके अधिकार से निकल गया, क्योंकि उस पर चढ़ा हुआ कर्जा चुकाना मुश्किल हो गया था। इसके बाद आपने नासिक पहुंच कर उक्त प्रयोजन के लिये रामायण की कथा कह कर एक छोटी सी इमारत बनवाई। साथ ही रामायण मन्दिर की स्थापना की गई। आपके शिष्य अब तक वहां रहते हैं और भगवत भजन करते हैं।

बम्बई विद्यालय बन्द होने की उन्हें कोई विशेष चिन्ता नहीं हुई, उनका कहना था कि "रामजी की ऐसी ही इच्छा मालूम होती है।" इस समय पंडित जी रामधुन में मस्त रहते थे और "रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीता राम" की धुन का प्रचार करके जनता को राम भक्ति का रसा-स्वादन कराते रहते थे।

पंडित जी के गीतों और पदों पर केवल भक्ति रस का ही प्रभाव नहीं रहा, अपितु उनके अनेक गीतों में राष्ट्रीय भावना भी पाई जाती है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के वार्षिक अधिवेशनों पर वे विशेष रूप से निमन्त्रित किये जाते थे और अपने शिष्यों सहित वहां जाकर वन्देमातरम् एवं अन्य राष्ट्रीय गान गाते थे। पंडित जी ने संगीत के अन्दर से श्रृंगार और अश्लीलता निकाल कर उसको शुद्ध राग-रागिनियों द्वारा भक्ति रस में लोकप्रिय बनाया है, यह उनकी एक महान् सेवा है। आपने शिष्ट और सात्विक संगीत के प्रचार के लिये अनेक कुशल कलाकार शिष्य तैयार किये हैं। जिनमें संगीत मार्त्तण्ड पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पं० विनायक राव पटवर्धन, पं० वामन राव पाध्ये इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। संगीत के विषय में अनेक पुस्तकें लिखकर क्रमबद्ध और प्रमाण-भूत संगीत साहित्य का भी आपने निर्माण किया। पंडित जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिन महात्माओं की भांति व्यतीत किये और २१ अगस्त सन् १९३१ को महाराष्ट्र के मिरज नगर में वे परलोकवासी होगये। आपकी स्वरलिपि पद्धति भातखंडे पद्धति से भिन्न है। आपने संगीत की लगभग ५० पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें:—संगीत बाल प्रकाश, बालबोध, संगीत शिक्षक, राग प्रवेश, (भाग १ से २० तक) राष्ट्रीय संगीत, व्यायाम के साथ संगीत, महिला संगीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने जन-साधारण में संगीत ज्ञान की वृद्धि के लिये—"संगीतामृत प्रवाह" मासिक पत्र भी निकाला था।

आपके द्वारा स्थापित "गांधर्व महा विद्यालय मंडल" अब विकसित होकर एक महान संगीत संस्था के रूप में संगीत की सेवा कर रहा है, इसकी शाखाएँ भारत भर में फैली हुई हैं, जिनके द्वारा हजारों विद्यार्थी संगीत ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। प्रोफेसर डी. वी. पलुस्कर जो वर्तमान गायकों में एक अच्छे गायक माने जाते थे, आपके ही सुपुत्र थे; खेद है कि आप ३५ वर्ष की अल्प आयु में ही परलोक वासी होगये।

★

विष्णुपन्त छत्रे

पं० विष्णुपंत का जन्म सन्–१८४० ई० में, उनकी ननसाल अकलखोपर नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री मोरोपंत जमखिंडी नामक स्थान में नौकर थे। इनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी।

विष्णु पंत ने अपने बाल्यकाल के नौ–दस वर्ष अपनी ननिहाल में ही व्यतीत किये। उस गाँव में शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण दस वर्ष की उम्र तक आपको अक्षर ज्ञान भी न हो सका। बाल्यावस्था में आपको कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, कबूतर आदि के साथ खेलने का शौक था। शिक्षा की ओर उनकी रुचि भी नहीं थी। कई बार पाठशाला में इन्हें भर्ती भी कराया गया, किन्तु वे वहाँ से भाग आते और खेल में लग जाते थे। कुत्ते को दो पैरों से खड़ा कर के चलाना, गेंद फेंक कर उससे उठवाना तथा बन्दर और कबूतरों के खेलों में उन्हें बड़ा मज़ा आता था। इनके इन पशु–पक्षी प्रेम से घर वाले अत्यन्त चिन्तित थे और वे कोशिश करने पर भी इनकी इस रुचि को दूर करने में समर्थ न हो सके।

जब विष्णुपन्त की आयु १६ वर्ष की हो गई, तब उनका विवाह करा दिया गया। इस प्रकार बन्धन में बंध जाने के बाद इनका खिलाड़ी पन दूर होने

लगा। घर की आर्थिक स्थिति से परेशान होकर तीन रुपया मासिक वेतन और खुराक पर रामदुर्ग में चाबुक सवारी की नौकरी करने पर मजबूर हुए। इस नौकरी से इन्हें संतोष नहीं था, हर समय प्रायः इसी उधेड़बुन में रहते कि कोई ऐसा काम किया जाय कि जिससे नाम के साथ-साथ धन भी प्राप्त हो। इस विचार धारा के कारण छुट्टी लेकर आप जिमखन्डी आ गये। वहाँ एक दिन गाने-बजाने की महफ़िल थी, उसमें इनकी उम्र के मित्र भी इकट्ठे हुये और सबने अपने-अपने गाने सुनाये। मित्रों ने इनसे भी गाना सुनाने का आग्रह किया। इन्होंने कभी गाना सीखा नहीं था और न ताल स्वर से ही परिचित थे। जब कभी वैसे ही किसी का गाना सुनकर गुनगुना लिया करते थे। इनकी आवाज़ स्वाभाविक रूप से मधुर थी। मित्रों के विशेष आग्रह से मजबूर होकर उस दिन इन्हें गाना पड़ा; किन्तु बेताला और बेसुरा गाना सुनकर सब मित्रों ने इनकी खूब खिल्ली उड़ाकर इन्हें बहुत शर्मिन्दा किया। इससे इनके हृदय को बहुत ठेस पहुँची, उसी दिन इन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि गायन विद्या प्राप्त करके ही रहूंगा।

इनके मस्तिष्क में हर समय संगीत सीखने की लालसा चक्कर काटने लगी। अस्तु इन्होंने रामदुर्ग की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और अपने एक मित्र को साथ लेकर देशाटन को निकल पड़े। यात्रा में इन्हें मांग-मांग कर खाना पड़ा और भूखे रह कर भी मुसीबत में दिन काटने पड़े।

अनेक स्थानों पर टक्करें खाते हुए ये ग्वालियर पहुंचे। वहाँ पर बाबा साहब आप्टे ने इनके ऊपर कृपा करके इनको आश्रय दिया। उन दिनों ग्वालियर में प्रसिद्ध गायक हद्दू खाँ की कीर्त्ति और प्रत्यक्ष गायकी सुनकर इन्होंने निश्चय कर लिया कि अपना गुरू बनाऊंगा तो इन्हीं को। अपने इस निश्चय को लेकर विष्णुपन्त अपने मित्र के साथ हद्दू खाँ साहब के पास जाने-आने लगे और उनकी गणना हद्दू खाँ के शागिर्दों में होने लगी। उस्ताद हद्दू खां मनमौजी व्यक्ति थे, जब मन आता यात्रा के लिये चल देते थे, विष्णु-पन्त भी उनका पीछा नहीं छोड़ते थे।

एक बार हद्दू खाँ साहब अपनी यात्रा में मथुरा से गोकुल के लिये जा रहे थे, यमुना जी उन दिनों चढ़ी हुई थीं। ये सब नाव में सवार हुए, किन्तु यमुना का प्रवाह तेज होने के कारण नाव मल्लाह के काबू से बाहर हो गई। मल्लाह घबरा गया, नाव बहने लगी यह दृश्य देखकर सब लोग रोने

और चिल्लाने लगे। इस संकट के समय विष्णुपन्त ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर अपने उस्ताद हद्दू खां को बचाने का संकल्प किया और फौरन ही आपने अपने कपड़े उतार डाले और कछेला कस कर पानी में कूद पड़े। यह दृश्य देखकर नाव के सब यात्री चिल्लाने लगे। उस्ताद हद्दू खाँ ने चिल्ला कर कहा कि "लड़का डूबा" उनका दिल अन्दर से भर आया; किन्तु जब विष्णुपन्त पानी में तैरने लगे तो उन्हें कुछ धीरज हुआ। थोड़ी देर में विष्णु-पन्त ने साहस करके बहाव की ओर तैरते हुए मल्लाह से नाव की रस्सी फेंक देने के लिये कहा। रस्सी फेंक दी गई, विष्णुपन्त ने रस्सी का सिरा अपने मुंह में दबा लिया और नदी की धार काटते हुये, परिश्रम पूर्वक हाथ मारते किनारे की ओर उस पार जाने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी दूर जाकर नाव को किनारे तक ले जाने में उन्हें सफलता मिली। किनारे पर पहुँच कर नाव एक पेड़ से कस कर बाँध दी गई, किन्तु अति परिश्रम के कारण बेसुध होकर विष्णुपन्त वहीं गिर पड़े।

हद्दू खाँ तथा अन्य सब लोग नाव से उतर पड़े और विष्णुपन्त को मूर्च्छित देखकर उनका सिर अपनी गोद में रख लिया और होश में लाने का प्रयत्न करने लगे। कुछ समय बाद विष्णुपन्त को होश आया तो उस्ताद हद्दू खाँ ने अत्यत प्रेम से उनके ऊपर हाथ फेरते हुए कहा कि पंडित तूने बड़ी बहादुरी से हमारे सबके प्राण बचाये हैं, मैं अपने घराने की खास गायकी सिर्फ तुझे ही दूंगा। इस प्रकार विष्णुपन्त को अशीर्वाद देकर सब गोकुल गये और वहाँ से कलकत्ता तक यात्रा करके सकुशल ग्वालियर लौट आये।

उस्ताद हद्दू खाँ से संगीत शिक्षा पाकर विष्णुपन्त की गणना उच्च-श्रेणी के गायकों में होने लगी। आपने कुछ दिन ग्वालियर में तातू भैया नामक एक प्रसिद्ध ध्रुपदिये से ध्रुपद गायन भी सीखा। इस प्रकार उन्हें ख्याल और ध्रुपद दोनों अंगों पर अधिकार हो गया था। बाद में वे अपने निवास स्थान पर आकर सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे।

अपने जन्मजात स्वभाव के कारण वे संगीत के साथ-साथ घुड़सवारी में भी पूर्ण निपुण हो गये थे, उन्होंने एक सर्कस भी चलाया था।

★

बी० ए० कशालकर

पं० विष्णु–दिगम्बर पलुस्कर के संगीत प्रचार कार्य को पूरा करने वालों में श्री कशालकर जी का प्रमुख स्थान रहा है। आपका जन्म १८८४ ई० में कोल्हापुर में हुआ था। आपके पिता का नाम था श्री अराणं जी कशालकर। कोल्हापुर में ही श्री अपइया बुवा के एक प्राइवेट स्कूल में संगीत सीखा करते थे। यहीं पर डाक्टर पटवर्धन भी आपके पास सीखते थे, जिन्होंने आपको मिरज में बालकृष्ण बुवा के पास जाने की सलाह दी, किन्तु जाते कैसे? उन दिनों संगीत साधना एक अपराध समझा जाता था। आपके भाई आदि नौकरी के लिये जोर दे रहे थे किन्तु आप अपनी धुन के पक्के थे, अतः इधर उधर से खर्चा जुटाकर और माता जी से आज्ञा लेकर मिरज को चल दिये। वहां पर बालकृष्ण बुवा से आपने संगीत शिक्षा ली और फिर १९०५ से १९१५ ई० तक पूरे दस वर्ष पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर से संगीत शिक्षा प्राप्त करते रहे तथा पलुस्कर जी के साथ पंजाब, सिन्ध, बंगाल, अलवर इत्यादि स्थानों में भ्रमण करके संगीत साधना के साथ साथ यथेष्ट अनुभव प्राप्त किया।

सन् १९१५ में आपको बम्बई में संगीत–प्रवीण की उपाधि मिली, बंगाल के गवर्नर ने आपका संगीत सुनकर स्वर्ण पदक प्रदान किया।

जुलाई १९१५ ई०में कायस्थ पाठशाला कालेज,प्रयाग में आप संगीताचार्य नियुक्त हुये। इन दिनों यहाँ मेजर रणजीत सिंह बीमार पड़े, कई डाक्टरों की औषधियाँ लेने पर भी इन्हें नींद न आ सकी, तब आपने भी एक अवसर मांगा और राग बागेश्री का मधुर अलाप सुनाकर मेजर साहब को सुला दिया। डाक्टरों के शंका करने पर दूसरे दिन भी अपने संगीत प्रयोग द्वारा मेजर साहब को पुनः निद्रा लाने में आप सफल रहे।

वर्तमान समय में आप प्रयाग संगीत समिति के डायरेक्टर हैं। संगीत प्रचार कार्य गत २५ वर्षों से आप सफलता पूर्वक कर रहे हैं। यद्यपि आपका कण्ठ विशेष मधुर नहीं है तथापि प्रतिभा और संगीत ज्ञान अद्वितीय है। कशालकर जी शान्त स्वभाव के बड़े मिलनसार व्यक्ति हैं, यही कारण है कि प्रयाग के संगीत विद्यार्थियों के लिये आप अत्यन्त प्रिय हो गये हैं। लगभग ७१ वर्ष की आयु में भी आप सुबह से शाम तक उत्साह पूर्वक अपना कार्य सम्पादन करते रहते हैं।

आजकल श्री कशालकर जी इलाहाबाद में स्थायी रूप से रहते हैं और यदा-कदा बाहर के संगीत-सम्मेलनों में भी भाग लेते रहते हैं।

★

शंकरराव पण्डित

शंकर पण्डित का जन्म ग्वालियर में, सन् १८६३ ई० में एक सम्मानित महाराष्ट्रीय परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री विष्णु पंडित ग्वालियर के प्रतिष्ठित नागरिक थे। विष्णु पंडित के चार पुत्र हुये, जिनमें शंकर पण्डित

तीसरे पुत्र थे। शंकर जी को बचपन से ही गाने का शौक था। उस जमाने में प्रसिद्ध ख्याल गायक हद्दू खाँ, हस्सूखाँ और नत्थेखाँ तीनों भाई ग्वालियर के दरबारी गायक थे। पंडित जी उनके यहाँ अक्सर जाया करते थे, अतः बचपन से ही उच्चकोटि का शास्त्रीय संगीत सुनने को मिलता रहा। फिर सङ्गीत सीखने योग्य अवस्था प्राप्त होते ही पण्डित जी की संगीत शिक्षा बालकृष्ण बुवा के पास आरम्भ हो गई। कुछ समय पश्चात प्रसिद्ध संगीतज्ञ निसार हुसैन साहेब से शंकर पंडित ने संगीत की शिक्षा लेनी आरम्भ कर दी। यद्यपि शंकर पण्डित कट्टर ब्राह्मण थे और इनके गुरू जी मुसलमान थे, फिर भी आपने गुरु सेवा में कभी भी कोई कमी न रहने दी और उनके तुच्छ से तुच्छ काम बिना किसी प्रकार की घृणा दिखाये हुये बड़े प्रेम से करते रहे। उस्ताद को इन्होंने अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया, अतः निसारहुसैन साहब ने शंकर पण्डित को अपना कला भंडार दिल खोल कर दिया।

टप्पा गाने की कला शंकर पण्डित ने धार के देवजी बुवा से प्राप्त की थी। आपके ख्याल और टप्पा गाने की प्रशंसा भारत के प्रायः सभी संगीत कलाकारों द्वारा की जाती थी। लखनऊ, बम्बई, कलकत्ता, अलवर, जयपुर, जलन्धर, पूना, बड़ौदा आदि नगरों की गायन संस्थाओं द्वारा आपके लिये निमन्त्रण आते ही रहते थे।

एक बार बम्बई में बालकृष्ण बुवा और आपका संयुक्त गायन जल्सा भी हुआ था। इस जल्से की प्रशंसा उस समय के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी। एक ही राग विविध प्रकार से घन्टों तक गाने में शंकर पण्डित अत्यन्त कुशल थे। आपकी आवाज मधुर थी और तानें प्रभावशाली होती थीं।

संगीत के विद्यार्थियों से पण्डित जी प्रायः कहा करते थे कि नियमित रूप से गाना सीखना एक प्रकार की तपस्या है। इसके लिये जी तोड़ परिश्रम करना पड़ता है। पंडित जी का कहना था कि मुझे शुद्ध षड्ज की साधना करने में एक वर्ष लग गया था। और इतनी उम्र होने पर भी अभी पूर्ण रूप से मैं केवल एक राग पर ही अधिकार कर सका हूँ, वह राग है– "यमन"। यद्यपि पंडित जी बहुत से राग गाते थे, किन्तु यमन राग तो उन्हें सिद्ध ही हो गया था।

सतारा के छत्रपति भाऊ साहब ने शंकर पंडित को दर्बार गायक नियुक्त करने की इच्छा प्रकट की थी, किन्तु जन्म स्थान से मोह होने के

कारण आप भाऊ साहब की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ रहे; इसी प्रकार किशनगढ़ और अलवर के महाराजाओं ने भी उनसे अपने दर्बार गायक का पद सुशोभित करने का आग्रह किया। ख्याल, तरानों और टप्पों का शंकर पंडित के पास विशाल भंडार था। किंवदन्ती है कि जब वे अपनी सिद्ध तानें लिया करते थे तो दीपकों की लौ अधिक तेजोमय होकर कम्पायमान हो उठती थी। अनेक कलावन्त शंकर पंडित का गायन सुनने ग्वालियर आया करते और गायन सुनकर अपने को धन्य समझते थे।

आपके शिष्य समुदाय में आपके छोटे भाई एक नाथ पंडित और पुत्र कृष्णराव पंडित के अतिरिक्त श्री गणपतराव गुणे, रामकृष्ण बुवा वझे, काशीनाथ राव मुले, राजा भैया पूछवाले तथा बाला भाऊ उमडेकर इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आपके सुपुत्र श्री कृष्णराव पंडित ने अपने पिता के सामने ही लश्कर में 'गान्धर्व विद्यालय' की स्थापना की थी। और जब सन् १९१७ में शंकर पंडित स्वर्गवासी होगये तब इस विद्यालय का नाम शंकर गांधर्व विद्यालय होगया। इस विद्यालय में सैकड़ों विद्यार्थियों को गायन-वादन की शिक्षा दी जाती है। पंडित जी की स्वरलिपि पद्धति अपनी स्वतंत्र है।

★

शिवप्रसाद त्रिपाठी

गायनाचार्य पं० शिव प्रसाद त्रिपाठी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संगीत विभाग में संचालक रह चुके हैं।

आपका जन्म गाजीपुर जिले के तिवाही पुर गाँव में हुआ था। बचपन से ही संगीत के प्रति आपकी रुचि देखकर आपके कुछ सम्बन्धी संगीत शिक्षा के लिये आपको कलकत्ते लिवा लाये। कलकत्ते में उन दिनों प्रसिद्ध संगीतज्ञ मुन्शी भृगुनाथ लाल के संगीतालय की धूम थी। इसी संगीतालय में त्रिपाठी जी ने तानपूरे पर स्वर साधन आरम्भ करके ध्रुपद तक शिक्षा पाई, साथ

ही साथ मृदंग-बजाना भी आप सीखते रहे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही उन्होंने अपने गुरु मु०-भृगुनाथ लाल जी से बहुत कुछ प्राप्त कर लिया। कलकत्ते के पं०-शंकर भट्ट तथा मोहिनी बाबू से भी आपने ध्रुपद, धमार की गायकी सीखी। कलकत्ते में रह कर आपने हारमोनियम पर भी अपना हाथ खूब तैयार कर लिया था।

लगभग १५ वर्ष कलकत्ते में रहने पर भी जब आपकी संगीत जिज्ञासा पूर्ण न हुई तब आप श्री भातखंडे जी के पास पहुँचे। उन्होंने आपको संगीत की थ्योरी पढ़ाई और गले से ध्रुपद की गायकी का विशिष्ट ज्ञान प्रदान किया। इस प्रकार संगीत की शास्त्रोक्त शिक्षा पाकर जब आप घर लौटे तो संयोगवश आपका परिचय श्री० जुगलकिशोर बिड़ला से हुआ। पं०—शिवप्रसाद की योग्यता और उनके संगीत से प्रभावित होकर बिड़ला जी ने आपको हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी में संगीत विभाग का प्रधानाध्यक्ष नियुक्त करा दिया।

आपके प्रथम संगीत गुरु मु० भृगुनाथ लाल जी राग–रागिनी पद्धति के मानने वाले थे, अतः प्रचीन राग–रागिनी वर्गीकरण के अनुसार आपने ६ राग ३० रागनियों की शिक्षा पाई थी। बाद में भातखण्डे जी की शिक्षा का प्रभाव इन पर पड़ा और राग विवेचना तथा थाट पद्धति से भी आप भली प्रकार परिचित होगये। आपका संगीत ज्ञान विशद तथा परिमार्जित है, नये विद्यार्थियों को शिक्षा देने की शैली आपकी ऐसी सरल है कि उन्हें बड़ी आसानी से संगीत बोध हो जाता है।

शिष्यों पर आप पुत्रवत प्रेम करते हैं और होनहार विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देने को सदा तत्पर रहते हैं। आपके घर पर दो, चार विद्यार्थी पड़े ही रहते हैं। कुछ विद्यार्थी तो भोजन और कपड़े तक की सहायता आप से लेते हैं।

पं० शिव प्रसाद जी का स्वभाव अत्यन्त सरल और उदार है। यही कारण है कि संगीत प्रेमी और विद्यार्थी प्रायः उन्हें घेरे ही रहते है। भारतीय संगीत के प्रथम श्रेणी के कलाकारों में आपकी गिनती है। ध्रुपद के आप विशेषज्ञ हैं। आपका गायन मधुर तथा आनन्ददायक होता है। गाते समय आपकी सरल मुस्कान तथा सुन्दर मुख मुद्रा आपके हृदयगत आनन्द की प्रतीक है। संगत में आप उछल-कूद या व्यर्थ बेढंगे भावप्रदर्शन से दूर ही रहते हैं।

पंडित जी धर्म प्रिय व्यक्ति हैं। आपकी दिनचर्या में पूजा का प्रमुख स्थान है। नित्य प्रति प्रातःकाल उठकर गंगा स्नान, भगवान की स्तुति आदि नियमित रूप से करते हैं। प्रायः भ्रमण में भी आप ठाकुर जी की मूर्ति साथ रखते हैं और यात्रा में भी संध्या, भजन के नियम को यथा शक्ति निभाते हैं

आपके इस आचार-विचार और खान-पान की पवित्रता के कारण वृद्धावस्था में भी आपकी आवाज़ पूर्ववत् बनी हुई है। उसका मिठास तनिक भी कम नहीं हुआ है।

आपके भजनों की स्वर रचना बड़ी सुन्दर होती है। जो विद्यार्थी राग रागिनी, ध्रुपद, धमार को समयाभाव के कारण नहीं सीख सकते उन्हें पंडित जी भजन ही सिखाते हैं। पंडित जी की हारमोनियम की गतें भी सुनने लायक होती हैं। आपका बाज ठुमरी वालों के बाज से सर्वथा भिन्न है। राग की शुद्धता को निभाते हुये जिस विद्युत गति से आप गतें बजाते हैं, वह सुनते ही बनता है।

'शिव संगीत प्रकाश' नामक एक पुस्तक भी आपने लिखी है, जिसमें कल्याण थाट के आठ प्रमुख रागों की पुरानी चीज़ें तथा सूर, तुलसी, मीरा आदि के भजन स्वरलिपि सहित दिये हैं। इसके अतिरिक्त आपने संगीत सम्बन्धी एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकाली थी; किन्तु आगे चल कर वह बन्द होगई।

★

शिव सेवक मिश्र

शिव सेवक का जन्म सन् १८८४ ई० में हुआ। आपने ख्याल व ध्रुपद तथा होली गायन की शिक्षा अपने पिता एवं भ्राता से प्राप्त की। यद्यपि आप बनारस निवासी थे, तथापि स्थाई रूप से कलकत्ते में रहते थे। आप उन दिनों उपर्युक्त शैली के गानों के सर्वश्रेष्ठ साधकों में से समझे जाते थे। आपकी कला का विशिष्ट गुण यह था कि आप ध्वनि एवं लय में अपने भ्राता के सदृश समान रूप से कुशल थे। मुरकी और तोड़ा आपकी गायनशैली की

प्रमुख विशेषताएँ थीं, जिनका अनुसरण इने-गिने पखावजी एवं तबला वादक ही कर सकते थे। कला साधना के फलस्वरूप आपको संगीताचार्य की उपाधि से तथा केशव नगर हैदराबाद के राजा सीताराम भूपाल द्वारा स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। आपको एक स्वर्ण पदक संगीत सम्मेलन भवानीपुर, कलकत्ता से तथा दो स्वर्ण पदक दो अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों से पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुए। आप संगीत व्यवसायी कथक ब्राह्मण थे।

शिव सेवक जी के पास २०० ध्रुपद, २०० होलियाँ, १०० धमार, लगभग २०० ख्याल और १०० टप्पा का अलौकिक भंडार था। आप सरल स्वभाव के व्यक्ति थे, किन्तु आपका गायन शुल्क सामान्य संगीत-व्यवसायियों से कुछ अधिक था। आपके अनेक शिष्यों में आपके सुपुत्र राम किशन तथा कलकत्ते के सुरेन्द्र नाथ मजूमदार कण्ठ-संगीत-कला में विशेष रूप से सफल हुए।

*

शोरी मियाँ

मियां शोरी को टप्पे की नवीन गायन पद्धति का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। चूंकि इनकी अवाज़ बहुत पतली थी, इसलिए इन्हें ख्याल की तानबाजी से संतोष न हो सका। अतः अपनी आवाज के योग्य ही गायन शैली ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगे। इन्होंने पंजाबी भाषा सीखने के बाद उसी भाषा में कुछ गीत रचे और उन्हें अपनी गायकी की विशेष बन्दिश में ढालकर, टप्पे का रूप दिया।

आपका वास्तविक नाम गुलामनबी और आपके पिता का नाम गुलाम रसूल था। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता के द्वारा ही प्राप्त हुई थी। यह लखनऊ के निवासी थे और नवाब आसिफउद्दौला के समकालीन थे। शोरी मियां स्वभाव के बड़े नम्र और साधुओं जैसी प्रवृत्ति वाले थे। एक बार नवाब आसिफउद्दौला ने आपको राजभवन में गाने के लिए निमन्त्रित किया; मियां शोरी नियत समय पर वहां पहुँचे और अपनी गायकी का ऐसा अद्भुत तथा श्रुति मधुर प्रदर्शन किया कि श्रोता दङ्ग रह गये। सब लोगों ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, नवाब साहेब ने प्रसन्न होकर एक बड़ी धनराशि इन्हें पुरस्कार में दी; किन्तु मियां शोरी ने घर पहुंचते-पहुंचते वह समस्त धनराशि फकीरों में वितरित करदी! नवाब साहब को जब इस घटना का पता लगा तो उन्होंने पुनः उतना ही धन शोरी मियां के घर और पहुँचा दिया। यह लोकप्रिय गायक उन्नीसवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में, लखनऊ में ही स्वर्गवासी होगये। इनके कोई संतान नहीं थी। गम्मू नामक इनका एक प्रतिभाशील शिष्य अवश्य था।

★

श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर

श्री रातांजनकर जी का जन्म ३१ दिसम्बर सन् १८९९ ई० में महाराष्ट्रीय सारस्वत ब्राह्मण परिवार में बम्बई में हुआ । आपके पिताजी का नाम
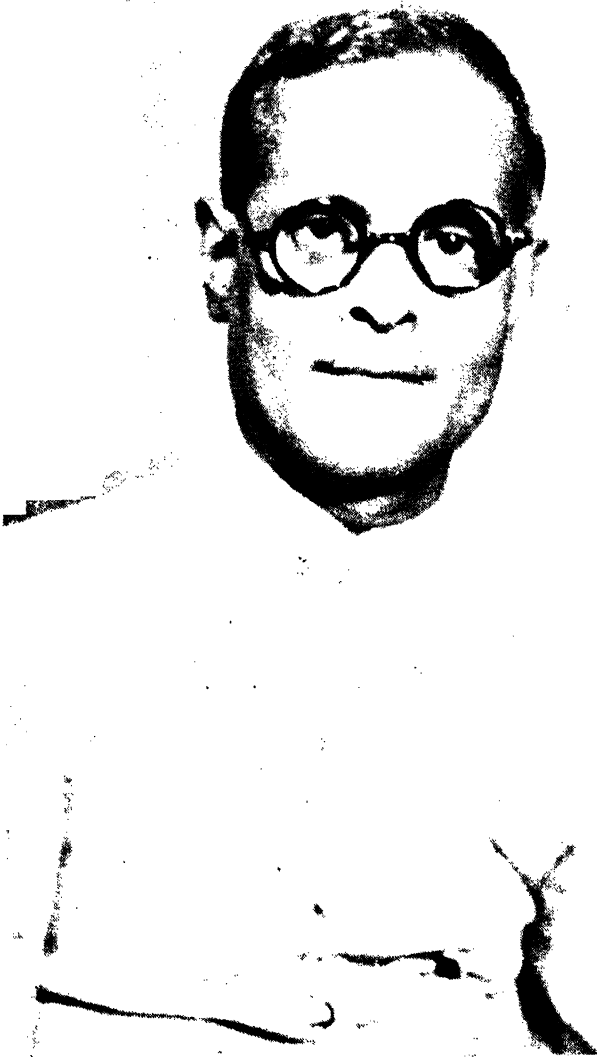
श्री० नारायण गोविन्द जी था। इनके पिता जी बम्बई के सरकारी खुफिया विभाग में रहते हुये भी संगीत प्रेमी थे। वे प्रायः सितार बजाया करते थे। जिस समय इनके पिता सितार बजाते, उस समय अपने भाई बहिनों के साथ बालक रातांजनकर भी उनके पास बैठकर सितार सुना करते थे, यहीं से आपके जीवन में संगीत के संस्कार उत्पन्न हो गये।

उन दिनों समाज में संगीत को बिल्कुल सम्मान प्राप्त नहीं था। गाने-बजाने वालों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उस युग के गायक-वादक प्रायः वेश्याओं को संगीत की शिक्षा देकर अपनी गुजर बसर किया करते थे, फलतः भले घरों के बच्चों का संगीत से प्रेम रखना उनके आवारा बनने का प्रमाण समझा जाता था। अतः इनके जाति भाइयों तथा रिश्तेदारों ने इनकी संगीत शिक्षा का विरोध करना आरम्भ किया, किन्तु उस विरोध का सामना करते हुए भी सन् १९०७ में इनके पिता ने एक संगीत शिक्षक का प्रबन्ध कर ही दिया। संगीत-शिक्षक का नाम था पंडित कृष्णानंद भट्ट। लगभग दो वर्ष तक इनके द्वारा रातांजनकर की संगीत-शिक्षा तथा चलती रही। जब इन्हें भली प्रकार स्वर ज्ञान हो गया तो उसके बाद पं० आनन्द बुवा जोशी से संगीत शिक्षा ग्रहण की।

दैवयोग से एक दिन इनके पिताजी की आचार्य भातखण्डे जी से भेंट हुई और वे उन्हें अपने घर इस बच्चे का गाना सुनने के लिये लिवा लाये। पंडितजी ने इनसे एक साथ बारह स्वर बोलने को कहा, इन्होंने क्रमानुसार (सा रे॒ रे ग॒ ग म म॑ प ध॒ ध नि॒ नि) १२ स्वर सफलता पूर्वक गाकर भातखण्डे जी को सुना दिये। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर भातखण्डे जी ने इनके पिता से कहा कि यह बालक भविष्य में संगीत का विद्वान तथा प्रसिद्ध गायक होगा।

इसके पश्चात् कुछ आर्थिक कठिनाइयों के कारण इनकी संगीत शिक्षा लगभग दो वर्ष तक बन्द रही। बम्बई छोड़ कर इन्हें बाहर भी जाना पड़ा।

सन् १९१२ में आप फिर बम्बई लौट आये। यहाँ आकर इन्होंने 'चतुर' पंडित विष्णुनारायण भातखंडे का शिष्यत्व ग्रहण किया। भातखंडे जी से इनका पूर्व परिचय होने के कारण उन्होंने इन्हें संगीत-शिक्षा देना स्वीकार कर लिया, फिर तो इन्हें लगातार संगीत शिक्षा मिलती रही।

इस अवधि में इनके संगीत में विशेष लोच तथा मिठास आगया था। भातखण्डे जी अपने इस शिष्य को प्यार से "बाबूराव" कहकर पुकारते थे और बिना किसी लोभ लालच के संगीत शिक्षा दिया करते थे।

सन् १९१६ ई० में प्रथम अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन बड़ौदा में हुआ। उसमें रातांजनकर जी ने अपनी कला का प्रदर्शन किया, अतः बहुत से संगीतज्ञों से इनका परिचय होगया। सन् १९१७ ई० में भातखण्डे जी ने बड़ौदा दरबार से इनको वजीफा दिलवाकर संगीत सीखने के लिये बड़ौदा भेज दिया। रातांजनकर जी वहां लगभग पांच वर्ष तक रहे। वहीं पर आप 'आफ़ताबे मौसीकी' उस्ताद फैयाज खाँ से भी संगीत शिक्षा प्राप्त करते रहे। वहीं पर आपने हाई स्कूल परीक्षा पास की तथा बड़ौदा कॉलिज में एफ० ए० की तैयारी करने लगे।

सन् १९२२ के लगभग इन्टरमीजियेट की परीक्षा पास करके रातांजनकर जी फिर बम्बई लौट आये और १९२३ में अहमदाबाद जाकर गुजरात कॉलिज में बी० ए० के विद्यार्थी बने। कुछ आर्थिक कठिनाइयों के कारण अहमदाबाद गर्ल्स स्कूल में आपको संगीत शिक्षक भी बनना पड़ा तथा गायक रूप से महफिलों में भी आपको जाना पड़ा।

जीवन में कठिनाइयों, बाधाओं और दरिद्रता का कोप भुगत कर भी वे जीवन पथ पर साहस के साथ अग्रसर हुये और सन् १९२६ ई० में विल्सन कॉलेज बम्बई के सफल ग्रेजुएटों के बीच सम्मानित हुए। इन दिनों में भातखण्डे जी शारदा संगीत मण्डल स्थापित कर चुके थे, उसमें रातांजनकर जी को शिक्षक नियुक्त किया, बम्बई में रातांजनकर जी को भारत के श्रेष्ठ संगीतज्ञों से सहयोग प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिला। मराठी तथा अँग्रेजी के अतिरिक्त आप हिन्दी, उर्दू, संस्कृत बंगला आदि भाषाओं का भी अध्ययन करते रहे।

सन् १९२५ ई० में लखनऊ में एक विराट संगीत सम्मेलन हुआ। उसी अवसर पर भातखण्डे जी ने लखनऊ में एक शास्त्रीय संगीत के विद्यालय की स्थापना की इच्छा प्रकट की, इसके फल स्वरूप सन् १९२६ ई० में लखनऊ मैरिस म्यूज़िक कॉलेज की स्थापना हुई और सन् १९२९ में इस कालेज को यूनीवर्सिटी का रूप प्रदान किया गया। वर्तमान समय में यह संस्था भातखण्डे संगीत विद्यापीठ

के नाम से प्रसिद्ध है। १९२७ ई० में इस संस्था के प्रिंसपल रातांजनकर जी नियुक्त हुये, तभी से आप एक सफल के रूप में कार्य कर रहे हैं।

रातांजनकर जी ने अपने जीवन को संगीत सेवा में लगाकर अनेक संगीत विद्यार्थी "गायक" बना दिये। साथ ही साथ वे ग्रामोफोन रेडियो, इत्यादि में भी भाग लेते रहे। किन्तु ग्रामोफोन अथवा रेडियो के द्वारा आपने जनता को सर्वदा शास्त्रीय संगीत ही दिया, अशास्त्रीय संगीत के आप हमेशा विरोधी रहे। आपने संगीत सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखी है, जिनमें 'संगीत–शिक्षा' तथा 'तान संग्रह' के तीन भाग विशेष उल्लेखनीय है।

आपका विवाह सन् १९२९ में हुआ था। आपके एक पुत्री तथा तीन पुत्र हैं। रातांजनकर जी गृहस्थी होते हुये भी तपस्वी जैसे बने हुए हैं। अपने स्वास्थ्य के विषय में आप प्रायः असावधान ही रहते हैं, जिसके कारण आपका शरीर भी दुर्बल रहता है। बातचीत में आप हरएक का हृदय अपनी ओर आकर्षित कर लेने की क्षमता रखते हैं।

★

सदारंग-अदारंग

ख्याल की बहुत सी चीजों में "सदारँगीले मोंमदसा" का नाम बहुत से संगीत प्रेमियों ने सुना होगा।

१८ वीं शताब्दी में नियामत खां नाम के एक प्रसिद्ध बीनकार हो गये है। यह अपनी बनाई हुई चीजों में उस समय के बादशाह मोहम्मदशाह का नाम उसकी प्रशंसा के रूप में डाल दिया करते थे। नियामत खाँ अपना उपनाम "सदारँगीले" रखकर उसके साथ बादशाह का नाम जोड़ दिया करते थे। इस प्रकार उनकी कविताओं में "सदारँगीले मोंमदसा" लिखा हुआ पाया जाता है।

मोहम्मदशाह बादशाह ने सन् १७१६ ई० से १७४८ ई० तक दिल्ली में राज्य किया। किन्तु अपनी भीरुता और चंचल प्रकृति के कारण वह अधिक समय तक दिल्ली पर राज्य न कर सका। मराठों के आक्रमणों से राज्य के अन्दर ही अन्दर विद्रोह पैदा होने लगा। सन् १७३६ ई० में बड़े बाजीराव पेशवा ने दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली को लूटा और जलाया तथा उसके तीन वर्ष बाद ईरान के नादिरशाह ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की। यह सब मोहम्मदशाह के शासन काल में हुआ। अन्त में सन् १७४८ ई० में मोहम्मदशाह की मृत्यु होगई।

राजनीति में मोहम्मदशाह अनुभव शून्य था, इसलिये उसके शासन काल में स्थिरता और अमन-चैन नहीं था, किन्तु संगीत कला की दृष्टि से उसका शासन-काल महत्व पूर्ण रहा। उसके दरबारी बीनकार नियामत खाँ (सदारँगीले) ने हमेशा के लिये मोहम्मदशाह का नाम संगीत क्षेत्र में अमर कर दिया।

नियामत खाँ के खानदान के बारे में बताया जाता है कि ये प्रसिद्ध संगीतज्ञ मियाँ तानसैन की पुत्री के खानदान में दसवें व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लालखां सानी और बाबा का नाम खुशहाल खां था। भातखंडे जी ने अपनी संगीत पद्धति मराठी के चौथे भाग में सदारंग के पूर्व पुरखाओं की जो नामावली दी है उसका कुछ अंश यहां दिया जाता है।
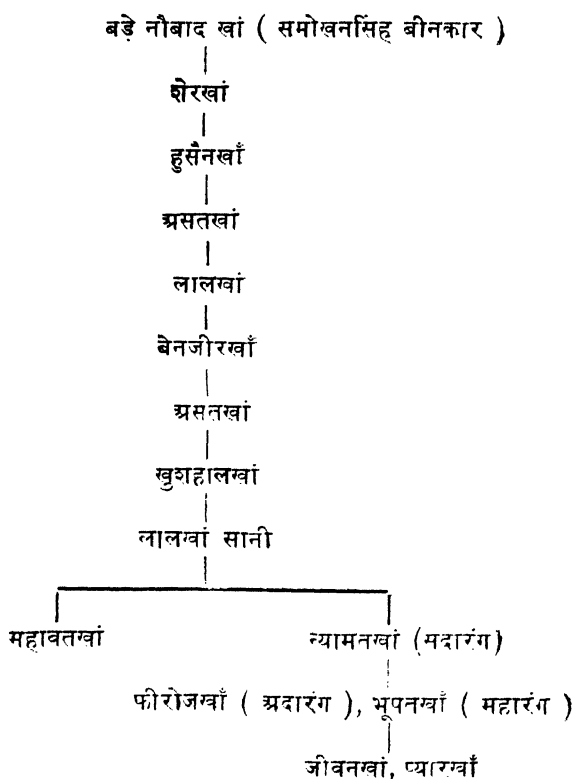
किसी मुसाहिब के सुझाव पर एकबार बादशाह मुहम्मद शाह ने इच्छा प्रकट की कि सारंगी का साथ करने के लिये बीन भी बजे तो बड़ा मज़ा आयेगा। इस पर बादशाह ने वजीर से कहा कि नियामत खां की बीन भी सारंगी के साथ बजनी चाहिए। जब यह हुक्म नियामत खां को बताया गया तो उसने वजीर से स्पष्ट कह दिया कि मैं खान्दानी बीनकार हूं अतः सारंगी का साथ करना मैं अपनी तौहीन समझता हूं, वैसे हम बीनकार लोग मिलकर सारंगी वादकों से अच्छा रंग जमा सकते हैं लेकिन उनका साथ करना हमारी शान के खिलाफ़ है।

नियामत खां का यह उत्तर सुनकर वज़ीर साहेब ने कहा बादशाह सलामत का हुक्म है, वह टल नहीं सकता! मैं क्या करूँ। किन्तु नियामत खां ने बादशाह के हुक्म को ठुकरा दिया, यह बात जब मोहम्मदशाह को मालुम हुई तो उसने फौरन ही नियामत खाँ को दरबार से निकाल दिया और बादशाह की नाराज़गी यहां तक बढ़ी कि नियामत खां को कुछ समय तक छुपे रहकर अज्ञात जीवन बिताना पड़ा।

यद्यपि ख्याल रचना का सर्व प्रथम कार्य अमीर खुसरो ने सन् १२५१-१३२५ में किया, किन्तु उस समय ख्याल रचना विशेष लोकप्रिय न हो सकी। उसके पश्चात् यही कार्य सुल्तान हुसैन शर्की, बाज बहादुर, चंचलसेन, चांद खां, तथा सूरजखां ने करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी। इन सबकी असफलताओं का रहस्य नियामत खां ने ढूँढ़ निकाला। नियामत खां ने अनुभव किया कि जब तक कविता में बादशाह सलामत की प्रशंसा न की जाय और उनका नाम न डाला जाय तब तक वह कविता प्रचलित नहीं हो सकती। पहले जिन कवियों ने ख्याल के लिये कवितायें बनाईं उनमें वे प्रायः अपना ही उपनाम दिया करते थे, इसलिये बादशाह उनकी चीजों की ओर विशेष रूप से आकर्षित न होते थे और यही कारण था कि वे चीजें प्रचार में अधिक न आ सकीं, इसके विरुद्ध नियामत खां सदा रँगीले ने जब अपनी कविताओं में 'सदा रँगीले मोंमदसा' देना आरम्भ किया तो बादशाह उनको बड़ी दिलचस्पी से सुनने लगे और वे प्रचार में आगईं। साथ ही साथ "सदारंगीले" कौनसे हैं, यह जानने की बादशाह ने इच्छा प्रकट की।

इसके अतिरिक्त एक और युक्ति भी नियामत खां ने निकाली। उसने बहुत से ख्यालों की कविताएं बना-बनाकर अपने शागिर्दों को याद कराईं और उन्हें खूब रियाज़ कराकर तैयार किया। इसके पश्चात् एक बार वह अपने शिष्य दल सहित दिल्ली पहुंचा। वहां जाकर नियामत खां ऐसा मौका ढूंढ़ने लगा कि किसी दिन गाने का कोई खास जलसा दरबार में हो और मेरे शिष्यगण, मेरी रचना बादशाह के सम्मुख सुनावें। भाग्यवश एकदिन उसकी शिष्यमंडली अपने साज़ो सामान सहित दरबार में पहुंच ही तो गई। वहां उन्होंने बादशाह को अपने ख्याल सुनाये। ख्यालों की कविताओं में "सदारंगीले मोंमदसा" नाम बादशाह पहिले भी सुन चुके थे, किन्तु इस मर्तबा वे अधिक आकर्षित हुए और उन गवैयों से पूछा आप लोगों के उस्ताद कौन हैं, जिन्होंने ये चीजें बनाई हैं?

गायकों ने बादशाह को बताया कि हमारे उस्ताद का असली नाम नियामत खाँ है और उनका तखल्लुस (उपनाम) 'सदारंगीले' है। बादशाह को "नियामत खां" का नाम पूर्व परिचित सा मालुम हुआ और तब उन्होंने गायकों से कहा, अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ। नियामत खां दरबार में उपस्थित हुए तो मोहम्मद शाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा करके उन्हें आदर पूर्वक फिर से दरबार में रख लिया और तब वे बीन बजाकर गायकों का साथ करने के लिये स्थायी रूप से रहने लगे; इस प्रकार सदारंगीले या सदारंग ने बादशाह को प्रसन्न करके अपना प्रतिष्ठित पद पुनः प्राप्त करलिया।

सदारंग के ख्यालों में विशेष रूप से श्रृंगार रस पाया जाता है और पाई जाती है बादशाह की खुशामद। इन नई प्रकार की चीजों की दरबार में जब विशेष रूप से प्रशंसा होने लगी तो पुराने खानदानी ध्रुपदियों को यह बात खटकने लगी। उनका कहना था कि इससे संगीत कला का अपमान होता है। मदारंग की चीजों को वे "जनाना-संगीत" कहकर पुकारने लगे। क्योंकि सदारंग की बहुत सी चीजें गायिकाओं में भी फैल चुकी थीं। दरबार में गाने वाली गायिकाएं सदारंगीले की चीजों पर लट्टू हो रही थी। उन्होंने बादशाह मल्लामत के सामने यह भी इच्छा प्रकट की कि हमें उस्ताद नियामत खां से गाने की तालीम दिलवाई जाय। नियामत खां उर्फ सदारंग को हुक्म दिया गया कि वे गायिकाओं को तालीम देना शुरू करदें।

सदारंग ने जब यह देखा कि पहले जैसी घटना की आवृत्ति फिर होने वाली है, तो उसने बादशाह के हुक्म के विरुद्ध मना तो नहीं किया, किन्तु वह खानदानी गवैया होने के कारण स्वयं इस काम के करने में अपनी बेइज्जती समझता था। उसने बादशाह से अर्ज की कि हुजूर मेरा एक शागिर्द हसनघार्टा इस फ़न में बहुत माहिर है, औरतों को तालीम देने की उसके अन्दर एक विशेष खूबी है और उसकी आवाज़ भी औरतों को सिखाने लायक है, इसलिये आपका हुक्म होजाय तो उसे ही मुर्करिर करदूँ। इस पर बादशाह राजी होगये और सदारंग का इस झंझट से पीछा छूटा।

कहा जाता है कि खुद सदारंग ने अपनी ये चीजें महफिलों में नहीं गाईं। उसका कहना था कि खुद अपने या अपने खानदान के लिये ये मैंने नहीं बनाईं। यह तो सिर्फ बादशाह मल्लामत को खुश करने के उद्देश्य से ही रची गई हैं। बाद में सदारंग ने यह चीजें धाड़ी, मीरासी इन लोगों को सिखाईं और फिर उन लोगों ने उनको समाज में फैलाया।

सदारंग के ख्याल की चीजें, जो पहले निम्नकोटि की समझी जाती थीं, कुछ समय बाद वे ही लोकप्रिय होने लगीं। ख्याल गायक-गायिकाओं ने सदारंग की चीजें खूब अपनाईं। कहा जाता है कि आगे चलकर अन्य लोगों ने भी नये-नये ख्याल की चीजें बनाकर उनमें सदारंगीले नाम जोड़ा और इस प्रकार बहुत से ख्याल सदारंग के रंग में रंग गये।

सदारंग के साथ-साथ कुछ चीजों में अदारंग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में एक इतिहासकार का कथन है कि न्यामतखाँ के दो पुत्र थे, जिनके नाम थे फीरोजखां और भूपतखां। 'अदारंग' फीरोजखाँ का ही उपनाम था। भूपतखां का उपनाम 'महारंग' था। इस प्रकार पिता के साथ-साथ दोनों पुत्र भी संगीत के क्षेत्र में यशस्वी होकर अपना नाम सर्वदा के लिये अमर बना गये।

★

सवाई-गन्धर्व

आपका पूरा नाम श्री रामभाऊ कुन्दगोलकर था, किन्तु संगीत कला में इनकी हिम्मत और प्रबल परिश्रम देखकर जनता ने 'सवाई गन्धर्व' का पद प्रदान करके इनको सम्मानित किया। बचपन में आपकी आवाज अच्छी नहीं थी, किन्तु अपने परिश्रम और लगन के द्वारा आपने आशातीत उन्नति करके यह साबित कर दिया कि अभ्यास से सब कुछ सम्भव हो सकता है। आपकी संगीत शिक्षा मरहूम उस्ताद अब्दुल करीम खाँ के द्वारा सम्पन्न हुई। खाँ साहब ने इन्हें रोजाना आठ-आठ घण्टे महनत कराकर संगीत साधना कराई। अब्दुल करीम खाँ साहेब की एक विशिष्ट गायकी है, उस गायकी को प्राप्त करने के लिये उस जाति की आवाज़ तैयार करना आवश्यक है, और जब तक उस प्रकार की आवाज़ तैयार नहीं हो जाती, तब तक उस गायकी का प्राप्त होना असम्भव ही समझना चाहिये।

रामभाऊ ने अपनी आवाज़ के अंगभूत दोष को समझते हुए भी साहस के साथ खां साहब की गायकी सीखने की प्रतिज्ञा की और

इसके लिये उन्होंने अविश्रान्त परिश्रम किया। संगीत की विभिन्न महफिलों में भाग लेकर समकालीन गायकों को ध्यान पूर्वक सुना और संगीत का यथेष्ट अनुभव प्राप्त किया। महाराष्ट्र की संगीतमय रंगभूमि को आपने लगभग २८ वर्ष तक आलोकित किया और किस प्रकार महफिल में रंग भर कर वाह-वाही ली जाती है इसका भली प्रकार अनुभव किया। "सुभद्रा," "तारा" और 'सन्तसखू' की स्त्री भूमिका तथा कृष्ण, दयानन्द इत्यादि पुरुष भूमिकाओं में आपने यथेष्ट ख्याति प्राप्ति की। श्री गोविन्द राव टेंबे के कथनानुसार "नाटक में जाने के पहले भी आप गायक थे, नाटक में भी गायक रहे और नाटक कम्पनी छोड़ देने के उपरांत भी गायक रहे।"

सन् १९४२ ई० में आप पर पक्षाघात का पहला आक्रमण हुआ था, जिसका इलाज होने पर आप कुछ ठीक होने लगे थे, किन्तु डाक्टरों ने आपको गाने के लिये मना कर दिया था, फिर भी किसी विशेष अवसर पर जब संगीत का वातावरण दिखाई देता, तो उनके मन में गाने के इस प्रतिबन्ध पर एक धक्का सा लगता। जन्म भर संगीत की उपासना करने वाले इस सफल कलाकार को जीवन के अन्तिम १० वर्ष तक गाना छोड़ देना पड़े और तानपूरे के पास बैठे-बैठे आंसू बहाने पड़ें, इससे बढ़कर दुर्भाग्य की सीमा और क्या हो सकती है?

रामभाऊ अत्यन्त सुरीले गायक थे। चीज़ की बन्दिश, लय की तार-तम्यता, विलम्बित स्वर या बोलों को कहने का ढंग और उनकी तान की झपट विलक्षण थी, जिसे लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आपके शिष्य परिवार में फीरोजदस्तू, डा० देशपांडे, कागलकर बुवा तथा सौ० इन्दरा बाई खाडिलकर तथा गंगूबाई हन्गल व भीमसेन जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके बहुत से ग्रामोफोन रिकार्ड भी सुरक्षित हैं जो आपकी गायकी को अमर रखेंगे।

१२ सितम्बर १९५२ को पूना में ६७ वर्ष की अवस्था में आपका देहावसान होगया।

★

सिन्धी खां 'बाबा'

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध गायक अमीर खां के सुपुत्र, साधु-वृत्ति और गृहस्थ से विरक्ति रखने वाले प्रसिद्ध संगीतज्ञ, बाबा सिन्धी खाँ को बम्बई के अनेक संगीत प्रेमी जानते हैं।

आपकी जन्म तिथि के बारे में पूछ—ताछ करने पर भी कुछ पता नहीं चलता। आप स्वयं यह कहना है कि मुझे खुद नहीं मालूम कि मैं कब और कहाँ पैदा हुआ? फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि आपका जन्म सिन्ध प्रांत में किसी स्थान पर हुआ और इसीलिये इनका नाम सिन्धी खाँ रक्खा गया। सिन्धी खाँ को अपने पिता खाँ साहब अमीर खां से संगीत शिक्षा प्राप्त हुई। अमीर खाँ प्रसिद्ध संगीतज्ञ बन्ने खाँ के शिष्य व चचेरे भाई थे। बन्ने खां तक इस घराने में ध्रुपद और धमार की गायकी चली आती थी और जब लखनऊ में एक बार ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक हद्दू-हस्सू खां का गाना सुनने का अवसर बन्ने खाँ साहब को प्राप्त हुआ, तो ख्याल गायकी की ओर वे आकर्षित होकर उनके पास ग्वालियर गये और उनके घर पर ही अन्य शागिर्दों के साथ रहने लगे। किन्तु हद्दू—हस्सू खां ने इनकी ओर कुछ समय तक विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके कुछ दिन बाद एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उस्ताद का ध्यान इनकी ओर आकर्षित होगया और यह उनके अत्यन्त प्रिय होगये। घटना इस प्रकार बताई जाती है:—

ग्वालियर की बात है। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। उन्हीं दिनों तानसेन के उर्स का जलसा था। बैलगाड़ी में बैठकर हद्दू खाँ और हस्सू खां साहब तानसेन के समाधि—उत्सव में भाग लेने पहुँचे। मार्ग में गर्मी से घबराकर १ बैल के प्राण पखेरू उड़ गये। अब बैलगाड़ी के लिये १ बैल की जरूरत

पड़ी तो हद्दू–हस्सू खाँ बड़ी चिन्ता में पड़ गये और कहने लगे कि बन्ने अब दूसरे बैल के बिना गाड़ी कैसे चले ? बन्ने खां ने हाथ जोड़कर कहा— "उस्ताद मैं जो आपका पाला–पोसा बैल खड़ा हूं, दूसरे बैल की जरूरत ही क्या है। यह कहते हुए इस जरूरत को बन्ने खां ने दूसरे बैल के साथ गाड़ी में लगकर पूरा कर दिया और उस्ताद बैलगाड़ी में बैठकर ही घर आगये। इस घटना से हद्दू खां और हस्सू खां के दिल में बन्ने खाँ के लिये काफ़ी स्थान पैदा होगया और बन्ने खां को उन्होंने मुक्त हृदय से अपने घराने की गायकी सिखाकर एक उत्कृष्ट गायक बना दिया।

कुछ दिनों पश्चात् बन्ने खां साहब ने निज़ाम हैदराबाद के दर्बार में नौकरी करली। यहां इनके चचेरे भाई अमीर खां भी इनके साथ ही रहते थे। बन्ने खां को इनसे हार्दिक प्रेम था, अतः अमीर खां को उन्होंने दिलोजान से संगीत की ख़ास तालीम देकर उच्चकोटि का कलाकार बना दिया।

बन्ने खां की मृत्यु के बाद उस्ताद अमीर खाँ सिन्ध में सेठ विशन दास नामक एक धनी व्यापारी के पास गायक के रूप में रहने लगे। अमीर खां के चार लड़के थे—प्यार खाँ, मौहम्मद खाँ, सिन्धी खां और मिश्री खां। इनमें से प्यार खां की रुचि अन्य किसी काम में न लगकर गाना सीखने की ओर आकर्षित हुई तो उसने अपने पिता अमीर खां से गाना सिखाने की प्रार्थना की, साथ ही यह भी कह दिया कि अगर आप मुझे गाना नहीं सिखायेंगे तो मैं और किसी जगह जाकर गाना सीखूंगा। कुछ दिन तक अमीर खां ने प्यार खाँ को सिखाया, किन्तु जब प्यार खाँ को टोंक के खां साहब अलीबख्श का गायन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ तो वे उनकी गायकी से आकर्षित हुए और उनके पास गाना सीखने चले गये। ६ महीने बाद जब ये घर वापिस आये तो अमीर खाँ को यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि मेरा लड़का होते हुए किसी दूसरे घराने की तालीम लेकर आया है। उसपर बहुत गुस्सा हुए और कहने लगे "प्यार खाँ ! तूने मेरा मुंह काला करदिया।" और एक दिन अपनी समस्त धन सम्पति लेकर उस्ताद अमीर खाँ पंजाब की ओर चलदिये तथा जंगली निशेरा गांव में जा पहुँचे

उक्त घटना सन् १९१० ई० के लगभग की है। उस गांव में पहुँचते ही तीन–चार दिन बाद अमीर ख़ां की मृत्यु होगई। इधर सिन्धी खां अपने बड़े भाई प्यार खां के साथ मांजू में रहने लगे। कुछ समय बाद यह काबुल चले

गये, दोनों भाई एक वर्ष तक क़ाबुल में रहे, फिर कराची लौट आये। यहां आकर आपसी अनबन के कारण सिन्धी खां अपने भाई से अलग रहने लगे। बचपन से ही ईश्वर भक्ति की ओर इनकी लगन थी। सेठ विशन दासजी की भक्ति पूर्ण कविताओं को यह गाया करते थे और यदा-कदा उनके यहां जाया भी करते थे। एक दिन सिन्धी खां सेठ विशन दास के साथ कराची स्टेशन पर गये। वह प्रथम महायुद्ध का ज़माना था। सेठजी तो गेट से पास होगये किन्तु सिन्धी खां जिन्होंने कि कुछ अजब तरह के फ़कीरों जैसे वस्त्र पहन रक्खे थे, इनपर पुलिस को संदेह हुआ और कोई विदेशी जासूस समझकर सिन्धी खां को गिरफ्तार कर लिया गया। गाड़ी पर पहुंचकर जब सेठ जी ने सिन्धी खाँ को अपने साथ न पाया तो वे फिर लौटकर आए और सिन्धी खाँ को ज़मानत पर छुड़ाया। तत्पश्चात् मुक़द्दमा चला, लेकिन उसमें होने को क्या रक्खा था।

सन् १९१९ में सिन्धी खाँ जब बम्बई आये तो इनकी विचित्र वेशभूषा को देखकर, एवं चाहे जिस जगह गाते हुए देखकर, कुछ लोग इन्हें "पागल-फ़कीर" कहने लगे, इससे कुछ लोगों के विचार इनकी ओर से बुरे भी बन गये। इन बातों से सिन्धी खाँ के हृदय को कुछ ठेस पहुंची, वे सोचने लगे इतना इल्म होते हुए भी यहाँ के लोग मेरी क़द्र नहीं करते। वे उदास और चिंताग्रस्त रहने लगे। ग़म को दूर करने के लिये उन्हें मद्यपान तथा अन्य नशों का भी शौक़ लग गया, अन्त में उनकी एक शिष्या करम जान उन्हें अपने यहाँ ले आई और आप वहीं रहने लगे।

बम्बई में आप खूब नशा करते थे, चाहे जिस फुट पाथ पर खड़े होकर गाने लगते थे और वहां के रास्ता चलते हुए श्रोता एक भीड़ सी बनाकर उनके चारों तरफ़ खड़े हो जाते। आपके अन्दर यह दोष होते हुए भी पं० बालकृष्ण बुवा, पं० विष्णु दिगम्बर आदि संगीतज्ञ आपकी कला से प्रभावित थे और आपका आदर करते थे। सन् १९१९ ई० की बात है, एक दिन संगीत विद्या-लय के कुछ लड़के इस संगीतज्ञ फकीर बाबा सिन्धी खां को देखकर शोर मचाने लगे और हँसी उड़ाने लगे, तो पं० विष्णु दिगम्बर जी ने लड़कों को फटकारते हुए कहा—"खबरदार! इनसे मत छेड़ो, यह खां साहब सिन्ध के एक बहुत बड़े गवैये के पुत्र हैं और बहुत अच्छा गाते हैं।" यह कहकर पंडित जी ने कुर्सी पर बिठलाकर उनसे भिन्न-भिन्न रागों की कुछ चीजें सुनीं और उन्हें कुछ रुपये देकर विदा किया। बम्बई के प्रसिद्ध संगीतज्ञ प्रिंसपल

बी० आर० देवधर ने बाबा सिन्धी खां की चीजों की स्वरलिपियां सड़कों पर खड़े हो होकर तैयार की हैं और उनसे बहुत कुछ सीखा है।

प्रसिद्ध गायक खाँ साहेब गुलाम अली बचपन में सिन्धी खां साहब से ही गाना सीखते थे और वे अबतक बाबा सिन्धी खाँ को अपना गुरू मानते हैं। आपकी गायकी ग्वालियर घराने की थी, किन्तु उसमें अलीबख्श साहब के घराने की गायकी का समन्वय होजाने के कारण, बाबा सिन्धी खां की गायकी एक नए प्रकार की बन गई।

*

सूरदास

महात्मा सूरदास का प्रादुर्भाव संगीत के उस स्वर्णयुग में हुआ, जब भारत में ध्रुपद गायन शैली का ही साम्राज्य स्थापित था। यद्यपि ख्याल गायन शैली भी प्रकाश में आने लगी थी, किन्तु उसे ध्रुपद की बराबर आदर प्राप्त नहीं था।

सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ला पंचमी सम्वत–१५३५ विक्रम में हुआ। इनके जन्म स्थान के बारे में विभिन्न मत पाये जाते हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म स्थान "परसौली" मानते हैं, जो कि मथुरा जिले के अन्तर्गत गोवर्धन के पास एक छोटा सा प्राचीन गांव है। यह गोवर्धन से १ मील पश्चिम की ओर गिर्राज पर्वत की तलहटी और श्रीनाथ जी के मन्दिर से कुछ दूरी पर स्थिति है। इसमें चन्द्रसरोबर नामक एक सुन्दर कुण्ड है, जिसके सम्बन्ध में पुराणों से ज्ञात होता है कि वहाँ पर "रास पंचाध्यायी" में वर्णित महारास का आयोजन हुआ था। चन्द्रसरोवर के पास ही एक प्राचीन कुटी है, जिसे "सूरकुटी" कहा जाता है।

हरिराय जी कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" के अनुसार सूरदास जी का जन्म स्थान "सीही" गांव है जो कि दिल्ली मथुरा रोड पर बल्लभगढ़ से लग–भग २ मील के अन्तर पर है।

हरिराय जी की "वार्ता" से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास जन्मान्ध थे और उनके माता–पिता अत्यन्त निर्धन थे। सूरदास अपनी ६ वर्ष की आयु में

ही घर से चल दिए और लाठी टेकते हुए वहां से ४ कोस दूर एक दूसरे ग्राम में पहुँचकर, तालाब के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे। वहां पर महात्माओं के सत्संग द्वारा वे ज्ञान और भक्ति के साथ–साथ गायन–वादन का भी अभ्यास करने लगे। सूरदास का कंठ बचपन से ही मधुर और सुरीला था, अतः उनका गायन अत्यन्त प्रभावशाली होता था। वे विनय, दीनता, वैराग्य एवं विरह के पद गाया करते थे, जिन्हें सुनकर श्रोतागण आनन्द-विभोर होजाते थे। यहाँ पर १८ वर्ष की आयु तक आप रहे, फिर मथुरा में कुछ दिन रहकर मथुरा आगरा सड़क पर रुनुकता गाँव के पास "गौघाट" पर रहने लगे। उस स्थान पर आजकल भी एक जीर्ण शीर्ण कुटिया विद्यमान है, जो सूरकुटी के नाम से प्रसिद्ध है।

गौघाट पर रहते हुए सूरदास का अधिकांश समय भगवान का भजन करने और विनय के पद बनाने तथा उन्हें गाने में ही व्यतीत होता था। वे पदों को इतनी भावुकता से गाते थे कि स्वयं उनके तथा सुनने वालों के प्रेमाश्रु बहने लगते थे। यहां पर सूरदास जी लगभग १२ वर्ष रहे। उनकी संगीत साधना और ज्ञान–वैराग्य विषयक उपदेशों से वहां के अनेक व्यक्ति अपना जीवन सफल करते हुए सूरदास में गुरु के समान श्रद्धा रखने लगे थे।

सम्वत् १५६७ विक्रम के लगभग महाप्रभु बल्लभाचार्य एक यात्रा में जाते हुए 'गौघाट' पर ठहरे, वहां पर सूरदास जी के विनय के पद सुनकर वे अत्यन्त प्रभावित हुए, तब आचार्य जी ने सूरदास को भगवान श्री कृष्ण की लीला के पद गाने का उपदेश दिया और उन्हें अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया।

इस प्रकार बल्लभाचार्य के शिष्य होकर सूरदास जी उनके साथ ही गोकुल चले गये। कुछ समय तक गोकुल में रहने के पश्चात् बल्लभाचार्य जी के साथ सूरदास गोवर्धन पहुँचे। वहां पर गोपालपुरा (जतीपुरा) स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर में सूरदास जी को कीर्तन करने के लिये नियत कर दिया गया। पास में ही परसौली गांव में आपके निवास का प्रबन्ध होगया। परसौली से प्रतिदिन श्रीनाथ जी के मन्दिर में जाकर वे भगवान की लीला के पद गाते और कीर्तन करते थे। कहा जाता है कि अपने जीवन के अन्तकाल तक सूरदास परसौली में रहकर ही नये–नये पदों की रचना करते रहे।

सूरदास की पद रचना और संगीत साधना में एक निश्चित व्यवस्था मिलती है। उनके पद प्रातःकाल से सायंकाल तक के प्रत्येक समय के अनुकूल

राग–रागनियों में बंधे हुए हैं। "सूर सागर" में दिये हुए हजारों पद इसका प्रमाण हैं। लगभग ७६ राग सूर के पदों में पाये जाते हैं। इन ७६ रागों में ही कई हजार पद उन्होंने रचे, जिनमें शान्त, श्रृंगार, वात्सल्य, करुणा, भक्ति, वीर आदि रसों के पदों को उन्होंने उन्हीं के अनुकूल बांधा, यही कारण है कि सूर के पदों में प्रभाव और सौन्दर्य दोनों ही मिलते हैं।

सूरदास के विशेष प्रिय रागों में बिलावल, सारंग, धनाश्री, मल्हार, गौरी, रामकली, केदारा, बिहागड़ा, मारू, गूजरी और टोड़ी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रागों के अतिरिक्त तालों के सम्बन्ध में भी सूरदास का ज्ञान कम नहीं था। उनके पदों से यह भी संकेत मिल जाता है कि अमुक पद अमुक ताल में गाया जाने योग्य है। सूर ने विशेषतः त्रिताल, कहरवा, दादरा, चौताला और रूपक तालों का प्रयोग किया है। अपने प्रत्येक पद में उन्होंने ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं का भी विशेष रूप से ध्यान रखा है, इन्हीं कारणों से आज की गायकी में सूरदास के पद जितने प्रचलित हैं उतने अन्य नहीं।

सूरदास में भक्त, गायक और कवि यह तीनों गुण विद्यमान थे, यही कारण है कि सूर की संगीत साधना में हमें संगीत के मोक्ष पद स्वरूप के दर्शन होते हैं। आज का गायक सूर–पदों को "सूरसागर" के रूप में प्राप्त करके धन्य होगया है। कोई उनके पदों को हल्के–फुल्के भजन संगीत के रूप में गाता है तो कोई शास्त्रीय गायन के रूप में गा सकता है। सूर–पद सभी दृष्टि से उपयोगी और सफल प्रमाणित हुए हैं।

सूरदास का देहावसान काल सम्वत् १६४० बताया जाता है। इस प्रकार अपने १०५ वर्ष के जीवन काल में संगीत प्रेमियों के लिये वे एक अमूल्य निधि देगये हैं, जो आज भी हमें प्रेरणा और स्फूर्ति देरही है।

★

हद्दू खां

आपकी जीवनी अपने बड़े भाई हस्सू खां के साथ-साथ चलती है। ये मूलतः लखनऊ के निवासी थे। इनके बाबा का नाम नत्थन पीर बख्श और पिता नाम कादिर बख्श था। बड़े भाई हस्सू खाँ के साथ यह भी ग्वालियर दरबार में रहे। महाराजा ग्वालियर की इन पर भी बिल्कुल उसी प्रकार कृपा थी, जैसी कि इनके बड़े भाई हस्सू खाँ पर।

एक बार ग्वालियर के राजा जयाजीराव आपको जयपुर ले गए, उस समय इनके साथ हस्सू खाँ भी थे। जयपुर के दरबार में संगीत की महफिल जोड़ी गई, उसमें जयपुर राज्य के लगभग सभी संगीतज्ञ और विद्वान उपस्थित हुए। हद्दू खाँ और हस्सू खाँ का गायन इस अवसर पर सर्वश्रेष्ठ माना गया। यही वह समय था जबकि ग्वालियर की गायकी जयपुर घराने की गायकी के समक्ष श्रेष्ठ ठहराई गई। महाराज जयपुर ने इन दोनों कलाकारों को बहुत पुरस्कार दिया।

अपने भाई हस्सू खां की मृत्यु के पश्चात् हद्दू खां कुछ महीनों के लिए विक्षिप्त से हो गये। उस समय गवालियर में भी कुछ दिनों के लिए गायन-वादन आदि की चर्चा थम गई। इधर किसी बात पर महाराज से अनबन हो जाने के कारण मियां हद्दू खां पुनः लखनऊ आकर बस गये। यहां आकर हद्दू खां ने अपना रियाज उसी प्रकार कायम रखा, जिस प्रकार ग्वालियर के राज्याश्रय में चलता था। यहां इन्होंने बड़ी कीर्ति एवं लोकप्रियता अर्जित की। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय इनके जोड़ का तैयार और सुरीला गायक सारे भारतवर्ष में नहीं था। लखनऊ में इनकी बाबत एक कहावत अबतक चली आरही है कि इनकी तान पर एक बार अस्तबल में से एक घोड़ा पैरों की रस्सी तोड़कर भाग निकला। वह स्थान अभी तक मौजूद है और उसे दिखाते समय वहां के लोग बड़े गर्व के साथ इस स्वर्गीय कलाकार का जिक्र करते हुए सुने जाते हैं।

एक बार हद्दू खाँ कलकत्ते भी गये, वहां भी संगीत की अनेक महफिलें हुई और इन्हें यथेष्ट कीर्ति एवं सम्मान प्राप्त हुआ। कुछ दिनों के बाद महाराज ग्वालियर ने हद्दू खाँ को पुनः अपने दरबार में बुला लिया और फिर

वे गवालियर में हमेशा के लिए बस गये। एक बार महाराज जयाजी राव पंढरपुर की यात्रा को जाते हुए पूना में ठहरे, उस समय हद्दू खाँ भी उनके साथ थे। वहाँ हद्दू खाँ का गायन हुआ और सब लोग इस कलाकार की प्रतिभा का लोहा मान गये।

यद्यपि हद्दू खाँ की आवाज अपने भाई हस्सू खां के समान ईश्वरप्रदत्त मधुर नहीं थी, फिर भी इन्होंने अपने परिश्रम से आवाज को बहुत मधुर तथा आकर्षक बना लिया था। हद्दू खां प्रमुखतः मियाँ मल्लार, यमन, मालकोप, टोड़ी, विहाग, दरबारीकान्हड़ा आदि रागों को गाना पसंद करते थे। आप प्रारम्भ में अपने ख्याल को विलम्बित लय से बड़ी चैनदारी के साथ शुरू करते थे। इसी ढङ्ग से स्थायी और अन्तरा कहने के बाद बोल तानें और फिर विभिन्न प्रकार की तानें, तत्पश्चात् उसी राग में छोटा ख्याल प्रारम्भ करके द्रुतलय का काम किया करते थे। तार सप्तक में इच्छानुसार तैयार, सुरीली और स्पष्ट तान लेना मानों आपका ही हक़ था। वर्तमान गायक जो आपके घराने से सम्बिन्धित हैं, गायकी के इस ढङ्ग को आज भी बहुत कुछ अन्शों में सुरक्षित रखे हुए हैं। आपकी शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है जिसमें हिन्दुओं की संख्या अधिक है।

यद्यपि गृहस्थ के प्रपंचों से आप अलग ही रहना पंसद करते थे, क्यों कि आपका ख्याल था कि इन पचड़ों में पड़ कर कला की साधना भली प्रकार नहीं हो सकती; फिर भी आपको संयोगवश २ शादियाँ करनी पड़ीं। पहली स्त्री से दो पुत्र मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ हुए और दूसरी से दो लड़कियां हुईं। पहली लड़की का विवाह इनायत खां और दूसरी का प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खां के साथ हुआ। वृद्धा अवस्था में हद्दू खाँ के शरीर का नीचे का भाग शिथिल हो गया था। उस हालत में भी आपको ग्वालियर के दरबार में गायन प्रदर्शनार्थ उठा कर लाया जाता था।

मृत्यु से एक मास पूर्व तक आप छः घंटे प्रतिदिन रियाज करते रहे। सन् १८७५ ई० में ग्वालियर में ही आपका स्वर्गवास हो गया। इस कलाकार की मृत्यु से तत्कालीन ग्वालियर नरेश को बहुत दुःख हुआ और उनके मुँह से यह शब्द निकले 'आज मेरे राज्य का एक स्तम्भ ढह गया।' शोकाकुल महाराज ने आत्मशांति के लिये एक सप्ताह तक मौन रक्खा। इस कलाकार की मृत्यु पर न केवल ग्वालियर ने, अपितु सारे उत्तरी भारत ने मातम मनाया।

*

हरिदास स्वामी

गोस्वामी तुलसी दास जी को जिस प्रकार हिंदी साहित्य द्वारा भारतीय संस्कृति, मर्यादा एवं धर्म की रक्षा करने का श्रेय प्राप्त है; उसी प्रकार हिन्दी गायन पद्धति के आविष्कार द्वारा भारतीय संगीत की रक्षा का श्रेय प्रातः स्मरणीय स्वामी हरिदास जी को है।
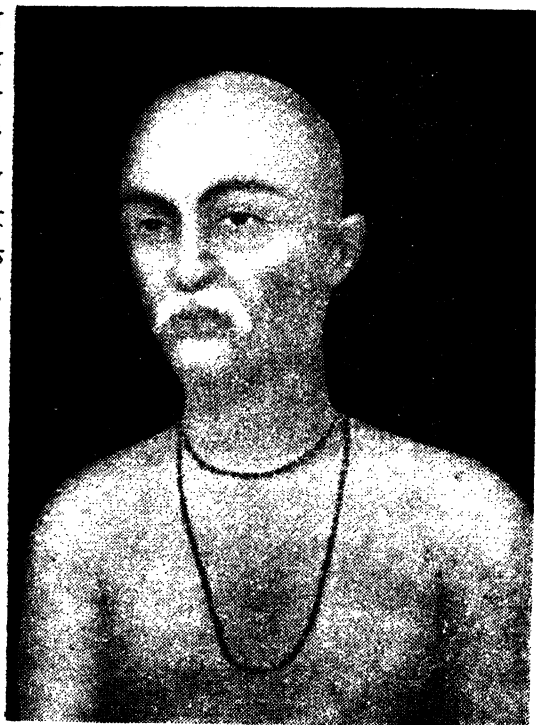
स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपद शुक्ला ८ सम्वत् १५३७ वि०* में हुआ था। आपने ब्राह्मण कुल में, जन्म लिया। स्वामी जी के माता–पिता को साधु–महात्माओं से विशेष अनुराग था, अतः बचपन से ही हरिदास जी में साधु-सन्तों के प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक था। आपके पिताजी का नाम स्वामी आशुधीर था, जो कि मुलतान (पंजाब) के पास उच्चग्राम के निवासी थे। उनकी पत्नी (हरिदास जी की माता) का नाम गंगा था। कुछ समय बाद आशुधीर जी अपनी पत्नी सहित उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में, खैर वाली सड़क पर, खेरेश्वर महादेव के समीप निवास स्थान बनाकर रहने लगे। इसी गांव में हरिदास जी का जन्म हुआ, अतः इस गांव का नाम ही हरिदासपुर होगया।

---

* भादों शुक्ल अष्टमी मनहर पुनि बुधबार पुनीता।
सम्बत पन्द्रहसो सैंतिसका, ता बिच उचित सुमीता ।।
—श्री सहचरिशरण कृत "गुरु पुणालिका"

बाल्यकाल से ही संगीत के संस्कार स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर विद्यमान थे, अतः आगे चलकर ये संस्कार और भी विकसित होकर कृष्ण भक्ति में लीन होने लगे । २५ वर्ष की अवस्था में आप वृन्दावन निवास करने चले आये और निधुबन निकुञ्ज की एक झोंपड़ी में निवास करने लगे । एक गुदड़ी और एक मिट्टी का बर्तन, बस यही स्वामी जी का सामान था ।

उन्हें बृजभूमि की शुभ्र रेणुका के कण-कण में, जमुना के निर्मल नीर में, गगन मण्डल के तारागण और चन्द्रमा की ज्योति में भगवान कृष्ण की विचित्र लीलाओं के मनोहर दृश्य दिखाई देने लगे । चारों ओर से मुरली की मधुर ध्वनि के नाद ने उन्हें आनन्द विभोर कर दिया ।

उन दिनों उत्तर भारत में ब्रजभाषा प्रचलित थी, स्वामी जी ने इसी मधुर भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया ।

वृन्दावन में रहकर स्वामी जी ने अनेक ध्रुपद गीतों की रचना की तथा शास्त्रोक्त राग और तालों में उन्हें गाकर जिज्ञासुओं को संगीतामृत पिलाया ।

यद्यपि अनेक व्यक्तियों को स्वामी जी का संगीत प्रसाद मिला होगा, किन्तु आपके शिष्यों के उल्लेखनीय नाम "नादविनोद" ग्रंथ में इस प्रकार पाये जाते हैं:—

(१) बैजू (२) गोपाल लाल (३) मदन राय (४) रामदास (५) दिवाकर पण्डित (६) सोमनाथ पण्डित (७) तन्नामिश्र (तानसेन) (८) राजा सौरसैन ।

कहा जाता है कि उपरोक्त शिष्यों में से प्रथम चार शिष्य दिल्ली चले गये तथा सोम पंडित, राजा सौरसैन पंजाब की ओर चले गये और तानसेन रीवाँ चले गये । स्वामी जी के इन शिष्यों ने भी असंख्य नये ध्रुपद, धमार, त्रिवट, तराने, रागमालायें, चतुरंग तथा नवीन रागों की रचना की है । इन संगीताचार्यों के शिष्य वर्ग के द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में हिन्दुस्तानी गायन पद्धति का ठोस प्रचार हुआ । संगीत सम्राट तानसेन ने पहले बुन्देल-खण्ड के रीवां राज्य में, फिर अकबर के साम्राज्य में स्वामी जी के संगीत का संदेश सुनाया । उस संगीत से अकबर बादशाह इतना प्रभावित हुआ था कि उसे सुनने के लिये उसे बृन्दावन आकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होना पड़ा ।

मद्रास प्रांत को छोड़कर शेष समस्त भारत में जो शास्त्र युक्त गायन आज प्रचलित है, उसका श्रेय स्वामी जी और उनके शिष्य वर्ग ही को है ।

वृन्दावन में स्वामी जी के सम्प्रदाय से सम्बद्ध कई स्थान हैं:—

(१) श्री बांके बिहारी जी का मन्दिर–जहाँ बिहारीजी के गोस्वामी, स्वामी जी के सेव्य ठाकुर की सेवा-पूजा करते हैं।

(२) निधुवन—जहाँ स्वामी जी तथा उनके कतिपय शिष्यों की समाधियाँ हैं।

(३) श्री गोरेलाल जी का मन्दिर—जिसमें स्वामी जी की शिष्य परंपरा के स्वामी नरहरि देव जी के सेव्य ठाकुर विराजमान हैं।

(४) श्री रसिक बिहारी जी का मन्दिर—जिसमें स्वामी रसिक देव जी के सेव्य ठाकुर हैं।

(५) टट्टी स्थान—जिसकी स्थापना स्वामी ललित मोहिनी देवजी ने की।

वर्तमान समय में टट्टी सम्प्रदाय का बड़ा महत्व है जहाँ विरक्तों की सबसे अधिक संख्या है। विशेष उत्सवों और गुरुओं के जयन्ती दिवसों पर यहां 'समाज' होता है जिसमें स्वामी जी तथा उनकी परंपरा के महानुभावों के पद गाये जाते हैं। भाद्रपद शुक्ला ८ को टट्टी स्थान पर स्वामी जी की जयन्ती का बहुत बड़ा मेला होता है। इस अवसर पर सर्वसाधारण को भी प्रवेश का अवसर मिलता है। स्वामी जी के निजी करुवे (मिट्टी का पात्र) को केवल इसी दिन बाहर निकाला जाता है। इस अवसर पर कई दिन 'समाज' होता है जिसमें केवल विरक्त साधु ही अपनी परंपरागत परिपाटी से पुराने ध्रुपदों को गाते हैं। केवल दो दिन थोड़ा–थोड़ा समय बाहर के गवैयों को भी दिया जाता है कि वे स्वामी जी की सेवा में अपनी गान–कला की भेंट चढ़ा सकें।

"स्वामी हरिदास जी का सङ्गीत सुनने के लिये बड़े–बड़े राजा–महाराजा द्वार पर खड़े रहते थे", यह बात नाभादास जी के एक छप्पय से प्रतिध्वनित होती है। आप केवल गानविद्या में ही निपुण नहीं थे, अपितु सम्पूर्ण अङ्ग सहित सङ्गीत के ज्ञाता भी थे, आपको गीत, वाद्य और नृत्य संगीत के तीनों अंगों पर पूर्ण अधिकार था।

आजकल ब्रज में जो रासलीला प्रचलित है, वह स्वामी हरिदास की ही देन है। रास के पदों की गायनयुक्त परिपाटी सर्व प्रथम आपने ही चलाई थी, जो आज तक लोकप्रिय होकर धार्मिक भावना को कलात्मक रूप देरही है। सम्वत् १६३२ वि० के लगभग आप इस भौतिक शरीर को त्याग कर परलोक वासी होगये।

★

हस्सू खां

वैसे तो इस भारत भूमि पर अनेक कलापूर्ण विभूतियाँ उत्पन्न हुईं और होती रहेंगी; किन्तु हस्सू खां जैसा गायक कदाचित ही पैदा हो सके। अपने युग में ग्वालियर की गायकी को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने वाला यही वह प्रतिभावान कलाकार था, जिसका नाम सुनकर आज के प्रत्येक संगीत प्रेमी तथा गायक का हृदय सम्मान और श्रद्धा से झुक जाता है।

आपके पिता का नाम कादिर बख्श और पितामह (बाबा) का नाम नत्थन पीरबख्श था। कादिर बख्श इन्हें अल्पायु में ही छोड़कर चल बसे थे, इसलिये इनका पालन-पोषण इनके बाबा के द्वारा ही हुआ। यह प्रारम्भ में लखनऊ रहते थे, परन्तु जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तो इनके बाबा विरोधियों से भयभीत होकर और अपने दोनों नाती हस्सू खां और हद्दू खां के जीवन की सुरक्षा के लिये ग्वालियर आकर बस गये। उस समय ग्वालियर की गद्दी पर श्री दौलतराव शिन्दे आसीन थे। यह संगीत कला के अनन्य प्रेमी एवं संगीत कलाकारों के पोषक थे। इनके ज़माने में ग्वालियर भारतवर्ष में गायकी का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र बन चुका था। उच्चकोटि के ख्याल गायक, ध्रुपद गायक एवं तन्त्र वादक इनके दरबार में उपस्थित रहते थे। आपने नत्थन पीरबख्श और उनके दोनों नातियों को प्रेम पूर्वक अपने यहाँ आश्रय दिया।

हस्सू खाँ को आवाज़ की ईश्वरीय देन थी। इनकी आवाज़ में एक विशेष प्रकार का चमत्कार था, जिससे प्रभावित होकर महाराज ने इन्हें अन्य कलाकारों के मुकाबिले में विशेष सुविधायें प्रदान कीं। उस समय ग्वालियर नरेश के दरबार में बड़े मोहम्मद खाँ नामक बहुत उच्चकोटि के ख्याल गायक थे। उस समय सारा भारतवर्ष उनकी तैयार एवं मधुर और आकर्षक गायकी का लोहा मानता था। महाराज की कृपा से किसी प्रकार इन दोनों बालकों को छुपकर लगभग छः महीने तक मोहम्मद खाँ की गायकी सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। क्यों कि मुहम्मद खाँ कुछ पुराने विरोध के कारण इन बच्चों को किसी भी मूल्य पर अपनी गायकी सुनाने के लिये तैयार न थे, इसीलिये यह युक्ति सोची गई। छः महीने की अवधि प्रतिभाशाली कलाकारों के लिये कम नहीं होती, अतः हद्दू खाँ और हस्सू खाँ ने इस घराने की गायकी और चमत्कार पूर्ण तानों को बड़ी सफ़ाई के साथ अपने कण्ठ में ढाल लिया।

महाराज की आज्ञा पर एक दिन संगीत के विशेष कार्य क्रम के लिये दरबार लगाया गया। इसमें राज्य के सभी कलाकारों को निमन्त्रित किया गया। सदैव की भाँति बड़े मोहम्मद खाँ ने भरे दरबार में अपनी गायकी का प्रदर्शन किया। वाह–वाह की झड़ी लग गई। महफिल का रंग इस बार भी हमेशा की तरह बड़ा अच्छा जमा। तत्पश्चात् महाराज की आज्ञा से यह दोनों भाई भी गायन प्रदर्शन के लिये दरबार में पेश किये गये। अब तक हस्सू खाँ और हद्दू खाँ आयु के प्रमाण से तरुण और गायकी में पूर्ण रूपेण दक्ष हो चुके थे। गायन प्रारम्भ हुआ, दोनों भाइयों ने अपने घराने की गायकी में बड़े मोहम्मद खाँ के घराने की गायकी का पुट दे–दे कर ऐसी विचित्र गायकी प्रस्तुत की कि सारा दरबार आश्चर्य में डूब गया, लोग मन्त्र मुग्ध हो गये। महाराज को बहुत प्रसन्नता हुई, फल स्वरूप नत्थन, पीरबख्श और उनके दोनों नातियों का दरबार में काफी सम्मान बढ़ गया। इस घटना से बड़े मोहम्मद खाँ के हृदय में दरारें पड़ गईं और वे अपने प्रतिद्वन्दियों को नीचा दिखाने की योजना बनाने लगे।

एक दिन पुनः संगीत–महफिल का आयोजन हुआ, जिसमें बड़े–मोहम्मद खाँ के अतिरिक्त हस्सू खां हद्दू खां एवं अन्य सङ्गीतज्ञ एकत्रित हुए। मुहम्मद खाँ ने हस्सू खाँ की प्रशंसा करते हुए उनसे मियाँ मल्लार गाने की फरमाइश की। इस फरमाइश में एक गहरा षड़यन्त्र छिपा हुआ था। हस्सू खाँ इस षड़यन्त्र को तनिक भी न समझ पाये और उन्होंने सरल स्वभाव से गायन प्रारम्भ किया। इस राग के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार की तान जिसका नाम 'कड़क बिजली की तान' था, ली जाती थी। यह बड़ा मुश्किल कार्य था, इसको कोई भी दमदार गायक अधिक से अधिक एक बार ले सकता है, वह भी बड़ी कठिनता और कलेजे की ताकत से। हस्सू खाँ ने जवानी के जोश में यह तान ले ली और मोहम्मद खाँ की ओर देखा। मोहम्मद खाँ ने प्रशंसात्मक शब्दों में कहा शाबास बेटे ! एक बार और !! हस्सू खाँ ने बड़े जोम के साथ दुबारा इसी तान को लिया, किन्तु अवरोह करते समय एक दम उनकी बाईं पसली चढ़ गई और मुख से रक्त आने लगा। पसली चढ़ने के बाद भी हस्सू खाँ ने इस तान को पूरा किया। उक्त घटना के फलस्वरूप कुछ समय पश्चात उनकी मृत्यु हो गई। दरबार में मातम छा गया, लोग हाहाकार करते रह गये। यह घटना सन् १८५६ ई० के लगभग हुई। हस्सू खाँ ने अपने पीछे एक पुत्र भी छोड़ा। तरुण अवस्था में ऐसे उद्‌भट कलाकार की मृत्यु होजाने के कारण, संगीत संसार की जो हानि हुई, उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ★

हीराबाई बड़ौदकर

शास्त्रीय संगीत की प्रसिद्ध गायिका श्रीमती हीराबाई बड़ौदकर का जन्म २६ मई सन् १९०७ को हुआ था, श्रीमती-हीराबाई के घराने में संगीत की परम्परा तीन पीढ़ियों से निरन्तर विद्यमान है। वैसे तो बचपन से ही हीराबाई के कानों में किराना घराने की गायकी अपना प्रभाव जमाती रही, फिर भी आपने अपनी माता ताराबाई, बालकृष्ण बुवा कपिलेश्वरी, शंकर बुवा, फ़ैज मोहम्मद खां, गौहर जान, वझे बुवा और श्री गोविन्दराव टेम्बे आदि से भी संगीत शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ में आपने खाँ साहब अब्दुल वहीद खाँ का गंडा बांध लिया। वे आपको २ घण्टे सुबह और १ घण्टा शाम को इस प्रकार तीन घण्टे रोजाना तालीम देते थे। इस तरह आपने ३ साल तक उनसे तालीम पाई। इससे पहले आप महफिलों में नहीं गाती थीं। अच्छी तरह संगीत शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन् १९३० ई० के लगभग आपने महफिलों में भाग लेना आरम्भ किया।

उन दिनों बम्बई में प्रत्येक शुक्रवार को प्रसिद्ध गायकों की महफ़िल हुआ करती थी तथा संगीतज्ञों के घर पर भी गायन-वादन के जल्से होते रहते थे। एक दिन मनोरमा बाई के घर में एक महफिल हुई थी। सर्व प्रथम आपने इसी महफ़िल में गाना गाया। इसके बाद तो आप विभिन्न संगीत महफ़िलों में भाग लेने लगीं और इससे आपकी कीर्ति बढ़ने लगी। संगीत का रियाज़ आपका बराबर चालू था, इससे आपका गला मँजता ही चला गया। तत्पश्चात् हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े संगीत सम्मेलनों में भी आप आमन्त्रित की जाने लगीं। रेडियो और रिकार्डों के द्वारा भी आपने अपना संगीत जनता को दिया।

सन् १९४९ ई० में आपने दक्षिण अफ्रीका की यात्रा की और जुलाई १९५३ ई० में भारतीय कलाकार प्रतिनिधि मण्डल के साथ चीन में अपनी कला का प्रदर्शन करके वहां की जनता को भारतीय संगीत की

विशेषताओं से प्रभावित करके आपने सम्मान प्राप्त किया। आपकी छोटी बहिन सरस्वती राने ने भी आपसे ही संगीत शिक्षा पाई, वे भी एक सुविख्यात गायिका हैं।

आप अधिकतर सीधे राग गाना पसंद करती हैं। इसका कारण बताते हुए आप कहती हैं:—"गायन में स्वर विस्तार करना आवश्यक है और सीधे-सीधे रागों में आधे-आधे घण्टे तक स्वर विस्तार आसानी से किया जा सकता है। इस तरीके से एक राग घण्टा सवा घण्टा गाना बहुत आसान हो जाता है। इसके विरुद्ध मिश्र रागों में स्वर विस्तार करने में कठिनाई होती है और गायक को मिश्र रागों में अपनी कला दिखाने का अवसर अधिक देर तक नहीं मिलता। फिर भी मिश्र राग गाये ज़रूर जांय, किन्तु प्रधानता सीधे रागों को ही देनी चाहिए।"

हीराबाई, भारतीय संगीत के किराना घराने का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह घराना राग विस्तार की पद्धतियों और ख्याल को विलम्बित लय में प्रस्तुत करने के लिये प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त गायन के अन्य प्रकार-- तराना, ठुमरी और हल्के मराठी पदगायन पर भी आपका पूर्ण अधिकार है दिल्ली रेडियो के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी आप भाग लेती रहती हैं।

✱

हैदर खां

आपका जन्म सहसवान में सन् १८५७ में हुआ था। आपके पिता का नाम उ० अलीबख्श था जो स्वयं एक बड़े अच्छे संगीतज्ञ थे। हैदर खां की प्रारम्भिक शिक्षा इनके पिता से ही आरम्भ हुई, तत्पश्चात् आपकी मुलाकात उ० इनायत हुसेन खाँ से हुई और इन्हीं के द्वारा शिक्षा का आरम्भ हुआ। इनायत हुसेन खां अपने इस शिष्य से इतने खुश हुये कि सच्चे दिल से संगीत शिक्षा देने लगे और थोड़े ही दिनों बाद अपनी बहन की शादी भी इन्हीं से करदी। जब आपका संगीत ज्ञान परिपक्व हुआ तो रामपुर दरबार में राज गायक के पद पर आसीन होगये और काफी समय तक यहां पर रहकर अपना अभ्यास बढ़ाते रहे। यहाँ से फिर नैपाल के राजा के आमन्त्रण पर कुछ दिन नैपाल में रहे और फिर रामपुर वापस आये। यहां पर आधुनिक संगीतज्ञ उ० मुश्ताक हुसेन खां आपके शागिर्द हुए, कुछ समय बाद उ० हैदर खां ने अपनी लड़की की शादी भी मुश्ताक हुसेन खाँ से कर दी।

बचपन से ही आपने कठिन स्वर साधना पर विश्वास रखा और रात-रात भर स्वर साधना में लगे रहते थे। अधिकतर आप मन्द्र षड्ज की साधना में आनन्द का अनुभव किया करते। आपके मतानुसार "जितना ही तुम झुकोगे भगवान उतना ही तुम्हें ऊँचा उठायेंगे।" इसी उक्ति के अनुसार संगीत का भी नियम है कि "जितना ही मन्द्र का अभ्यास किया जायेगा उतना ही तार सप्तक में जाने में सरलता होगी।" यही कारण था कि आप अति तार सप्तक के सभी स्वर लगाने में प्रसिद्ध थे। आपकी गायकी बड़ी ही आकर्षक व सुन्दर बन्दिशों युक्त थी, तानों में प्रत्येक दाना साफ और स्पष्ट सुनाई पड़ता था। स्वर का "सच्चा-लगाव" आपकी विशेषता थी। आपके गायन में टप्पे की छाप अधिक थी। आप खुले आकार तथा सीने की गायकी

पर अधिक विश्वास व श्रद्धा रखते थे। आपके प्रिय राग थे:—
तिलककामोद, मियाँ की मल्हार, गौड़सारङ्ग, छाया तथा रामकली।

एक बार बंगरी में एक विराट संगीत संमेलन हुआ था। देश के धुरंधर संगीतज्ञ व उस्तादों का जमघट था। सम्मेलन पांच दिन तक हुआ। अन्तिम दिन उस्ताद हैदर खां ने इतना अच्छा गाया कि सभी संगीतज्ञों ने सर्व सम्मति से आपको "संगीत-रत्न" की उपाधि से विभूषित किया। तब से आप देश के सभी राज दरबारों द्वारा आमन्त्रित होते रहे और अपनी कला से श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध करते रहे। जोधपुर, जबलपुर, इन्दौर और ग्वालियर दरबारों से आपको बहुत बड़ी धनराशि पुरस्कार स्वरूप मिली। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आप बम्बई में रहे और संगीत का प्रचार जनसाधारण में अधिकाधिक करने के हेतु आपने बम्बई तथा गोवा में अनेक शिष्य तैयार किये। बंबई की कांफ्रेंस में एक बार लाहौर के उ० अलिया फत्तू जो उन दिनों "तान कप्तान" के नाम से प्रसिद्ध थे, आये। आप जिस जगह पहुंच जाते थे आपका जवाब मिलना मुश्किल होता था। हैदर खां ने अपनी वृद्धावस्था में भी उस कांफ्रेंस में ऐसा गाया कि अलिया फत्तू बड़े प्रभावित हुए और शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की, फिर थोड़े दिनों तक इनसे सीखा भी। उस्ताद हैदर खां की मृत्यु सन् १९२७ में होगई।

★

तृतीय अध्याय

तन्तकार तथा सुषिर वाद्य

वादक

अन्नपूर्णा देवी

जब उस्ताद अलाउद्दीन खां, उदय शंकर की नृत्य पार्टी के साथ विदेश भ्रमण पर थे, तो विन्ध्य प्रदेश के मैहर नामक कस्बे में सन् १९२७ ई० में पूर्णिमा के दिन उनकी पुत्री ने जन्म लिया। मैहर के महाराजा ने उस लड़की का नाम अन्नपूर्णा रक्खा।

बचपन से ही अन्नपूर्णा को खाँ साहब ने सितार की शिक्षा देनी शुरू करदी। जो कोई भी बच्ची के हाथ को देखता आश्चर्य चकित रह जाता। अन्नपूर्णा भी अपने पिता के बताये मार्ग पर परिश्रम करती हुई अग्रसर होने लगीं। सितार शिक्षा १९४० ई० तक चली, इसके बाद उस्ताद ने सितार की शिक्षा बन्द कर सुरबहार का अभ्यास शुरू करा दिया। उधर भ्रमण में पं० रविशंकर को उस्ताद अलाउद्दीन खां बराबर शिक्षा दे रहे थे। सितार, आर्केस्ट्रा तथा नृत्य इन तीनों ही विषय की शिक्षा पं० रविशंकर को मिल रही थी। जब विदेश भ्रमण से उस्ताद लौटे तो श्री उदयशंकर ने अपने छोटे भाई रविशंकर से अन्नपूर्णा के साथ शादी का प्रस्ताव रक्खा, और परिजनों के कट्टर विरोध एवं उलाहनों के बावजूद भी यह शादी सन् १९४१ ई० में संपन्न होगई। तत्पश्चात् पिता की आज्ञा लेकर पति सहित 'इप्टा' संस्था के

साथ अन्नपूर्णा शंकर भारत भ्रमण के लिये निकल पड़ीं। इप्टा की ओर से पं० जवाहरलाल नेहरू की "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" मंच पर अभिनीत की जारही थी, इसमें पार्श्व से अन्नपूर्णा शंकर वादन किया करती थीं।

सन् १९४२ ई० में अन्नपूर्णा शंकर ने एक पुत्र रत्न शुभेन्द्र शंकर को जन्म दिया, जो कि आजकल अपने पिता से सितार की शिक्षा ग्रहण कर रहा है।

अन्नपूर्णा शंकर की एक बड़ी बहिन भी थीं, जिनकी शादी पूर्वी किस्तान में एक बंगाली मुसलमान से हुई थी, लेकिन सौहार्द्र पूर्ण व्यवहार न होने से उनके हृदय को गहरा आघात पहुंचा और इसी कारण उनकी मृत्यु होगई, क्योंकि वे हिन्दुत्व की भावनाओं में ओत-प्रोत थीं जो कि उस्ताद अलाउद्दीन खां के परिवार में सदैव जागृत रहती थीं और हैं।

उपर्युक्त मृत्यु घटना से उस्ताद को गंभीर ठेस पहुंची और इसीलिये अधिक प्यार के कारण आप अन्नपूर्णा की शादी करने में हिचकिचाते थे। उनका कहना था कि अच्छी जाति का, उत्तम विचारों का और संगीतज्ञ युवक अगर मेरी निगाह में आया तो मैं अन्नपूर्णा की शादी पर विचार कर सकता हूँ।

श्रीमती अन्नपूर्णा को रागों में यमनकल्याण और मालकोश तथा तालों में चौताल और धमार बहुत प्रिय हैं। मैहरी घराने की सारी विशेषतायें, नई कल्पनाओं और नये रूप को लेकर उनके वादन में दृष्टिगोचर होती हैं।

जनता में श्रीमती अन्नपूर्णा बहुत कम अपना प्रदर्शन करती हैं। इसका कारण पूछने पर आप प्रत्युत्तर में कहती हैं—"हालांकि मेरे पिताजी ने मेरे शिक्षण काल में मुझसे कहा था कि मेरा संगीत जनता में प्रदर्शित करने के लिये नहीं होगा, बल्कि आत्मानन्द और स्वयं के विकास तक ही सीमित रहेगा, लेकिन उस स्थान पर प्रदर्शित करने में, मैं कभी नहीं हिचकिचाती जहां कि संगीत के गंभीर पारखी होते हैं।"

श्रीमती अन्नपूर्णा बम्बई और दिल्ली में अनुरोध करने पर कई बार सुर-बहार वादन कर चुकी हैं और देखा गया है कि शास्त्रीय संगीत की ओर थोड़ी भी अभिरुचि रखने वाले श्रोता उनके जोड़ और आलापचारी के अंगों से प्रवाहित, अजस्र संगीत में आत्म विभोर होजाते हैं। पति-पत्नी की जुगलबन्दी से तो मानों वातावरण भी स्तब्ध होजाता है।

✱

अब्दुल हलीम जाफ़र

अब्दुल हलीम जाफ़र का जन्म सन् १६२७ ई० के लगभग जावरा में हुआ था। इनके पिता धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थे। अपने दैनिक कार्यक्रम में रोज़ा तथा नमाज़ को विशेष महत्व देते थे। संगीत कला से न तो उन्हें ही कोई लगाव था और न उनके किसी पारिवारिक व्यक्ति को ही संगीत में अभिरुचि थी।

जिस समय हलीम जाफ़र की उम्र १० साल के लगभग थी, तभी से इन्हें ग़ज़ल गाने का शौक़ लग गया। आवाज़ इनकी अच्छी थी ही, अतः बड़ी सुन्दरता से ग़ज़ल गाया करते थे। एक बार इन्हें उस्ताद बाबू खां का सितार सुनने का मौका मिला। उनका सितार सुनकर इनके दिल पर संगीत की मधुर स्वरलहरियों का ऐसा असर हुआ कि उसी वक्त से इन्हें सितार सीखने की धुन सवार होगई। दूसरे दिन ये उस्ताद बाबू खां के पास पहुँच ही तो गये। उस्ताद ने इनकी रुचि खासतौर से इस तरफ देखकर इनको अपना शागिर्द बना लिया और नियमित सितार-शिक्षा देने लगे। लेकिन इस शिक्षा क्रम को अभी पूरे दो साल भी न हो पाये थे कि उस्ताद बाबू खां का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् जाफ़र साहेब ने उस्ताद महबूब खाँ (उस्ताद बन्देअली खां के वंशज) से सितार की तालीम लेनी प्रारम्भ करदी और बाकायदा उनके शागिर्द हो गये।

सितार की तालीम के साथ-साथ इन्होंने अपनी स्कूली पढ़ाई भी जारी रक्खी, फलस्वरूप आपने हाईस्कूल (मैट्रिक) की परीक्षा पास करली। किन्तु कुछ प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यह पढ़ाई आगे न चल सकी। इन्हीं दिनों पिता जी का स्वगवास होगया और भाइयों की ओर से कोई सहायता न मिल सकी, अतः इनके सामने रोज़ी और सितार की शिक्षा को जारी रखने की जटिल समस्या खड़ी हो गई। लेकिन आप अपने परिश्रम और लगन के बल पर १४-१५ वर्ष की आयु में ही अच्छा सितार बजाने लगे थे, साथ ही

जलतरंग वादन भी सीख लिया था। इन योग्यताओं ने इस आड़े वक्त में इनका बहुत साथ दिया और आपको "एशियाटिक-पिक्चर्स" के आर्केस्ट्रा विभाग में सितार तथा जलतरंग वादक की नौकरी मिल गई। कुछ ही दिनों के पश्चात् इन्होंने सितार वादन में आश्चर्यजनक उन्नति करली, जिससे प्रभावित होकर संगीत निर्देशकों ने जाफ़र साहब को 'महात्मा विदुर' नामक फ़िल्म में स्वतन्त्र सितार वादन का काम सौंपा। इस कार्य को सफलता पूर्वक निभाने के बाद आपको क्रमशः अनेक प्रसिद्ध चलचित्रों में स्वतन्त्र सितार बजाने के अवसर मिले, इनमें 'अनारकली' और 'शबाब' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार शीघ्र ही यह एक लोकप्रिय सितार वादक बन गये और विभिन्न संगीत गोष्ठियों तथा संगीत सम्मेलनों में इनके कार्यक्रम होने लगे। फिर तो आकाशवाणी केन्द्र भी इनकी ओर आकर्षित हुए। रेडियो से इनका सितार वादन प्रसारित होने लगा तथा दिल्ली आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी इन्होंने भाग लिया।

इसमें सन्देह नहीं कि इस तरुण सितार वादक ने वर्तमान सितार वादकों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इनके सितार वादन के मुख्य आकर्षण हैं—तैयारी और मिठास। प्राचीन और आधुनिक शैली का सामंजस्य होने के कारण इनकी वादन शैली में मौलिकता उत्पन्न होगई है, जिसे आजके नवयुवक श्रोता बहुत पसन्द करते हैं। सितार की शिक्षा बीनकार से प्राप्त होने के कारण इनके वादन में वीणा अङ्ग का भी आभास मिलता है। आप रज़ाखानी, मसीतखानी दोनों प्रकार की गतें कुशलता से बजाते हैं। इतना होते हुए भी यह युवक कलाकार अभिमान से कोसों दूर है और अभी तक अपने को एक विद्यार्थी के रूप में मानता है। अन्य सितार वादकों के प्रति आपका आदरणीय भाव रहता है। अपने सरल स्वभाव के कारण थोड़ी ही देर में आप हर प्रकार के वातावरण में घुल-मिल जाते हैं।

★

अमृतसेन
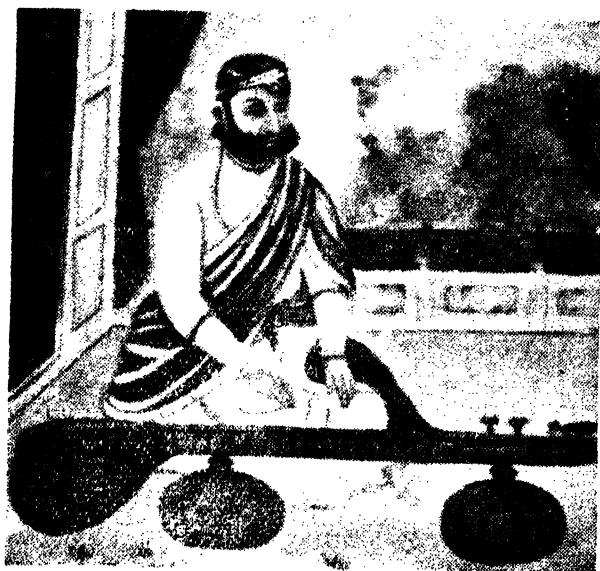
तानसेन के वंशज मियां अमृतसेन उन्नीसवीं शताब्दी के एक महान और उच्चकोटि के संगीतज्ञ हुए हैं। इनके पिता का नाम रहीम सेन था। वह अपने समय के श्रेष्ठतम सितार वादकों में से थे। अमृत सेन का जन्म विक्रम सम्वत् १८७० में हुआ था। संगीत के वातावरण में ही आप पैदा हुए और उसी वातावरण में परिवर्धित होकर आपको सांसारिक ज्ञान की प्राप्ति हुई। संगीतमय संस्कार एवं तदनुकूल वातावरण मिलने के कारण आप बाल्यकाल में ही एक प्रभावशाली सितार वादक बन गये। पिता ने अपने पुत्र अमृतसेन को स्वयं ही सितारवादन की खास तालीम दी थी और उनके लिये सख्त हिदायत कर दी थी कि अन्य किसी साज से हाथ न लगाकर उन्हें अपने जीवन में केवल सितार ही सीखना है।

जयपुर में जब अमृतसेन महाराजा रामसिंह के यहां मुलाज़िम हुए तो निरन्तर आठ दिन तक रात्रि के समय केवल एक कल्याण राग ही सुनाते रहे। आठवें दिन जब यह सितार बजाकर घर को चले गये तो महाराजा रामसिंह के दीवान फतहसिंह ने कहा "सरकार! मियां अमृतसेन को क्या और कोई राग बजाना नहीं आता, जो ८ दिन से एक ही राग कल्याण के पीछे पड़े हुए हैं"? इस पर महाराज ने कहा कि तुम नहीं जानते फतहसिंह! मियां अमृतसेन एक ही राग को नित्य नये ढङ्ग से बजाकर अपना पांडित्य दिखा रहे हैं, यह बड़ा कठिन काम है कि एक ही राग को ८ दिन तक बजाया जाय और उसमें नित–नये काम और नये ढङ्ग पैदा किये जांय।

नवें दिन जब अमृतसेन जी दरबार में आये तो उस दिन कल्याण न बजाकर दूसरा राग बजाया। जब सितार वादन बन्द हुआ तो महाराज रामसिंह ने कहा। मियां जी आज कल्याण नहीं सुनाया ? इस पर अमृतसेन जी बोले "सरकार मेरे मनमें तो एक महीने तक आपको कल्याण सुनाने की इच्छा थी लेकिन दरबार में कुछ चकल्लस ऐसी ही सुनी जिससे मैंने आज राग बदल दिया।"

झझर में अमृतसेन जी का सितार सीखने एक बंगाली आया करता था। कुछ समय तक वह सीखता रहा। एक दिन इनका सितार सुनकर बङ्गाली बहुत प्रभावित हुआ और बार-बार यह कहता हुआ घूमने फिरने लगा कि "हाय-हाय ऐसा सितार हमको नहीं आयेगा, नहीं आयेगा" और वह पागल होगया। उस बङ्गाली के पागल होने से अमृतसेन जी डर गये और फिर बहुत दिन तक किसी को सितार नहीं सिखाया।

अमृतसेन के अन्य दो भाई नियामतसेन और लालसेन भी थे। इन्होंने भी अपने पिता से सितार वादन की शिक्षा प्राप्त की थी। इनमें से नियामतसेन तो बचपन में ही स्वर्गवासी होगये तथा लालसेन के हाथ में किसी कारण गलाव पड़ गया, अतः सब भाइयों में केवल अमृतसेन ही उच्चकोटि के कलाकार बन सके। इनका व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर तथा आकर्षक था। हृदय के बड़े कोमल तथा दयावान थे। परोपकारिता एवं फकीरों को दान आदि देना इनके स्वाभाविक गुण थे। विलासी जीवन से दूर, कला की साधना में मग्न और कठोर परिश्रमी अमृतसेन को संगीत जगत में उत्तरोत्तर सम्मान तथा कीर्ति प्राप्त होने लगी। तत्कालीन अनेक राजा-महाराजा, नवाब, जागीरदार अपने यहां के संगीत उत्सवों में अमृतसेन को निमन्त्रित करने लगे। इन कार्य-क्रमों में भाग लेते हुए आपको यथेष्ट धन एवं यश की प्राप्ति होने लगी।

जैपुर नरेश महाराज रामसिंह ने इनकी कला पर मुग्ध होकर इनके लिये बिलकुल जागीरदारों जैसी सुविधायें प्रदान कर रक्खी थीं। इनके देहावसान के पश्चात् अमृतसेन ने जयपुर छोड़ दिया और अब यह नवाब ललर के आश्रय में रहने लगे। वहां कुछ समय तक आपने नवाब साहब को संगीत की शिक्षा दी। घटनाचक्र के कारण यह स्थान भी आपको छोड़ना पड़ा। यहां से आप दिल्ली चले गये। दिल्ली से अलवर नरेश महाराज शिवदानसिंह ने आपको अपने यहां बुला लिया और इन्हें यथेष्ट सम्मान एवं सम्पत्ति देकर प्रसन्न किया। अन्त में आप जयपुर में ही आकर सदैव के लिये बस गये।

दीर्घायु प्राप्त करने के पश्चात् पौष कृष्णा ८ सम्वत १९५० वि० प्रातःकाल, ८० वर्ष की अवस्था में जयपुर में ही आपका स्वर्गवास होगया।

मियाँ अमृतसेन ने अपने जीवनकाल में सितार वादन की कला को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया था। संगीत के क्षेत्र में आपको जितनी लोकप्रियता, यश, कीर्ति और सम्पत्ति की प्राप्ति हुई उतनी शायद ही किसी कलाकार को हुई हो। संगीत के परिवर्धन के लिये आपके द्वारा किये हुए प्रयत्न सदैव स्मरणीय रहेंगे। आपकी शिष्य परंपरा बड़ी सुदृढ़ और विशाल है। आज भी जयपुर के सितार वादक अपने को मियाँ अमृतसेन के घराने का कहते हुए गर्व अनुभव करते हैं।

★

अमीरखां (रामपुर)

तानसेन-वंश में कण्ठ सङ्गीत तथा यन्त्र सङ्गीत दोनों ही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। गुणीजन अपनी-अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार चुनाव करके कण्ठ सङ्गीत या वाद्य सङ्गीत में विशेषता प्राप्त करते थे; यह रीति इस घराने में आदिकाल से चली आई है।

रामपुर के प्रसिद्ध बीनकारों में अमीर खाँ एक उच्चकोटि के कलाकार होगये हैं। अमीर खां ने वीणा के बारह अङ्ग समुदाय का अभ्यास किया था, तथापि उनके कण्ठ में असाधारण मिठास होने के कारण उन्होंने वीणा की अपेक्षा कण्ठ सङ्गीत को अधिक महत्व दिया और यन्त्र सङ्गीत का भार अपने छोटे भाई रहीम खां को सौंपकर स्वयं कण्ठ संगीत में विशेष रुचि लेने लगे।

अमीर खां जब रामपुर में आये तब बहादुरसेन खां नवाब रामपुर के गुरु पद पर आसीन थे, अतः अमीर खां को भी उन्होंने वहीं रख लिया। उस समय अमीर खां होरी और ध्रुपद गायन में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके थे और बहादुर सेन सुर सिंगार ऐसा सुन्दर बजाते थे कि उनके बाद किसी का रङ्ग नहीं जमता था; किन्तु अमीर खाँ की मधुर स्वरलहरी सुर सिंगार के स्वरों को और भी समुज्वल करती थी। ऐसे दो गुणियों को संयुक्त रूप में पाकर रामपुर संगीत कला में विशेष समृद्धशाली होगया।

विद्या को छिपाने की आदत अमीर खां में नहीं थी, अतः आपने सच्चे दिल से तालीम देकर कई शिष्य तैयार किये। आपके प्रधान शिष्यों में प्रसिद्ध सरोदिये फिदा हुसेन का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो कि अखिल भारतीय सङ्गीत सम्मेलनों में अपने रबाब और सरोद वादन से ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद वजीर खां के पिता होने का सौभाग्य भी उस्ताद अमीर खां को प्राप्त हुआ है। अमीर खां ने अपने पुत्र वजीर खां को कण्ठ सङ्गीत के साथ-साथ वीणा के सभी अङ्गों की शिक्षा भी पूर्णरूप से दी थी। वृद्धावस्था में जब अमीर खां बीमार रहने लगे तो उन्होंने अपना प्रिय पुत्र वजीर खां नवाब हैदरअली को सौंप दिया, तत्पश्चात् सन् १८७० ई० के लगभग अपनी जीवन लीला समाप्त की।

★

अमीर खां

सेनी घराने के श्रेष्ठतम सितार वादकों में प्रसिद्ध सितारिये अमृतसेन के बहनोई अमीर खां का प्रमुख स्थान था। इनके पिता का नाम वजीरखां व पितामह का नाम हैदरबख्श था।

अमीर खां ने प्रथम, जयपुर में महाराज रामसिंह जी के यहां नौकरी की, फिर आप ग्वालियर नरेश जयाजीराव तथा माधवराव जी के शासन में रहे और उन्हीं के पुत्र माधवराव महाराज के उस्ताद बने। उच्चकोटि के कलाकारों में स्वभाव की सरलता एवं विनम्र प्रकृति आदि कुछ स्वाभाविक गुण हुआ करते हैं; यह विशेषतायें आप में भी विद्यमान थीं। आप इतनी भोली प्रवृत्ति के थे कि चाहे किसी को अपना वाद्य बजाकर सुना दिया करते थे। मसीतखानी बाज में आप पूर्ण सिद्धहस्त थे।

अमीर खां इस बात के विरोधी थे कि सितार वादक उच्चकोटि का बीनकार भी बन सकता है। एक बार किसी सज्जन ने प्रश्न किया कि खां साहेब

बहुत से सितार वादक बीन भी बजाया करते हैं, उनकी तरह आप भी बीन क्यों नहीं बजाते ? खां साहेब ने उत्तर दिया कि बीन और सितार की शिक्षायें अलग–अलग हैं। कोई भी व्यक्ति एक जीवन में दोनों साज बजाने में पूर्ण नहीं हो सकता। इस प्रकार के स्पष्टवादी कलाकार आजकल बहुत ही कम देखने में आते हैं।

पूना के 'इतिहास संशोधक मंडल' ने आपकी गतों का संग्रह कर रक्खा है, ऐसी जानकारी तत्कालीन विज्ञजनों के कथन द्वारा प्राप्त होती है। आपकी गतें तथा तोड़े आदि का काम पूर्व परम्परा के अनुसार बहुत उत्तम कोटि का हुआ करता था। आपके पट्ट शिष्य श्रीपाद बुवा मसूरकर जी बाजपेयी थे, मसूरकर जी के सुपुत्र प्रो० बालकृष्ण मसूरकर ग्वालियर में संगीत विद्यालय चला रहे हैं। दीर्घायु प्राप्त करते हुए, अमीर खां साहेब बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्घ, सम्वत् १९७२ वि० के कार्तिक मास में स्वर्गवासी होगये।

★

अलाउद्दीन खाँ

प्रसिद्ध सरोद नवाज़ खाँ साहेब उस्ताद अलाउद्दीन खां का जन्म सन् १८७० ई० में त्रिपुरा जिले के शिवपुर नामक ग्राम के एक किसान परिवार में हुआ। आप ५ भाई तथा दो बहिनें थे, आपके पिता स्वभाव से ही अत्यन्त विनम्र, शान्त, महान् शिवभक्त तथा संगीत प्रेमी थे।

इनके पिता को संगीत से अत्यन्त प्रेम था, अतः आपको बाल्यकाल से ही संगीत सुनने में विशेष रुचि थी। रबाब के प्रसिद्ध वादक काज़िम अलीखाँ उन दिनों त्रिपुरा दरबार में रबाब बजाया करते थे। इनके पिता काज़िम अली का रबाब सुनने के लिये विशेष उत्सुक रहते थे और वे काज़िमअली खाँ का रबाब सुनने के लिये उनके मकान के पीछे घन्टों तक प्रतीक्षा में बैठे रहते। इस प्रकार छुप-छुप कर इनके पिता जी रबाब सुना करते एक दिन काज़िमअली खाँ के एक नौकर ने उन्हें मकान के पीछे देख लिया और पकड़

कर उस्ताद के पास ले गया। उस्ताद ने पूछा तुम कौन हो? उन्होंने उत्तर दिया कि मेरा नाम साधू खाँ है, मैं शिवपुर का एक किसान हूँ। संगीतकला की विशेष जानकारी न होते हुये भी मुझे इससे प्रेम है। इसीलिये मैं अपने घर से जब तब यहां आकर आपकी कला का आनन्द लेता रहता हूँ। आपकी बड़ी कृपा हो यदि मुझे भी आप रवाब सिखा दें! इसके उत्तर में खाँ साहब ने हँसकर कहा-"यह बाजा अपने खान्दान के लड़के के अलावा हम और किसी को नहीं सिखा सकते। इसलिये रबाब तो तुझको मैं नहीं सिखा सकता, अगर तेरी इच्छा हो तो सितार सीख सकता है।" यह सुनकर साधू खाँ सितार सीखने के लिये राजी हो गये। वे उस्ताद के पास सितार सीखने के लिये जाने लगे और जब कभी अपनी खेती की सब्जी तथा कुछ चावल इत्यादि उस्ताद के लिये ले जाया करते।

उस समय अलाउद्दीन खाँ की उम्र लगभग तीन–चार वर्ष की थी। इनके पिता साधू खाँ घर पर आकर जब सितार का रियाज़ करते तो आप भी उनके साथ-साथ गुनगुनाया करते थे। इनके बड़े भाई घर पर नित्य प्रति तबले का अभ्यास किया करते थे, अतः बालक अलाउद्दीन खाँ ने तबले के कई ठेके कंठस्थ कर लिये। इस प्रकार अल्पायु में ही स्वर तथा लय इनके अन्दर प्रविष्ट हो चुके थे।

कुछ समय बाद आपको कलकत्ते जाने की धुन सवार हुई। और किसी प्रकार कलकत्ते पहुँच ही गये। उन दिनों कलकत्ते में स्वामी विवेकानन्द के भाई हाबूदत्त वाद्य संगीत में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। अँग्रेजी आरकेस्ट्रा के अनुसार हिन्दुस्तानी वाद्यवृन्द को संगठित करने के प्रयत्न उन दिनों चल रहे थे। आप उनसे मिले और वाद्य सीखने की अपनी इच्छा प्रकट की। हाबू दत्त ने इनकी परीक्षा लेने के लिये "फिडल" बजाई, तत्काल ही अलाउद्दीन खाँ ने उसकी सरगम बना दी। इस पर वे बहुत प्रसन्न हुये और फिडल सिखाना शुरू कर दिया। पास का पैसा समाप्त हो चुका था, अतः गिरीशचन्द्र घोष की सहायता से यह एक नाटक कम्पनी में गये और लोबो नाम के एक बेंड मास्टर के पास इङ्गलिश नोटेशन सीखते हुये एक अन्य मास्टर से शहनाई भी सीखने लगे। दिन में दो तीन गुरुओं के पास सीखना, दो तीन घन्टे प्रत्येक साज का अभ्यास करना, फिर रात को नाटक कम्पनी में आरकेस्ट्रा के साथ बजाना, यह कार्यक्रम तीन वर्ष तक चालू

रहा। इस समय आपको इतना अभ्यास हो गया था कि स्टाफ–नोटेशन पढ़कर इंगलिश बैंड में अपने साज बजा लेते थे। इस समय आपकी उम्र लगभग १५ वर्ष की थी।

कुछ दिनों बाद आप मुक्तागाछा नामक ग्राम में पहुँचे, वहाँ एक जमींदार के यहाँ उत्सव था। उसमें अनेक गायक वादकों के साथ एक खाँ साहब सरोद बजाने वाले भी आये थे, उन्होंने अपनी सरोद मिलाकर आलाप आरम्भ किया तो उसे सुनकर अलाउद्दीन खाँ अपनी सुध–बुधि भूल गये। ऐसा उत्तम सरोद वादन इन्होंने अभी तक नहीं सुना था। ये इतने प्रभावित हुये कि जल्से के बीच में ही इन्होंने सरोद नवाज़ खाँ साहब के पैर पकड़ लिये और कहा कि जब तक आप मुझे अपना शागिर्द बनाकर सरोद सिखाना स्वीकार नहीं कर लेंगे, तब तक मैं पैर नहीं छोड़ूँगा। गाँव के जमींदार साहब अलाउद्दीन खाँ को पहले से ही जानते थे, अतः उनकी सिफारिश पर उक्त खाँ साहब ने इन्हें सरोद सिखाने का वचन दे दिया। सरोद बजाने वाले इन खाँ साहब का नाम अहमद अली था, ये रामपुर के रहने वाले थे। इनको सरोद का गुरू बनाकर अलाउद्दीन खाँ ने गंडा बंधवा लिया और सरोद के ही द्वारा संगीत शिक्षा प्राप्त करने का संकल्प कर लिया।

उस्ताद अहमदअली खाँ के साथ अलाउद्दीन खाँ कलकत्ते में ही रह कर उनकी सेवा सुश्रुषा करने लगे। इनकी सेवा से उस्ताद प्रसन्न तो रहते थे, लेकिन सिखाने के नाम कुछ नहीं था। कभी कभी विशेष आग्रह पर कोई गत बता देते थे; फिर भी उनकी सरोद सुन–सुन कर इनका अभ्यास बढ़ने लगा।

एक दिन जब खाँ साहब बाहर गये तो पीछे अलाउद्दीन खाँ सरोद पर उनके "जोड़ के काम" की नकल करने बैठ गये, किन्तु उन्होंने आकर इन्हें पकड़ लिया और सख्ती से आज्ञा दी "जब तक मैं न बताऊँ "जोड़ का काम" नहीं बजाना! केवल गत तोड़े का अभ्यास किये जाओ!" उस दिन से खाँ साहब का व्यवहार इनके प्रति अच्छा नहीं रहा। उनको ऐसा लगा कि इसने मेरे जोड़ का काम चुरा लिया है फलतः इनकी शिक्षा बन्द हो गई।

अलाउद्दीन खाँ फिर गुरू की खोज में निकल पड़े। उन दिनों रामपुर में उस्ताद वज़ीर खाँ संगीत के विशेष गुणी थे। रामपुर के नवाब साहब भी

उनके शिष्य थे। ये चार पांच माह तक रोजाना वजीर खां के घर के सामने इस आशा से घण्टों खड़े रहते कि कभी उस्ताद से भेंट हो जाय, लेकिन उनकी दृष्टि इन पर नहीं पहुंचती थी, क्यों कि सिपाहियों का पहरा रहता था। ये अत्यन्त निराश होगये और २) की अफ़ीम लाकर आत्म हत्या करने की सोची। मसजिद में शाम को नमाज़ पढ़ने गये तो इनका उदास चेहरा देखकर एक मौलवी साहब ने दुख का कारण पूछा! तब इन्होंने अपनी व्यथा कह सुनाई और अफीम की पुड़िया भी उन्हें दिखादी। मौलवी साहब ने कहा कि आत्म-हत्या महापाप है, मैं तुझे एक चिठ्ठी लिखकर देता हूं उसे नवाब साहब को किसी तरह दे देना, वे तुम्हारी संगीत शिक्षा का प्रबन्ध कर देंगे।

उन दिनों बंगाल में स्वदेशी आंदोलन चल रहा था, अंग्रेज अधिकारियों पर बम फेंके जाते थे। एक दिन नवाब साहब की मोटर आ रही थी, ये मोटर के सामने जा खड़े हुये, मोटर रुक गई! पुलिस दौड़ी आई, इनको दो थप्पड़ लगाकर नवाब साहब के सामने पेश किया गया तो इन्होंने मौलवी साहब वाली चिट्ठी नवाब साहब की ओर फेंक दी। नवाब साहब ने चिट्ठी पढ़कर मुस्कराते हुए पूछा "अफीम कहां है?" इन्होंने अफीम की पुड़िया निकालकर उन्हें दिखा दी। नवाब साहब इनको अपने साथ मोटर में बैठाकर अपने यहां ले गये, वहाँ जाकर पूछा तुम कौन-कौन से साज़ बजाना जानते हो? बजा कर दिखाओ। अलाउद्दीन खां ने उनके सामने क्लैरोनेट, कारनेट, इसराज तथा शहनाई इत्यादि साज़ बजा कर दिखाये, तो नवाब साहब बहुत प्रसन्न हुये। अलाउद्दीन खां ने उनसे प्रार्थना की कि मुझे उस्ताद वज़ीर खां का शागिर्द बनवा दीजिये! उसी समय नवाब साहब ने अपनी मोटर भेजकर वजीर खां को बुलवाया और एक हजार रुपये तथा वस्त्र आदि देकर—अलाउद्दीन खाँ के गंडा बंधवा दिया। गंडा बांधते समय वजीर खां ने इनसे प्रतिज्ञा कराई कि वेश्या के यहां कभी न जाऊँगा और न कभी उन्हें सिखाऊँगा। यह शपथ लेने के बाद गंडा बांधा गया। उस्ताद वजीर खां के यहां रहकर और उनकी सेवा करते-करते इन्हें ढाई वर्ष व्यतीत होगया किन्तु उन्होंने भी इन्हें कुछ नहीं सिखाया। लोगों ने इनसे कहा कि वजीर खां तुझे तो क्या, अपने बेटे को भी नहीं सिखाते।

इन्हीं दिनों रामपुर के नवाब साहब विलायत से शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे। उन्होंने रामपुर में एक विशाल वाद्यवृन्द तैयार कराया और उसमें बड़े-बड़े संगीतज्ञ रक्खे। जिनमें लखनऊ के रज़ाहुसेन नामक प्रसिद्ध ध्रुपदिये

भी थे। इस वाद्यवृन्द में एक दिन अलाउद्दीन खां को बेला बजाने का मौका मिल गया, इनकी बजाई हुई गतें सबको बहुत पसंद आई। जिससे वाद्यवृन्द में काम करने वाले गुणी लोग बहुत प्रभावित हुये और इनको कुछ बताने भी लगे। साथ ही साथ इन्होंने एक युक्ति और निकाली। गांव भर के अच्छे अच्छे गायक वादकों को अपने घर पर निमन्त्रित करके यह संगीत गोष्ठी करने लगे। उसमें तरह-तरह के साज बजते और गाने होते। गोष्ठी समाप्त होने के बाद सुनी हुई चीजों का अभ्यास करते, इसमें कभी-कभी सवेरे के तीन, चार बज जाते। इस प्रकार इन्होंने बहुत सी चीजों का भंडार प्राप्त कर लिया। बाद में उस्ताद वजीर खां, जो इन्हें पहले कुछ नहीं सिखाते थे, इनकी ओर आकर्षित होने लगे। उन्होंने इन्हें संगीत शिक्षा देनी शुरू करदी। वज़ीर खां के पुत्रों के द्वारा भी इन्हें संगीत-शिक्षा प्राप्त होने लगी। जब ये संगीत कला में अच्छी उन्नति कर चुके, तो एक दिन वज़ीर खां ने बड़े प्रेम से इनके कंधे पर हाथ रखकर कहा कि अलाउद्दीन! अब तेरी तालीम पूरी होगई है, तेरी इच्छा हो तो भ्रमण करके संगीत की महफिलों में भाग ले सकता है।

इस प्रकार गुरू जी का आशीर्वाद पाकर यह भ्रमण के लिये निकल पड़े और सन् १९११ के लगभग कलकत्ते पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद विभिन्न संगीत प्रदर्शनों में भाग लेने के पश्चात् ये मैहर रियासत में १५०) माहवार पर महाराज बृजनाथ के यहां मुलाजिम होगये। महाराज ने नियमानुसार अलाउद्दीन खां से गंडा भी बँधवा लिया।

कुछ समय तक गृहस्थ जीवन बिताने के बाद यह अपने बच्चों को संगीत शिक्षा देने लगे। इनके पुत्र अली अकबर मैट्रिक के बाद नहीं पढ़ सके और उनका रियाज़ सरोद पर ही चलने लगा। इनकी पुत्री अन्नपूर्णा भी बाल्यकाल से ही संगीत शिक्षा प्राप्त कर रही थी, और सुरबहार बजाने में वह अत्यन्त कुशल हो गई थी। उन दिनों प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर के भ्राता पं० रविशंकर भी सितार सीखने के लिये अलाउद्दीन खाँ के घर पर रहने लगे थे। रविशंकर ने अपने परिश्रम से सितार वादन में उन्नति करके उस्ताद को शीघ्र ही आकर्षित कर लिया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का कहना है कि जिस समय एक ओर मेरा पुत्र अली अकबर, बीच में पुत्री अन्नपूर्णा और उसके पास रविशंकर बैठकर अपनी-अपनी कला का चमत्कार दिखाते, तो मुझे ऐसा अनुभव होता था कि इस मानव लोक में, मैं नाद सागर का प्रत्यक्ष आनन्द ले

रहा हूं। पं० रविशंकर की कला और सौंदर्य से प्रभावित होकर इन्होंने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा का विवाह उनके साथ कर दिया।

यद्यपि अलाउद्दीन खां की उम्र इस समय लगभग ८४ वर्ष की है, फिर भी आपका सरोद वादन का अभ्यास चालू है। आपके पास ध्रुपद-धमार की लगभग तीन हजार चीज़ों का संग्रह है। जिनमें से १२०० के करीब कंठस्थ भी हैं। आपका स्वभाव अत्यंत विनयशील और उदार है। यहां पर यह बता देना भी उचित होगा कि गत ३८ वर्षों से आप मैहर स्टेट में रह रहे हैं, इसी बीच में छुट्टी ले लेकर आप उदयशंकर की पार्टी के साथ इङ्गलैंड, ग्रीस, आस्ट्रिया, स्वीज़रलैंड, इटली, बेल्जियम, फ्रांस और अमेरिका इत्यादि का भ्रमण भी कर चुके हैं। आपका संगीत ज्ञान केवल सरोद तक ही सीमित न रह कर सार्वभौमिक है। मुसलमान होते हुये भी आप सात्विक, शाकाहारी जीवन व्यतीत करते हैं और अपनी सम्पादन की हुई विद्या को प्रदान करने में अत्यन्त उदार हैं। किसी भी विद्यार्थी को आप निराश नहीं करते।

कुछ समय पहिले राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा एक हजार रुपया और एक दुशाला प्राप्त करके आप सम्मानित भी हो चुके हैं।

*

अली अकबर
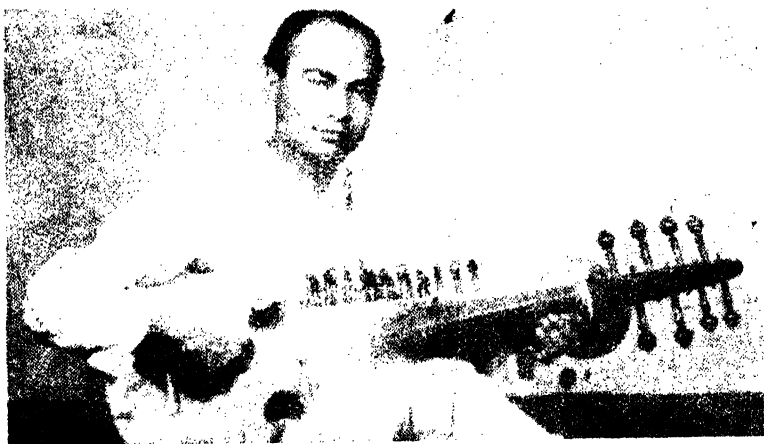
प्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद अलीअकबर का सरोद वादन जिन व्यक्तियों ने सुना है वे उनकी कलात्मक प्रतिभा से भली भांति परचित हैं। वर्तमान समय में आप भारत के अद्वितीय सरोद वादकों में से हैं। इस वाद्य को वे जिस गम्भीरता, माधुर्य तथा मुलायमी से बजाते हैं उसका जवाब मिलना मुश्किल है। उनके मिज़राब संचालन में एक ऐसा आकर्षण पाया जाता है जिसे लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

अलीअकबर का जन्म १४ अप्रैल सन् १९२२ ई० को शिवपुर (बंगाल) में हुआ था। संगीतमय वातावरण में जन्म लेने के कारण बहुत छोटी उम्र से ही संगीत के प्रति आपको अभिरुचि उत्पन्न हो गई। आपके पिता उस्ताद अलाउद्दीन खाँ (मैहर वाले) बाल्यकाल से ही इन्हें संगीत की शिक्षा देने लगे। तालीम की सख्ती और नियन्त्रण यहां तक था कि कमरे में बन्द रख-कर इन्हें छै-छै घण्टे प्रतिदिन अभ्यास कराया जाता था। इस परेशानी से पीछा छुड़ाने के लिये एक दिन रात को जब कि यह १६ वर्ष के थे—दो मंज़िले मकान से रस्सी के सहारे उतर कर घर से भाग निकले। स्टेशन पर आये तो उस समय इनके पास इनका सरोद, हाथ में घड़ी और पाकिट में सिर्फ दो रुपये थे। किसी प्रकार गाड़ी में बैठ गये, एक रुपया गाड़ी में ही खर्च

कर डाला, फिर कुछ दूर चलकर जब टिकिट चकर इनके डिब्बे में प्रविष्ट हुआ और इनसे टिकिट मांगी गई तो यह बगलें झांकने लगे, आखिर इन्हें खंडवा से एक स्टेशन पहले ही गाड़ी से उतार दिया गया। वहां से अली-अकबर पैदल ही खंडवा पहुँचे। वहां एक जगह जुआ हो रहा था, एक आदमी से पूछने पर कि यहां क्या हो रहा है? उसने जवाब दिया कि "एक लगाओ दस ले जाओ"। इन्होंने बचा हुआ एक रुपया दांव पर लगा दिया और उसे भी हार गये। अब इन्होंने सोचा कि बम्बई कैसे पहुँचेंगे, घड़ी भी दांव पर लगाकर तक़दीर आज़माई करलें, आख़िर घड़ी भी दांव पर रखदी गई और उसे भी हार बैठे। अब इनके पास सरोद के अतिरिक्त कुछ नहीं बचा तो यह बहुत घबराये और उस जुए के संचालक से हाथ जोड़कर बोले कि मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है यदि आप मेहरबानी करके मुझे बम्बई की टिकिट दिलवादें तो ज़िन्दगी भर एहसानमंद रहूंगा, लेकिन ऐसे लोगों के पास उदारता कहां? उसने स्पष्ट कह दिया—"चलिये रास्ता नापिये!"

भूखे प्यासे आप स्टेशन पर घूम रहे थे कि अचानक एक बंगाली सज्जन आते दिखाई दिये, उनसे इन्होंने अपनी सारी रामकहानी कहदी। उन महोदय ने पहले तो इन्हें भर पेट खाना खिलाया और फिर शहर में सरोद के दो प्राइवेट प्रोग्राम भी करादिये, जिनसे इन्हें बम्बई का सफ़र खर्च प्राप्त होगया और यह बम्बई पहुंच गये। रोजी की तलाश में अली अकबर बम्बई आकाश-वाणी पर पहुँचे। रेडियो संचालक उन दिनों वहां बुखारी साहब थे, उन्होंने इनकी कला से प्रभावित होकर इन्हें काम दे दिया। जब ५-६ दिन बाद इनका सरोदवादन का कार्यक्रम बम्बई रेडियो से प्रसारित हुआ, तो उसे अकस्मात् ही उस दिन मैहर के महाराज ने सुन लिया। उन दिनों अली अकबर के पिता उस्ताद अलाउद्दीन मैहर महाराज के दर्बारी संगीतज्ञ थे, अतः महाराज के द्वारा उनको भी पता चल गया, फलस्वरूप बम्बई रेडियो से पकड़ कर इन्हें मैहर वापिस ले आया गया।

इस घटना के पश्चात् रियाज़ की सख्ती इनके ऊपर कम करदी गई फिर भी शिक्षा क्रम चालू रहा और शनैः शनैः अलीअकबर उन्नति के मार्ग पर बढ़ते चले गये। आख़िर एक महान् कलाकार की संतान को एक दिन महान् बनना ही था।

१८ वर्ष की आयु में, सर्व प्रथम संगीत सम्मेलन इलाहाबाद में आपने भाग लिया, जो कि १९३६ ई० में हुआ था। आपकी एक विशेष रचना गौरी-मंजरी गुणीजनों द्वारा बहुत समादरित हुई जिसे उन्होंने नट, मंजरी

और गौरी इन तीन रागों के सम्मिश्रण से तैयार किया है। कोमल व शुद्ध स्वरों का एक विशिष्ट और व्यवस्थित ढङ्ग से प्रयोग करके आपने इस रचना में ऐसा सौंदर्य भर दिया है जिसकी मिसाल नहीं। दुख-सुख की आन्तरिक भावनाओं का चित्रण आपके द्वारा रचित "आंधियां" नामक फिल्म के गीत "हैं कहीं पै शादमानी और कहीं नाशादियां" में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त चंद्रनंदन, जोगिया, कालिंगड़ा, पहाड़ी, झिझोटी, ललित, अहीर-भैरव, हैमंत आदि राग भी आप बड़ी खूबी से व्यक्त करते हैं। तबला और मृदङ्ग की शिक्षा आपने अपने पिता के बड़े भाई महात्मा आफ़ताबउद्दीन से प्राप्त की थी।

१९५४ ई० के राष्ट्रीय संगीत समारोह में पहाड़ी, झिझोटी तथा आकाशवाणी संगीत सम्मेलन में जोगिया, कालिंगड़ा अली अकबर के बहुत सफल कार्यक्रमों में थे। प्रसिद्ध सितार वादक श्री रविशंकर आपके बहनोई हैं और जब कभी इन दोनों कलाकारों की जुगलबंदी होती है तो सरोद और सितार एक रूप होकर श्रोताओं को आत्म विभोर कर देते हैं।

हाल में ही आप अमेरिका तथा लंदन का भ्रमण करके, वहाँ के जन-समुदाय में भारतीय संगीत की महानता की अमिट छाप छोड़कर आये हैं। इसके अतिरिक्त आप अफगानिस्तान, फ्रान्स और बेलजियम का भ्रमण भी कर चुके हैं। अमेरिका में टेलीविज़न पर प्रोग्राम देने वाले आप प्रथम भारतीय कलाकार हैं।

यद्यपि प्राचीन कलाकारों के वादन में पंडित्यपूर्ण कला अवश्य पाई जाती है किन्तु सफाई, सुरीलापन, मींड के काम और स्वरविस्तार की गहराई तथा बारीकियाँ जो अली अकबर के सरोदवादन में मिलती हैं वह अन्यत्र नहीं पाई जातीं। अली अकबर की सबसे बड़ी विशेषता है उनका सुरीलापन, जिसे वह लय की जटिल से जटिल तथा अति द्रुत गति में भी कायम रखते हैं और अपने सुरीलेपन से श्रोताओं की हृदतंत्री को झंकृत कर देते हैं।

आपके शिष्यों में सर्व श्री निखिल बनर्जी (सितार) शरनरानी (सरोद) और बीरेन बनर्जी आदि कला कारों के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके प्रिय राग चन्द्रनन्दन, गौरीमंजरी दरबारीकान्हड़ा और पीलू हैं तथा तालों में त्रिताल और रूपक आदि हैं।

अभी भारतवर्ष को इस तरुण कलाकार से बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।

अली मोहम्मद (बड़कू मियां)

कण्ठ संगीत और यंत्र संगीत के उत्कृष्ट कलाकार अली मोहम्मद खां उर्फ बड़कू मियां वासिद अली खां के बड़े लड़के थे। ये रबाब और सुरसिंगार वादन में सिद्धहस्त थे। अली मोहम्मद के पिता को महाराजा टिकारी के द्वारा जागीर के रूप में पर्याप्त भू सम्पत्ति मिल गई थी। वासिद खां जीवन के अन्तिम दिनों में महाराज टिकारी के संगीत गुरु के रूप में, गया धाम में निवास करते थे। वासिद खाँ की मृत्यु के पश्चात् अली मोहम्मद खाँ अपने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बने। आपने अपने पिता से कण्ठ संगीत के साथ-साथ यन्त्र संगीत की भी शिक्षा प्राप्त की थी। पर्याप्त सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ये बन तो गये, किन्तु उसकी रक्षा करने में असमर्थ रहे। ग़रीब शागिर्दों के घेरे में आप प्रायः रहा करते थे, अतः जागीर की आय का बहुत बड़ा भाग शिष्यों को बाँट देते। भोग-विलास में भी काफी व्यय होने लगा, इस प्रकार सब सम्पत्ति शीघ्र ही ठिकाने लग गई, परन्तु इसका बड़कू मियां को कोई मलाल नहीं था। वे कहते थे कि मेरे पास ऐसा हुनर है कि मैं कभी भूखों नहीं मर सकता।

उन दिनों भारत के किसी भी नरेश के दर्बार में बड़कू मियां की उपस्थिति गर्व पूर्ण समझी जाती थी। तत्कालीन नैपाल नरेश को जब यह समाचार मिला कि अली मोहम्मद (बड़कू मियां) जैसे प्रसिद्ध कलाकार अर्थ संकट में हैं, तो उन्हें शीघ्र ही अपने पास बुला लिया और अपने दर्बार में स्थान देकर संगीत कला की एक बहुत बड़ी कमी दूर करली। नैपाल दर्बार में बड़कू मियाँ के समकालीन सभी गुणीजनों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। इनके आने से नैपाल राज्य संगीत का एक उच्च और विशिष्ट केन्द्र बन गया।

उस समय नैपाल दर्बार में ताजखां ध्रुपदिये, राम सेवक ख्यालिये व सितारिये, न्यामतउल्ला खाँ सरोदिये और मुराद अली सरोदिये को बड़कू-मियाँ के बाद विशेष सम्मानीय श्रेणी में गिना जाता था। अली मोहम्मद में यह विशेषता थी कि वे सर्वदा अपने शिष्यों तथा संगीत कलाकारों से घिरे रहते थे। आपका सुरसिंगार वादन नैपाल दर्बार में एक आकर्षण की वस्तु थी। सुरसिंगार के आलाप में उनका धैर्य असाधारण था। एक राग

को घण्टे भर विलम्बित और मध्यलय में बजाकर भी उनका वादन समाप्त नहीं होना चाहता था। इनकी मौलिक सूझ इतनी चमत्कारपूर्ण थी कि घण्टों तक तानें बजाते रहने पर भी प्रत्येक बार नई तानें श्रोताओं के सामने उपस्थित करते थे।

वृद्धावस्था में बड़कू मियाँ नैपाल राज्य के शीत प्रधान जयवायु को छोड़कर वाराणसी (बनारस) में निवास करने लगे। तत्कालीन काशी नरेश ने आपका शिष्यत्व स्वीकार किया। उस समय काशी में बड़कू मियां के कई प्रधान शिष्य तैयार हुए। काशी राज दरबार में उन दिनों निम्नलिखित गुणीजनों की संगीत सभा स्थायी रूप से थी:—

१—गायक अलीबख्श धमारिये, २—सेनी घराने के विख्यात ध्रुपदिये दौलत खां, ३—श्रीरामपुर के प्रसिद्ध ध्रुपदिये रसूल बख्श, ४—तसद्दुक हुसेन खाँ गायक।

बड़कू मियां के आगमन से काशी का संगीत क्षेत्र जाज्वल्यमान हो उठा था। आप काशी धाम में दीर्घ काल तक जीवित रहे एवं संगीत कला का यथेष्ट प्रचार व प्रसार करके बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वहीं पर अपना शरीर छोड़ा। आपके शिष्यों में स्व० राजा सर सुरेन्द्रमोहन ठाकुर, श्रीताराप्रसाद घोष, सैयद वंशज मीर साहेब, जालंधर वाले नन्ने खाँ बीनकार तथा पटना के ज़मींदार सितारिये प्यारे नवाब के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

इनायत खां

इनायत-खां का जन्म इटावा में १६ जून १८८५ ई० को हुआ। वालिद इमदाद खाँ की मृत्यु के पश्चात इनायत खाँ, इन्दौर दरबार छोड़ कर कलकत्ता चले गये और उनके भाई वहीदखाँ इंदौर ही रहे। इनायत खाँ कलकत्ता में स्वर्गीय श्री ताराप्रसाद घोप के मकान में जाकर रहने लगे। आपका विवाह १६ वर्ष की अवस्था में हुआ तथा पहली पत्नी ने चार बच्चों को जन्म दिया। पहिली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् आपने दूसरा विवाह किया और दूसरी पत्नी से भी दो बच्चे पैदा हुए। ये बच्चे भी समाप्त होगये। फिर कलकत्ता में सन् १६२२ में नसीरन बीबी का जन्म हुआ। इन्दौर से कलकत्ता आते ही आप श्री बृजेन्द्रकिशोर राय चौधरी के सम्पर्क में आये, जहां आप दरबारी गायक के रूप में सम्मानित किये गये। उस समय उनके दरबार में उस्ताद अमीर खां सरोदिया, इसराज वादक स्वर्गीय श्री शीतल प्रसाद मुखर्जी तथा ध्रुपद और टप्पा के गायक स्वर्गीय विपिनचन्द्र चटर्जी भी थे। श्री बृजेन्द्र-किशोर रॉय चौधरी संगीत के एक महान अनुरागी तथा संरक्षक हैं।

१६२४ में इनायत खां अपने परिवार के साथ स्थायी रूप से गौरीपुर (मेमनसिंह) चले गये। वहां पर श्री वीरेन्द्रकिशोर रॉय चौधरी ने आपसे सुरबहार तथा सितार की दीक्षा ली। इनायत खाँ की पुत्री शरीफन बीबी तथा सुपुत्र विलायत खाँ क्रमशः १६२४ तथा १६२७ में गौरीपुर में ही उत्पन्न हुए।

इनायत खाँ एक महान कलाकार थे। यद्यपि वे संगीत के क्षेत्र में अपने पिता की संगीत–प्रतिभा के प्रतिरूप ही थे, किन्तु उनके दृष्टिकोण तथा कला कृतियों में कुछ आधुनिकता थी। वे कलात्मक–सौंदर्य और माधुर्य के लिए रागों की परम्परागत रूढ़ियों का परित्याग करने के पक्ष में थे। उदाहरणार्थ वे स्वरमाधुर्य के हेतु काफी में तीव्र मध्यम का प्रयोग करते थे। एक बार उनके आश्रयदाता ने उनसे प्रश्न किया कि क्या तीव्र मध्यम का प्रयोग काफी में हो सकता है? इनायत खाँ ने उत्तर दिया—"नहीं" आश्रयदाता ने पुनः प्रश्न किया "फिर आप क्यों ऐसा करते हैं? इस पर वे बोले—"काफ़ी में कड़ी मध्यम लगाकर मुझे सात गोल्ड मौडिल मिले हैं, फिर मैं क्यों नहीं लगाऊँगा।" इनायत खाँ का यह प्रयोगवादी दृष्टिकोण जीवन भर रहा। केवल यही नहीं वे भूपाली में शुद्ध मध्यम का प्रयोग करते थे। यह एक आश्चर्य की बात है कि शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार के नवीन प्रयोगों से रागों की मौलिकता को ठेस लगती थी, किन्तु फिर भी उनमें एक विशेष माधुर्य होता था। उनके ये प्रयोग साहसिक, माधुर्य युक्त और भली भाँति सँयोजित होते थे। इस बात की पुष्टि इनायत खाँ के कुछ ग्रामोफोन रिकार्डों से हो सकती है।

कलकत्ता में सितार तथा सुरबहार को एक लोक प्रिय वाद्ययंत्र के रूप में प्रचिलित करने का श्रेय इनायत खां को ही है। सितार वहां इतना अधिक प्रचिलित हो गया था कि कलकत्ता के लगभग सभी घरों में सितार दिखाई देता था। किसी भी वाद्ययंत्रकार ने जनता में इतनी ख्याति प्राप्त नहीं की तथा किसी भी सितारिया ने इतने अधिक शिष्य नहीं बनाये। इनायत खाँ अपने विषय के पूर्ण पंडित थे।

इनायत खाँ अपने ज्येष्ठ पुत्र विलायत खाँ के साथ प्रयाग में सन १९३८ में आयोजित एक विशाल संगीत सम्मेलन में भाग लेने गये। वहां पर वे ज्वर के शिकार हो गये, और उनकी जगह उनके पुत्र विलायत खां ने सितार बजाया। प्रयाग से कलकत्ता लौटते समय रेल ही में सहसा वे अचेत हो गये थे। १० नवम्बर १९३८ को कलकत्ता लौटते ही ११ ता० को प्रातः ४ बजे वे अपने सितार वादन से स्वर्ग के देवताओं को रिझाने के लिए स्वर्ग चले गये। उनके मृतक शरीर को विधिवत् कब्र में दफना दिया गया। उस समय विलायत खां की अवस्था केवल ११ वर्ष तथा इमरत खां की अवस्था लगभग ५–६ की वर्ष की ही थी।

इनायत खां एक महान कलाकार थे। उनकी संगीतमयी अलौकिक प्रतिभा का लोहा केवल उत्तरी भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के कण्ठ-गायक तथा वादक मानते थे। वे बहुत लोकप्रिय होगये थे, उसका एक मात्र कारण यह था कि उनके पास ईश्वर प्रदत्त कुछ अलौकिक प्रतिभा थी। उनके पिता इमदाद खां ने तो केवल मम्मन खां को ही अपने शिष्य के रूप में छोड़ा था और इनायत खाँ ने असंख्य शिष्यों को छोड़ा। जिनमें से आजकल उनके सुपुत्र विलायत खाँ ख्याति प्राप्त सितार वादक हैं।

इमदाद खां

प्रसिद्ध सितारिये इनायत खाँ के दादा (वालिद के पिता) साहबदाद वास्तव में जन्म से हद्दूसिंह नामक हिन्दू थे; किन्तु बचपन में ही मुसलमान धर्म के अनुयायी होगये थे। साहबदाद की बूआ ग्वालियर के हद्दू–हस्सू खाँ नामक प्रसिद्ध ख्यालियों को ब्याही थीं और ससुराल में आते समय अपने साथ केवल साहबदाद को लाई थीं। उस समय हद्दू–हस्सू खाँ ज़मीन के अन्दर तहखाने में बैठकर संगीताभ्यास किया करते थे। संगीत के अतिरिक्त उनका दूसरा शौक था मुर्गे लड़ाना। अत: अपने मुर्गों के पिंजड़े को भी दोनों भाई रियाज़ वाले तहखाने में ही रखते थे, ताकि संगीताभ्यास में मुर्गे और उनकी लड़ाई देख–देखकर मन लगता रहे।

जब तक हद्दू–हस्सू खाँ अभ्यास करते थे तब तक साहबदाद भी एक बड़े पीतल के पिंजड़े में उसी स्थान पर रख दिये जाते थे ताकि दोनों भाइयों की विद्याचातुरी का अधिक से अधिक अन्श तथा रहस्य साहबदाद में समाविष्ट होता जाय। एक बार हद्दू–हस्सू खाँ जब बाहर गये हुए थे, साहबदाद उनके चुराये हुए, रियाज़ के कुछ अन्श का अभ्यास कर रहे थे। जब दोनों भाई घर वापिस आये और साहबदाद को अपने गायन तथा तानों को प्रस्तुत करते देखा तो प्रचण्ड हो उठे। हस्सू खाँ बड़े तेज़ मिजाज़ के थे और साहब–दाद को जान से मार डालने पर उतारू होने लगे, तो हद्दू खां ने उन्हें रोक कर कहा कि ठहरो, जब इसने इतने दिन से सीखा है तो कुछ तालीम इसे

और देकर यहां से निकाल देना चाहिये ताकि हल्का-फुल्का, अधकचरा गायन जनता में प्रस्तुत करके यह हमारी इज्जत में बट्टा न लगाये। अन्ततोगत्वा दोनों भाइयों ने साहबदाद को कुछ दिन और तालीम देकर घर से निकाल दिया। इसके पश्चात् साहबदाद ने बीनकार निर्मलशाह तथा मियाँ मौज से दीक्षा ली।

साहबदाद के दो पुत्र थे, करीमदाद तथा इमदाद। इमदाद सन् १८४८ के लगभग पैदा हुए थे और करीमदाद का देहावसान बाल्यकाल ही में हो गया। इमदाद खाँ का विवाह १६ वर्ष की अवस्था में हुआ था। साहबदाद की कामना थी कि इमदाद १२ वर्ष की संगीत साधना पूरी करने तक गृहस्थ के झंझटों से दूर ही रहे। किन्तु २१ वर्ष की अवस्था में वे बेगम बीबी नामक बालिका के पिता होगये। साहबदाद खाँ इस घटना से बहुत क्रोधित हुए और तानपूरा लेकर घर छोड़ कर चल दिये। किन्तु अन्य लोगों के समझाने पर वे इस शर्त पर लौटे कि इमदाद अब फिर बारह वर्ष अपनी धर्मपत्नी से विरक्त होकर अपनी साधना को पूरा करें और केवल सुरबहार की ही शिक्षा लें।

अब इमदाद खाँ ने २१ वर्ष की अवस्था में वाद्य संगीत की दीक्षा लेना आरम्भ किया। उनके पिता की मृत्यु कब हुई, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु पिता की मृत्यु के पश्चात् रजबअली साहब ने उनके गंडा बांधा, जो उस्ताद उमराव खाँ के शिष्य बन्दे अली के शिष्य थे और धाड़ी मीरासी थे। रजबअली की मृत्यु के पश्चात् इमदाद बनारस चले गये और वहां कुछ दिन ठहर कर सितार और सुरबहार का अपने ढङ्ग से अभ्यास करते रहे। वहां उन्होंने संगीतज्ञों से बनारसी ठुमरी का भी अभ्यास किया। वहीं पर आपने सितार के अनेक विशेषाभ्यास तथा प्रयोग किये। वीणा और रबाब तथा पखावज और तबले के विभिन्न लयों के गत तोड़ों का आपने कुशलता से समन्वय किया। तान और सपाट तानों की विभिन्न तिहाइयों का आपने प्रचलन किया। इमदाद खां ने विकसित दृष्टिकोण तथा कल्पना का संगीत के साथ समन्वय किया। साधारण सपेरों की धुनों तथा पुल पर से गुजरती रेल की धुन का समन्वय भी उन्होंने सितार वादन में किया। इस प्रकार उन्होंने जन जीवन से प्रेरणा लेकर कला को पुष्ट किया। वे सातों स्वरों को एक ही पर्दे पर बड़ी आसानी से और शुद्ध रूप में निकाल लेते थे और उनके

सुपुत्र इनायत खां भी इस क्रिया में दक्ष थे। इस प्रकार इमदाद खां ने सितार-सुरबहार वादन की एक नई प्रणाली का प्रतिपादन किया, जिसे लोग "इमदादखानी बाज" कहने लगे।

एक बार अवकाश के समय महाराजा सर ज्योतिन्द्र मोहन टैगौर बनारस पधारे, उस समय उनके समक्ष इमदाद खाँ को सितार-वादन का सुअवसर प्राप्त हुआ। श्री टैगौर आपकी नवीन सितार-वादन प्रणाली से इतने अधिक प्रभावित हुए कि आपको अपने साथ कलकत्ता लेगये। इस प्रकार महाराजा ने उन्हें अपने दरबारी गवैये का सम्मान प्रदान किया। उसी समय महाराजा ने एक विशाल संगीत-समारोह का आयोजन किया, जिसमें अनेक प्रख्यात संगीतज्ञों के साथ सुप्रसिद्ध सितार-वादक गुलाम मुहम्मद के सुपुत्र उस्ताद सज्जाद मुहम्मद भी भाग ले रहे थे। सज्जाद मुहम्मद सितार व सुरबहार वादन में पूर्ण दक्ष और इस विषय के उस्ताद थे। इमदाद उनके वादन से बड़े प्रभावित हुए और उस्ताद सज्जाद खां के वादन से प्रेरणा लेकर अपने वादन में उसका समावेश किया। महाराजा टैगौर की मृत्यु के पश्चात् वे स्वर्गीय ताराप्रसाद घोष के निवास स्थान पर सपरिवार रहने लगे, और अपने दोनों सुपुत्र इनायत खाँ तथा वाहिद के शिक्षण की ओर ध्यान दिया।

स्वर्गीय ताराप्रसाद बाबू का कहना था कि इमदाद खां की धर्मपत्नी जब जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रही थी, इमदाद खां सितार का रियाज़ कर रहे थे। जब कुछ पड़ौसियों ने उनसे अपनी दम तोड़ती धर्मपत्नी को अन्तिम बार देखने को कहा तो उन्होंने उत्तर दिया—"ठहरो, पहिले मेरा रियाज़ समाप्त हो जाने दो।" किन्तु दो घण्टे पश्चात् जबकि उनका रियाज़ समाप्त हुआ, उस समय तक उनके जीवन साथी का जीवन ही समाप्त हो चुका था, वे केवल अपनी पत्नी के मृतक शरीर को ही देख पाये। इसी प्रकार की कुछ घटनाओं से पता चलता है कि कलाकार के लिये कला की साधना का क्या महत्व है? इमदाद खां सच्चे संगीतोपासक होने के कारण संगीत साधना को सर्वोपरि स्थान देते थे।

कलकत्ता की जनता पर इमदाद खां तथा उनके दो बच्चों का जादू बहुत समय तक रहा। वे लोग वास्तव में धन्य हैं, जिन्होंने इन तीनों के सामूहिक कार्यक्रमों को, जैसे कि इस समय उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, अली अकबर खां

तथा रविशंकर के होते हैं, सुना और देखा है। कुछ समय कलकत्ता प्रवास के पश्चात् इमदाद खां अपने दोनों सुपुत्रों सहित इन्दौर के महाराजा होल्कर के दरबार में आगये, जहां वे अपने अन्तिम काल (सन् १९२०) तक रहे। आपका शरीरांत ७२ वर्ष की आयु में हुआ।

इमदाद खाँ अपने परिवार में एक मात्र संगीतज्ञ को छोड़ गये, और वे थे, उस्ताद बुन्दू खां के पिता पटियाला के उस्ताद मम्मन खां। वे इमदाद खाँ के सुरबहार से सारङ्गी इतनी मिलती-जुलती बजाते थे कि दूर से सुनने वाला व्यक्ति यही समझता था कि इमदाद खाँ सुरबहार बजा रहे हैं।

★

उमराव खां

रामपुर के छोटे नौबाद खां के पुत्र उमराव खां उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तानसेन घराने के एक उज्वल प्रतिभाशाली-तन्त्रकार होगये हैं। इनके समकालीन कलाकार जाफ़र खां, प्यार खां और बासत खां रबाब तथा सुरसिंगार बजाने में दक्ष थे, तो उमराव खां वीणावादन में सिद्धहस्त थे। इनकी संगीत पद्धति परस्पर उपरोक्त कलाकारों से मिलती-जुलती थी। इनके संगीत में जैसा माधुर्य था, वैसा ही इनके छन्दों में प्राप्त होता था। यह अपने समय के बहुत लोक प्रिय और प्रभावशाली वीणा-वादक हुए हैं।

इनके दो पुत्र अमीर खां और रहीम खां भी अच्छे बीनकार हुए। इनके अतिरिक्त उमराव खां के शिष्य भी कम नहीं थे। कुतुबुद्दौला और गुलाम मुहम्मद खां को आपने संगीत की तालीम दी थी। कतुबुद्दौला को सितार और वीणा सिखाई और गुलाम मुहम्मद खां को एक बड़ा सितार तैयार करके दिया, जिस पर उनको आलाप सिखाया। इसी बड़े सितार से सुरबहार की उत्पत्ति हुई। रामपुर-दरबार के प्रसिद्ध-बीनकार वज़ीर खां को भी इनके द्वारा शिक्षा मिली। उमराव खां की जन्म तिथि के सम्बन्ध में ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इनकी मृत्यु सन् १८४० के लगभग हुई, ऐसा प्रमाण मिलता है।

*

कासिमअली

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कासिमअली रबाबिया एक बड़े संगीतज्ञ हो गये हैं। इनके पिता काज़िमअली खां स्वर्गीय वज़ीर खां के नाना थे। बाल्यावस्था में कासिमअली ने अपने पिता एवं अपने चाचा सादिक़अली खां से रबाब तथा वीणा की शिक्षा पाई। यद्यपि आपका घराना रबाबियों का था, किन्तु वीणा वादन में भी आपकी साधना उच्चकोटि की थी।

पिता की मृत्यु के पश्चात् मटियाबुर्ज के नवाब वाजिदअलीशाह के दरबार में कासिमअली बीनकार के पद पर प्रतिष्ठित हुए, उस समय उस्ताद बासत खाँ भी वहीं थे। कासिमअली ने बासत खां से अनेक राग-रागिनी तथा ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त की।

मटियाबुर्ज-दर्बार भंग हो जाने के पश्चात् कासिमअली त्रिपुरा-राज्य (बंगाल) में चले गये। वहां त्रिपुरा के महाराज वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। फिर कुछ समय पश्चात भावाल-राज्य में स्वर्गीय महाराज राजेन्द्र नारायण रॉय के समीप आश्रय ग्रहण किया, यहीं पर कासिम अली का शेष जीवन व्यतीत हुआ।

कासिमअली का वाद्य सुनना राजा-महाराजाओं के लिये भी सुलभ नहीं था। वे प्रसन्न मुद्रा में होते, तब ही साज सुनाने को तैयार होते, अन्यथा कह देते—"हमारे यन्त्र का मिज़ाज ख़राब है, ठीक हो जाने पर सुनायेंगे।" और जब उनकी मौज आती, तब लगातार कई-कई घण्टे एक ही राग को बजाते रहने पर भी उनकी तृप्ति नहीं होती। भावाल में एक बार रात के चार बजे से दिन के दस बजे तक कासिमअली ने रबाब पर भैरव-राग का आलाप बजाया था। उस संगीत-सभा में ढाका के नवाब-वंशज तथा पूर्वी बंगाल के विशिष्ट जागीरदार उपस्थित थे। उस समय के व्यक्तियों का कहना था कि कासिमअली खां नर-देह-धारी एक गंधर्व थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भावाल में ही आपका स्वर्गवास होगया।

★

कृष्णराव रघुनाथराव आष्टे वाले

स्वर्गीय कृष्णराव रघुनाथराव आष्टे वाले अपने समय के अत्यन्त प्रतिभाशील सितार वादक होगये हैं। आप सरदार नाना साहेब के नाम से विख्यात थे। आपका जन्म संवत् १८९८ वि० माना जाता है।

नाना साहेब बचपन से ही अपने पिता रघुनाथ राव जी से सितार सीखते थे। वैसे तो आपको संगीत कला के सभी अङ्गों से प्रेम था, किन्तु आपने सितार को विशेष रूप से अपनाया। शनैः-शनैः सितार-वादन में आपकी कीर्ति बढ़ती ही चली गई और एक दिन वह आया जबकि आप भारत के श्रेष्ठ सितार वादकों में गिने जाने लगे।

उच्चकोटि के कला मर्मज्ञ होने के साथ-साथ आप स्वभाव के मधुर एवं मृदुभाषी थे। इसी कारण तत्कालीन अनेक संगीतज्ञ नाना साहेब के घर संगीत सुनने और सुनाने के लिये आया करते थे। विशाल हृदय नाना साहेब आगान्तुक संगीतज्ञों का अधिकाधिक स्वागत सत्कार किया करते थे। कोई-कोई कलाकार तो महीनों तक आपके आश्रय में रहा करते। इन्हीं कला-कारों में स्व० बन्दे अली खाँ साहेब नाना साहब के विशिष्ट प्रेमी थे और महीनों तक नाना साहब के यहाँ निवास किया करते थे। व्यवहार कुशलता और चातुर्य के बल पर नाना साहेब ने बन्दे अली खाँ से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करली थी।

आष्टे वाले का सितार वादन प्रत्यक्ष सुनने वाले गुणी जनों के कथनानुसार नाना साहेब के समान विलम्बित लय का काम करने वाला उस समय कोई बिरला ही होगा। यह गत के काम भी बहुत तैयार, सच्चे और स्पष्ट किया करते थे।

कुछ दिनों पश्चात् मुग़लू खां अपने दो पुत्र मुरादखां और इमदाद खां सहित नाना साहब के पास आकर ठहर गये। उन्हीं दिनों नाना साहब के

दो पुत्र धुण्डिराजकृष्ण आष्टे वाले उर्फ बड़े भैया साहेब तथा विश्वनाथकृष्ण आष्टे वाले उर्फ छोटे भैया साहेब अपने पिता से सितार की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, कि मुराद खां भी इनमें आ मिले। फिर क्या था छोटे भैया साहेब ने मुराद खां से आलापों की विशिष्ट कला और मींड़ का काम विशेष रूप से सीखना प्रारम्भ कर दिया। मुराद खां की बीन की धुनें भी यह सितार पर निकालने लगे। पुत्र की इस संगीत जिज्ञासा को देखकर नाना साहेब बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। मुराद खां बड़े प्रेम पूर्वक नाना साहब के दोनों पुत्रों को बीन की धुनें बताया करते थे।

सरदार नाना साहब के स्वर्गवासी होने के पश्चात् भी यह क्रम चलता रहा और मुराद खां इसी घर को अपना घर मानकर स्थाई रूप से उनके पास रहने लगे।

आगे चलकर बड़े भैया साहेब सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगे और छोटे भैया साहब ने केवल सितार को अपनाया। स्व० आचार्य विष्णु दिगम्बर के साथ सिन्ध और पंजाब के अनेक संगीत सम्मेलनों में भैया साहब ने अपने सितार वादन के द्वारा पर्याप्त ख्याति अर्जित की।

आज भी अनेक कलाकार व संगीतज्ञ भैया साहब का सितार सुनने के लिये उनके घर आते रहते हैं। मर्मज्ञों का कहना है कि भैया साहब का सितार नाना साहब और मुराद खां की याद दिलाता है। वर्तमान में आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र ने भैया साहब को निमंत्रित करके उनके सितार–वादन के रिकार्ड बनाये हैं।

यद्यपि भैया साहेब आजकल वयोवृद्ध हैं तथापि आपका सम्पूर्ण समय विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा देने में ही व्यतीत होता है। अपने पिता की परम्परा सदैव चलती रहे इसलिये आपने भाई के पुत्र तथा प्रपौत्रों को सितार वादन के संस्कार प्राप्त करा दिये हैं और अपने घराने की विद्या को जीवित रखने के लिये यथा शक्ति प्रयत्नशील रहते हैं।

★

गजानन राव जोशी

वर्तमान संगीत रत्नों में श्री गजाननराव जोशी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गायकी के विभिन्न अंगों पर अधिकार रखने के साथ-साथ जोशी जी बेला वादन में भी अपूर्व क्षमता रखते हैं। आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत भी आपका बेला-वादन हो चुका है। इस समय आप आकाशवाणी बम्बई पर संगीत निर्देशक का कार्य करते हैं।

जोशी जी का जन्म १९१० ई० में, बम्बई में हुआ था। आपके पिता श्री अनन्त मनोहर जोशी स्वयं एक कुशल संगीतज्ञ थे। गजानन राव को संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी के द्वारा प्राप्त हुई। तत्पश्चात इन्होंने श्री रामकृष्ण बुवा से लगभग ४ वर्ष तक संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर आपने बुरजी खां साहेब (अल्लादियाँ खाँ के सुपुत्र) का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। निरंतर अभ्यास और कठिन परिश्रम करके जोशी जी ने अल्पायु में ही संगीत के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली। गायन के साथ-साथ आपका वायलिन का अभ्यास भी चलता रहा। शनैः शनैः यह अभ्यास अधिकाधिक बढ़ता गया और आज वह समय आगया जब कि जोशी जी भारत के प्रथम श्रेणी के वायलिन वादकों में गिने जाते हैं। वायलिन की शिक्षा आपको किसी अन्य संगीतज्ञ से प्राप्त नहीं हुई; यह सब कुछ जोशी जी के निजी परिश्रम का ही प्रतिफल है।

जोशी जी शांत चित्त, सरल स्वभाव और गम्भीर प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। प्रभु कृपा से आपके तीन पुत्र तथा ३ पुत्रियाँ हैं, सभी को संगीत के प्रति रुचि है तथा वे जोशी जी से संगीत शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। आपके कई शिष्य तथा शिष्याएं भी हैं जिनमें कौशिल्या मंजेकर, श्रीधर परशेकर तथा डी० आर० निम्बारगी के नाम उल्लेखनीय हैं।

★

गणपतराव वसईकर

पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के समय में स्व० गणपतराव वसईकर एक घरानेदार शहनाई वादक हुए हैं, इनके यहाँ व्यावसायिक रूप से शहनाई वादन होता था। संगीत के बड़े बड़े जल्सों के मंच पर इनको जिन व्यक्तियों ने देखा और सुना है वे आपकी कला एवं व्यक्तित्व के विषय में भली प्रकार जानते हैं।

आर्थिक स्थिति सामान्य होने के कारण आपकी स्कूली शिक्षा तो विशेष रूप से आगे न बढ़ सकी किन्तु बचपन से ही शहनाई वादन की तालीम एवं तबला बजाने की शिक्षा मिलती रही। आपके पूर्वज वसई के निवासी थे, इसी कारण इन्हें वसईकर के नाम से पुकारा जाता है। अपने स्थान पर रहकर जब आपने कुछ शिक्षा प्राप्त कर ली, तो वसई मन्दिर के नक्कारखाने में सात रुपये मासिक की नौकरी पर रहने लगे। जब कभी विवाहोत्सवों में भी कुछ आमदनी हो जाती थी; किन्तु आप शौक़ीन तबियत रखने के कारण खर्च अधिक करते थे, अतः पैसा बहुत जल्द समाप्त होजाता था और तंगी बनी रहती थी।

मन्दिर के प्रबन्धकों में कुछ व्यक्ति इनके शहनाई वादन से प्रभावित होकर सोचने लगे कि यदि इस बच्चे को किसी गुणी से अच्छी तालीम मिल जाय तो यह एक उच्चकोटि का कलाकार बन सकता है, अतः प्रबन्धकों ने इनको सात रुपया मासिक छात्रवृत्ति के रूप में देकर बम्बई के प्रसिद्ध गायक उस्ताद नज़ीर खाँ के पास भेज दिया।

बम्बई में उस्ताद नज़ीर खाँ जिस जगह रहते थे वह स्थान बहुत तंग गलियों में था। वहाँ का वातावरण भी गंदा और दूषित रहता था जिसे सहन करना शुद्ध जलवायु में रहने वाले एक हिन्दू बालक के लिये नितान्त

असह्य था; किन्तु संगीत सीखने की उत्कट अभिलाषा से वे इस अवसर को छोड़ भी नहीं सकते थे। आखिर आपने वहां रहना शुरू कर दिया और दिल खोलकर उस्ताद की सेवा करने लगे। सेवा भी मामूली नहीं, सफ़ाई तथा झाड़ू से लेकर पीकदान तक साफ़ करना पड़ता था। साथ ही उस्ताद नज़ीर खाँ की फटकारों को सहन करते हुए कठिन परिश्रम द्वारा अभ्यास भी करना पड़ता था। फिर भी उस्ताद की लापरवाही, मदिरा पान, आधी-आधी रात को घर में आना, आदि मुसीबतें इनके सर पर सवार ही रहतीं। अंत में एक बाई जी के द्वारा जब इनकी सिफ़ारिश उस्ताद तक ख़ास तौर से पहुँची तो उस्ताद इनको नियमित शिक्षा देने लगे, फिर कुछ दिनों बाद गरणपत राव अपने घर वापिस आ गये। यहाँ आकर आपने उस्ताद की कोई बुराई न करके उनकी तारीफ़ ही की और कहा कि उनके संसर्ग से मुझे बहुत लाभ हुआ है।

शहनाई के अतिरिक्त तबला वादन में आप विशेषता रखते थे। किसी महफिल में जहां गरणपत राव जी ने तबला हाथ में लिया वहाँ रंग जमने लग जाता था। किसी भी अपरिचित गायक के साथ आप संगत करने में कुशल थे। एक बार एक कीर्त्तनकार ने गरणपति राव जी के साथ गाया। इन्होंने उसके साथ तबला ऐसा सुन्दर बजाया कि उसके गायन में चार चांद लग गये, श्रोता वाह वाह कर उठे। उसी समय भावावेश में आकर कीर्त्तनकार ने अपना ज़री का दुपट्टा भरी सभा में गरणपतराव जी को भेंट कर दिया। पण्डित विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर के साथ भजन कीर्तन में जिस समय आप तबला बजाते थे तो बड़ा आनन्द आता था। तबला तथा शहनाई के आपने कुछ शिष्य भी तैयार किये। शहनाई वादन के सम्बन्ध में बड़ौदा दरबार की आज्ञा से शास्त्रोक्त क्रमिक पुस्तकें भी आपने प्रकाशित कीं।

अपने जीवन के अन्तिम बीस-पच्चीस वर्ष गरणपतराव जी ने भगवद् भजन में विशेष रूप से बिताये, जिसके कारण आपका रूप ही बदल गया। लम्बी-लम्बी शुभ्र दाढ़ी-मूंछ, मस्तक पर तिलक और सिर पर महाराष्ट्रीय पगड़ी पहने हुए आप बहुत आकर्षक प्रतीत होते थे। इस वेष में शहनाई हाथ में लेकर मंच पर बैठते ही श्रोतागण इनकी ओर आकर्षित हो जाते। अन्त में इस वयोवृद्ध कलाकार का ६६ वर्ष की दीर्घ आयु में देहावसान हो गया। मृत्यु पर्यन्त आपको बड़ौदा सरकार से आर्थिक सहायता मिलती रही।

★

गोपाल मिश्र

काशी के प० गोपाल मिश्र के नाम से सभी संगीत प्रेमी परिचित होंगे। वर्तमान सारंगी वादकों में आपका प्रमुख स्थान है। सारंगी वादन–कला आपके यहां परम्परा से चली आरही है। आपके पिता पं० सुर सहाय मिश्र अपने समय के प्रख्यात सारंगी वादक थे और इस समय भी आपके भाई पं० हनुमान प्रसाद एक कुशल सारङ्गी वादक हैं। आपका जन्म सन् १६२० के लगभग काशी में हुआ। दस–ग्यारह वर्ष की किशोरावस्था से ही गोपाल मिश्र ने अपने पिता के नेतृत्व में सारंगी का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया था। तत्पश्चात् आपने संगीत सम्राट बड़े रामदास जी से विलष्ट गायकी की संगत तथा स्वतंत्र सारङ्गी वादन के सम्बन्ध में उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की।

अभी यह पूरे वीस वर्ष के भी न हो पाये थे कि इनकी ख्याति द्रुत गति से फैलने लगी। यह बड़े–बड़े संगीत सम्मेलनों में निमन्त्रित किये जाने लगे, साथ ही भारत की बड़ी–बड़ी रियासतों—काश्मीर, बड़ौदा तथा पटियाला आदि के शासकों तथा जनता के समक्ष इन्होंने अपना श्रुति मधुर सारंगी वादन प्रस्तुत करके यथेष्ट सम्मान तथा लोकप्रियता अर्जित की। इस समय आपकी गणना भारतवर्ष के प्रथम श्रेणी के सारंगी वादकों में की जाती है। इन्हें वर्तमान उच्चकोटि के लगभग सभी गायकों की संगत करने का गौरव प्राप्त है। विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से इनके कार्यक्रम प्रसारित होते ही रहते हैं।

आकर्षक और मधुर संगत करने के अतिरिक्त मिश्र जी का स्वतन्त्र सारंगी वादन भी बड़ा हृदयग्राही और सरस होता है। ताल और लय पर आप विशेष अधिकार रखते हैं। सम पर आने के पूर्व विभिन्न प्रकार की तिहाइयाँ लेना इनकी विशेषता है। आपकी गुरु परम्परा पं० गणेश जी मिश्र से आरम्भ होती है। वर्तमान समय में आपका निवास स्थान कबीर चौरा बनारस में है। "झनक–झनक पायल पाजे" नामक फिल्म में भी आपने काम किया है।

★

गोविंद शर्मा

हैदराबाद दक्षिण के प्रसिद्ध संगीताचार्य श्री गोविंद शर्मा (मीनप्पा केलवाड़) का जन्म सन् १८६३ ई० में निज़ामाबाद ज़िले के अन्तर्गत कृष्णापुर स्थान पर हुआ था। आपके बाबा श्री अन्नाराव बड़ौदा राज्य के एक कर्मचारी थे। आपका मूल निवास स्थान ज़िला रायचूर के अन्तर्गत कनकगिरी था। मीनप्पा के पिता व्यंकोजी मल्ल विद्या तथा धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे।

मीनप्पा १० वर्ष की आयु तक ननसाल में रहे, तत्पश्चात् अपने पिताजी के पास बड़ौदा आकर विद्याध्ययन शुरू किया। बड़ौदा के एक विद्यालय में सातवीं कक्षा तक आपने शिक्षा पाई। संगीत में आप बाल्यकाल से ही रुचि रखते थे, गला भी मधुर और सुरीला था। उन दिनों बड़ौदा राज दर्बार में नायक मौलाबख़्श की बड़ी धूम थी, अतः मीनप्पा उनकी कला पर मोहित होकर मौलाबख़्श की सेवा में जुट गये। मीनप्पा की सेवा से प्रसन्न होकर मौलाबख़्श ने इन्हें अपना शागिर्द बना लिया और इनकी संगीत शिक्षा प्रारम्भ होगई। इसके बाद आपने परिश्रम और अभ्यास के बल पर शीघ्र ही संगीत प्रेमियों के हृदय में अपना स्थान बना लिया। एक दिन एक संगीत प्रतियोगिता में जब आप गारहे थे और गाते-गाते भावावेष में जब आपने एकदम तार सप्तक के सां से अति तार सप्तक का सां लगाया तो आपका गला फट गया, फलस्वरूप आपका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। गला इतना विकृत हो चुका था कि दो वर्ष तक तो आप बात-चीत भी न कर सके। विवश होकर उस्ताद ने आपको वाद्य संगीत अपनाने की सलाह दी, अतः मीनप्पा मौलाबख़्श साहब से सितार सीखने लगे।

मीनप्पा जी का जहन बहुत अच्छा था तथा इनके हस्ताक्षर भी बड़े आकर्षक थे, इसलिये आपको बड़ौदा राज्य के स्कूल में अध्यापक का स्थान मिल गया और वहाँ कार्य करते रहे। साथ ही साथ विद्यालय में आपको संगीत शिक्षा भी देनी पड़ती थी। कुछ समय बाद यह नौकरी आपने छोड़दी और संत वामन बुवा से "मनुष्य गुरणधर्म विज्ञान शास्त्र" का अध्ययन करने लगे। तत्पश्चात् आपने अपने परिवार के साथ भारत के विभिन्न प्रसिद्ध नगरों की यात्रा की। मैसूर के गायक-वादकों द्वारा आपका यथेष्ट सम्मान हुआ।

अपनी यात्रा के अनुभवों का लाभ उठाकर आपने अपनी स्वरचित स्वरलिपि-पद्धति का निर्माण किया। आपने संगीत शास्त्र पर एक पुस्तक "मूलाधार" प्रकाशित की, जो हिन्दी, मराठी, गुजराती तीन भाषाओं में है। इनका विचार 'मूलाधार गानाचार्यमाला' के रूप में इसके अन्य भाग भी प्रकाशित करने का था; किन्तु दैववशात् वह इच्छा पूरी न हो सकी। आपका एक हस्तलिखित ग्रन्थ गायन व्याकरण (गोविन्दोपनिषद्) इनके पुत्र श्री बापूजी के पास है, जिसमें राग रस रचना, राग समय, इत्यादि बातों का विस्तृत उल्लेख है। कहा जाता है कि आपकी स्वरलिपि पद्धति से मिलती-जुलती पद्धति 'संगीत रत्नाकर' का आधार लेकर आचार्य विष्णु-दिगम्बर पलुस्कर ने भी निर्मित की। संगीत विषय पर आपके भाषण भावनगर, बड़ौदा आदि नगरों में हुआ करते थे।

आप बड़े शांत और मिलनसार व्यक्ति थे। प्रातःकाल से रात्रि तक आपका कार्यक्रम निश्चित घड़ी की सुई पर चलता था। अपना जीवन ऋषितुल्य बिताते हुए अपनी आयु के अन्तिम दिनों में आप हैदराबाद में रहे, अतः वहीं आपका देहांत सन् १९२४ ई० के लगभग होगया।

आपके सुपुत्र श्री बापूराव जी (बापूजी) वर्तमान काल में हैदराबाद ही रहते हैं और वहाँ के संगीत प्रेमी उन्हें संगीताचार्य मानते हैं। कर्नाटक तथा हिन्दुस्थानी संगीत में वे पूर्णतः दक्ष हैं। सितार अत्यन्त मधुर बजाते हैं। हैदराबाद के अधिकांश सितार वादक इन्हें अपना गुरू मानते हैं।

★

चन्द्रिकाप्रसाद दुबे

चन्द्रिकाप्रसाद का जन्म १८७५ ई० में पवई ग्राम में हुआ। पवई गया जिले के औरंगाबाद डाकखाने में है। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् आपने प्रसिद्ध संगीतकार हनूमान दास जी से ख्याल गायकी सीखना शुरू कर दिया; किन्तु अपनी आवाज़ को गायन के योग्य न पाकर आपने इसराज (दिलरुबा) का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया और कालांतर में आप भारत के प्रमुख इसराज वादक हुए।

आलाप, जोड़, ठोक—झाला के साथ ही तोड़ा-गत तथा संगत में भी दुबेजी पूर्ण पारंगत थे।

पूर्वपरिचित हनूमानदास जी के सहयोगी कन्हैयालाल धाड़ी ही आपके उस्ताद थे। आपके बांयें हाथ की उङ्गलियाँ आश्चर्यजनक द्रुत गति से इसराज पर चलती थीं, जो आपकी अपनी विशेषता थी।

पाँडुई के जमींदार साहब के यहाँ आप १२ वर्ष तक रहे, बाद में स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगे।

'संगीत भूषण' की उपाधि से 'साहित्य समाज' गया ने आपका सम्मान किया, एवं 'अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन' के लखनऊ अधिवेशन में आपको 'संगीत शास्त्री' का सम्मानित प्रमाण पत्र भी मिला।

★

जी० एन० गोस्वामी
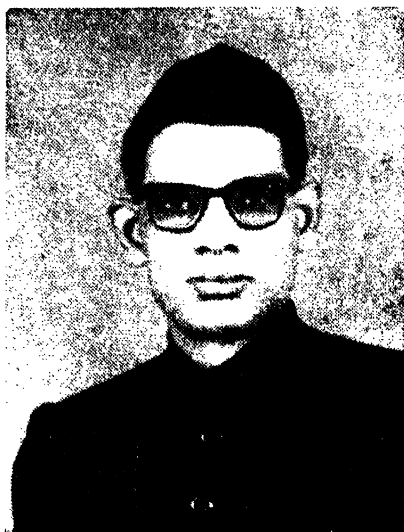
आकाशवाणी के प्रख्यात् वॉयलिन वादक श्री गोपीनाथ गोस्वामी से बहुत से संगीतप्रेमी परिचित होंगे। M. Sc. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के साथ-साथ आपने संगीत कला के क्षेत्र में भी यथेष्ट ख्याति प्राप्त की है। अपने व्यक्तित्व में संगीत और साहित्य का समन्वय करके आपने एक सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है।

भारत की पवित्र और धार्मिक नगरी काशी (बनारस) में आपका जन्म ७ जनवरी सन् १९११ को हुआ। आपके पिता का नाम श्री केदारनाथ गोस्वामी है। सन् १९२६ में एक बार प्रयाग में श्री गोपीनाथ गोस्वामी ने प्रसिद्ध बेलावादक श्री गगनबाबू का बेलावादन सुना था। उस समय उन्होंने केदार राग की अवतारणा इस खूबी से की, कि श्रोतागण चकित होगये। राग पहिचानने का ज्ञान तबतक गोस्वामी जी को हो चुका था, अतः आप उनके बेलावादन से बहुत प्रभावित हुए। यहीं से बेला सीखने की सर्व प्रथम प्रेरणा आपको प्राप्त हुई। आपने एक वॉयलिन खरीदा और स्वयं बजाने की चेष्टा करने लगे। स्वर ज्ञान तो आपको पहले से था ही, अतः रियाज़ करते-करते लगन और परिश्रम के द्वारा आप अच्छी तरह बेला बजाने लगे और कई प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पुरस्कृत भी हुए।

सन् १९३२ में जब आप उस्ताद आशिक अली खां के सम्पर्क में आये तो उनसे आपने अपनी बेला शिक्षा को आगे बढ़ाने की प्रार्थना की। उस्ताद ने यह कहकर इनका दिल तोड़ दिया कि बेला तो एक विदेशी वाद्य है, क्यों फिजूल मेहनत करते हो, इसमें रक्खा ही क्या है? उनकी ऐसी निराशाजनक बातों से इनके दिल को बहुत धक्का लगा और उसी दिन से उस्ताद के यहाँ जाना बन्द करदिया। कुछ दिन के लिये बेला का अभ्यास भी छूट गया।

लगभग एक वर्ष बाद इन्हीं उस्ताद से आपकी फिर भेंट हुई, आप उनसे सितार-वादन सीखने लगे। सर्व प्रथम उस्ताद ने इनको मुल्तानी राग का आलाप शुरू कराया। सितार में इनकी प्रगति देखकर उस्ताद बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—"तुम तो पिछले जनम के सीखे हुए मालूम होते हो!" उस्ताद के सामने तो आप सितार सीखते और उनसे छिपाकर, घर पर वॉयलिन का रियाज़ करते; इस प्रकार दोनों वाद्यों का अभ्यास चलता रहा। एक दिन ऐसा हुआ कि उस्ताद की सितार पर बताई हुई चीजें आप बेले पर निकाल रहे थे, अकस्मात् उसी समय उस्ताद आशिक अली खाँ इनके यहां आ पहुँचे और दर्वाजे पर खड़े होकर थोड़ी देर सुनते रहे। जब उस्ताद अन्दर घर में आये तो गोस्वामी जी कुछ सिटपिटाने लगे कि कहीं बेला देखकर नाराज़ न हो जायँ, परन्तु इसके विरुद्ध उस्ताद खुश होकर इनकी प्रशंसा करने लगे और कहने लगे—"मैं नहीं समझता था कि एक विदेशी साज हमारे शास्त्रीय संगीत को इतनी अच्छी तरह पेश कर सकता है" और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बेला सीखने की भी आज्ञा दे दी! फिर तो गोस्वामी जी ने नियमपूर्वक बेलावादन प्रारंभ करदिया।

तैलगू निवासियों के सम्पर्क में गोस्वामी जी ने काफी समय तक रहकर कर्नाटक संगीत का भी भली प्रकार अध्ययन किया है।

महफिल में वॉयलिन बजाते समय आप श्रोताओं की रुचि और महफिल के वातावरण का अधिक ध्यान रखते हैं, और यही आपकी सफलता की कुञ्जी है। आप बेलावादन में विलम्बित और मध्यलय में गायकी का अनुसरण और उसके पश्चात द्रुत में तंत्रकारी का अनुसरण करते हैं, इसीलिये आपकी शैली में गायन तथा वादन दोनों का समन्वय है। बनारस में रहते हुए बचपन में आपने बिसमिल्लाह के पिता (विलयितू) और नंदलाल की शहनाई खूब सुनी थी, जिसकी छाया आपके बेला वादन में पाई जाती है। द्रुतलय में उस्ताद निसारहुसेन खाँ के तराने के कुछ अन्श भी आपकी शैली में सम्मिलित हैं।

आजके युग में ऐसे शिक्षित संगीतज्ञों से संगीत कला के विद्यार्थी लाभ प्राप्त करके अपने भविष्य को बहुत कुछ उज्वल बना सकते हैं।

★

दबीर खां

उस्ताद मौहम्मद दबीर खां की गणना भारत के श्रेष्ठतम संगीतज्ञों में की जाती है। वैसे तो आप लगभग सभी भारतीय वाद्यों को बजाने की क्षमता रखते हैं तथा हर प्रकार की गायकी पर भी आपका अधिकार है; किन्तु ध्रुपद गायन और वीणा-वादन में आप विशेष पारंगत हैं।

१४ अगस्त सन्—१९०५ ई० को रियासत रामपुर में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता उस्ताद मौ० नज़ीर खां अपने समय के योग्य संगीतज्ञ थे और रामपुर में ही रहते थे। ४ वर्ष की अल्प आयु से ही दबीर खां की संगीत शिक्षा प्रारम्भ होगई थी और यह शिक्षा क्रम बीसियों वर्ष तक चला। अपने युग के उत्कृष्ट संगीतज्ञ उस्ताद वज़ीर खाँ, दबीर खां के बाबा थे, अतः उन्हीं से इनकी गुरु-परम्परा प्रारंभ होती है, तानसेन घराने से आप सम्बन्धित हैं। अपने बाबा उस्ताद वज़ीर खां के निर्देशन में ही दबीर खां ने ध्रुपद गायन तथा वीणावादन की उच्च शिक्षा प्राप्त की। इनके कठिन परिश्रम और अटूट लगन को देखकर बाबा उस्ताद को आत्म सन्तोष प्राप्त हुआ और उन्हें विश्वास हो गया कि मेरा नाती (पौत्र) मेरी मृत्यु के बाद मेरी कला को अवश्य जीवित रक्खेगा।

यह निर्विवाद सत्य है कि उस्ताद वज़ीर खाँ अपने युग के सर्वोत्कृष्ट संगीतज्ञ थे। आपकी प्रतिभा और योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन नवाब रामपुर, स्व० विष्णु नारायण भातखण्डे तथा मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खां ने आपका शिष्यत्व ग्रहण किया था। ग्वालियर के प्रसिद्ध सरोदिया उस्ताद हाफ़िज अली खां भी उ० वज़ीर खाँ के ही शिष्यों में से हैं।

उस्ताद दबीर खां इस समय भारत के श्रेष्ठतम वीणा वादकों में से हैं। आपने भारत और पाकिस्तान के लगभग सभी बड़े-बड़े नगरों का भ्रमण किया है। इस समय आप कलकत्ता नगर में रहते हैं, यहाँ रहते हुए आपको लगभग ३० वर्ष हो गये। आजकल आप 'तानसेन' तथा 'सदारंग' म्यूजिक कॉलेजों के प्रिन्सीपल पद पर आसीन हैं। इन दोनों कॉलेजों के संस्थापन कार्य का श्रेय भी आपको ही है। गत कई वर्षों से कलकत्ता आकाश वाणी केन्द्र ने भी आप को अपने यहां Special class का स्थायी कलाकार नियुक्त कर रक्खा है।

उ० दबीर खाँ को "डाक्टर ऑफ़ म्यूज़िक" तथा "संगीत सम्राट" आदि उपाधियों से विभूषित किया जा चुका है। विभिन्न अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में तथा आकाशवाणी केन्द्रों पर आप अपनी प्रभावोत्पादक कला का प्रदर्शन कर चुके हैं।

आपकी शिष्य परम्परा बहुत ही विशाल तथा सुदृढ़ है। आपके शिष्यों में (गायक) श्री के० सी० डे०, श्री ग्यान प्रकाश घोष, डाक्टर यामिनी गांगुली (वादक), कुमार बी० के० रॉय चौधरी, श्री राधिका मोहन मैत्रा, श्रीमती माया मैत्रा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

देवचन्द्र शर्मा

सितार और वीणा के प्रसिद्ध कलाकार पं० देवचन्द्र शर्मा उर्फ कान्छा जी का जन्म विक्रम संवत् १९२६ में नैपाल की राजधानी काठमाण्डू में हुआ था। आप नैपाल के कुलीन रेग्मी उपाध्याय ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। आपके पिता पं० नरनाथ शर्मा विद्वान और साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। देवचन्द्र जी अपने पिता के कनिष्ठ पुत्र थे। नैपाली भाषा में कनिष्ठ को कांछा कहते है, इसीलिये आप 'कान्छा' नाम से प्रसिद्ध थे।

जब आप चार-पाँच वर्ष के थे, तभी आपके पितामह पं० जनार्दन शर्मा काशी वास करने के लिये अपने पुत्र-पौत्रादिकों को लेकर स्थायी रूप से बनारस के अपने रामघाट स्थित मकान में रहने लगे। वहीं पर आठ-दस वर्ष की अवस्था से ही विद्याध्यन के साथ-साथ कान्छा जी में संगीत के संस्कार उदय हुए। संयोग वश उन्हीं दिनों पूर्वी बाज के धुरन्धर सितारिये तथा बीन, रबाब और सुर सिंगार के अद्वितीय कलाकार पन्नालाल शर्मा के सम्पर्क में आप आये और उनसे संगीत की शिक्षा पाते रहे।

बनारस में लगभग १८ वर्ष तक रहकर आपने शर्मा जी से संगीत कला भली प्रकार हस्तगत की। लयकारी में आपको कमाल हासिल हो गया। बनारस से नैपाल आकर देवचन्द्र जी ने संगीत कला का खूब प्रचार किया और निस्वार्थ भाव से अनेक संगीत जिज्ञासुओं को निःशुल्क संगीत की शिक्षा दी। नैपाल दर्बार में जब पंडित जी का सामवेद गान होता था तो उसे सुनने के लिये बड़े---बड़े लोग भी लालायित रहते और उस सुअवसर की प्रतीक्षा किया करते।

नैपाल के सुप्रसिद्ध कविराज पं० गोविन्द दास महंत ने आपसे सितार और बीन की शिक्षा पाई थी। एक बार कविराज ज्वर से पीड़ित हुए और उसकी निवृत्ति के लिये उन्होंने आयुर्वेदिक उपचार भी किये; किन्तु उससे कोई लाभ न हुआ, तब कविराज जी ने अपने गुरु पं० देवचन्द्र जी से प्रार्थना की कि मुझे सितार पर भैरवी सुना दीजिये। पंडित जी ने उनकी इच्छा पूरी की

और यह चमत्कार देखने में आया कि भैरवी सुनने के बाद ही आपका ज्वर उतर गया। इस चमत्कार को प्रत्यक्ष देखने वाले दो-चार पुरुष अब तक मौजूद हैं।

शर्मा जी ने सैकड़ों व्यक्तियों को बीन, सितार तथा गायन की शिक्षा दी और नाद ब्रह्म की उपासना करते हुए, विक्रम संवत् १९८४ ई० में बैकुण्ठ वासी हो गये।

पंडित जी के तीन सुपुत्र हैं। १-पंडित कृष्णचन्द्र शर्मा २-पं० शेषराज शर्मा शास्त्री, काव्यतीर्थ ३-कविराज पं० पूर्णचन्द्र शर्मा। इनमें से आपके ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र अपने पिता जी के ही अनुरूप हैं। इनके अतिरिक्त आपके पौत्र पं० सतीशचन्द्र शर्मा एक होनहार कलाकार हैं। पंडित जी के शिष्य वर्ग में सितार मास्टर गणेशबहादुर भंडारी का नाम उल्लेखनीय है।

★

नंदलाल

प्रसिद्ध शहनाईवादक श्री नंद-लाल के नाम से सभी संगीतप्रेमी परिचित होंगे । इनके पिता श्री मुद्धूराम जी तथा बाबा श्री बाबूलाल जी भी अपने युग के प्रसिद्ध शहनाई वादक थे । इससे सिद्ध होता है कि शहनाई वादन इनके यहां परम्परा से चला आता है ।

नंदलाल की आयु इस समय ६० वर्ष के लगभग होगी । बनारस नगर ही इनका मूल निवास स्थान रहा है । बचपन में इन्हें स्कूली शिक्षा बहुत थोड़ी ही प्राप्त हुई । मुश्किल से चौथी या पांचवीं कक्षा तक पढ़े होंगे कि इनके पिताजी ने अपने निर्देशन में ही इन्हें स्वराभ्यास प्रारम्भ करा दिया । तत्पश्चात् यह शहनाई वादक उस्ताद छोटे खाँ दिल्ली वालों के शागिर्द करा दिये गये । इनके पास कुछ दिनों अभ्यास करने के उपरांत बनारस के विख्यात संगीताचार्य बड़े रामदास जी से नंदलाल ने ख्याल और ठुमरी की तालीम प्राप्त की और उस्ताद हुसैन खां से भी कुछ दिनों ख्याल की शिक्षा ग्रहण की । ध्रुपद अंग की तालीम आपने काशी के स्वर्गीय हरिनारायण मुखर्जी तथा श्री पानूबाबू से ग्रहण की। महाराज बनारस के दर्बारी संगीतज्ञ रामगोपाल तथा रामसेवक जी से भी इन्हें संगीत शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ । इस प्रकार बड़े-बड़े संगीतज्ञों से शिक्षा प्राप्त करते हुए इन्होंने संगीत कला की कठिन साधना की और अपनी तरुण अवस्था में ही यह एक जनप्रिय शहनाई वादक के रूप में विख्यात होगये ।

इनके पिता जी काशी नरेश के दर्बार में नौकर थे, उनकी मृत्यु के पश्चात् यह भी अभी तक उसी स्थान पर मुलाजिम हैं । नंदलाल के शहनाई वादन के कार्यक्रम आकाशवाणी से यदा-कदा प्रसारित होते रहते हैं । इनके कई स्टूडियो रिकार्ड भी हैं, इनमें सिन्ध, भैरवी, मुलतानी धुन आदि उल्लेखनीय हैं । इनके

अतिरिक्त पूरिया, केदार और चैती आदि के कुछ रिकार्ड 'हिन्दुस्थान रेकर्डस' में भी तैयार हो चुके हैं। आपने भारतवर्ष के विभिन्न संगीत सम्मेलनों में शहनाई बजाकर काफी जन-मन रंजन किया है। सन् १९३८ ई० के बनारस संगीत सम्मेलन में आपको बनारस के प्रसिद्ध रईस बाबू बल्देव प्रसाद जी द्वारा एक जोड़ी चाँदी की शहनाई सम्मान स्वरूप प्राप्त हुई।

इनका बड़ा लड़का कन्हैयालाल और छोटा श्यामलाल, ये दोनों ही आकाशवाणी के कलाकार हैं तथा उनका भविष्य उज्वल प्रतीत होता है।

★

पन्नालाल घोष

प्रसिद्ध बांसुरी वादक श्री पन्नालाल घोष का जन्म एक बंगाली परिवार में हुआ। आपके पिता जी सितार बहुत सुन्दर बजाते थे। आफिस से लौटकर जब आप घर आते, तो सितार के मधुर स्वरों में अपनी थकावट को भूलकर नवीन चेतना अनुभव करते। पिता जी के सितार को श्री पन्नालाल भी ध्यान से सुनते थे। इससे आपके अन्दर संगीत-जिज्ञासा जागृत होती गई।

सन् १९२५ ई० में कलकत्ते की एक प्रसिद्ध फिल्म कम्पनी में जब आप काम करते थे, तो वहां पर आपकी भेंट अमृतसर वाले मास्टर खुशीमुहम्मद से हुई जोकि बहुत सुन्दर हारमोनियम बजाते थे। उनके हाथ में अद्भुत मिठास था। उस मिठास से आप बहुत प्रभावित हुये और मास्टर साहब से कुछ सीखने का निश्चय किया। सन् १९३७ में आपने मास्टर साहब से शिक्षा लेनी शुरू की और एक वर्ष तक, अत्यन्त परिश्रम के साथ खुशीमुहम्मद से आप संगीत की तालीम लेते रहे।

सन् १९३७ ई० से आपकी अभिरुचि बांसुरी बजाने की ओर हुई। जिस किसी अच्छे कलाकार को बांसुरी बजाते हुये देखते, तो आप पास जाकर बैठ जाते और उसके बजाने की शैली का ध्यान पूर्वक अवलोकन करते। फिर घर पर आकर उसी ढंग से बांसुरी बजाने की चेष्टा करते। इस प्रकार धीरे-धीरे आप अपने अभ्यास को बढ़ाते गये।

सन् १९३८ में 'सरई कला नृत्य मंडल' के साथ आपने योरुप की यात्रा की। वहाँ से छै महीने बाद जब आप लौटे तो इधर खुशीमुहम्मद जी का स्वर्गवास हो चुका था। अत: आपने श्री गिरिजाशंकर चक्रवर्ती से कुछ दिन संगीत शिक्षा प्राप्त की।

सन् १९४० में आप बम्बई आये। कलकत्ते की फिल्म कम्पनी में काम कर चुकने के कारण फिल्मी क्षेत्र के संगीत का अनुभव हो ही चुका था। बम्बई आकर आपने अपने अनुभव को और भी परिष्कृत कर लिया। अत:

बम्बई में आपको कुछ फिल्मों में संगीत निर्देशन का अवसर भी प्राप्त हुआ। इससे आर्थिक लाभ तो आपको हुआ ही, साथ ही साथ आपका नाम भी लोगों की जुबान पर आने लगा। संगीत निर्देशन कला में भी आपने अपनी बांसुरी के रियाज को नहीं छोड़ा। किन्तु फिल्म कम्पनियों में काम करते समय समयाभाव के कारण जब आपके बांसुरी के रियाज में विघ्न पड़ने लगा तो आपने संगीत निर्देशन का कार्य कुछ समय के लिए छोड़ दिया और बांसुरी के रियाज को बढ़ाने लगे। आप बड़े-बड़े कलाकारों को अपने घर पर निमन्त्रित करके उनका सुनते और अपना सुनाते। इस प्रकार इन्हें बहुत सी नई-नई बातें प्राप्त हुईं। फिर भी आपकी इच्छा यही रहती थी कि मुझे कोई संगीत का अच्छा गुरु मिल जाय तभी मेरी कला कुछ ऊँची उठ सकेगी।

सौभाग्य से सन् १९४७ ई० में महान कलाकार उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब से आपकी भेंट हुई और आप उनके शिष्य हो गये, इस प्रकार आपकी चिर अभिलाषा पूर्ण हुई और अपने रियाज़ को बढ़ाते हुये वांछित प्रगति करने लगे।

बाँसुरी वादन में घोष बाबू ने अनेक क्रियाओं को जन्म दिया है और यही कारण है कि आज उनकी सी बांसुरी वे ही बजा सकते हैं। बांसुरी जैसे छोटे और सुषिर वाद्य में गायकी तथा बीन-अंग का सच्चा प्रदर्शन घोष बाबू के ही हक में है। अति तार सप्तक तथा अति मन्द्र सप्तक में वादन करते समय आप एक ही बांसुरी का प्रयोग नहीं करते अपितु तीन-तीन बाँसुरियों का यथा समय उपयोग इस शीघ्रता से करते हैं कि श्रोताओं को इसका तनिक भी आभास नहीं हो पाता। आजकल आपके प्रमुख शिष्यों में श्री० देवेन्द्र मुर्देश्वर अच्छी ख्याति प्राप्त कर रहे हैं। आकाशवाणी के प्रत्येक केन्द्र तथा विभिन्न संगीत सम्मेलनों द्वारा जनता आपके वादन का रसास्वादन कर चुकी है। भारत के अतिरिक्त आप विदेशों में भी अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं।

★

पशुपति सेवक मिश्र

पशुपति सेवक बनारस के कथक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे, जो कि कई पीढ़ियों से उसी स्थान पर बसा हुआ है। कथकों के स्वाभावानुसार आपके जीवन का व्यवसाय भी संगीत ही था।

पशुपति के पितामह प्रसिद्ध महाराज नैपाल के महाराजाधिराज मातवर सिंह थापा एवं नैपाल के प्रधानमन्त्री महाराजा सर जंग बहादुर राणा के दरबारी संगीतज्ञ थे। आपको अपनी संगीत साधना एवं कुशलता के फलस्वरूप नैपाल दरबार द्वारा 'संगीत नायक' की उपाधि से सम्मानित किया गया। कुछ समय तक आप तत्कालीन पटियाला महाराज के सङ्गीत शिक्षक भी रहे। आपकी मृत्यु सन् १८६८ ई० में हुई। ख्याल, ध्रुपद और होली आदि कन्ठ—सङ्गीत के आप विशेषज्ञ थे। आपके जीवन का अधिकांश भाग नैपाल में ही व्यतीत हुआ। आपके द्वितीय पुत्र राम सेवक ने, जो कि सन् १८४५ ई० में उत्पन्न

हुए थे, आपसे सितार एवं ख्याल व धमार आदि कण्ठ संगीत की शिक्षा प्राप्त की। प्रसिद्ध जी गुलाम नबी के शिष्य थे, जोकि मियां शोरी के नाम से प्रसिद्ध होगये हैं।

पशुपति सेवक के पिता रामसेवक मिश्र नैपाल दरबार के संगीत विद्यालय के अध्यक्ष नियुक्त किये गये. आप नैपाल के प्रधानमन्त्री के परिवार के कुछ सदस्यों के संगीत शिक्षक भी रहे थे। नैपाल छोड़ देने के पश्चात् कुछ समय तक बंगाल के संगीत विद्यालय के अध्यापक भी रहे। आपने "तबला प्रकाश" और "तबला विज्ञान" नामक दो पुस्तकें भी लिखीं। रामसेवक के दो पुत्र थे–बड़े पुत्र का नाम पशुपति तथा छोटे का शिवसेवक था।

पशुपति का जन्म सन् १८८१ ई० में हुआ। आपने ख्याल, टप्पा, ध्रुपद तथा होली आदि प्रकारों के कण्ठ सङ्गीत की शिक्षा बाल्यकाल में अपने पिता से प्राप्त की। जब आप युवक हुए तो सुरबहार व सितार वाद्यों का ज्ञान अपने पिताजी से प्राप्त कर लिया। तदुपरान्त आपने बरेली के मुहम्मदहुसेन खाँ से वीणा–वादन सीखा। उस समय पशुपति सुरबहार और सितार बजाने की विशेष क्षमता रखते थे। विभिन्न दरबारों से आपको स्वर्णपदक प्राप्त हुए। आपको नैपाल के राणा शमशेर द्वारा सम्मानित चिन्ह–स्वरूप 'केशर' भी प्राप्त हुई। 'भारत धर्म महामण्डल' द्वारा आपको एक प्रमाणपत्र भी प्राप्त हुआ था। सुरबहार तथा सितार में आपने उच्चकोटि की सिद्धि प्राप्त करली थी। वाद्य यन्त्रों में द्रुतलय के काम दिखाने के लिए आप भारत के सर्वश्रेष्ठ वादकों में प्रसिद्ध थे। विभिन्न तालों में गत, तोड़ा आदि प्रस्तुत करने की आप में अपूर्व क्षमता थी। आपकी कला की मुख्य विशेषता यह थी कि वाद्य–यन्त्र बजाते समय किसी भी लय के नये तोड़े आप तत्काल बनाकर श्रोता की इच्छारनुसार किसी भी मात्रा से आरम्भ कर सकते थे। आपका लय ज्ञान बड़ा गहन था। आपके इस विशद् कला–ज्ञान के एवज में आपको राज्य की ओर से अनेक सुविधाऐं दी जाने के साथ–साथ नैपाल के महाराजा द्वारा ३००) मासिक भी प्रदान किया जाता था। आपके पास पर्याप्त संख्या में ध्रुपद, होली, ख्याल एवं टप्पा का संग्रह था। वाद्य यन्त्रों को विभिन्न ढंगों से सजाने में आप पूर्ण सिद्धहस्त थे। आपके छोटे भाई शिव सेवक ने आप ही से शिक्षा प्राप्त की।

दुर्भाग्यवश पशुपति जी की फीस इतनी अधिक थी कि केवल धनिक वर्ग ही आपकी कला का रसास्वादन कर सकता था।

★

पी० ए० सुन्दरम त्र

दक्षिणी होते हुए भी, जिन्होंने पण्डित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर जी के द्वारा हिंदुस्तानी संगीत की शिक्षा प्राप्त की और वॉयोलिन जैसे पाश्चात्य साज़ को अपनाकर ख्याति प्राप्त की, वे हैं—श्री पी०–ए० सुन्दरम अय्यर मद्रास वाले।

आपका जन्म कोचीन रियासत के विम्बिल नामक गांव में ६ जुलाई १८९१ ई० को हुआ। आपके पिता श्री अनन्तराम शास्त्री एक उच्चकोटि के संस्कृत–विद्वान थे। बाल्यकाल से ही सुन्दरम की रुचि बेला सीखने की ओर थी। सन् १९०१ ई० में जब त्रावणकोर दर्बार में श्री रामास्वामी भागवतार वॉयलिन व वीणावादन किया करते थे उन्हीं के पास आपने बेलावादन की शिक्षा लेनी आरम्भ की, और ८ वर्ष तक गुरुसेवा एवं अत्यन्त परिश्रम करते हुए इस कला में यथेष्ट उन्नत होगये।

ए० सुन्दरम की अवस्था जब १८ वर्ष के लगभग हुई तो आप कालीकट जाकर रहने लगे। वहां एक जल्से में आपका वॉयलिन वादन सुनकर वहाँ के एक प्रसिद्ध व्यापारी श्री देवचन्द सेठ इनसे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने इनको प्रेरणा दी कि तुम हिन्दुस्तानी संगीत की उच्च शिक्षा प्राप्त करो, मैं तुम्हें छात्रवृत्ति के रूप में सहायता देने के लिये तैयार हूँ। वहीं पर गोविन्द नायक नाम के एक कलाकार रहते थे जो सारङ्गी और सितार बजाया करते थे। कुछ दिन तक उनके पास पं० सुन्दरम ने शिक्षा प्राप्त की और फिर सेठ जी ने इनको गांधर्व महाविद्यालय, बम्बई में अपने व्यय से भेज दिया। अपनी विशेषता और कौशल से आप शीघ्र ही वहां वॉयलिन के अध्यापक नियुक्त होगये।

बम्बई में जब संगीत का कोई विशेष जल्सा होता तो उसमें पंडित विष्णुदिगम्बर जी के साथ आप वॉयलिन बजाते एवं स्वतन्त्र रूप से भी वॉयलिन वादन करते थे। इस प्रकार बम्बई में रहकर इन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त करली। लगभग १।। वर्ष तक वहां रहकर आप अपने गांव चले आये, वहाँ आकर आपका विवाह होगया और फिर अपने पूर्व गुरु श्री रामस्वामी भागवतार के पास त्रिवेन्द्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। एक साल मदुरा में रहकर सन् १६१२ में आप मद्रास पहुंचे। वहां के संगीत प्रेमियों को भी आपने अपनी कलात्मक प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया और वहां अनेक शिष्य तैयार किये।

सन् १६१६ ईसवी में बड़ौदा संगीत सम्मेलन का विशेष निमन्त्रण पाकर आप वहाँ पहुंचे, तब वहीं पर आपका प्रथम परिचय श्री भातखण्डे जी से हुआ। एक दक्षिणी कलाकार से हिन्दुस्तानी पद्धति का सङ्गीत वॉयलिन में सुनकर भातखण्डे जी इनकी ओर विशेष आकर्षित हुए। उसी वर्ष पलुस्कर जी ने आपको बम्बई बुलाया और एक विशेष संगीत आयोजन करके उसमें आपको स्वर्णपदक देकर सम्मानित किया। इसके पश्चात् मैसूर, आन्ध्र, पूना, हैदराबाद, इन्दौर, औरङ्गाबाद (निज़ाम) तथा मध्यप्रदेश आदि स्थानों का दौरा करके आपने यश प्राप्त किया। कई स्थानों पर आपको भेंट में अच्छी-अच्छी रकमें भी प्राप्त हुईं।

सन् १६३२ ई० में मद्रास यूनिवर्सिटी ने अपने यहाँ संगीत की डिप्लोमा परीक्षा आरम्भ करके पं० सुन्दरम को प्रोफेसर नियुक्त किया, यहां पर आप लगभग १४ वर्ष रहे। मद्रास प्रान्त में संगीत की उन्नति का विशेष श्रेय आपको ही है। दक्षिणी कलाकारों का संगठन करके १६२६ ई० में "श्री त्यागराज संगीत विद्वत समाजम् मेलापुर" की स्थापना में आपका विशेष हाथ रहा और आजकल आप इस संस्था के उपाध्यक्ष ।

पं० सुन्दरम् के दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री अनंतरामन् बी० ए० हैं और छोटे हैं श्री गोपालकृष्णन्, यह दोनों ही अच्छे वॉयलिन वादक हैं और अनेक संगीत परिषदों में भाग लेकर यश प्राप्त कर चुके हैं। सन् १६५२ ई० में, पं० ओ३मकारनाथ ठाकुर की अध्यक्षता में, भारत सरकार की ओर से जो 'इन्टरनेशनल कल्चरल डैपूटेशन' काबुल गया था, उसमें पं० सुन्दरम् ऐयर और इनके छोटे सुपुत्र गोपाल कृष्णन् भी गये थे। काबुल के

राजा ने इन दोनों कलाकारों का वायलिन सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रगट की। जगत प्रसिद्ध योरोपीय वायलिन वादकों ने भी श्री गोपाल कृष्णन् की प्रशंसा की है।

पं० सुन्दरम् ऐयर ने दक्षिणी और उत्तरीय इन दोनों संगीत पद्धतियों का अभ्यास और मनन करके अपनी सम्मति दी है कि इन दोनों पद्धतियों में कोई अन्तर नहीं है और इनके मूल भूत सिद्धान्त एक ही हैं, इस बात का प्रमाण आप प्रत्यक्ष वादन करके श्रोताओं को आसानी से बता देते हैं। यही कारण है कि उत्तर भारत तथा दक्षिण में सर्वत्र आपका यथेष्ट सम्मान होता है। ६४ वर्ष की अवस्था में भी आप अपने पुत्रों के साथ-साथ आठ-आठ घंटे तक रियाज़ करते हैं।

★

प्यार खां

आपको लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के गुरु होने का सम्मान प्राप्त था। आप तानसेन घराने के एक विख्यात संगीतज्ञ हुए हैं। उत्तमकोटि के बीनकार होने के साथ-साथ आप श्रेष्ठ सरोद वादक भी थे। गायकी का गुण तो इन्हें परम्परा से ही प्राप्त था। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में आपने यथेष्ट सम्मान तथा कीर्ति प्राप्त की। इन्होंने सुरसिंगार नामक एक नवीन वाद्य का आविष्कार भी किया था और इस वाद्य को बजाने में भी सिद्धहस्त थे।

रीवा के महाराज राजाराम वंशीय महाराजा विश्वनाथ सिंह की सभा में प्यार खां रहते थे। और कभी कभी बेतिया के महाराजा नन्दकिशोर के दरबार में भी जाया करते थे। इन्होंने अनेक ध्रुपदों की रचना करके कत्थक गवैयों को दीं।

प्यारखाँ साहेब एक अद्वितीय गायक या वादक ही नहीं अपितु उच्चकोटि के वाग्गेयकार भी थे। 'तिलक कामोद' जैसे प्रसिद्ध राग के सृष्टा भी आप ही थे। कहा जाता है कि एक दिन प्यारखाँ किसी गाँव के मार्ग से जा रहे थे तो एक झोंपड़ी से कोई ग्रामीण महिला चक्की चलाती हुई गीत गा रही थी। उसके स्वर प्यार खां के कानों को बहुत प्रिय मालूम हुए। उन्होंने अनुभव किया कि इस देहाती गीत में बड़े-बड़े रागों के विभिन्न स्वरों का मिश्रण मौजूद है। तब आपने उन स्वरों के आधार पर 'तिलक कामोद' को जन्म दिया, जिसमें कि 'देश' 'बिहाग' व 'कामोद' के स्वरों का मिश्रण पाया जाता है।

प्यार खां ने रबाब–यंत्र संगीत की गंभीरता के साथ वीणा की मधुर झंकार को मिलाकर ध्रुपद के धीर–उदात्त रस में होरी का लालित्य भर दिया था। इस मिश्रण के फलस्वरूप उनके संगीत में ऐसा सम्मोहक गुण पैदा हो गया था जिसकी तुलना नहीं हो सकती। इस प्रकार प्यारखां का संगीत दिग्दिगंत में फैल गया। क्योंकि वे कला के सौन्दर्य का वितरण करना जानते थे। आपके अनेक शिष्य थे जिनमें वाजिद अलीशाह के अतिरिक्त इनके भान्जे बहादुरसेन, बेतीया के राजा नंदकिशोर, टोंक के नवाब हशमतजंग के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्यार खाँ संतानहीन थे, अतः आपने अपनी बहिन के पुत्र को गोद ले लिया था और उसको संगीत के विभिन्न अङ्गों की खास तालीम दी। अपने आविष्कृत वाद्य सुरसिंगार में भी उसे प्रवीण कर दिया था। इनके इस दत्तक पुत्र का नाम बहादुर हुसेन खां था। आगे चलकर संगीत के क्षेत्र में इसकी भी पर्याप्त ख्याति हुई। प्यारखां के एक भाई भी थे। इनका नाम जफरखाँ था। यह भी अच्छे संगीतज्ञों में थे। भगवत कृपा से प्यार खाँ को दीर्घायु प्राप्त हुई और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, लखनऊ में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

★

फीरोज़ खाँ

भारतीय संगीत में क्रान्ति पैदा करने वाले प्रसिद्ध संगीतज्ञ अमीर खुसरो के नाम से सभी संगीतज्ञ परिचित हैं। फीरोज खाँ इन्हीं के पुत्र थे। कंठ संगीत के लिये फीरोज़ खाँ का गला उपयुक्त नहीं था, इसलिये इनके पिता ने इन्हें वाद्य संगीत की शिक्षा देने का विचार किया। पुत्र के लिये अमीर खुसरो ने विशेषत: तत्कालीन वीणा में परिवर्तन करके सेहतार नामक एक नवीन वाद्य का आविष्कार किया जिसको आजकल सितार बोलते हैं। खुसरो साहब ने इस वाद्य पर बजाने के लिये अनेक गतें भी स्वयं तैयार कीं।

फीरोज़ खाँ की संगीत शिक्षा इसी वाद्य से प्रारम्भ हुई। आप कुशाग्र बुद्धि वाले तो थे ही, उस पर अमीर खुसरो जैसा महान संगीतज्ञ गुरु, अत: यह शीघ्र ही सितार वादन में प्रवीण हो गये। सितार जैसा नवीन और कर्णप्रिय वाद्य श्रुति मधुर वादन और चमत्कारिक शैली आदि गुणों के संयोग से शीघ्र ही संगीत समाज में आपकी ख्याति होने लगी। थोड़े ही दिनों में यह वाद्य लोकप्रिय हो गया और सर्वत्र इसका प्रचार होने लगा। चूँकि फीरोज़ खाँ अमीर खुसरो के पुत्र होने के कारण अमीर घराने के थे, इसलिए इन्होंने संगीत विद्या का अभ्यास अर्थ लाभ के उद्देश्य से नहीं किया, अपितु अपने पिता की कीर्ति एवं संगीत परम्परा कायम रखने के लिये ही किया था। यह अपने समय के बहुत उच्च कोटि के सितार वादक हुए। इतिहासज्ञों के मतानुसार आपका समय तेरहवीं शताब्दी के आस-पास निश्चित किया जा सकता है।

★

बदल खां

सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले व्यक्ति अब भी भारतवर्ष में पाये जाते हैं। किन्तु आयु वृद्धि के साथ-साथ उनकी कर्म शक्ति का नाश भी हो जाता है। परन्तु बदल खाँ साहेब के समान कर्म शक्ति वाले मनुष्य को देखकर हमें आश्चर्य होता है।

खाँ साहेब स्वयं अपनी जन्म तिथि ठीक ठीक नहीं जानते थे। वह केवल यही जानते थे कि १८५७ ई० के सैनिक विप्लव के समय उनकी आयु २२ या २३ वर्ष की थी। इसलिये ऐसा लगता है कि वे १८३३ या १८३४ ई० के लगभग जन्मे थे तथा १९३७ ई० में, १०३ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ।

वे हिन्दुस्तान के एक रईस संगीतज्ञ वंश के अन्तिम वंशधर थे। माताजी की ओर से वे किराना घराने के प्रसिद्ध संगीत सम्राट अब्दुल करीम खाँ के निकट सम्बन्धी थे। पिताजी की ओर से वे स्वर्गीय छंगे खां के वंशधर थे। इसलिये उनके विषय में कुछ जानने के पूर्व छंगे खाँ के विषय में जानना आवश्यक है।

यद्यपि वर्तमान समय में हम छंगे खां के घराने से अधिक परिचित नहीं हैं परन्तु २५० वर्ष पूर्व के हिन्दुस्तान में छंगे खां एक प्रसिद्ध गायक थे। उन लोगों का आदि निवास पानीपत था।

बादशाह आलमगीर की मृत्यु के बाद छंगे खां पानीपत से दिल्ली गये। उस समय औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में सिंहासन पाने के लिये झगड़ा चल रहा था। आपसी विद्वेष के कारण प्रजा की दशा अति शोचनीय होगयी थी। सन् १७१९ में मुहम्मद शाह के बादशाह होने के साथ ही शान्ति स्थापित

हुई। वह अकबर के ही समान संगीत प्रेमी थे और स्वयं भी संगीत जानते थे। जब उन्होंने प्रसिद्ध गायक नियामत खाँ को 'शाह सदारंग' की उपाधि दी, तब उस समय के संगीत समाज में काफी हलचल मच गयी। उनके दरबार में बहुत से संगीत कलाकारों ने जाना शुरू कर दिया। छंगे खां भी उन्हीं में से एक थे।

कुछ का कहना है कि छंगे खाँ के घराने से ही आधुनिक 'फिरत ख्याल' रीति चालू हुई। मगर हमारे ख्याल से स्वर्गीय फैयाज खाँ साहेब के आगरा घराने की तरह छंगे खां का घराना भी पहले 'ध्रुपदिया' था। बाद में उन्होंने 'सदारंग' से 'ख्याली' रीति को अपना लिया। हमारे मत के अनुकूल एक प्रमाण है। 'फिरत ख्याल' के घराने की तरह छंगे खाँ का प्राचीन घराना 'सारंगिया' था। कारण, बदल खां साहेब खुद 'सारंगिया' थे, किन्तु घटना क्रम से पता चलता है कि छंगे खां का घराना केवल २ पुश्तों से ही 'सारंगिया' हुआ था। उनमें बदल खाँ साहेब के चाचा हैदर खां ही प्रथम थे।

छंगे खां के बाद हैदर खाँ को ही हम दरबारी संगीत कलाकार के रूप में पाते हैं। हैदर खाँ ने ही सबसे पहले अपने वंश में गाने के साथ सारङ्गी बजाना प्रारम्भ किया। उनकी नई कला की ख्याति इतनी हुई कि कुछ समय उपरान्त द्वितीय बहादुर शाह ने उनको अपने दरबार में समम्मान आमन्त्रित किया।

बहुतों का मत है कि वीणा, रबाब, सितार तथा सरोद की तरह सारङ्गी का अपना 'बाज' कुछ नहीं है। वह दूसरों के संगीत के साथ केवल मेल ही रखती है। वेश्याओं के संसर्ग के कारण सारङ्गी को कोई सम्मान नहीं मिला, इसीलिये सारङ्गी बजाने वालों को भी कोई उपयुक्त सम्मान नहीं मिल सका। परन्तु हैदर खाँ के जीवन का दिग्दर्शन करने से पता चलता है कि असली संगीत प्रेमियों के मन में सारंगी का सम्मान उस जमाने में भी था और आज भी है। इतिहास बताता है कि प्राचीन युग में बीन बजाने वालों की तरह उनके बाजे के लिये भी दरबार में ले जाने के लिये खास सवारी नियुक्त होती थी। हैदर खां की सारङ्गी भी एक खास सवारी पर दरबार में ले जायी जाती थी। सारंगियों को बीनकारों के समान ही दरबार में सम्मान मिलता था; इसका प्रमाण यह है कि बादशाह ने हैदर खाँ को 'खलीफा' की उपाधि प्रदान की थी तथा प्रसिद्ध हैदर खाँ के भतीजे

बदल खाँ का शिष्यत्व जमीरुद्दीन खां, स्वर्गीय गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, स्वर्गीय नगेन्द्रदत्त, धीरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य, कृष्णचन्द्र डे, (अन्ध गायक) भीष्मदेव चटर्जी, सचीनदास, मोतीलाल, शैलेशदत्त गुप्ता इत्यादि प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने ग्रहण किया ।

हैदर खां के घराने का बदल खां ही अकेला उत्तराधिकारी था । संगीत और वाद्य को भली प्रकार सीखने पर वह अपने चाचा के साथ प्रति दिन दरबार जाता था । वहां दरबार के अन्य कलाकारों के साथ उसको मिलने का अवसर प्राप्त होता था। किन्तु अधिक दिन यह सुविधायें वह नहीं पा सका। क्योंकि १८५७ ई० के विप्लव के शुरू होने पर उनको एक संकटमयी परिस्थिति का सामना करना पड़ा। बादशाह के संसर्ग के कारण चाचा व भतीजे दोनों को दोषी ठहराया गया तथा उन लोगों को मृत्यु दण्ड घोषित किया गया। किन्तु जनप्रिय होने के कारण महीष दास खेत्री नाम के एक प्रभुत्वशाली व्यक्ति ने उस समय के बड़े लाड से अनुनय करके उनको क्षमा दान दिलाया।

मुक्त होने के बाद वे पानीपत लौटे। उस समय बदल खां की आयु २२ या २३ वर्ष की थी। दुगुने जोश के साथ वे अपने चाचा से तालीम पाने लगे। किन्तु गरीब होने के कारण उनको अपनी जीवन चर्या के लिये दिल्ली जाना पड़ा। दिल्ली नगर तब उजड़ गया था क्योंकि कलकत्ता भारत की राजधानी बना दिया गया था। उनके सब मित्र दिल्ली छोड़कर अन्य स्थानों में चले गये थे। वे आगरा गये तथा वहां से ग्वालियर आये। ग्वालियर में सिंधिया के दरबार में उस समय सुप्रसिद्ध ख्यालिये हद्दू खां, हस्सू खां और नत्थूखां रहते थे। वहाँ हैदरखां और बदलखां का परिचय हुआ तथा उन्होंने नवजीवन प्रारम्भ किया। ग्वालियर से वे रामपुर आये। रामपुर के नवाब ने हैदरखां का स्वागत किया। रामपुर से आगरा वापस गये और वहीं हैदर साहब का देहान्त हुआ। चाचा की मृत्यु के पश्चात् बदल खां आगरे में रहने गये। कभी-कभी निमन्त्रित होने पर वह अन्य दरबारों में भी जाया करते थे। वहां से सन् १९१९ में वे कलकत्ता आये तथा अपने मृत्युकाल तक कलकत्ते में ही रहे। खां साहेब कलकत्ते में आकर दुली चन्द बाबू के, दमदम के बाग वाले मकान में रहने लगे। वह आत्म-प्रचार को नापसन्द करते थे, किन्तु दुली चन्द बाबू के प्रयत्नों से वे कलकत्ते में भी काफी प्रसिद्ध होगये और बहुत से युवक तथा वृद्ध उनके शिष्य बने।

उनकी इस बढ़ती ख्याति के कारण तत्कालीन संगीत कलाकारों में काफी सनसनी फैल गयी। प्रसिद्ध संगीतज्ञ गिरिजाशंकर चक्रवर्ती जब उत्तर भारत से छम्मन खां साहेब, मुहम्मद अली खाँ तथा इनायत हुसेन खां इन सब से तालीम लेकर सन् १९२७ में कलकत्ता आये, तब उनका यही अनुमान था कि बदल खां साहेब केवल एक 'सरंगिया' ही हैं। पीछे जब उनको यह ज्ञात हुआ कि बदल खां कण्ठ संगीत में भी अद्वितीय हैं और रामपुर के प्रसिद्ध कलाकार मेंहदीहुसेन खां और खादिमहुसेन खां भी बदल खां के शागिर्द हैं, तब वह भी स्वयं तालीम लेने के लिये बदल खाँ साहेब के पास गये। एकबार लखनऊ कालिज के अध्यापक तथा संगीत समालोचक श्री धुर्जुटीप्रसाद मुखोपाध्याय ने स्वर्गीय पंडित भातखंडे से बदल खां साहेब का जिक्र किया था, तब पंडित जी ने विस्मित होकर कहा था, "बदल खां अब तक जीवित हैं? मैंने उनको सारंगी बजाते एकबार सन् १८८५ में इन्दौर में सुना था। उनकी सारंगी की गुंजार अभी तक मेरे कानों में है। आश्चर्य है कि इतने दिनों तक इतने बड़े कलाकार छिपे रहे।"

बदल खां साहेब को अपने-अपने दरबारों में रखने की विफल चेष्टा रामपुर के नवाब, ग्वालियर के सिंधिया, इन्दौर के होलकर, नवाब वाजिद-अली शाह तथा अन्य अनेक राजा-महाराजाओं ने की थी। परन्तु खां साहेब कलकत्ते में ही रहे तथा असंख्य धनी और निर्धन शिष्यों को तालीम देते रहे। खां साहेब अन्य उस्तादों से भिन्न थे। क्योंकि उन्होंने अपने घराने के इल्म को घराने में ही सीमित न रखकर अपने असंख्य शिष्यों में प्रसन्नतापूर्वक प्रसारित किया।

उनका संगीत-ज्ञान-भंडार असीम था। दुःख केवल इसी बात का है कि उनके देहान्त के साथ ही साथ उनके घराने का भी अन्त होगया। कलकत्ता आने के पूर्व ही उनकी पत्नी का स्वर्गवास भी हो गया था।

★

बहादुरसेन

सेनी घराने के प्रसिद्ध कलाकार बहादुरसेन रबाब और सुरसिंगार द्वारा कला श्रष्टि करके जनता को मोहित कर लेते थे।

जाफ़र खाँ, प्यार खां और बासत खां की संगीत विद्या के उत्तराधिकारी सादिक अली खाँ, बहादुर सेन खाँ और अलीमोहम्मद खाँ (बड़कू मियाँ) हुए। बहादुर सेन खां प्यार खां के भानजे थे। प्यार खाँ ने विवाह नहीं किया था, अतः उन्होंने अपने भानजे को दत्तक पुत्र के रूप में रख लिया और अपनी संगीत विद्या का उत्तराधिकारी उसी को बनाया।

यद्यपि बहादुरसेन में संगीत के शास्त्रीय ज्ञान का अभाव था, तथापि उनके संगीत में रंजक शक्ति इतनी प्रबल थी कि उस समय हिन्दुस्तान के चोटी के वीणा वादकों में आपका नाम था। रबाब और सुर सिंगार की शिक्षा इन्होंने अपने मामा प्यार खाँ से ही प्राप्त की। आपके हाथ में ईश्वर में प्रदत्त एक असामान्य मिठास था और इस गुण के कारण वे सब के हृदय को वशीभूत कर लेते थे।

उक्त दोनों वाद्यों में प्रवीण हो जाने के बाद यह दिनों दिन अपने क्षेत्र में लोकप्रिय होते गये। एक बार काशी में एक वृहत संगीत सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें बनारस के सभी तत्कालीन गायक और वादक आमंत्रित थे। इस जल्से की यह विशेषता थी कि इसमें सभी गुणियों से केवल बिहाग राग बजाने को कहा गया। प्रथम काशी के सब गुणी जनों ने एक-एक करके कण्ठ अथवा वीणा द्वारा विहाग के आलाप सुनाये, तत्पश्चात् बहादुर सेन की बारी आई। बहादुर सेन ने दो घंटे तक विहाग का आलाप बजाकर उपस्थित गुणी मंडली को मुग्ध और विह्वल कर दिया। इसके अतिरिक्त भारत के मुख्य मुख्य राज दर्बारों में आपने अपने कला प्रदर्शन द्वारा यथेष्ट सम्मान प्राप्त किया। बहादुर सेन के सुर सिंगार से केवल उस्तादों पर ही नहीं अपितु साधारण अशिक्षित व्यक्तियों पर भी प्रभाव पड़ता था।

बहादुर सेन के अनेक शिष्य थे, जिनमें वे अपनी संगीत विद्या भली प्रकार वितरित कर गये। इनके कोई संतान नहीं थी अतः वे बालक वजीर खां को अपनी सन्तान की तरह तालीम देते थे। आपके प्रधान शिष्यों में

नवाब कल्बेअली खां के भ्राता हैदरअली खाँ रामपुर वालों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने रबाब, वीणा और सुर सिंगार इन तीनों यन्त्रों में तथा कंठ संगीत में दक्षता प्राप्त करके बहादुर सेन का नाम अमर कर दिया। कहा जाता है कि नवाब हैदरअली खां ने एक लाख रुपया देकर बहादुर सेन से सेनी घराने की वास्तविक तालीम प्राप्त की, परन्तु उनके गुरू भी असाधारण प्रकृति के थे, सम्पूर्ण विद्या शिष्य को सिखाकर गुरु बहादुर सेन ने नवाब को वह एक लाख रुपया वापिस करके कहा—"इल्म कभी दौलत से नहीं खरीदा जाता; शुरू में यह रकम मैंने सिर्फ तुम्हारी परीक्षा के लिये ले ली थी, इसकी मुझे अब जरूरत नहीं है।" ऐसे निर्लोभी कलाकार अब कहाँ हैं? उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में आपका देहावसान हो गया।

★

बन्देअली खां

ग्वालियर में बन्दे अली खाँ साहेब एक प्रसिद्ध बीनकार हो गये हैं, जिनका उल्लेख भातखण्डे जी ने भी अपनी पुस्तकों में किया है।

इनका जन्म काल लगभग सन् १८३० माना जाता है। उत्तर भारत में गाने-बजाने का पेशा करने वाली एक विशेष जाति या सम्प्रदाय जिसे 'धाड़ी' कहते थे, उसी सम्प्रदाय से खां साहब का सम्बन्ध है। इनका घराना "किराना" नाम से प्रसिद्ध है।

बन्देअलीखां के दादा खां साहेब रहीम अली दिल्ली दरबार में, दरबारी गायक के रूप में रहते थे। ग्वालिर के प्रसिद्ध गायक हद्दू खाँ की प्रथम पुत्री से बन्दे अली खां की शादी हुई थी। आपको वीणा वादन की शिक्षा सदारंग के बड़े लड़के निर्मलशाह के द्वारा प्राप्त हुई थी, ऐसा बताया जाता है। बीन-वादन की कला में आप उत्तरोत्तर उन्नति करते गये और जयपुर ग्वालियर तथा इन्दौर दरबार में विशेष रूप से आपने अपनी कला का प्रदर्शन काफी समय तक किया, किन्तु अपने विचित्र स्वभाव के कारण ये स्थायी

रूप से कहीं टिक नहीं सके। अन्त में इन्दौर दरबार में ही इनका अधिक समय बीता, ऐसा कहा जाता है।

ऊपर बताया जा चुका है कि इनकी शादी हो चुकी थी, किन्तु बाद में एक विशेष मौके पर इनका निकाह ग्वालियर महाराज की प्रसिद्ध गायिका और दासी चुन्नाबाई से हो गया। बात यों बताई जाती है कि एक दिन दरबार में इनका बीन वादन सुनकर महाराज इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें मुँह माँगा इनाम देने को वचनबद्ध हो गये, तब खाँ साहेब ने धन दौलत न माँगकर इस सुन्दरी और संगीत की कलाकार चुन्नाबाई को ही माँग लिया। महाराज को अपना वचन पूरा करना ही पड़ा।

बन्देअली के वादन में आलापचारी की यह विशेषता थी कि उसमें मींड, घसीट, बहलावा एवं स्वर क्रियाओं के अन्य प्रदर्शन अति विलम्बित लय में होते थे और गमक का प्रयोग वे बहुधा द्रुत लय में करते थे।

आपके जोड़ के काम में जब स्वरों का मिलान होता था तो ऐसा प्रतीत होता था मानों समुद्र की लहरें एक दूसरे से आलिंगन कर रही हैं। जिस प्रकार प्रथम लहर के नष्ट न होने पर भी दूसरी और तीसरी लहरें दिखाई देती रहती हैं; उसी प्रकार आपकी स्वरलहरी का कार्य था, अर्थात् एक स्वर के बाद दूसरा, तीसरा स्वर आ गया, किन्तु प्रथम स्वर मार्मिक श्रोताओं के कानों में फिर भी गूंज रहा है।

बन्देअली खां की कला की सफलता उनकी स्वर साधना में थी, जिसे उन्होंने अत्यन्त परिश्रम और लगन से प्राप्त किया, और स्वरसिद्धि जिसे कहते हैं वह आपको प्राप्त हुई। ऐसी ही स्वरसिद्धि आगे चलकर इसी घराने के खाँ साहब अब्दुल करीम खां को भी प्राप्त हुई।

इस सफल बीनकार का मृत्यु काल सन् १८९० ई० बताया जाता है।

★

बापूराव (नादानन्द स्वामी)

श्री बापू जी ने संगीत कला का शास्त्रीय ज्ञान अपने पिता जी से प्राप्त किया और गायन वादन की तालीम नायक मौलाबख़्श, बड़े इनायत खां से प्राप्त की।

बापू जी के पिता श्री गोविन्द शर्मा संगीत शास्त्र के पंडित थे। उन्होंने मैसूर की ओर जाकर दाक्षिणात्य संगीत का भी विशेष अभ्यास करके त्यागराज परम्परा के श्रीशाम शास्त्री आदि विद्वानों से संगीत लाभ प्राप्त किया था। संगीत शास्त्र पर आपने एक ग्रंथ 'मूलाधार गानाचार्य माला' लिखना आरम्भ किया, जिसका प्रथम भाग 'मूलाधार' प्रकाशित हुआ।

श्री बापू जी का सितार साधारण सितारों की अपेक्षा काफी बड़ा है, इस पर आप वीणा का काम भी करते हैं। आपका बाज भी मधुर और विचित्र ढंग का है। जब बापू जी सितार बजाते हैं तो पैर से आघात–अनाघात की ताल भी चलती रहती है। इस समय लगभग ७० वर्ष की अवस्था होने पर भी नई–नई रचनाओं का क्रम चलता रहता है। नवीन कृतियां बनाने का

शौक उन्हें बचपन से ही रहा है और अब तक आप हजारों रचनाएं तैयार कर चुके हैं। बापू जी के पास बहुत प्राचीन हस्तलिखित संग्रह है, जिसमें स्वरलिपियां तथा राग-रागिनी के चित्र भी हैं।

बापू जी का वेष और दिनचर्या साधु जैसी है। वे विशेषत: कहीं बाहर नहीं आते-जाते और इसी कारण आपकी पर्याप्त ख्याति नहीं है। आप हैदराबाद (दक्षिण) के हनूमान जी के मन्दिर में रहते हुए भगवान की पूजा करते हैं। मन्दिर में ठाकुर जी के सामने सितार बजाते हैं और कोई इच्छुक विद्यार्थी आता है तो उसे शिक्षा देते हैं। सितार के अतिरिक्त आप दिलरुबा (इसराज) आदि अन्य वाद्य भी बजाते हैं। हैदराबाद में आपके कई हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि शिष्य हैं।

बापूजी के प्रमुख शिष्यों में श्री डी० आर० पर्वतीकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपको श्री बापूजी की संगीत शिक्षा का लाभ लगातार १४ वर्षों तक प्राप्त हुआ है। पर्वतीकर जी अत्यन्त विनम्र शान्त स्वभाव और साधु वृत्ति के व्यक्ति है और अपने को "दास" कहकर सम्बोधित करते है। भगवत भजन के पद गाते रहते हैं। इनको सितार, सुरमण्डल, शंकर वीणा (रुद्र वीणा) तथा संगीत शास्त्र का ज्ञान अपने पिता जी तथा श्री बापू जी की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

★

बाबूखाँ बीनकार

दर्बारी ढङ्ग की पगड़ी, जरी के काम का अंगरखा तथा कामदार जूता पहने हुए और पीछे-पीछे दो तीन शागिर्द बीन लिये हुए इन्दौर की सड़कों पर झूमने वाले उस्ताद बाबू खां बीनकार को जिन्होंने देखा है, उन्होंने बाबूखाँ को फटे-पुराने और मैले कपड़े तथा बेढङ्गी टोपी लगाये हुए, इन्दौर की सड़कों पर अकेला भटकते हुए भी देखा है। ऐसे मनकी स्वभाव के विचित्र कलाकार का जन्म नरवर स्टेट में सन् १८६३ ई० के लगभग हुआ। आपके पिता नरवर स्टेट के दर्बारी बीनकार हसन खां थे। पिता की असामयिक मृत्यु के कारण आपको देवास के मुराद खाँ साहब जो कि बन्दे अलीखाँ साहब के शागिर्द थे, से संगीत-शिक्षा प्राप्त हुई। खान्दानी गुण होने के कारण आप १३-१४ वर्ष की आयु में ही अच्छी वीणा बजाने लगे। उस्ताद मुराद खां आपकी प्रतिभा से बहुत प्रसन्न थे वे जब किसी जल्से में जाते तो बाबूखां को जरूर साथ ले जाते; इस प्रकार उस्ताद के साथ घूम-घूम कर सङ्गीत का ज्ञान आपने भली प्रकार अर्जित कर लिया और फिर इन्दौर में स्थायी रूप से रहने लगे। बाद में इन्दौर महाराज ने अपने दर्बारी संगीतज्ञ के रूप में आपको रख लिया।

बाबूखाँ का व्यक्तित्व आकर्षण रहित था। काला रंग, नाटा कद, दुबला-पतला शरीर और स्फूर्तिहीन चाल-ढाल देखकर कोई अपरिचित यह कल्पना नहीं कर सकता था कि इस गुदड़ी में लाल छिपे हुए है, इसका परिचय तो श्रोताओं को तभी मिलता था जब कि उनकी वीणा की उत्ताल तरंगें श्रोताओं के अन्तरतम को स्पर्श करती थीं। ठोक, मींड, घसीट और

झाले उनकी तंतकारी की विशेषताएं थीं। बारम्बार नई स्वर लहरी और नये अलंकार दिखाकर वे श्रोताओं में जागृति पैदा करते रहते थे।

आपकी तंतकारी किराना घराने की थी। कभी-कभी जब आप 'मूड' में होते और आपके पास मित्र मडली बैठी होती तो तानपूरा को आप इस ढङ्ग से छेड़ते मानो वीणा बज रही है। जब कभी वीणा बजाते-बजाते कोई तार ढीला होकर बेसुरा हो जाता, तो बाबूखां अपनी गत को रोक कर उसे मिलाते नहीं थे, अपितु उस तार पर इस अन्दाज़ मे आघात करते कि उसका बेसुरापन छिप जाता था और इस प्रकार अपनी गत को चालू रखते हुए उसका क्रम भंग नहीं होने देते थे।

वीणा के अतिरिक्त सितार, सरोद, रबाब पर भी आपकी अँगुलियां भली प्रकार दौड़ती थीं। इनके अतिरिक्त ताल पर भी आपका विशेष अधिकार था। किसी साधारण तबल्चिये की हिम्मत उनसे भिड़ने की नहीं होती थी। साधारण लय में १६ गुन तक की लयकारी करते हुए आप अपना स्वर सौन्दर्य नष्ट नहीं होने देते थे।

आप बड़े स्वाभिमानी प्रकृति के एव स्पष्ट वक्ता थे। एक बार एक प्राइवेट महफिल में आपके वीणा वादन का प्रोग्राम रक्खा गया। आपको सुन्दर गलीचे पर बैठाया गया और कुछ आफीसर तथा श्रीमन्त इधर-उधर गद्दीदार कोचों पर बैठ गये। जब आपसे वीणा वादन आरम्भ करने के लिये कहा गया तो इधर-उधर एक रहस्यमयी गम्भीर दृष्टि डालते हुए आप बोले- "क्या आप लोग लंगूरों की तरह मेरी बीन सुनेंगे ?" उस समय कुछ व्यक्तियों को आपका यह व्यंग चाट गया; किन्तु कुछ समझदार व्यक्तियों ने संयम से काम लेकर श्रोता वृन्दों को नीचे फर्श पर बैठाया, तब आपका कार्यक्रम शुरू हुआ; इस प्रकार आप कटु सत्य से पीछे नहीं हटते थे।

यद्यपि बाबूखां साहब पढ़े लिखे नहीं थे, किन्तु उन्हें सैकड़ों खान्दानी चीजें मुँहजबानी याद थीं, कुछ चीज़ों की रचना तो उन्होंने स्वयं की थी। शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त रंगदार ठुमरियाँ, नाटकीय गाने एवं हलके-फुलके संगीत को भी वे बड़ी तैयारी से गाते थे। रिकार्ड तैयार करने के आप बड़े विरोधी थे, उनका कहना था कि ये रिकार्ड वाले समय कुसमय बजाकर शास्त्रीय सङ्गीत की हत्या करते रहते हैं, मैं अपना रिकार्ड नहीं दूँगा।

अनियमित जीवन, बेढङ्गा रहन-सहन, मद्यपान का व्यसन आदि दोष भी आपके अन्दर पाये जाते थे; किन्तु उनकी कला साधना और प्रतिभा को देखकर उनके विरोधी भी कहते हैं कि बाबूखां जैसा बीनकार अब दुर्लभ है। अन्त में यह अद्भुत कलाकार २५ नवम्बर सन् १६४१ ई० को निमोनिया के आक्रमण से इन्दौर में स्वर्गवासी हो गया। ★

बिसमिल्लाह खां

वर्तमान युग में शहनाई वाद्य को लोक प्रिय बनाकर उसे उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का श्रेय उक्त कलाकार को ही है। जिस किसी के कानों में आपके श्रुति मधुर शहनाई वादन की स्वरलहरियाँ पड़ जाती हैं, उसी का हृदय आपकी प्रतिभा को मान लेता है। श्रोताओं को स्वर के अथाह सागर में डुबो देने की क्षमता इसी कलाकार में देखी जाती है। समय–समय पर होने वाले विभिन्न सङ्गीत सम्मेलनों में सुरीला वातावरण बनाने के लिए सम्मेलन का श्री गणेश प्रायः बिसमिल्लाह खां के शहनाई वादन से ही होता देखा जाता है।

खाँ साहब की वंश परम्परा सुप्रसिद्ध शहनाई वादकों से संबंधित है। आपके पूर्वज (दादा-परदादा) भोजपुर दरबार में शहनाई वादक रहे थे। आपके पिता का नाम उस्ताद पैगम्बर बख्श था, जो अपने युग के एक श्रेष्ठतम संगीतज्ञ रहे। भोजपुर में ही सन् १९०८ के लगभग बिसमिल्लाह खाँ का जन्म हुआ। अविभावकों के कठिन प्रयत्नों के बावजूद भी बचपन में आप स्कूली शिक्षा से दूर भागते रहे। ६ वर्ष की आयु से ही इन्होंने अपने मामा उस्ताद अलीबख्श से शहनाई की तालीम लेना आरम्भ कर दिया। प्रतिभा–शील और परिश्रमी होने के कारण आप द्रुतिगति से शहनाई वादन पर अधि–कार करने लगे। आपके मामा उच्चकोटि के शहनाई वादक होने के साथ-साथ गायकी में भी कुशल थे। अतः वे बिसमिल्लाह को गायन–शिक्षा भी देते रहे। वे जहां भी शहनाई वादन के लिए जाते बिसमिल्लाह को साथ ले जाते। इस प्रकार अल्पायु में ही संगीत सम्मेलनों में सक्रिय भाग लेने से आपको निरन्तर

प्रोत्साहन मिलता रहा। ख्याल गायकी की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आप लखनऊ गये और वहाँ उस्ताद मोहम्मद हुसैन से पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की।

निरन्तर श्रम और अविरल प्रयत्न करने वालों के समक्ष सफलता हाथ बांधे खड़ी रहती है। अत: बिसमिल्लाह खां १७–१८ वर्ष की आयु में ही कुशल कलाकार बन गये। आपकी ख्याति का प्रारम्भ सर्व प्रथम प्रयाग विश्व विद्यालय के संगीत समारोह से हुआ। यह समारोह सन् १९२९ ई० में हुआ था, इस अवसर पर भारत के उच्चकोटि के संगीतज्ञ उपस्थित थे। श्री बिसमिल्लाह ने अपने मधुर शहनाई वादन से उपस्थित श्रोता वर्ग को मंत्रमुग्ध कर लिया। श्रोताओं ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बहुत से पदक तथा प्रमाण पत्र आपको भेंट किये। तब से आपको लगभग सभी उच्चस्तरीय संगीत सम्मेलनों में निमंत्रित किया जाने लगा। जहां भी गये, श्रोताओं के हृदय पटल पर अपनी मधुर स्मृतियों का चित्र अंकित कर आये।

आपके भाई शमसुद्दीन खां भी उच्चकोटि के शहनाई वादक थे। संगीत–सम्मेलनों में दोनों ही साथ–साथ जाया करते थे। दुर्भाग्यवश शमसुद्दीन खां का देहावसान होगया। ऐसे कलाकार भ्राता की मृत्यु से बिसमिल्लाह खां का हृदय टुकड़े–टुकड़े होगया। आखिर विधि के विधान पर संतोष करना ही पड़ता है।

आप अपने शहनाई वादन की संगति के लिए तबले के मुकाबिले में खुर्दक को अधिक पसन्द करते हैं। क्योंकि तबले की आवाज़ अधिक देर तक गूँजने के कारण शहनाई के स्वरों में एक रस नहीं हो पाती और खुर्दक की आवाज़ कम गुंजायमान होने के कारण उसमें मिलजाती है। आपका कहना है कि जिस युग में शहनाई का प्रादुर्भाव हुआ था उस समय तबले का निर्माण नहीं हुआ था। पूर्वजों ने शहनाई की संगति के लिए खुर्दक को ही उपयुक्त समझा।

खां साहेब शहनाई वाद्य को अन्य वाद्यों के समान ही लोकप्रिय एवं समाज में प्रचलित करने के प्रयत्न में हैं। आपने इसकी शिक्षा के निमित्त काशी में एक पाठशाला भी खोल रक्खी है। आपके शहनाई वादन की अधिक प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित होने वाले आपके कार्यक्रम कितने आकर्षक और प्रभावशाली होते हैं, यह विज्ञ श्रोताओं से छिपी नहीं है। आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी आप कई बार भाग ले चुके हैं। वादनकला में आप १९५६ में राष्ट्रपति द्वारा पदक प्राप्त करके सम्मानित होचुके हैं। भारतवर्ष ऐसे कलाकारों पर गर्व कर सकता है।

★

बुन्दू खां

प्रसिद्ध सारंगी वादक उस्ताद बुन्दू खां का जन्म सन् १८८० ई० के लगभग दिल्ली में हुआ था। आपका घराना दो सौ वर्ष से संगीत कला के लिये प्रसिद्ध है। इन्होंने बचपन में संगीत का प्रारम्भिक अध्ययन अपने नाना मियां सोंगी खाँ की देखरेख में किया, जो उस समय रियासत बल्लभगढ़ के दरबारी गायक थे। थोड़े ही समय में इन्होंने अपने नाना से बहुत कुछ सीख लिया और बड़ी कुशलतापूर्वक सारंगी बजाने लगे।

मियां सौंगी खां की मृत्यु के बाद इन्होंने अपने मामा मियाँ मम्मन खां से तालीम प्राप्त की। मम्मन खां एक बहुत प्रसिद्ध सारंगिये थे और उस समय पटियाला–रियासत के दरबारी गायक थे। बुन्दू खां की कला पर मुग्ध होकर इन्होंने अपनी लड़की की शादी भी बुन्दू खां के साथ करदी और इनको संगीत की शिक्षा भी देते रहे।

बचपन से ही बुन्दू खाँ अत्यन्त परिश्रमी थे, अतः सारंगी बजाने में शीघ्रता से प्रगति करने लगे। उस्ताद मम्मन खां जो कुछ भी इन्हें बताते, बुन्दूखां उसपर पूरी तरह अमल करते। उस्ताद यदि कह देते कि अमुक पल्टा हजार बार दुहराकर याद करो, तो बुन्दू खां अन्दाज से नहीं बल्कि गिनकर उस पल्टे को एक हजार बार अवश्य दुहराते और तब दूसरे पल्टे की ओर बढ़ते। इसीलिये इनके उस्ताद इन पर विशेष प्रसन्न रहते थे। उस्ताद मम्मन खां ने अपनी पास की चीजों का समस्त संग्रह बुन्दू खां को दे दिया था। मम्मन खाँ ने पटियाला दरबार में बाईस वर्ष नौकरी की थी। सन् १६४० में मम्मन खां का स्वर्गवास होगया, उनके मृत्यु काल तक बुन्दू खां उनके पास कुछ न कुछ सीखते ही रहे।

होली के अवसर पर इन्दौर के महाराज तुकोजीराव गाने बजाने के विशेष उत्सव किया करते थे। इन जल्सों में दूर–दूर के संगीतज्ञ आकर अपना कला–कौशल दिखाया करते, इन्हीं कलावन्तों में से चुनाव करके महाराजा साहब अपने दरबारी संगीतज्ञ नियत करके उन्हें वेतन पर अपने यहाँ रख लेते थे। खां साहब बुन्दू खां का प्रभावशाली सारङ्गी वादन सुनकर महाराज इनकी ओर भी आकर्षित हुये और इन्हें दरबार में नौकरी दे दी गई। इन्दौर में कुछ समय महाराज के यहां बुन्दू खां के अतिरिक्त खां साहब नासिरुद्दीन खां, खां साहब मियां जान, सखाराम मृदंगाचार्य तथा कई तबलिये और बीनकार भी इकट्ठे होगये थे। उस्ताद बुन्दू खां २५ वर्ष तक इन्दौर में रहे, वहां से रिटायर हो जाने के बाद उन्हें बहुत समय पैन्शन मिलती रही। उन दिनों इन्दौर में पं० भातखडे जी संगीत संशोधन कार्य के लिये भ्रमणार्थ आये हुये थे। इस कार्य में महाराज की आज्ञा थी कि दरबार के सभी गुणी लोगों को पंडित जी के कार्य में सहायता करनी चाहिये। इसलिये दरबार के सभी संगीतज्ञ जिनमें बुन्दू खां भी थे, पंडित जी से मिलने जाया करते थे। बुन्दू खां ने इस अवसर से लाभ उठाना उचित समझा और वे भातखंडे जी से संगीत की शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त करने लगे। पंडित जी की थाट पद्धति के

अन्तर्गत रागों का विभाजन करना बुन्दू खां को बहुत पसन्द आया, और भी संगीत सम्बन्धी बहुत सी शास्त्रीय जानकारी उन्होंने पंडित जी से हासिल की।

सारंगी वादन में घोर परिश्रम के कारण बुन्दू खां के शरीर तथा पैरों में दर्द रहने लगा। इस कारण औषधि के रूप में उन्होंने अफ़ीम खानी शुरू की। आगे चलकर यह औषधि व्यसन के रूप में बदल गई। धीरे-धीरे अफीम की मात्रा भी बढ़ती गई और फिर तो आप अफीम के दास ही बन गये। उन्हें स्वतः इस नशे का दुःख भी था, किन्तु आदत से मजबूर थे। फिर भी वे तरुण गायक-वादकों को ऐसे व्यसनों से दूर रहने का ही उपदेश दिया करते थे।

इन्दौर की नौकरी के समय भी बुन्दू खां सारंगी का रियाज नियमित रूप से करते और इसके बाद गायन सम्बन्धी सङ्गीत शास्त्र का मनन भी करते थे। संगीत में आप इतने रंगे हुये रहते कि उन्हें देश में राजनैतिक तथा अन्य परिस्थितियों का कुछ भी पता नहीं रहता था। इसका एक उदाहरण इस प्रकार बताया जाता है कि सन् १९४६ में जब पाकिस्तान की हलचल विशेष रूप से थी, दिल्ली रेडियो के मुसलमान नौकर पाकिस्तान के मसले पर आपस में बात चीत किया करते थे। खां साहब भी उन दिनों दिल्ली रेडियो पर अपने प्रोग्राम के लिये गये थे, उन्हीं दिनों मिस्टर जिन्ना दिल्ली आने वाले थे। रेडियो स्टेशन पर एक मुसलमान ने बुन्दू खाँ से कहा कि जिन्ना साहब रेडियो स्टेशन पर भी आने वाले हैं। बुन्दू खां ने समझा कि जिन्ना साहब कोई गवैया होंगे, इस ख्याल से आप कहने लगे कि ये कौनसे जिन्ना खां हैं, मैंने हिन्दुस्तान के सभी मशहूर गवैयों के नाम सुने हैं मगर इनका नाम तो आज ही सुना है। वे रेडियो पर गाने आवें तब मुझे बता देना मैं उनका साथ करूंगा। यह सुनकर लोगों ने हँसकर कहा अजी खां साहब! जिन्ना साहब कोई गवैये नहीं हैं वे मुसलमानों के नेता हैं। वे तो लैक्चर देने के लिये आयेंगे।

खां साहब ने सन् १९३४ में "सङ्गीत विवेक दर्पण" नामक हिन्दी की पुस्तक भी प्रकाशित की थी, जिसमें उन्होंने मालकोष और भैरवी इन दो रागों का वर्णन करके उनकी कुछ तानों के प्रकार दिये थे।

बुन्दू खां ने अपने जीवन में बहुत से सङ्गीत सम्मेलनों में भाग लिया। कला के प्रदर्शन में अपनी सफलता के प्रमाण स्वरूप उन्होंने कई स्वर्ण पदक

भी प्राप्त किये। अखिल भारत में आपका नाम सारंगी वादकों में विशेष स्थान रखता है, वे अपनी कला के आचार्य माने जाते थे। लगभग सभी ख्याति प्राप्त गायकों के साथ आपने सारंगी बजायी थी। अपनी इस सफलता के कारण दिल्ली रेडियो स्टेशन पर स्थाई रूप से उन्हें नौकरी प्राप्त हो गई थी।

जिन दिनों दिल्ली में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था, आपने अपने समस्त परिवार को लाहौर भेज दिया, किन्तु आप दिल्ली में ही रह गये। सितम्बर १९४८ में अपने परिवार को वापस लेने के लिये वे पाकिस्तान गये, वहां उनके कुछ शागिर्द तथा प्रेमी उन्हें हैदराबाद सिन्ध ले गये, वहां से दिल्ली आने के लिये वे तैयारी कर ही रहे थे कि पाकिस्तान से हिन्दुस्तान आने वालों पर प्रतिबन्ध लग गया और वे पाकिस्तान में ही रह गये। १३ जनवरी १९५५ ई० को करांची में आपकी मृत्यु हो गई।

★

भगवान् चंद्रदास

भगवान् चन्द्र दास का जन्म सन् १८५२ ई० में ढाका में हुआ। आप हिन्दू वैष्णव सम्प्रदायी थे और पूर्वजों की भांति व्यावसायिक संगीतज्ञ थे।

ढाका एक प्राचीन प्रसिद्ध शहर है, जो कभी बंगाल के शासकों की राजधानी था। जब भारत के उच्चकोटि के संगीतज्ञ ढाका आया करते थे, तो संगीत-कला प्रेमी धनिकवर्ग द्वारा उन्हें बहुत प्रोत्साहन मिलता था। जब ढाका के नवाब-घराने द्वारा सुविख्यात सितार वादक स्व० हरिचरन दास को आमन्त्रित किया गया, तभी से हरिचरनदास अपने सुपुत्र चैतनदास के साथ ढाका में ही रहने लगे। चैतनदास ने अपने पिता तथा भारत के अन्य उत्कृष्ट सितार वादकों से सितार शिक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् आपने अपने पुत्र रतनचन्द्र दास को अभ्यास कराया। रतनचन्द्र ने इस कला में निपुणता एवं कुशलता प्राप्त करके त्रिपुरा के स्व० महाराज वीर चन्द्र माणिक्य बहादुर के यहां नौकरी करली। ढाका के मिलमालिक स्व० बाबू रूपलालरॉय ने रतनचन्द्र से सितार शिक्षा प्राप्त की। रतनचन्द्र के पुत्र भगवान् चन्द्र और श्याम चन्द्र जब स्कूल में पढ़ते थे, तभी इनके पिता का देहान्त होगया और संगीत की शिक्षा ग्रहण करने का समय न रहा।

भगवान् चन्द्र अपने पिता की मृत्यु के समय प्रवेश-परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। अतः आपने सितार शिक्षा की कुल परम्परा को स्थिर रखने में अपने समय का सदुपयोग करने का निश्चय किया और आप ढाका के रूपलाल रॉय के शिष्य होगये। रूपलाल ने सुविख्यात सितार वादक स्व० सुल्तान बख्श से बहुत समय तक शिक्षा प्राप्त की थी। उनसे भगवान् को मसीदखानी गतें सीखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त आपने कलकत्ते के स्वर्गीय नवीनचन्द्र गोस्वामी से रज़ाखानी गतों का ज्ञान प्राप्त किया। आपको उच्चकोटि के संगीतज्ञों जैसे रबाब वादक स्व० कासिम अलीखाँ, सरोद निपुण इनायत हुसैन और सुरबहार प्रवीण अली रज़ा खां से भी घरानेदार गतों का ज्ञान अर्जित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ढाका के स्वर्गीय नवाब बहादुर सर अब्दुल गनी आपकी योग्यता से बहुत प्रसन्न हुए और आपकी सदैव आर्थिक सहायता करते रहे। इसके पश्चात् वृन्दावन के स्व० लछमनदास सेठ के यहाँ आपने नौकरी करली, जोकि परमश्रेष्ठ संगीतज्ञों जैसे कुदऊसिंह मृदंग वादक, मदन मोहन मिश्र मृदंग वादक, जयपुर के बीनकार इमरत खाँ; ध्रुपद-गायक ताज खां; ख्याल गायक अहमद खां इत्यादि के आश्रयदाता थे। वृन्दावन में अच्छी ख्याति प्राप्तकर भगवान् कलकत्ते आगये और 'भारत संगीत समाज' संस्था में सितार के अध्यापक होगये, जोकि कलकत्ता के कर्णधार द्वारा स्थापित एवं संरक्षित की गयी थी। आपको बर्दवान के महाराजाधिराज, लॉर्ड कारमिकल और लॉर्ड रॉनाल्डशे से सम्मान-पत्र एवं स्वर्णपदक प्राप्त हुए। लॉर्ड कारमिकल आपकी साधना से इतने अधिक प्रभावित हुए कि ढाका में ठहरने के समय तक लगभग एक सप्ताह भगवान् से अपने सामने सितार वादन करने का आपने विशेष अनुरोध किया। आपकी कला साधना के लिये महात्मा गान्धी ने भी आपको एक प्रमाण-पत्र भेंट किया था।

आपके अनेक शिष्यों में ढाका के हाफिज खां, इन्द्र मोहनदास और आपके छोटे भाई श्यामचन्द्र ने सितार पर विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया, जिनमें से इन्द्र मोहन और श्यामचन्द्र व्यावसायिक संगीतज्ञ हुए। गत, तोड़ा की शैली में भगवान् बंगाल के सर्वश्रेष्ठ सितारवादकों में से थे। जिस किसी ने भी आपका सितार वादन ढाका के सुविख्यात प्रसन्न कुमार माणिक्य की तबला-संगति के साथ सुना है, वह आजीवन उसे भूल नहीं सकता। आपके पास असंख्य गत-तोड़ों का संग्रह था, जिनका प्रयोग आपके पूर्वज किया करते थे।

★

भीकनखां

खां साहेब भीकनखां बन्नूखां का जन्म ई० सन् १८८७ में भारत के बड़ौदा शहर में हुआ था। आप बड़ौदा शहर के मुख्य सितार वादक थे। आपके दादा खां साहेब मीराबख्श खां जयपुर के रईस थे। मीराबख्श खां एक अच्छे गायक और सितार वादक थे। खाँ साहेब के दो पुत्र थे। (१) बन्नुखाँ (२) अम्मुखाँ। मीराबख्शखाँ ने अपने दोनों पुत्रों को गायन की तालीम दी और सितार वादन का भी अच्छा ज्ञान कराया। तदुपरान्त हिन्दुस्तान के सेनी घराने के प्रखर सितार वादक उस्ताद वजीरखां, युसुफखां के शिष्य बनाकर उनको सितार वादन में कुशल बनाया। खां साहेब मीराबख्श खां के स्वर्गवास के बाद खां साहेब बन्नूखां और अम्मुखां बड़ौदा आये। बड़ौदा दरबार में श्री खंडेराव महाराज की सेवा का लाभ प्राप्त करके दोनों भाई राज्यगायक बने। खां साहेब के दो पुत्र थे—(१) खां साहेब भीकनखां (२) वजीरखां साहेब। खानसाहेब बन्नूखां ने भीकनखां साहेब को १० वर्ष की आयु से ही गायन की तालीम देनी शुरू करदी, लेकिन भीकनखां के अचानक बीमार पड़जाने के कारण गायन की तालीम बन्द रखनी पड़ी। फिर स्वस्थ होने पर इन्हें सितार वादन की शिक्षा दीगयी। पिताजी के स्वर्गवास के बाद इन्हें राज दरबार में मुख्य सितार वादक का स्थान प्राप्त हुआ। हिन्दुस्थानी ऑरकेस्ट्रा में भी आपने अपनी कुशलता का परिचय दिया, उन्हीं दिनों आपकी नियुक्ति भारतीय संगीत विद्यालय में हुई। भीकन खां साहेब एक अच्छे सितार वादक, बीनकार और दिलरुबा के साथ-साथ जलतरंग वादक भी थे। खां साहेब भीकन खां की सितार वादन शैली का जवाब नहीं था और सितार शिक्षण की पद्धति भी उच्च प्रकार की थी।

आपने हिन्दुस्तान की अनेक संगीत कान्फ्रेंसों में भाग लिया था। ई० स० १९१९ में बनारस में ऑल इण्डिया म्यूजिक कानफ्रेंस में आपने अपने कला-कौशल द्वारा—'त्रितंत्री विशारद' की पदवी प्राप्त की। आप बड़े नम्र और शान्त स्वभाव के थे। आज भी आपके अनेक शिष्य बड़ौदा में मौजूद हैं। १२ जून १९४३ को आप स्वर्गवासी हुए। आपकी मृत्यु से संगीतप्रेमियों को एक उत्तम सितार वादक से हमेशा के लिये वंचित होना पड़ा।

आपके रिश्तेदारों में स्व० उस्ताद फैज महम्मद खां, स्व० उस्ताद गुलाम मोहमद खां, स्वर्गीय प्रोफ़ेसर इनायत हुसेन खां सितारिये और उस्ताद जमालुद्दीनखान बीनकार भी थे।

आपके दो पुत्र हैं—बड़े पुत्र अनवरखां साहेब ने अपने पिता के द्वारा खास तालीम लेकर सितार वादन में कुशलता प्राप्त की और खां साहेब के जीवन में ही बड़ौदा राज्य दरबार में स्थान प्राप्त किया। इन्होंने १० से १२ वर्ष तक स्टेट–ऑरकेस्ट्रा में अपनी सेवाएं प्रस्तुत कीं और उसके बाद आजतक भारतीय संगीत महाविद्यालय में (श्री महाराजा सयाजीराव युनीवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, कॉलेज ऑव इण्डियन म्यूज़िक डान्स एण्ड ड्रामेटिक्स) में सितार वादक के स्थान पर हैं। कई बार आपने ऑल इन्डिया रेडियो बड़ौदा, बॉम्बे, औरंगाबाद, अहमदाबाद, राजकोट, जलंधर और दिल्ली से अपने सितार वादन का परिचय कराया है। भीकन खां साहेब के छोटे पुत्र खां साहेब सरवर खां भी अपने बड़े भाई अनवर खां साहेब के पास से सितार वादन की तालीम लेकर अपने बड़े भाई के साथ ही उक्त कालेज में सितार वादक के स्थान पर हैं तथा ऑल इण्डिया रेडियो बड़ौदा पर भी अपना कार्यक्रम देते रहते हैं।

★

मिश्रीसिंह

तानसेन के समय में प्रसिद्ध वीणा वादक मिश्रीसिंह भी एक उत्कृष्ट कलाकार होगये हैं। इनके पिता महाराजा समोखनसिंह सिंहगढ़ के राजपूत राजा थे। इनके वीणा वादन में जो विशेषता थी, उसका निम्नलिखित कथा मे विशेष आभास मिलता है:—

एक बार अकबर बादशाह सिन्धु देश में शिकार के लिये गये, एक दिन आखेट करते-करते तथा बनों में घूमते-घूमते जब थक गये तो प्यास ने उन्हें सताया। जलाशय की तलाश में अनुचर भेजे गये, कुछ दूर तक जाने के पश्चात् एक बगीचे में उन्हें जलाशय मिला। उसके तट पर एक विशाल शिवजी का मंदिर था, वहां एक साधू वीणा रक्खे हुए पूजा में निमग्न थे। सेवक ने जलाशय से जल भरकर बादशाह के पास पहुँचाया और सब बातें कह सुनाईं। संगीतप्रेमी अकबर कौतूहलवश उसी समय शिव मंदिर की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर क्या देखते है कि एक रक्ताम्बर धारी, प्रसन्न वदन साधु वीणा के स्वर मिला रहे है। बादशाद ने उन्हें प्रणाम किया और अपना परिचय देते हुए वीणा सुनने की इच्छा प्रकट की। साधु ने उनकी जिज्ञासा पूर्ण करने के लिये पूर्वी का आलाप प्रारम्भ किया। सुनने के पश्चात् बादशाह ने अनुभव किया कि ऐसी वीणा हमने आजतक नहीं सुनी। बादशाह ने आग्रहपूर्वक वीणावादक का परिचय पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं अजमेर (सिंघलगढ़) क्षत्रिय नरेश महाराज समोखनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र मिश्रीसिंह हूं। मेरे पिता राज्य युद्ध में वीरगति को प्राप्त होगये, अत: उनकी मृत्यु के बाद मै राज्य वैभव को त्यागकर यहाँ चला आया हूँ। अब संसार में इस वीणा के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है। इसी बन में तांत्रिक साधना के साथ-साथ वीणावादन करते हुए प्रभु की आराधना में समय व्यतीत करता हूं।

अकबर को यह जानकर अत्यन्त दु:ख हुआ कि मेरी ही दिग्विजय के कारण एक गुणी राजा का राज्य नष्ट होगया। किन्तु मिश्रीसिंह ने कहा कि राज्य ऐश्वर्य की बात तो मुझे भूलकर भी याद नहीं आती। जो शांति और आनन्द मुझे यहाँ प्राप्त होरहा है वह राज प्रासाद में कहाँ? अकबर ने उनसे दिल्ली चलने का आग्रह करते हुए कहा कि तानसेन के सहयोगी के रूप में आपको दर्बार में उच्चस्थान प्राप्त होगा तो मिश्रीसिंह बोले कि इस निर्जन और शांतिपूर्ण आश्रम को छोड़कर उस कोलाहलपूर्ण दुनियाँ में जाने की इच्छा तो नहीं होती, किन्तु आपका आग्रह और तानसेन का आकर्षण मुझे आपके साथ चलने की प्रेरणा देरहा है। मिश्रीसिंह बादशाह के साथ दिल्ली आगये।

जिस प्रकार सम्राट अकबर के दरबार में तानसेन जैसा कण्ठ सङ्गीतज्ञ दूसरा नहीं था उसी प्रकार मिश्रीसिंह जैसा वीणावादक का भी जवाब न था। उन दिनों गायक–गायिकाओं की संगत वीणा–मृदङ्ग द्वारा भी होती थी। अतः तानसेन को सङ्गत के लिये मिश्रीसिंह जी एक श्रेष्ठ वीणा–वादक मिल गये और जो सङ्गत का अभाव दरबार में अब तक था वह दूर होगया। अब तो तानसेन के गायन के साथ प्रायः मिश्रीसिंह की वीणा अवश्य बजती। तानसेन ध्रुपद रचना करके जिस प्रकार से गाते, मिश्रीसिंह उसे उसी प्रकार वीणा में व्यक्त करते। कुछ समय तक तो इन गुणियों की सङ्गत ठीक प्रकार से निभती रही, किन्तु समय ने पल्टा खाया और यह सङ्गत असंगत के रूप में बदल गई। कला के मापदंड को लेकर द्वंद और प्रतियोगिता की भावना उक्त दोनों कलाकारों में दिखाई देने लगी। विरोध और झगड़ा होने लगा। एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे।

एक दिन तानसेन ने एक गीत के तानों की रचना ऐसे ढंग से की जो वीणा में बजनी असम्भव थी, क्यों कि वीणा में स्वरों का बन्धन पर्दे–पर्दे पर होता है और उधर गायक मुक्त कंठ से पक्षी की तरह गतिशील होता है, तो कण्ठ की तानों को यन्त्र बेचारा कहां तक व्यक्त करेगा। आखिर उस गीत की तानों को सही–सही मिश्रीसिंह जी नहीं बजा सके तो स्वयं अपमान का बोध करते हुए समझ गये कि तानसेन ने उनको लज्जित करने के लिये ही ऐसे गीत की रचना की है।

मिश्रीसिंह ने तानसेन को उलाहना देते हुए कहा कि आपका यह कार्य सज्जनता के विरुद्ध है। इसके उत्तर में तानसेन ने भी कुछ अप्रिय शब्द कह डाले तो क्षत्री मिश्रीसिंह अपने क्रोध को नहीं रोक सके और तानसेन पर प्रहार कर दिया। अन्त में जब मिश्रीसिंह का क्रोध शान्त हुआ तो वे अपने कृत्य पर बहुत पछताये और भय के मारे उसी समय दिल्ली से फ़रार होगये। बहुत समय तक उनका कोई पता नहीं चला।

उक्त आघात से तानसेन को जो चोट आई थी, उसे आरोग्य लाभ करने में तानसेन को लगभग ६ मास लग गये। उधर मिश्रीसिंह जी पहले की तरह बन–बन में भटकते हुए समय व्यतीत करने लगे। लगभग ३ वर्ष के बाद एक दिन अकबर के वज़ीर नवाब खानखाना की मुलाकात मिश्रीसिंह से होगई। वज़ीर उनको अभयदान देकर और समझा बुझाकर अपने घर ले आये।

अकबर बादशाह मिश्रीसिंह के अभाव की पूर्ति नहीं कर सके, क्यों कि उन दिनों वैसा वीणावादक अन्य कोई नहीं था। इसी सम्बन्ध में एक दिन

वज़ीर से बातें हो रही थीं तो वज़ीर ने कहा—मिश्रीसिंह तो मिल गया, मेरे घर में है। सरकार की आज्ञा हो तो उसे दरबार में ले आऊँ। यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे—यह तो बहुत अच्छा हुआ, किन्तु क़ानून की दृष्टि से मिश्रीसिंह दण्डनीय है। तब दोनों ने सलाह करके एक गुप्त योजना बनाई। वज़ीर ने यह ख़बर फैलाई कि उनके घर में एक सुन्दर वीणावादक स्त्री आई हुई है, यह सम्वाद तानसेन के कानों में भी पहुंच गया। वे व्यग्रतापूर्वक उस वीणावादिनी को दरबार में लाने के लिये बादशाह से प्रार्थना करने लगे। उसी समय वज़ीर खानख़ाना ने तानसेन के सामने ही बादशाह से कहा—वह स्त्री पर्दानशीन है, दरबार में नहीं आ सकेगी; आप सब कृपा करके मेरे घर चलें तो मैं उसकी स्वर्गीय वीणा सुनवा सकता हूं। इस पर सब राज़ी होगये। निश्चित् तारीख और समय पर अनेक श्रोताओं की उपस्थिति में वीणावादन आरम्भ हुआ। थोड़ी देर तक सुनने के बाद तत्काल ही तानसेन बोले—"यह स्त्री नहीं है, मेरा दुश्मन है।" वज़ीर साहब ने कहा—"हरगिज़ नहीं, यह स्त्री है।" तानसेन ने कहा—पर्दा उठा कर दिखाओ! वज़ीर ने कहा एक शर्त पर पर्दा उठा सकता हूँ, वह यह कि आपको मेरी एक बात माननी पड़ेगी। तानसेन राज़ी होगये। पर्दा उठा और मिश्रीसिंह प्रकट होगये। तब अकबर ने तानसेन से कहा—मिश्रीसिंह यद्यपि वास्तव में दण्डनीय है लेकिन तुम इसके मुकाबिले में ऐसा ही कलाकार मुझे दे दो तो मैं अभी इसकी गर्दन उड़वा दूं। इस पर तानसेन बोले कि कला और कलाकारों के प्रति जब हुज़ूर के ऐसे उदार भाव हैं तो मैं भी इसे क्षमा करता हूं। फिर तो तानसेन और मिश्रीसिंह प्रेम से गले मिले। उस समय अकबर ने तानसेन से कहा, यह मिलन पक्का तो उसी समय होगा जबकि तुम्हारी पुत्री का इनके साथ विवाह हो जाय! तुम भी कलाकार, यह भी कलाकार और कन्या सरस्वती भी गुणवती! ऐसा शुभ संयोग कहां मिलेगा?

इस प्रकार तानसेन की कन्या सरस्वती का विवाह मिश्रीसिंह के साथ हो गया। क्योंकि तानसेन पहले ही मुस्लिम धर्म ग्रहण कर चुके थे और मिश्री सिंह अभी तक हिन्दू थे, अतः विवाह के बाद मिश्रीसिंह भी मुसलमान होगये और उनका नाम नबातखां (मिश्री = नबात, सिंह = खां) होगया। नबातखां होने के पश्चात भी मिश्रीसिंह रक्त वस्त्र, सिंदूर और खड्ग आदि धारण करते थे।

विवाह के पश्चात् मिश्रीसिंह के दो पुत्र शेरखां और हसन खां हुए। शेरखां सन्तानहीन रहे और हसनखां द्वारा आगे वन्श चलता रहा। यह तानसेन का दौहित्रवन्श (बीनकार) माना जाता है।

मुराद खां

प्रसिद्ध अमृतसेन सितारिये के घराने के शागिर्द मुगुलू खां एक सुन्दर सितार वादक हुए हैं। प्रसिद्ध बीनकार मुरादखां के पिता होने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त हुआ। आप जावरा के निवासी हैं। आरम्भ में अपने पिता से मुराद खां को सितार की ही तालीम मिली थी; किन्तु एक दिन इन्दौर में मुगुलू खां ने बन्दे अली खां का बीन वादन सुना तो उससे वे इतने प्रभावित हुए कि अपने पुत्र मुराद खां को सितारिया न बनाकर बीनकार बनाने का निश्चय किया और मुरादखां ने भी अपने पिता की आज्ञानुसार उस्ताद बन्दे–अली खां से बीन सीखना आरम्भ कर दिया।

खां साहब से इन्होंने लगभग एक वर्ष तक तालीम लेने की भरपूर चेष्टा की; किन्तु इन्हें संतोष नहीं हुआ। तब एक दिन रोते हुए घर आकर अपने पिता से बोले, खां साहब मुझे कुछ भी नहीं सिखाते। इस पर इनके पिता ने एक चांटा रसीद करते हुए कहा कि कोई भी उस्ताद इतनी जल्दी तालीम नहीं दे देता। तू धीरज के साथ मन लगाकर उनकी सेवा करता जा, जब वे तुझे अच्छी तरह परख लेंगे, तभी ठीक तरह से सिखाने लगेंगे। स्वर ज्ञान तो तुझे है ही; जब उस्ताद बीन बजाया करें तो अपने आंख और कानों को काम में लाया कर। इतने बड़े बीनकार का शागिर्द होना ही तेरे लिये बहुत है।

इस प्रकार समझा बुझाकर मुरादखां को फिर से उस्ताद बन्दे अली खां साहब के पास भेज दिया गया। कुछ समय बाद उस्ताद से इन्हें अच्छी तरह तालीम मिलने लगी। यह बीन बजाने में उन्नति करते गये, किन्तु बन्दे-अली खां की मृत्यु के बाद इनकी शिक्षा बन्द होगई। फिर भी ये अपने रियाज़ द्वारा उनकी बतायी हुई कला को उन्नत बनाते रहे, और शीघ्र ही बीनकार के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

बीनकार बन जाने के बाद मुरादखाँ ने समस्त हिन्दुस्तान में भ्रमण किया तथा नाम भी कमाया। कुछ समय बाद मुरादखाँ देवास जूनियर में नौकर होगये और वहीं पर रहने लगे। रियासत में रहते हुए भी जब–जब आप बाहर भ्रमण को, संगीत के विभिन्न जलसों में भाग लेने चले जाया करते थे। महाराष्ट्र के कलाकार और संगीतप्रेमी आपका बहुत आदर करते थे।

प्रसिद्ध सितार वादक निसार हुसैन खां आपके ही पुत्र थे। किन्तु असमय में ही क्षय रोग से जवान बेटे (निसार हुसैन) की मृत्यु हो जाने के कारण इनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। पुत्र शोक के आघात के कारण ये बहुत दुखी रहने लगे और कुछ उदासीन भी, अतः एक वर्ष के भीतर ही ७० वर्ष की आयु में इनका भी स्वर्गवास होगया।

मुराद खां बीन पर आलाप बजाने में जितने प्रवीण थे, उतनी ही खूबी से वे गतकारी और गायकी प्रस्तुत करने में भी कुशल थे। आप जब बीन बजाने बैठते तो उसमें लीन हो जाते। खाँ साहब ने अपने कई अच्छे शागिर्द तैयार किये, जिनमें इन्दौर के बाबू खाँ, अहमदाबाद के मुशरफ खाँ, धारवाड़ के कृष्णराव पालंदे तथा श्री० कृष्णराव कोल्हापुरे के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

★

मुश्ताक अली खां

मुश्ताक अली खां संगीतज्ञों के उस प्रसिद्ध घराने में से हैं, जिसकी परम्परा सेनिया घराने के प्रवर्त्तक यशस्वी नायक धुंदु से जा मिलती है। वारिस-अली खां वीणाकार, अकबर अली खां टप्पे के गायक, निसार अली खां ध्रुपदिए और सादिकअली खां बेजोड़ खयालिए, इनके पुरखाओं में से ही थे। यह चारों कलाकार तत्कालीन सम्राट बहादुरशाह के साथ बनारस तक आए थे और फिर वहीं टिक गए। तभी से इनका परिचय बनारस का कहलाता है।

मुश्ताक अली खां के पिता आशिक अली खां, प्रसिद्ध सितारिये थे और सेनिया घराने के मान्य कलाकार बरकतुल्लाह के शिष्य थे। मुश्ताक अली खां की संगीत-शिक्षा अपने पिता से ही प्रारम्भ हुई। अभी आप १५-१६ वर्ष के बालक ही थे कि सितार बजाने में आपने खूब प्रसिद्धि प्राप्त की। सुरबहार बजाने में भी आप बड़े प्रवीण हैं। आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र से होने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी आप सितार वादन प्रस्तुत करचुके हैं और विभिन्न संगीत समारोहों में अच्छी ख्याति अर्जित की है।

★

मुहम्मद अली खां (ननकू मियां)

भारतीय संगीत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन के वंश में उत्पन्न स्वर्गीय उस्ताद मुहम्मदअली खां (ननकू मियां) लोकप्रिय संगीतकार बासत खां के द्वितीय पुत्र थे। आपका जन्म १८३४ ई० में हुआ था। संगीत की विरासत आपको पैतृक-सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। इनका समूचा परिवार ही संगीतकार था। स्वयं इनके ज्येष्ठ भ्राता बड़कू मियां रबाब तथा सुरशृङ्गार बजाने में दक्ष थे। ननकू मियाँ की वाणी में मोहिनी थी, स्वभावतः ही उसमें कुछ ऐसा माधुर्य था, जिसे सुनकर श्रोता पर जादू सा होजाता और वह मंत्रमुग्ध हो गद्गद् सा मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता था। उनकी वाणी के इस माधुर्य को देखकर ही बासत खां ने उन्हें शास्त्रीय संगीत की दीक्षा दिलाई। उन्होंने उनको विशेषतः ध्रुपद, धमार और होली गाना सिखलाया।

इतिहास प्रसिद्ध नवाब वाजिदअली शाह के दरबारी–गायक के रूप में अपने जीवन के उत्तरार्ध में कार्य करने के पश्चात् जबकि सन् १८५७ का सैनिक विद्रोह समाप्त होकर ही चुका था, बासत खां अपने दो पुत्रों के साथ कलकत्ता आगये। बासत खां की मृत्यु टिकारी में सन् १८८७ में हुई थी। इसके बाद मुहम्मद अली के भाई अलीमुहम्मद नैपाल चले गये। पिता की मृत्यु के बाद मुहम्मद अली कुछ समय अपने पैतृकस्थान गया में रहे और बिहारीलाल परख्या तथा कन्हैयालाल को शिष्य बनाया। सन् १८८६ में गिधौर के महाराजा के यहाँ दरबारी गायक के रूप में ननकू मियाँ रहे। काशी–दरबार में अली मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् आपको काशी–नरेश ने भी अपने दरबार में स्थान देकर सम्मानित किया। किन्तु कुछ समय पश्चात् ही वे गिधौर वापिस आगये।

कहा जाता है कि एक समय भयंकर ग्रीष्म की संगीत सभा में काशी-नरेश ने मुहम्मदअली खाँ से रबाब पर वृन्दावनीसारंग बजाने का अनुरोध किया। उसे सुनकर काशी–नरेश इतने मुग्ध होगये कि उस सभा में फिर और किसी का संगीत उन्होंने नहीं सुना और कहने लगे कि मुहम्मद अली खाँ का सारंग मेरे हृदय पर अंकित होगया है उससे मुझे परम–शान्ति प्राप्त हुई है, अतः इस समय मै किसी दूसरे राग को सुनकर अपने हृदय–पटल से सारंग के प्रभाव को नष्ट करना नही चाहता।

रामपुर रियासत के गृहमंत्री साहबजादा सादत अली खाँ (छम्मन साहब) ने मुहम्मद अली को अपने सन्निकट रखने को आमंत्रित किया। महाराजा गिधौर की अनुमति पाकर वे वहाँ रहने लगे। छम्मन साहब आपकी योग्यता से इतने प्रभावित हुए कि आपकी शिष्यता डा० नाट्ट के साथ स्वीकार करली। सन् १६२४ में जब छम्मन साहब की मृत्यु होगई, आप ६ महीने तक ठाकुर नवाबअली के पास लखनऊ में रहे। ठाकुर साहब ने जो कि "मारिफुन्नगमात" की रचना मे संलग्न थे, आपसे संगीत की दीक्षा ली और सैकड़ों ध्रुपद संग्रहीत किये।

गौरीपुर (मेमनसिंह) दरबार के श्री बृजेन्द्रकिशोर रॉय चौधरी ने अपने पुत्र वीरेन्द्र किशोर रॉय के लिए आपको संगीत शिक्षक नियुक्त किया। मुहम्मदअली ने अपने शिष्य वीरेन्द्रकिशोर को रबाब तथा सुरश्रृङ्गार वादन और ध्रुपद, धमार व होली गायन में पूर्ण दक्ष बनाने में कोई कसर उठा नही रखी।

ननकू मियाँ की धर्मपत्नी उन्हें निःसंतान ही छोड़ कर चल बसीं। फलतः उन्होंने एक हिन्दू युवक को मुस्लिम धर्मावलम्बी बनाकर उसका विवाह किया। इस प्रकार उनके इस दत्तक-पुत्र से शौकतअली नामक उनका पौत्र उत्पन्न हुआ, जो मन्नूमियां के नाम से कलकत्ता में अपनी संगीत सम्बन्धी सेवाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, वे रबाब भी बजाते हैं।

गौरीपुर में ठा० नवाबअली खां साहब से मिलने के पश्चात् आप श्री वीरेन्द्रकिशोर रॉय के कलकत्ता स्थित निवास स्थान पर आगये। यहां उनकी आंतों में फोड़ा होगया। कुछ इलाज कराने के पश्चात् गिधौर जाने की इच्छा प्रकट की और पहुँचते-पहुँचते, जुमा के दिन ७ अक्टूबर सन् १६२७ को इस संसार को छोड़ गये।

मुहम्मद अली के शिष्यों में केवल वीरेन्द्रकिशोर ही भारतीय संगीताकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। वे ख्यातिप्राप्त बीनकार और सिद्धहस्त रबाबिया भी हैं। संगीत शास्त्र के भी आप अच्छे ज्ञाता हैं।

उस्ताद मुहम्मद अली मछली के शिकार, भोजन बनाना तथा टहलने के शौकीन थे। वे सब को समान दृष्टि से देखने वाले निराभिमानी संगीतकार थे।

★

मोहम्मद शरीफ़ खां

प्रसिद्ध सितारनवाज़ और बीनकार शरीफ़ खां पूछवाले का जन्म बरवाला सैदां ज़िला हिसार में हुआ। आपके पिता रहीम खां सितार बजाया करते थे, इसलिये शरीफ़ खां को बचपन से ही संगीत से प्रेम होगया। पिता जी रियासत पूछ में रहकर वहाँ के राजा साहब को संगीत शिक्षा दिया करते थे। एकबार जब वे छुट्टी पर घर आये तो उन्होंने शरीफ़ खां को डंडे पर तार चढ़ाकर सितार बजाते हुए देखा। सितार-वादन के प्रति अपने पुत्र की ऐसी लगन देखकर उन्होंने शरीफ़ को अपने साथ ही रखने का फ़ैसला किया; उस समय शरीफ़ खां की आयु ६ वर्ष की थी। शरीफ़ खां के पिता जब इन्हें अपने साथ पूछ लेजाने को तैयार हुए तो इनकी माताजी ने विरोध करते हुए कहा—"मेरा एक ही लड़का है और अभी इसकी कच्ची उम्र है। जब तेरह-चौदह वर्ष का हो जाये तब अपने साथ लेजाना।" किन्तु शरीफ़ खां जाने के लिये ज़िद करने लगे। इसी समय शरीफ़ खां की अपने एक मित्र से भेंट हुई जोकि एक सम्मानीय गायक था। गायन की बदौलत अपने मित्र का इतना सम्मान देखकर इनकी भी संगीत सीखने की प्रबल इच्छा हुई और अपने पिता जी के साथ-साथ पूछ रियासत में चले गये।
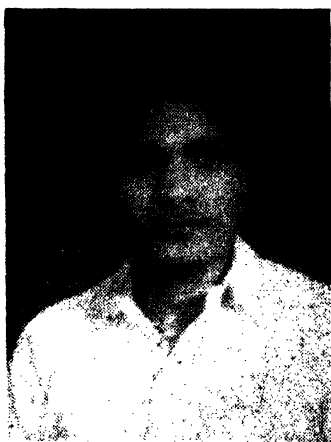
पिता के पास पहुंचकर शरीफ खां को नियमित सितार की तालीम मिलने लगी। ३-४ वर्षों की कठिन साधना के उपरांत आप अच्छा सितार बजाने लगे।

शरीफ़ खां जब सितार बजाने में कुशल होगये तो इनकी भेंट पुनः उसी मित्र से हुई। अबकी बार मित्र महोदय ने कहा—'मेरे ताया अब्दुलअज़ीज खाँ ऐसी बीन बजाते हैं कि बारिश आजाय।" यह बात शरीफ़ खां को चुभ गई और बोले—"अच्छा अब मैं तुमको बीन बजाकर ही दिखाऊँगा!"

पूछ में आकर शरीफ़ खां बीन की साधना करने लगे। रात-दिन धुआंधार रियाज करके आख़िर वीणावादन में भी आपने कमाल हासिल करलिया और गुरुकृपा से उन मित्र महाशय के समक्ष ऐसी वीणा बजाई कि वे आश्चर्यचकित रहगए। आपका घराना इम्दाद खां के लड़के इनायत खां और उनके लड़के विलायत खां से सम्बंधित है। शरीफ़ खां के पिता इम्दाद खां साहब के शागिर्द हैं। आजकल शरीफ़ खाँ पाकिस्तान में खूब चमक रहे हैं।

★

रविशंकर

प्रसिद्ध सितार वादक पंडित रविशंकर का जन्म ७ अप्रैल १६२० को भारत की पवित्र नगरी बनारस में हुआ था। इनके पिता पं० श्यामाशंकर जी बड़े ही उत्कृष्ट विद्वान थे। उन्होंने इङ्गलैंड से बार-एट-लॉ और जेनेवा विश्व-विद्यालय से राजनीति शास्त्र में डाक्टर की उपाधियां प्राप्त की थी, साथ ही वे संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने झालावाड़ रियासत के प्रधान मंत्रित्व पद को तिलांजलि देकर अपने जीवन के अन्तिम २० वर्ष योरुप और अमेरिका में बिताये। उनका ध्येय ज्ञान की वृद्धि करके उसे अनेक प्रकार से वितरण करना ही था। इसी ध्येय को लेकर उन्होंने कैलिफोर्नियां यूनीवर्सिटी में वेदान्त दर्शन का अध्यापन कार्य बिना आर्थिक लाभ को ध्यान में रक्खे हुये किया। सन् १६२३-२४ में लंदन में प्रथम बार उन्होंने पश्चिमी दर्शकों के सामने विशुद्ध भारतीय नृत्य का प्रदर्शन किया, जिसमें उनके सुपुत्र उदयशंकर ने भी भाग लिया।

रवि, अपने चार भाइयों में सबसे छोटे हैं। इनमें सबसे बड़े भाई विश्व-विख्यात नर्तक उदयशंकर हैं। दस वर्ष की आयु से पहिले ही रविशंकर को अपने भाई के नर्तक दल में स्थान मिल गया और वे नृत्यकला में प्रवेश करने

गये तथा आगे चलकर इन्होंने "चित्र सेना" नामक कथानृत्य की रचना की जिसकी दूर-दूर तक प्रशंसा हुई। अठारह वर्ष की आयु तक इन्होंने अपने भाई के नर्तक दल के साथ सारे संसार का भ्रमण कर लिया। इन सुविधाओं के कारण यह स्पष्ट था कि वे नृत्य के क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेंगे।

नर्तक दल के साथ यात्रा करते हुए वे महान सङ्गीतज्ञ उस्ताद अलाउद्दीन खां (मैहर) के सम्पर्क में आये। उस्ताद इस दल के साथ सन् १९३५ में केवल एक वर्ष के लिये रहे थे। वे रवि से बड़े प्रभावित थे और उनके कार्य में विशेष दिलचस्पी लेते थे। रविशंकर जब कभी भूमिका से खाली रहते तब अपने आप सितार, दिलरुबा, तबला इत्यादि बजाया करते थे। इसी वर्ष (१९३५) में उस्ताद अलाउद्दीन खां ने इन्हें पक्के गानों का अभ्यास कराया और सितार वादन की कुछ प्रारम्भिक शिक्षा दी, किन्तु उनकी इच्छा थी कि रवि, जिसमें उन्हें विशेष प्रतिभा दिखाई दी, नृत्य को छोड़कर सङ्गीत के क्षेत्र में आजांय और सितार की साधना करके इसमें विशेष निपुणता प्राप्त करें। उस्ताद का यह विश्वास था कि जब तक साधना न की जाय, यानी जब तक जीवन पर्यन्त अपनी संपूर्ण शक्तियों, ध्यान और इच्छा को एक ही विषय पर केन्द्रित न किया जाय तब तक वास्तविक सफलता मिलना असम्भव है। किन्तु नवयुवक रवि जिनके हृदय में अनेक प्रकार से जीवन का आनन्द उठाने की अभिलाषा भरी हुई थी, उस्ताद के आदेश को ग्रहण न कर सके; किन्तु भाग्य ने तो उनका पथ पहले ही निर्धारित कर रक्खा था, जिसे उन्होंने आगे चलकर ग्रहण किया।

स्वर का चमत्कार उनके मन में अभिव्यक्ति होने के बाद उन्हें अपने निश्चय पर पहुँचने में देर न लगी। अतः सन् १९३८ में आप अपने भाई के नर्तक दल को छोड़कर मैहर चले गये और सच्चे हृदय से उस्ताद अलाउद्दीन खां के शिष्य बन गये।

इसी प्रकार ६ वर्ष बीत गये। उस्ताद इन्हें अपना पुत्र समझते थे। अपने अदम्य उत्साह, लगन, प्रेम तथा प्रतिभा के कारण ही रवि की कला विकसित होती चली गई और इन्होंने अपना एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। १९४१ में उस्ताद ने अपनी पुत्री अन्नपूर्णा का विवाह रविशंकर के साथ कर दिया। अन्नपूर्णा स्वयं बड़ी कुशल संगीतज्ञ है और आजकल भी सर्वोत्तम सुर बहार बजाने वाली हैं।

शास्त्रीय संगीत में पूर्ण निपुणता प्राप्त करने के साथ-साथ रवि के अन्दर कला में नवीनता लाने के लिए अदम्य उत्साह था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने कथा नृत्य के लिए "अमर भारत" आदि संगीत सोलो की रचना की, जिसका निरूपण भारतीय जन नाट्य संघ ने सन् १६४५ में किया था। इनके आरकेष्ट्रा की शैली इतनी सफल रही कि इसके बाद इन्हें आई० एन० टी० निर्मित "डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" का सम्पूर्ण संगीत सौंप दिया गया। इधर ऑल इण्डिया रेडियो ने उनकी प्रतिभा को भारतीय संगीत के लिए विशेष उपयोगी मानकर उसका उचित मूल्यांकन किया।

रविशंकर का सितार वादन अद्वितीय है। अब तक ऐसा समझा जाता था कि सितार, आलाप तथा जोड़ बीनअंग के गंभीर संगीत के लिए उपयुक्त नहीं है, किन्तु रवि ने इसे गलत साबित कर दिया है, साथ ही इन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया है कि एक साधारण से राग को भी यदि आलाप, जोड़, विलम्बित गत, द्रुतगत झाला आदि भागों में समुचित रूप से प्रस्तुत किया जावे तो उससे साधारण श्रोता भी मुग्ध हो सकते हैं। लय पर इनका अधिकार तथा त्रिताल के ही समान किसी भी ताल पर आसानी से सितार वादन की क्षमता सर्वविदित है!

आर्केस्ट्रा पर आपके विचार हैं कि पाश्चात्य ढंग का आर्केस्ट्रा, जिसमें ७५ से १५० तक संगीतज्ञ भाग लेते हैं, अभी तक दो कारणों से भारतीय संगीत में सम्भव नहीं है। एक तो भारतीय संगीत में स्वरान्दोलनों की भिन्नता के कारण स्वरों का एकीकरण नहीं होपाता। एक ही प्रकार के वाद्य को बजाने वाले दो व्यक्ति चाहें वे कितने ही निपुण क्यों न हों, यदि एक साथ बजाने को कहा जाय तो उसमें कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य आजायेगी, चाहे वह भिन्नता कितनी ही न्यून मात्रा में हो। इसका कारण यह है कि प्रत्येक संगीतज्ञ का अपना ढंग अलग होता है, जिसके कारण किसी दूसरे के दृष्टिकोण के हिसाब से चलना उसके लिये कठिन होजाता है।

दूसरा कारण यह है कि हमारे यहाँ पाश्चात्य वाद्यों की तरह के पूरक वाद्य नहीं हैं (जैसे वायु संचालित वाद्य) जिनके बिना आरकेष्ट्रा जो कि 'हारमनी' पर आधारित है, निर्जीव सा रह जाता है।

हाल में ही पं० रविशंकर ने कुछ चलचित्रों में भी संगीत दिया है जिसकी जनता तथा सरकार द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है।

★

रहीम सेन

कहा जाता है, तानसेन के वंश की ध्रुपद-कला के ह्रास का कारण रहीमसेन अमृतसेन का सितार-वादन ही है। इनका सितार-वादन ऐसा चमत्कारिक था कि इनके वंश के बालक ध्रुपद-गायन को छोड़कर सितार सीखने में लग गये।

प्रसिद्ध सितार-वादक अमृतसेन जी का नाम बहुत से संगीत-प्रेमियों ने सुना ही होगा। रहीमसेन जी इन्हीं अमृतसेन जी के पिता थे। रहीमसेन जी के पिता का नाम सुखसेन जी था। बाल्यकाल से इनको अपने पिता से ध्रुपद की शिक्षा मिली, इसमें ये अभी अच्छी तरह प्रवीण नहीं हो पाये थे कि इनके पिता सुखसेन जी स्वर्गवासी हो गये। सुखसेन जी का गायन ऐसा हृदय-ग्राही था, कि लोग उनको सुख-चैन कहा करते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् रहीमसेन को और आगे ध्रुपद सीखने की इच्छा न रही, तब इन्होंने अपने ससुर दूल्हेखाँ जी से सितार सीखा। उन दिनों सितार एक साधारण-वाद्य माना जाता था, इसलिये किसी ने रहीमसेन जी को चिढ़ाकर कहा कि तुम तो बस 'डिड़डा-डिड़डारा' बजाया करो। रहीमसेन जी ने इस पर आवेश में कहा कि भाई इसमें कोई शक नहीं कि ध्रुपद के आगे सितार दो कौड़ी का है। ध्रुपद रत्न के तुल्य है, तो सितार कंकड़ के समान, किन्तु इस कंकड़ को परिष्कृत करके रत्न के बराबर न बना दूँ तो मेरा भी नाम नहीं, तब आपने अपने घोर परिश्रम एवं बुद्धि के द्वारा सितार-वादन में वीणा, ध्रुपद और ख्याल इनतीनोंका रंग भर दिया, फि तो बड़े-बड़े संगीतज्ञ

इनके सितार को सुनकर सिर झुकाने लगे। अपने पुत्र अमृतसेन जी को सितार–वादन में आपने ऐसा पारंगत बना दिया कि रहीमसेन-अमृतसेन जी का सितार–वादन प्रसिद्ध हो गया।

एक बार रहीमसेन लखनऊ गये, तब एक संगीतज्ञ ने जो कि इनसे कुछ द्वेष रखता था, रहीमसेन जी को भोजन का निमन्त्रण देकर अपने यहां बुलाया। साथ ही उसने लखनऊ के प्रसिद्ध गायक–वादकों को भी इकट्ठा किया, और एक वेश्या को भी बुलाया, जो अपनी सुरीली आवाज़ के लिये लखनऊ में प्रसिद्ध थी। सर्व प्रथम कुछ गायक–वादकों का संगीत हुआ, इसके बाद उस वेश्या को गाने के लिये बैठाया गया। यह वेश्या अपनी एक ठुमरी के लिये लखनऊ भर में प्रसिद्ध थी। 'मेरा पियरवा जोगिया होय गया' वह इस ठुमरी को ऐसे विचित्र–ढंग से गाती थी कि श्रोतागण भावावेश में रोने लगते थे। इसी ठुमरी को इस समय भी उसने गाना शुरू किया. उसे मालूम था कि आज यहां प्रसिद्ध सितार–वादक रहीमसेन भी मौजूद हैं। इसलिये उक्त ठुमरी आज विशेष–रूप से गाकर संगीतज्ञों को आकर्षित करना था। ठुमरी गाते–गाते वह गायिका स्वतः भावावेश में इतनी तल्लीन होगई कि उसने २००) मूल्य की अपनी कामदार चूनरी (ओढ़नी) भी फाड़ डाली। ऐसा रंग जमा कि समाज में सन्नाटा छा गया। इस वेश्या की इस ठुमरी के बाद किसी गायक–वादक का संगीत नहीं जमता था, ऐसा प्रसिद्ध था। ठुमरी समाप्त होने के पश्चात् गृह–स्वामी ने रहीमसेन जी से सितार बजाने को कहा। सूर्यास्त का समय था, भोजन से रहीमसेन जी का पेट भरा हुआ था और उक्त वेश्या अपना रंग जमा चुकी थी। ये तीनों ही बातें रहीमसेन जी के प्रतिकूल थीं। इस भेद को समझ कर रहीमसेन जी ने गृह–स्वामी से कहा — 'भाई तुमने मेरे साथ छल तो बड़ा भारी किया है, क्योंकि पेट इतना भरा हुआ है कि लेटने को जी चाहता है, बैठने में कठिनाई हो रही है। उधर बाई जी अपना रंग जमा चुकी हैं और फिर सूर्यास्त का समय है। खैर! खुदा इज्ज़त रखने वाला है, बजाता हूं।" उस जल्से में श्रोताओं के अतिरिक्त लगभग १५ सितारिये रहीमसेन जी का सितार–वादन सुनकर, उसमें से कुछ तत्व प्राप्त करने की इच्छा से वहां आये थे, उस समय रहीमसेन जी ने अपने सितार में 'श्याम-कालिंगड़ा' की एक गत ऐसे आकर्षक ढङ्ग से बजाई कि सब चकित रह गये। वाह-वाह की वर्षा होने लगी, पूर्वोक्त वेश्या का रंग सब उतर गया। श्रोताओं ने कहा—"रहीमसेन जी जैसा आपका नाम था वैसे ही आप हैं, आपके सितार में जादू है।" रहीमसेन ने कहा—'भाइयो! सितार में हमारे पूर्वज कमाल

कर गये हैं, मैं तो तृण के तुल्य हूँ। खुदा ने मेरी इज्ज़त रखली, यही गनीमत है। यह सुनकर उक्त वेश्या ने रहीमसेन जी के पैर पकड़ लिए, कहने लगी-- 'उस्ताद! धन्य हैं आप और आपकी कला!' उस सभा में सभी कलाकारों द्वारा आप प्रशंसित हुए और तब लखनऊ में इनकी धूम मच गई।

अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने के रहीमसेन जी विशेष विरोधी थे। अपनी कला को कहकर नहीं, करके दिखाते थे। एक बार दिल्ली में बड़े-बड़े उस्ताद अमीरों के बीच बैठकर आप सितार बजा रहे थे, चारों ओर से वाह-वाह हो रही थी, अकस्मात एक तोड़ा ऐसा लिया कि खुद इनके मुंह से ही 'ओह' यह आश्चर्यजनक-शब्द निकल गया। इस शब्द के मुंह से निकलते ही इन्होंने सितार रख दिया। लोगों ने पूछा--'खां साहब, क्या चाहिए।' आपने कहा--'छुरी चाहिए!' आज हमारी जबान ने ऐसा बुरा काम किया है कि इसको काट डालना ही उचित है। कितनी बुरी बात है कि मेरे बजाने पर मेरी जबान से ही 'वाह-वाह' निकले।' इस पर श्रोताओं ने कहा कि खां साहब आपने ऐसे ज़ोर का फिक़रा लिया था कि अगर पत्थर के भी ज़बान होती, तो वह भी 'वाह-वाह' किये बिना न रहता। आपके मुँह से निकल गई तो क्या हुआ। लोगों ने आपको बहुत समझाया और फिर सितार बजाने को कहा, तो आपने कहा कि इस समय आत्म प्रशंसा से मेरे चित्त पर उदासी छा गई है, फिर कभी सुनाऊंगा।

मियां रहीमसेन जी 'मसीतखानी बाज' बजाते थे। इस बाज में गम्भीरता तथा रागदारी का प्राधान्य है। इसमें विलम्बित और मध्यलय की प्रधानता रहती है। 'एकै साधे सब सधे' के अनुसार आप अपने पुत्र अमृतसेन जी से स्पष्ट कहते थे कि बेटा, सितार के सिवाय किसी साज को बजायगा तो तेरे हाथ काट डालूंगा। सितार में ही सब कुछ है, इसी पर ध्यान लगाओ। चारों ओर भटकने वाला संगीतकार 'धोबी का कुत्ता' बन जाता है।

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर रहीमसेन जी का समय १८ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित किया जा सकता है। आपके शागिर्दों में पुत्र अमृतसेन के अतिरिक्त इनके छोटे भाई हुसेनखां का नाम भी उल्लेखनीय है।

★

लक्ष्मणराव पर्वतकर (खाप्रू मामा)

लय और ताल बोलों को हाथ और मुँह से विविध प्रकार से व्यक्त करने वाले 'लय भास्कर' खाप्रू मामा से बम्बई प्रांत के अनेक संगीत प्रेमी परिचित हैं। ताल और लय को आपने यहाँ तक सिद्ध करलिया था कि एक से लगाकर सत्रह गुन तक की लयकारी आप करके दिखा देते थे। एक पैर से त्रिताल, दूसरे से झपताल, एक हाथ से लय और दूसरे हाथ से चौताल का ठेका व्यक्त करते हुए मुँह से सवारी का ठेका भी बोलते जाते थे। भारत में ऐसा विचित्र लयकार आपके अतिरिक्त अन्य कोई सुनने में नहीं आया।
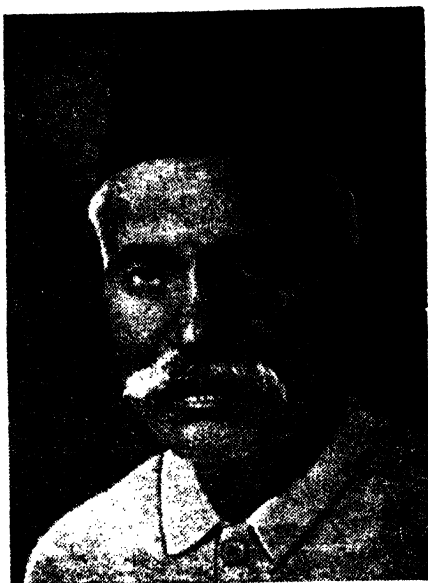
ताल और लय के इस जादूगर का जन्म गोआ प्रान्त के पर्वनी नामक ग्राम में सन् १८८० ई० में हुआ। आपके घराने में पहले से ही सारंगी वादन होता चला आता था। बाल्यकाल में अपने मामा श्री रघुवीर से आपने संगीत की शिक्षा लेनी आरम्भ की और उनसे सारंगी बजाना सीखने लगे। अपने काका श्री हरिश्चंद्र से तबला वादन सीखा और अनंतबुआ धवलीकर से ध्रुपद और धमार की तालीम पाई। ऐसे विद्वानों का सहयोग पाकर लक्ष्मणराव संगीत कला में अच्छी प्रगति कर उठे और प्रसिद्ध गायक तथा गायिकाओं का साथ सारंगी द्वारा करते हुए आपने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। बचपन में बहुत से व्यक्ति आपको खाप्रू कहा करते थे। यह आपके घर वालों द्वारा रक्खा हुआ दुलार का नाम था, अतः आगे चलकर आप "खाप्रू मामा" के नाम ही से प्रसिद्ध होगये।

संगीतज्ञों में भी विविध प्रकार के व्यक्ति होते हैं, किसी को प्राचीन शास्त्रों के अन्वेषण में आनन्द आता है तो कोई अप्रचलित नवीन रागों की रचना

करने में ही दिलचस्पी रखता है। कोई ताल की सूक्ष्म बारीकियों में घुसना चाहता है तो कोई स्वर और श्रुतियों के पीछे पड़ जाता है। इसी प्रकार खाप्रू मामा में लयकारी को सिद्ध करने की लगन थी। उन्होंने दिन रात एक करके अथक परिश्रम द्वारा लयकारी के अनेक प्रकारों को, जिन्हें बड़े-बड़े कलाकार भी व्यक्त नहीं कर सकते थे, प्रत्यक्ष रूप से साकार करके दिखा दिया। एकान्त में बैठकर हाथों की अंगुलियों पर मात्रायें गिनते हुए और पैर के अंगूठे हिलाते हुए जब किसी निर्जन स्थान में लोग उन्हें देख लेते थे तो कहते थे—"खाप्रू मामा पागल है", किन्तु आप इसकी किंचित परवाह न करते हुए अपनी साधना जारी रखते थे।

लय के मर्मज्ञ संगीत प्रेमी आपको आमंत्रित करके एक-एक घण्टे तक आपकी लयकारी के करिश्मे देखते रहते। आप दोनों हाथों से त्रिताल का ठेका शुरू करके १६ मात्रा के अन्दर ही झपताल, एक ताल, धमार और सवारी इन चारों तालों के बोल सुना दिया करते थे। और तारीफ़ यह थी कि पहली मात्रा से शुरू करके सम की समाप्ति तक इन बोलों को ऐसे फिट बैठाते कि किसी बोल की तनिक भी खींचातानी महसूस नहीं होती थी। हाथ से सवारी की ताल का ठेका १५ मात्रा में दे रहे हैं और मुँह से १४ मात्रा का धमार का ठेका बोल रहे हैं तथा इन दोनों तालों की सम बिल्कुल ठीक आरही है।

कुछ समय से संगीत का शौक़ जन साधारण में अधिक फैलने के कारण खाप्रू मामा की प्रतिष्ठा संगीत प्रेमियों में और भी बढ़ गई, जिसके फलस्वरूप सन् १९३८ ई० के लगभग बम्बई के कुछ संगीत प्रेमी तथा कलाकारों ने आपस में विचार विमर्श करके, यह निश्चय किया कि खाप्रू मामा के सम्मान में एक जलसा किया जाय। उस समय खां साहब अल्लादिया खां भी जीवित थे, उन्होंने भी इस विचार का समर्थन किया और फिर सबने एक समारोह करके खाँ साहब अल्लादिया खां के कर कमलों द्वारा खाप्रू मामा को 'लयभास्कर' की उपाधि से विभूषित कराया। इस समारोह में प्रसिद्ध पखावजी श्री मक्खन जी भी सम्मिलित थे और उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन भी किया था। फिर कुछ समय बाद पूना निवासियों ने भी आपको सम्मानित करके थैली भेंट की। उसके बाद फिर बम्बई के कलाकारों द्वारा आप सम्मानित हुए तथा एक हजार रुपये की थैली आपको अर्पण की गई।

आपकी शिष्य परम्परा में बालकृष्ण पर्वतकर और दत्ताराम पर्वतकर ने सारंगी में खूब नाम कमाया। इनके अतिरिक्त अपने पुत्र श्री रामकृष्ण पर्वतकर को भी आपने उच्च शिक्षण देकर योग्य बनाया। वृद्धावस्था में भी आपका स्वास्थ्य अच्छा रहा। वास्तव में अपनी लय साधना से आपने वर्तमान संगीत संसार को चकित कर दिया।

वज़ीर खां

कभी-कभी इस मृत्युलोक में कुछ विशिष्ट और महान आत्माएं आकर शरीर धारण किया करती हैं और अपने चमत्कारों द्वारा संसार को आलोकित करके चली जाती है। वज़ीर खां उन्हीं विभूतियों में से एक थे। आपका जन्म १८६० ई० में हुआ। इनके पिता अमीर खां बीनकार रामपुर में नवाब कल्बे अली खां के दर्बार में थे। अमीर खां अपने युग के बहुत उच्चकोटि के बीनकार एवं ध्रुपद गायक थे, अतः संगीत विद्या वज़ीर खां को परम्परागत पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त हुई। इन्हें सदारंग के घराने का पंचम व्यक्ति बताया जाता है। वज़ीर खां ने गायकी एवं वीणा वादन की शिक्षा अपने पिताजी द्वारा ७–८ वर्ष की उम्र से ही सीनावसीना प्राप्त की थी। कुशाग्र बुद्धि एवं परिश्रमी तथा लगनशील होने के कारण आप संगीत के इन दोनों अंगों में पूर्णरूपेण दक्ष होगये। वीणा, रबाब और ध्रुपद के आप माने हुए कलाकार थे।

जितने दिन नवाब कल्बे अली खां जीवित रहे, उतने दिन रामपुर में हैदरअली खां साहब इनकी शिक्षा व स्वास्थ की देखरेख करते रहे। कल्बे अली खां की मृत्यु के पश्चात् आप हैदरअली के साथ उनकी जमींदारी बिलसी में

चलेगये, वहीं वजीर खां का विवाह हुआ। विवाह के बाद आप देशभ्रमण को निकले, उस समय आपकी आयु २६ वर्ष की थी।

जब आप काशी पहुँचे तो निसार अली खां ने रबाबी वंश की समस्त गुप्त विद्या तथा अनेक ध्रुपद वजीर खां को उपहार स्वरूप प्रदान कीं। निसार अली की मृत्यु के पश्चात् वजीर खां काशी त्याग कर कलकत्ता चले गये, वहां आप ७–८ वर्ष तक रहे। कलकत्ते में मटिया बुर्ज के नवाब गण तथा यतीन्द्र मोहन ठाकुर एवं श्री ताराप्रसाद घोष और यादवेन्द्र बाबू आदि गुणीजन खां साहेब के विशेष अनुरागी तथा भक्त थे। कलकत्ता निवास के दिनों में आपने बँगला भाषा की भी भलीप्रकार शिक्षा प्राप्त की।

कलकत्ता में कई वर्ष व्यतीत होजाने के पश्चात् उस्ताद वजीर खां रामपुर के तत्कालीन नवाब हामिदअली खां के संगीत गुरु पद पर अभिषिक्त होकर वहां चले गये। ऐसे योग्य उस्ताद को पाकर नवाब साहेब अपने को धन्य समझने लगे। प्रथम तो नवाब हामिद अली ने इनसे वीणा वादन की शिक्षा प्राप्त की फिर कण्ठ संगीत की तालीम लेकर होरी–ध्रुपद का अभ्यास किया। नवाब साहेब ने वजीर खां को बहुत आदर के साथ अपने यहां रक्खा और पर्याप्त जमींदारी भी इनको देदी।

खां साहेब वजीर खां ने संगीत में बहुत से शिष्य भी तैयार किये जिनमें पंचतगढ़ के जमींदार यादवेन्द्र बाबू, सितार व सुर बहार वादक नसीर अली, वीणाकार मुहम्मद हुसेन, सितारी अब्दुर्रहीम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह खां साहेब की जवानी तथा प्रौढ़ावस्था के शिष्य हैं, किन्तु वृद्धावस्था में हाफिज अली खां और मैहर के अलाउद्दीन खां ने खाँ साहब वजीर खां का शिष्यत्व ग्रहणकर उनकी ख्याति और कीर्ति को विशेष रूप से बढ़ाया।

वजीर खां साहेब के तीन पुत्र नजीर खां उर्फ प्यारे मियाँ, नासिर खां और सगीर खां थे। इनमें से प्यारे मियां का नाम विशेष उल्लेखनीय है, इन्होंने दीर्घ समय तक अपने पिता से संगीत की तालीम प्राप्त करके कण्ठ संगीत तथा वीणा वादन में योग्यता प्राप्त की थी। वजीर खां की वृद्धावस्था में इस सुयोग्य पुत्र ने पिता वजीर खां के सब शिष्यों की शिक्षा का भार अपने ऊपर लेलिया था और इन्दौर दरबार के संगीत विभाग में उच्च पद पर इनकी नियुक्ति होने ही वाली थी, कि विधि के क्रूर विधान से प्यारेमियाँ का देहावसान

होगया। वृद्धावस्था में जीवन की आशा का दीपक बुझ जाने से वजीर खां को ऐसा प्रबल आघात लगा जिसकी कल्पना नहीं की जासकती। इस दुर्घटना के दो–तीन वर्ष बाद ही, सन् १९२७ ई० में खां साहब वजीर खां ने भी जीवनलीला समाप्त की।

ज्येष्ठ पुत्र की असामयिक मृत्यु के पश्चात् जितने दिनों आप जीवित रहे, उनकी प्राण–प्रण से यह चेष्टा रही कि अपनी वंशगत अमूल्य संगीत–निधि अपने किसी वंशज के रूप में सुरक्षित रहे। उन्होंने अनुभव किया कि मेरा कनिष्ठ पुत्र सगीर खां एवं पौत्र दबीर खां ही मेरी इस कामना को पूर्ण कर सकते हैं। उनकी प्रतिभा के वास्तविक उत्तराधिकारी भी यही दोनों थे, अतः इनकी संगीत शिक्षा की कमी को पूर्ण करना ही वजीर खाँ के शेष जीवन का लक्ष्य रहा और अन्त में उनकी यह कामना सफल रही। दबीर खां ने अल्प समय में ही वीणा वादन में वजीर खां साहेब की सम्पूर्ण विद्या हस्तगत करली तथा सगीर खां भी कण्ठ संगीत के एक अतुलनीय कलाकार प्रमाणित हुए। इनके द्वारा खां साहब का वंश–संगीत तथा नाम अमर होगया।

★

वहीद खां

सुर बहार और सितार के प्रसिद्ध उस्ताद वहीद खाँ का जन्म १८९५ ई० में इटावा में हुआ। आपके पिता उस्ताद इमदाद खां भी सुर-बहार और सितार के उच्च कलाकार थे। आपके छोटे भाई इनायत खां साहब थे।

वहीद खाँ ने प्रारम्भ में ध्रुपद ख्याल और ठुमरी की तालीम लेकर फिर सितार और सुरबहार की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। ३ वर्ष तक आप पटियाला महाराज के यहां दरबारी सङ्गीतज्ञ के रूप में रहे और १८ वर्ष तक इन्दौर दरबार में उच्च वेतन पर रहकर प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनके अतिरिक्त टीकमगढ़, रीवा, बड़ौदा, मैसूर, धौलपुर आदि प्रसिद्ध संस्थानों द्वारा आपको अनेक पदक प्राप्त हुए। तत्कालीन बम्बई के गवर्नर द्वारा आपको एक सार्टीफिकेट भी प्राप्त हुआ था। आजकल वहीद खाँ कलकत्ते में रहकर सङ्गीत शिक्षण का योग्य कार्य कर रहे हैं।

★

विलायत खाँ

प्रसिद्ध सितार वादक विलायत खां का जन्म सन् १९२९ ई० में जन्माष्टमी की रात को गौरीपुर में हुआ। भारत के प्रसिद्ध सितार वादक स्व० इनायत खां साहेब आपके पिता थे। दो वर्ष तक गौरीपुर में रहने के बाद अपने पिता के साथ विलायत खां कलकत्ता चले आये। वहां आप १२ वर्ष की अवस्था तक रहे और अपने पिता जी से संगीत शिक्षा प्राप्त करते रहे। इस छोटी सी आयु में ही आपने 'प्रयाग सङ्गीत सम्मेलन' में भाग लेकर अपनी प्रतिभा से जनता को आकर्षित कर लिया। इसके पश्चात् एक वर्ष बाद प्रयाग विश्व विद्यालय द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलन में पुन: निमन्त्रित किये गये। कुछ समय बाद आपके पिता का देहावसान हो जाने के कारण सन् १९३९ ई० में अपनी माता जी के साथ कलकत्ते से दिल्ली चले आये। विलायत खाँ की माता जी भी सङ्गीत कला में प्रवीण एक कुशल गायिका थीं। अत: वे अपने पुत्र विलायत को अपने निरीक्षण में दस-बारह, घण्टे प्रति दिन सङ्गीत का अभ्यास कराती थीं। यहीं विलायत खां ने अपने नाना बन्देहसन खां से १९३८ से १९४२ तक गायकी की तालीम ली तथा उन्हीं से सुरबहार की शिक्षा भी प्राप्त की।

१९४४ में कांग्रेस की ओर से बम्बई में एक सङ्गीत सम्मेलन का आयोजन हुआ था। उसमें भाग लेने के लिए विलायत खां भी निमन्त्रित किये गये, साथ ही साथ सम्मेलन में उस्ताद फ़ैयाज़ खां, गुलाम अली खाँ, बुन्दू खाँ, अल्ला दिया खां, उस्ताद थिरकुआ आदि चोटी के कलाकार भी सम्मिलित हुए थे।

इस सम्मेलन में विलायत खां ने अपने सुमधुर सितार वादन से श्रोताओं को आश्चर्य चकित कर दिया। जनता के आग्रह से तालियों की गड़गड़ाहट के बीच, पांच बार आपको मन्च पर सितार वादन के लिये आना पड़ा।

बम्बई संगीत सम्मेलन में आप चमक गये थे, अतः अन्य स्थानों से भी आपको निमन्त्रण मिलने लगे, फिर तो अनेक सङ्गीत सम्मेलनों में आपने भाग लिया।

बचपन से ही अत्यन्त परिश्रम के साथ इन्होंने सितार शिक्षा प्राप्त की है। जहां प्रतिभा होती है वहां प्रकृति भी साथ देती है। प्रारम्भिक शिक्षा में जो कमी रह गई थी, वह इन्होंने अपने परिश्रम से पूरी करली।

उस्ताद विलायत खां का सितार वादन गौरीपुर घराने का है। गतकारी से पहले आप जोड़—आलाप का विस्तार बड़ी सुन्दरता से करते हैं। रागालाप करने के बाद विलायत हुसेन "मसीदखानी" गत में अपनी कला प्रदर्शित करते हैं। आपकी गतों की लय बड़ी विचित्र होती है। इनमें सरल तान, फिरत तान, कूटतान, मिश्रतान तथा गमकतान के दर्शन भली प्रकार होते हैं। मसीदखानी के बाद जब आपकी रज़ाखानी गत प्रारम्भ होती है तो उसकी गति चपल होती है। इसलिये आप छोटी सपाटे की तानों का प्रयोग करते हैं। द्रुतलय में भी मींड़, लाग, डांट, कन्तन, कण, ज़मज़मा का प्रदर्शन सुनने लायक होता है।

विलायतखाँ के पूर्वज मलूकदास के वंशज राजपूत थे। उस्ताद इम्दादखां इनके बाबा तथा दादा गुरू थे। लखनऊ के प्रसिद्ध सङ्गीताचार्य श्री ध्रुवतारा जोशी एम. ए. आपके गुरु भाई हैं, जिन्हें हिन्दुस्तान के बाहर यूरोपीय देशों में भारतीय संगीत कला का प्रचार करने का श्रेय प्राप्त है। विलायत खाँ को अपने जीवन में श्री जोशी जी से पथ प्रदर्शन मिला है, अतः ये उन्हें अपने बड़े भाई के समान मानते हैं।

विलायत खां का सितार वादन विभिन्न रेडियो स्टेशनों से प्रसारित होता रहता है। आपके कई ग्रामोफोन रिकार्ड भी तैयार हो चुके हैं।

मधुवन्ती, केदार, शुद्धसारङ्ग, ललित, पूर्याधनाश्री, तोड़ी, कल्याण, मियांमल्हार, मारवा, बिलासखानी तोड़ी, जयजयवन्ती तथा मुल्तानी इत्यादि आपके प्रिय राग हैं।

विलायत खाँ के प्रमुख शिष्यों में अरविंद पारिख बम्बई, कुमारी कल्याणी राय कलकत्ता, काशीनाथ मुकर्जी कलकत्ता, तथा श्रीमती विन्दू झबेरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके छोटे भाई अमृत खाँ ने भी आपसे ही शिक्षा ली है। और आजकल अच्छा बजा रहे हैं। विलायत खाँ की बहिन नसीरन मसीदखां के भतीजे मोहम्मद खाँ को ब्याही गई जिनका सुपुत्र रईस खां आजकल १३ वर्ष की आयु में अच्छा सितार बजा रहा है। रईस खां इतनी कम उम्र में रेडियो तथा बड़े संगीत सम्मेलनों में भाग ले रहा है तथा विदेश भी हो आया है। विलायत खाँ की दूसरी बहिन शरीफ़न बीबी आधुनिक प्रसिद्ध गायक अमीर खां की पत्नी हैं।

विलायत खाँ ने अपने घराने की मर्यादा रखने में अपनी कर्त्तव्य परा-यणता का पूरा परिचय दिया है।

अफ्रीका, इङ्गलैंड, हॉलैण्ड, पोलैण्ड, स्पेन, स्वीज़रलैण्ड, रूस आदि स्थानों का भ्रमण करके आपने भारतीय सङ्गीत को विदेशों में भी गौरवान्वित किया है।

★

वी० जी० जोग

प्रसिद्ध बेला वादक श्री विष्णु गोविन्द जोग का जन्म बम्बई प्रेसीडेन्सी के सतारा जिले के वई नामक स्थान पर सन् १९२२ ई० में हुआ। इनके पूज्य पिता श्री गोविन्द गोपाल जोग इन्हें पांच वर्ष की अल्पायु में छोड़कर स्वर्गवासी होगये थे। आपकी सङ्गीत शिक्षा सन् १९२७ ई० से श्री अत्थावले द्वारा आरम्भ होगई। इसके बाद आप अपने परिश्रम और रियाज़ के द्वारा धीरे-धीरे उन्नति करते गये और फिर श्री० गनपत बुवा पुरोहित के द्वारा आपने शीघ्र ही भास्कर बुवा के घराने की गायन शैली प्राप्त करली। कुछ दिन आपने कर्नाटक पद्धति के आचार्य श्री० कृष्णम् भट्ट के शिष्य विज्ञानेश्वर शास्त्री से भी वॉयलिन की शिक्षा ली। इसके पश्चात् आपने विभिन्न स्थानों के सङ्गीत कार्यक्रमों में भाग लेना आरम्भ कर दिया। अजमेर, इलाहाबाद, बनारस आदि स्थानों के सङ्गीत सम्मेलनों में भी आपने अपनी कला प्रदर्शित की।

सन् १९३६ ई० में श्री० रातांजनकर जी ने एक सङ्गीत सम्मेलन में श्री० जोग को निमन्त्रित किया एवं आपकी कला से प्रभावित होकर सन् १९३८ ई० में भातखंडे द्वारा स्थापित मैरिस कालेज में वायलिन के प्रोफ़ेसर पद पर आपकी नियुक्त करदी। तबसे अब तक आप अनेक विद्यार्थियों को तैयार कर चुके हैं। भारत के प्रसिद्ध संगीतज्ञों के साथ वायलिन की संगत करके आपने अच्छा यश प्राप्त किया है और यह सिद्ध कर दिया है कि स्वरों की बारीकी जिस प्रकार सारंगी से दिखाई जा सकती है उसी प्रकार वायलिन द्वारा भी गायकी के सूक्ष्म अंगों का प्रदर्शन किया जा सकता है।

उस्ताद फैयाज खां, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, पण्डित

नारायणराव व्यास, पं॰ विनायकराव पटवर्धन तथा श्रीमती हीराबाई बड़ौदेकर आदि चोटी के कलाकारों के साथ आप वॉयलिन द्वारा साथ कर चुके हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारत में इस समय आप श्रेष्ठतम बेला-वादक हैं। आपके ठुमरी वादन से तो श्रोता झूम उठते हैं।

सन् १९४९ ई० में हीराबाई बड़ौदेकर के साथ आपने दक्षिणी अफ्रीका का भ्रमण किया और सन् १९५१ में समस्त दक्षिणी भारत का दौरा कर आपने अपूर्व ख्याति प्राप्ति की। श्री जोग में उच्चकोटि के संगीतज्ञ जैसे सभी गुण विद्यमान हैं। वे एक मिलनसार और प्रसन्नचित्त व्यक्ति हैं। अपनी हँसमुख प्रकृति और आकर्षक व्यक्तित्व के द्वारा वे सहज में ही अपना प्रभाव डालने में सफल होजाते हैं। कर्नाटक संगीत का आकर्षक भाग लेकर आप भारतीय संगीत में मिलाने के लिये प्रयत्नशील हैं।

★

शंकरराव गायकवाड़

प्रसिद्ध शहनाई वादक श्री० शंकरराव गायकवाड़ पूना के निवासी हैं। आपने अकलकोट के प्रसिद्ध गायक श्री० शिवभक्त बुवा से रागदारी तथा गायकी का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् बुवा ने इनकी प्रतिभा देख कर इन्हें भास्कर बुवा बखले को सौंप दिया। उसके पश्चात् प्रथम बार भारत में श्री गायकवाड़ ने भारतीय वाद्य संगीत में शहनाई को विशिष्ट स्थान दिया।

शङ्करराव ने २० वर्ष की अवस्था में सर्व प्रथम बम्बई के सेठ बसंत जी खेम जी के हाल में अपनी शहनाई वादन का जनता को परिचय दिया। इनकी शहनाई सुनकर जनता मुग्ध होगई। उस समय एक प्रसिद्ध सारङ्गी वादक उस्ताद सेन थे, वे बोल उठे कि ओह, विवाह शादी में बजने वाले एक मामूली से बाजे पर गायकवाड़ जी ने राग को इतनी सच्चाई से बजाकर कमाल कर दिया है।

पहिले शहनाई एक मामूली बाजा समझा जाता था। हिन्दुओं में शुभ कार्य या विवाह उत्सव समारम्भ होने पर शहनाई वादन से ही उसकी शुरूआत होती थी। कुछ अंशों में यह पुरानी प्रथा अब तक प्रचलित है। महाराष्ट्र तथा अन्य स्थानों पर बहुत से शहनाई बजाने वाले हैं, परन्तु शहनाई पर शास्त्रीय संगीत बजाने का सफल प्रयत्न इन्होंने ही किया।

सन् १९३७ में हिज़मास्टर्स वॉयस कम्पनी ने प्रथम बार आपकी शहनाई के रिकार्ड भरे जोकि बहुत लोकप्रिय हुए। तत्पश्चात् श्री गायकवाड़ ने

विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर ख्याति अर्जित की। नागपुर सम्मेलन में आपको "भारत के महान् संगीत शास्त्रज्ञ" की उपाधि से विभूषित किया गया। महात्मा गांधी ने भी आपको अपने निवास स्थान पर कई बार आमन्त्रित किया था।

दांत शहनाई वादन के लिये अत्यावश्यक होते हैं और बिना दाँत के शहनाई वादन करना असंभव है; किन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात है कि श्री गायकवाड़ ने मुख में दाँत न होते हुए भी इस असम्भव बात को सम्भव कर दिखाया है। अब ७० वर्ष की आयु में भी आपके कार्यक्रम पूर्ववत् आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित किये जाते हैं। आपके वादन की शैली बिसमिल्लाह खां की वादन शैली से भिन्न और प्रौढ़ता लिये हुये है।

इनके जेष्ठ पुत्र स्व० श्री० केशवराव भी शहनाई बजाने में अपने पिता के ही समान निपुण थे। प्रसिद्ध नर्तकी मेनका ने अपनी पार्टी में शामिल करने के लिये उन्हें बुलाया था, पर दैवयोग से वे रोगग्रस्त होगये और उनकी असामयिक मृत्यु होगई। शंकरराव जी के दो पुत्र श्री० नाना साहब तथा पंडरीनाथ विद्यमान हैं। ये दोनों भी संगीत कला में निपुण हैं। नाना-साहब भी बहुत अच्छी शहनाई बजाते हैं और पंडरीनाथ हारमोनियम तथा वायलिन बहुत सुन्दर बजाते हैं।

★

सखावतहुसेन खाँ

देश प्रसिद्ध सरोदवादक उस्ताद सखावतहुसेन खां के नाम से सभी संगीत प्रेमी परिचित होंगे। आप लखनऊ के निवासी थे और भातखंडे संगीत कालेज लखनऊ में संगीत–शिक्षा दिया करते थे। वयोवृद्ध संगीतज्ञों में खां साहेब को एक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था।

भारतवर्ष में जिस समय मुगल सल्तन क़ायम थी, उस समय आपके पूर्वजों में बड़े–बड़े उद्‌भट संगीतज्ञ हुए। उनकी गुरु परम्परा तानसेन के पुत्र बिलासखां से सम्बन्धित थी, अतः सखावतहुसेन खाँ भी स्वयं को सेनी घराने का कहते थे। आपके पिता उस्ताद शफ़ेतखां साहब क़दीमी लखनऊ के निवासी थे। जिस समय मुग़ल सल्तनत का ह्रास हुआ था, इनके ससुर अर्थात् सख़ावत हुसेन के नाना श्री न्यामतउल्ला साहेब ने नवाब वाजिदअली

शाह के यहां आश्रय प्राप्त किया, तभी से इनका खानदान लखनऊ में रहने लगा।

खां साहेब के कथनानुसार आपके पूर्वज ही सरोद वाद्य के जन्म दाता हैं। उन्हीं लोगों ने अफ़ग़ानी वाद्य यंत्र रबाब में इच्छानुसार परिवर्तन तथा संशोधन करके 'सरोद' तैयार किया था। इस ख़ानदान में बड़े-बड़े धुरंधर सरोद वादक हुए, जिनमें से उस्ताद करमखां, उस्ताद हक़दाद खां और उस्ताद हुसेन अलीखां के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सख़ावत हुसेन खां की प्रारम्भिक सरोद शिक्षा अपने पिता उस्ताद शफ़ैतखां द्वारा ही सम्पन्न हुई, तत्पश्चात् यह अपने मामू करामतउल्ला खां के पास इलाहाबाद चले गये। वहां इन्होंने बड़ी लगन और कड़ी मेहनत से सरोदवादन का अभ्यास किया। फलतः यह किशोरावस्था में ही काफी अच्छा बजाने लगे। कुछ दिनों बाद आपको ढाका नगर के क़ाज़ी अलाउद्दीन खाँ के यहां जगह मिल गई और लगभग १० वर्ष तक क़ाज़ी साहेब के आश्रय में ही सरोद वादन करते रहे। वहां से फिर लखनऊ वापिस आगये। यहाँ रहते हुए मुश्किल से एक दो वर्ष बीते होंगे कि नवाब रामपुर इनकी कला पर मुग्ध होगये और अपने साथ ही रामपुर लेगये। यहां लाकर आपका यथेष्ट सम्मान किया गया तथा उचित रूप से पुरस्कृत भी हुए। सौभाग्य से इसी जगह संगीताचार्य स्वर्गीय विश्नु नारायण भातखण्डे से आपकी भेंट हुई और उनकी सम्मति से सख़ावत हुसेन खाँ ने मैरिस म्यूज़िक कालेज लखनऊ में शिक्षण कार्य करना स्वीकार कर लिया। तब से जीवन के अंत समय तक खाँ साहेब उसी उत्तरदायित्व को कुशलता पूर्वक निभाते रहे। इससे आपके विचारों की दृढ़ता और सिद्धांतों की अटलता सिद्ध होती है।

इस अवधि में खाँ साहेब के सरोद वादन की ख्याति चारों ओर फैल गई। देश में होने वाले विभिन्न संगीत सम्मेलनों में इनके सफलतम कार्यक्रम सम्पन्न होने लगे। इनकी वादन शैली, हस्त कौशल और अद्भुत तैयारी सर्वत्र प्रशंसा का विषय बन गये। श्रीमती लीला सोखे इनके कला प्रदर्शन से बहुत प्रभावित हुईं और इन्हें बरबस अपनी मंडली में शामिल करके विदेशों की यात्रा के लिये लेगईं। इसी मंडली की कृपा से खां साहेब योरुप, तथा एशिया के विभिन्न देशों की यात्रा कर सके। बर्लिन की एक अन्तर्राष्ट्रीय संगीत प्रतियोगिता में सरोद वादन के लिये आपको प्रथम पुरस्कार

मिला। उसी समय हिटलर तथा मुसोलिनी के समक्ष भी आपको अपना सरोद बजाने का सुअवसर मिला। अपने युग के यह दोनों महारथी इस भारतीय कलाकार की प्रतिभा से काफी संतुष्ट हुए और इनकी बड़ी प्रशंसा की।

आपका पारिवारिक जीवन बड़ा सादा और नियमित था। मृत्यु के समय जुलाई ५५ में आपकी आयु ७५ वर्ष की थी और इस अवस्था में भी आप अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करते थे।

सखावत खाँ साहब के दो यशस्वी पुत्र आजकल मौजूद हैं। सबसे बड़े उमर खां है, जो सरोद के अच्छे वादक हैं और आजकल कलकत्ते में रहते हैं। द्वितीय पुत्र इलियास खां भी प्रसिद्ध सितारये हैं जोकि भारत के अनेक संगीत सम्मेलनों तथा विभिन्न रेडियो केन्द्रों पर अपना वादन प्रसारित कर ख्याति अर्जित कर चुके हैं। श्री इश्तियाक अहमद सरोद वादक के साथ श्री इलियास खां के सितार वादन की जुगलबन्दी अधिक लोकप्रिय सिद्ध होती है।

★

समोखनसिंह

कहा जाता है कि जिन दिनों सम्राट अकबर के दर्बार में कंठ संगीत के कोहेनूर तानसेन थे उन दिनों उनके दर्बार में एक योग्यतम तंतकार की कमी खटकती थी। यंत्र संगीत के अभाव को बादशाह बहुत अनुभव कर रहे थे। एक दिन बादशाह ने तानसेन से पूछा कि भारतवर्ष में क्या ऐसा कोई तंतकार नहीं है जिसका वादन सुनकर हम तृप्त हो सकें। तानसेन ने कहा---'किसी पेशेवर उस्ताद की तो यह सामर्थ्य नहीं कि वह किसी यंत्र को बजाकर आपको खुश कर सके, किन्तु एक राजा हैं जिनको निमंत्रित करके आदरपूर्वक आप बुला सकें तो उनकी वीणा सुनकर आप अवश्य संतुष्ट होंगे। आज भारत में उनके वीणावादन की तुलना नहीं है; वे हैं सिंहलगढ़ाधिपति राजपूत महाराज समोखन सिंह।'

तानसेन से यह सम्वाद पाकर अकबर ने महाराज समोखनसिंह को निमंत्रण के साथ-साथ यह सम्वाद भी भेजा कि "उनकी वीणा की प्रशंसा सुनकर बादशाह आग्रहपूर्वक उन्हें अपने समक्ष वीणावादन करने को आमंत्रित करते हैं, महाराज कृपा करके दिल्ली पधारें!"

महाराज समोखनसिंह अकबर की कूटनीति को भलीभांति जानते थे, वे राजपूत और मुगल सम्बन्ध को घृणा की दृष्टि से देखते थे और यवनों के साथ मित्रता की अपेक्षा विरोध ही उन्हें प्रिय था। महाराज ने उत्तर में बादशाह को संदेश भेजा कि वह शिव मंदिर में आसन पर बैठकर महादेव जी को जो वीणा सुनाते हैं, वह वीणा यवनों को नहीं सुनाई जा सकती। महाराज का यह अवहेलनात्मक उत्तर पाकर अकबर आग बबूला हो गया और समोखन-सिंह के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके दलबल सहित सिंहलगढ़ पर चढ़ाई करदी। समोखनसिंह का बध करके उसके राज्य को भी मुगल राज्य में शामिल कर लिया और राजकुमार मिश्रीसिंह को बंदी बना लिया। वीणा वादन में मिश्रीसिंह भी अपने पिता के ही समान थे। बंदी अवस्था में जब वे छुपे हुए वीणा बजा रहे थे तो उनकी कला से प्रभावित होकर बादशाह ने उनको मुक्त करदिया; परन्तु अकबर के द्वारा अपना राज्य संहार एवं पिता का बध होने के कारण मिश्रीसिंह को मुगल दर्बार में रहना असह्य होगया और वह जंगलों में निवास करने चले गये।

★

सादत खां

यह भी अपने युग के प्रसिद्ध और लोकप्रिय संगीतज्ञ हो गये हैं। सरोद जैसे कठिन वाद्य पर आपका पूर्णरूप से अधिकार था। इनका हाथ बड़ा मधुर और प्रभावोत्पादक था। इनके सरोद वादन में चमत्कार के साथ-साथ जीवन भी था। तत्कालीन विद्वानों का कहना है कि उस समय इनकी टक्कर का कोई दूसरा सरोदिया नहीं था।

यह ग्वालियर दरबार में महाराज जयाजीराव के आश्रित रहते थे। यह स्वभाव के बड़े नम्र और तबियत के बड़े मिलनसार थे। इन्होंने कुछ शिष्यों को सरोद की शिक्षा भी दी, परन्तु उनमें से कोई भी इस वाद्य में प्रवीण तथा प्रसिद्ध न हो सका।

★

सादिक अली खां

आपके पिता का नाम बहादुर हुसेन खां था, यह अपने समय के प्रसिद्ध वीणा वादकों में से थे। सुर सिंगार बजाने में भी कुशल थे। इन्होंने अपने पुत्र सादिक अली खां को भी उक्त दोनों वाद्यों को बजाने की उत्तम शिक्षा दी। आगे चलकर सादिक अली खां भी पिता के समान ही प्रतिभावान कलाकार निकले। यह गायन कला में भी बड़े प्रवीण और लोकप्रिय सिद्ध हुए। तत्कालीन नवाब रामपुर के भाई साहबजादा हैदरअली खाँ ने आपको अपना गुरु बनाया। इनके अतिरिक्त सादिक अली खाँ के और भी शिष्य हुए। इन्होंने स्वयं अनेक चीजों की रचना भी की। सन् १८५६ ई० में नवाब वाजिद अली शाह गद्दी से उतार दिए गए। गद्दी से उतरने के बाद नवाब साहब ने कलकत्ते को प्रस्थान किया, उस समय सादिक अली खाँ भी इनके साथ थे। इसके अतिरिक्त आपके जन्म तथा मृत्यु के विषय में ठीक-ठीक तिथि निश्चित करने के लिए प्रमाण नहीं मिलते।

*

सादिक अली खां (रामपुर)

बीनकार सादिक अली खाँ के पिता का नाम मुशर्रिफ़ खाँ था। इन्होंने जयपुर के प्रसिद्ध बीनकार और गायक, खां साहेब रज्जब अली से बीन वादन की खास तालीम पाई। मुशर्रिफ खां साहब के पांच सुपुत्र हुए। उनमें से सादिक अली खां ही उच्चकोटि के बीन वादक प्रसिद्ध हुए। शेष पुत्रों ने गायकी का काम अपनाया। सादिक अली खां सन् १८९७ ई० में जयपुर में पैदा हुए थे। अल्पायु से ही आपको श्रेष्ठतम कलाकारों का बीन वादन सुनने को मिला। उन उत्कृष्ट बीन वादकों में खां साहेब अमीनउद्दीन जयपुर, खां साहेब मुराद खां साहेब देवास, खां साहेब जमालउद्दीन बड़ौदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बाल्यकाल से ही आपको बीन वादन की शिक्षा प्राप्त हुई। लगभग १५ वर्ष की कठिन तपश्चर्या के पश्चात् सादिक अली खां बीन वादन कला में पूर्ण रूपेण दक्ष हो गये।

सर्व प्रथम आपने रियासत झालावाड़ में नौकरी की तत्पश्चात् कुछ दिनों रियासत लिमड़ी–बढ़वान रहे। फिर स्टेट जामनपुर के एक संगीत विद्यालय में आपको मुख्य संगीत शिक्षक नियुक्त किया गया। वहां से भी कुछ दिनों बाद नौकरी छोड़दी। इसके बाद सादिक अली खां स्टेट अलवर के दरबार में लगभग बारह वर्ष तक रहे। इस समय आप लगभग १८ वर्षों से नवाब रामपुर के संरक्षण में रह रहे हैं। आपके सुपुत्र असद अली खां साहेब भी इस कला में कुशल हो चुके हैं। यदि उन्होंने कुछ समय तक ऐसी ही लगन से परिश्रम किया तो वे भी एक दिन अपने पिता के समान ही ख्याति प्राप्त कलाकार बनेंगे।

★

हसन खां ढाढ़ी

यह उस युग में पैदा हुए थे, जबकि ध्रुपद गायन पद्धति का ह्रास एवं ख्याल गायन पद्धति का समाज में प्रचार होने लगा था। उस समय दिल्ली की गद्दी पर बादशाह मोहम्मद शाह आसीन थे। प्रसिद्ध बीनकार एवं गायक सदारंग, अदारंग ख्याल गायन पद्धति को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न कर रहे थे। हसन खां ढाढ़ी इन्हीं के एक होनहार और प्रतिभावान शिष्य थे।

एक बार सदारंग अदारंग को बादशाह की ओर से आज्ञा मिली कि आप लोग हमारे जनानखाने की रमणियों को बीन तथा नवीन ख्याल गायन पद्धति की शिक्षा दीजिये। सदारंग अदारंग को यह कार्य अपने सिद्धान्तों के विपरीत प्रतीत हुआ। इधर सिद्धान्त की हत्या उधर राजाज्ञा की अवहेलना ने इनके समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न करदी। उस एक तंत्र के युग में राजाज्ञा को न मानना अपने विनाश को आमंत्रित करना था। इस आड़े समय में हसन खाँ ढाढ़ी ही उनके काम आये। इन दोनों भाइयों ने अपने इस प्रमुख शिष्य को बादशाह के जनानखाने में शिक्षण कार्य के लिये भेज दिया। हसन खां ने इस कार्य को बड़ी खूबी के साथ पूरा किया।

हसन खां की गणना उस समय के बड़े उत्तम और उच्चकोटि के संगीतज्ञों में थी। वर्तमान बीनकार जो यह कहते हैं कि बीन वादन का कार्य हमारे यहां परम्परा से चला आरहा है, उनमें से अधिकांश हसन खां ढाढ़ी के वंश के ही हैं। आपका रहन सहन बड़ा सादा था, किन्तु विचारों में बादशाहत थी जिसके कारण अच्छे-अच्छे लोग आपका लोहा मानते थे और विभिन्न मसलों पर इन्हीं से सलाह लेने आते थे। नशीली वस्तुओं के अधिक सेवन से आपका स्वास्थ्य सदैव खराब रहता था। अपने अन्त समय तक हसन खां ने सैकड़ों शिष्य तैयार किये उसके फलस्वरूप आपकी वंश परम्परा भी फैलती चली गई।

★

हाफिजअली खां

उस्ताद हाफिजअली खां का जन्म सन् १८८८ ई० में ग्वालियर में हुआ। ९ वर्ष की उम्र से ही आपने अपने पिता उस्ताद नन्नेखां से संगीत शिक्षा लेनी शुरू करदी थी। पिता की मृत्यु के बाद हाफिजअली खां ने सरोद वादन का विशेष रूप से अभ्यास करके "आफताबे सरोद" की उपाधि प्राप्त की तथा अपने वंश की कीर्ति को और भी उज्ज्वल किया।

वृन्दावन के प्रसिद्ध ध्रुपदिये महाराज गणेशीलाल चौबे से हाफिजअली खां ने होली और ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त की और इसके बाद नवाब रामपुर के उस्ताद वजीर खां से होली, ध्रुपद व सुरसिंगार की तालीम हासिल की।

गवालियर के श्री मन्त माधवराव महाराज ने आपके सरोद वादन से प्रभावित होकर अपने दरबार में आपको नियुक्त किया था और अब तक वर्त्तमान राजप्रमुख श्रीमन्त जीवाजीराव महाराज इस प्रणाली को निभाते हुए चले आरहे हैं।

कलकत्ते में एक बार श्री रामचन्द्र बराल के यहां एक बड़ा संगीत उत्सव मनाया गया था। इस जलसे में हाफिजअली ने तीन घण्टे तक लगातार सरोद बजाकर श्रोताओं को चकित कर दिया। आपके साथ शिम्भू उस्ताद ने पखावज बजाई थी। जब सरोद का कार्यक्रम समाप्त हुआ तब विपक्षी दल के दर्शनसिंह

नामक एक प्रसिद्ध तबलिये वहां पर अपने अनेक साथियों के साथ उपस्थित थे, उन्होंने हाफिजअली खां के साथ तबला बजाने की इच्छा प्रगट की। यह एक प्रकार की चुनौती थी। हाफिजअली खां ने कहा कि मैं शिम्भू उस्ताद के साथ तीन घण्टे तक सरोद बजा चुका हूं, इसलिये अब माफी चाहता हूँ किन्तु दर्शनसिंह और उसके साथी नहीं माने। उधर श्रोताओं ने भी विशेष आग्रह किया, अतः हाफिजअली खाँ साहब को सरोद लेकर फिर बैठना पड़ा। दर्शनसिंह ने अपना तबला सँभाला। इससे पहिले तीन घण्टे तक सरोद बजाने के कारण हाफिजअली खाँ का हाथ गर्माया हुआ था ही, अतः बैठते-बैठते आपने अति द्रुतलय छेड़ दी। लय की दौड़ और गर्मागर्मी में दर्शनसिंह ने इनका साथ तो खूब किया किन्तु लय की तेजी इतनी बढ़ गई कि १५ मिनट में ही दर्शनसिंह तबलिये की हृदय गति बन्द होकर मृत्यु होगई।

इस घटना से कलकत्ते में एक हलचल सी मच गई। अनेक अखबारों ने उस्ताद हाफिजअली खां के सरोद वादन की प्रशंसा की।

खां साहेब का कहना है कि "चाहे जिस राग में शास्त्रीय नियमों को तोड़ते हुए द्रुततानों का इस्तैमाल करना संगीत के लिये बहुत हानिकारक है। बहुत से गवैये तान लेते समय मिलते-जुलते रागों का आपसी भेद कायम नहीं रख पाते। उदाहरणार्थ अड़ाना, सूहा, सुघराई व दरबारी की तानों में जौनपुरी का रूप दिखाई देने लगता है। राग की सच्चाई और शुद्धता मुझे बहुत प्यारी है। मैं सिर्फ़ उतना ही बजाता हूं जहां तक इन नियमों का मुझ से पालन हो सकता है।"

वृद्धावस्था के कारण यद्यपि आपके सरोद वादन में कुछ शिथिलता आगई है, किन्तु एक समय था जब श्रोतागण हाफिजअली खां का सरोद सुनने के लिए लालायित रहते थे। ईश्वर की कृपा से आधुनिक समस्त संगीतज्ञों में आपकी काया सबसे विशाल है जिसके कारण कहीं-कहीं आपको दर्शकों और कलाकारों के मनोरंजन का साधन भी बनना पड़ता है।

कुछ समय पहिले भारत के राष्ट्रपति द्वारा हाफिजअली खाँ को पुरस्कृत करके सम्मानित किया गया था।

आपके पुत्र मुबारिक अली भी एक होनहार सरोद वादक हैं तथा अपने पिता की कीर्ति को आगे चलकर वे और भी बढ़ायेंगे, ऐसी आशा है।

★

हाफिज खाँ

आप राजस्थान के प्रमुख और प्रसिद्ध वादक अमृतसेन के एक प्रतिभावान शिष्य हुए हैं। अमृतसेन की ख्याति सुनकर हाफिज खाँ सितार सीखने के लिये उनके निवास स्थान जयपुर नगर पहुँचे थे। योग्य गुरु से शिक्षा पाने के उपरान्त इनका भी सितार पर अच्छा अधिकार होगया और इनकी गणना उस समय के श्रेष्ठतम एवं लोकप्रिय सितार वादकों में होने लगी। अपने अभ्यास और परिश्रम द्वारा हाफ़िज खाँ ने अपने उस्ताद अमृतसेन खां का नाम उज्वल किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आपकी मृत्यु होगई।

चतुर्थ अध्याय

पखावज और तबला वादक

अनोखेलाल मिश्र

आपका जन्म सन् १९१४ ई० काशी में हुआ। आपका घराना "श्रीरामसहाय जी बनारस के नाम से प्रसिद्ध है। आपके पिता (श्री बुद्धूप्रसाद) तथा माता जी का इनके बचपन में ही देहान्त होजाने के कारण इनकी दादी ने मेहनत मजदूरी करके इनका पालन पोषण किया। अनोखेलाल ने एक गरीब परिवार में जन्म लिया था, अतः इनका बचपन मुसीबतों में ही बीता।

लगभग ६ वर्ष की आयु से आपकी तबला शिक्षा पं० भैरोंप्रसाद जी मिश्र के द्वारा आरम्भ हुई, इनके द्वारा १५ वर्ष तक तालीम पाकर आपने विशेष उन्नति करली। ठेके की तैयारी में तो अनोखेलालजी अनोखे प्रमाणित हुए हैं। भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों के संगीत सम्मेलनों तथा आकाशवाणी केन्द्रों द्वारा आपकी कला का प्रसारण हो चुका है और होता रहता है।

★

अम्बादास पन्त आगले

मृदंगाचार्य श्री अम्बादास आगले का जन्म सन् १९२० ई० इन्दौर नगरी में हुआ। आपके घराने की संगीत परम्परा सुदीर्घ काल से उच्चकोटि की रही है। आप भारत विख्यात मृदंगाचार्य सखारामजी आगले के सुपुत्र हैं। मृदङ्ग वादन कला आपने अपने पिता जी से ही प्राप्त की। पिता जी की सत् प्रेरणा और अपने अटूट परिश्रम के द्वारा आपने २० वर्ष की आयु में ही इन्दौर दर्बार में मृदंगाचार्य पद प्राप्त करके कीर्ति अर्जित की। कई वर्षों तक इन्दौर महाराज के आश्रय में रहने के पश्चात् अम्बादास जी ने लखनऊ के मैरिस म्यूजिक कालेज में भी कुछ दिनों अध्यापन कार्य किया है।
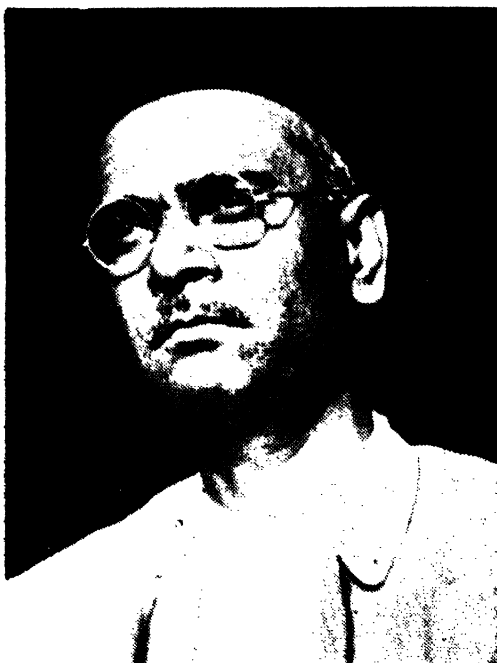
सुप्रसिद्ध मृदंग केसरी नाना साहब पानसे के घराने की वादन कला का प्रदर्शन आप भलीभांति करते हैं। वादन में आपकी अनूठी विशेषता आपके मृदंग वादन का लचीलापन है। उत्कृष्ट लयकारी और बोलों की सफाई देखकर बड़े-बड़े गुणी भी आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

वर्तमान समय में आप इन्दौर में रहते हैं और जब-तब भारत के विभिन्न स्थानों पर अपनी कला का प्रदर्शन करके कलाप्रेमियों को तृप्त करते रहते हैं।

★

अमीर हुसेनखां

सन् १८९५ ई० हैदराबाद (दक्षिण) में आपका जन्म हुआ। आपके पिता अहमदबख्श खां एक कुशल सारंगी वादक थे और तबले के माहिर भी थे। अतः इनसे ही अमीर खां ने पांच वर्ष की आयु से तालीम लेनी शुरू की। कुछ समय बाद अपने मामा उस्ताद मुनीर खाँ से तबला सीखना आरम्भ किया और मुनीर खां की मृत्यु तक ये उनसे तालीम पाते रहे।

गत १६ वर्ष से आप बम्बई में निवास करके ताल प्रेमियों को अपनी कला का परिचय देरहे हैं। बम्बई रेडियो केन्द्र से आपके तबले के कार्यक्रम प्रायः प्रसारित होते रहते हैं।

★

अल्लारखा

रतनगढ़ जिला गुरदासपुर में मास्टर अल्लारक्खा खाँ का जन्म सन् १९१५ ई० में हुआ। आपके पिता हाशिम अली एक पंजाबी किसान के रूप में खेतीबाड़ी का कार्य करते हैं।

लगभग १५–१६ वर्ष की आयु से ही अल्लारखा पठान कोट की एक नाटक कम्पनी में कार्य करने लगे। गाने-बजाने की रुचि इनमें पहिले से विद्यमान थी ही, अतः वहीं पर आप उस्ताद कादिरबख्श के शागिर्द लालमुहम्मद से तालीम प्राप्त करने लगे। बाद में जब आप गुरदासपुर लौटे तो वहां पर एक संगीत पाठशाला भी खोलदी।

कुछ समय बाद आप अपने चाचा के साथ लाहौर चले गये, वहां पर उस्ताद कादिरबख्श से तबले की तालीम लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

कुछ समय तक आप लाहौर–दिल्ली आदि स्थानों मे रेडियो पर अपनी कला प्रदर्शन करने के पश्चात् सन् १९३७ में बम्बई आये। १९४२ में आपने रेडियो की नौकरी छोड़दी। इसके पश्चात् आपका झुकाव फिल्म क्षेत्र की ओर हुआ। जिसके फलस्वरूप सनराइज़ पिक्चर, मोहन स्टूडियो, सादिक प्रोडक्शन आदि में कार्य किया और इसके बाद रंगमहल स्टूडियो में संगीत निर्देशक का पद सँभाल लिया। पंजाब घराने की विशेषताओं से आपकी कला ओतप्रोत है। अपूर्व तैयारी के साथ-साथ खुदा की दुआ से आपने दिमाग भी अद्भुत पाया है, अतः तंत्रकारों की संगत में आपके जवाब-सवाल चकित कर देने वाले होते हैं। इस प्रतिभा में आप आधुनिक ख्याति प्राप्त तबला–वादक किशन महाराज के समानान्तर ही ठहराये जासकते हैं।

★

अहमदजान थिरकुवा

पिटयाले के स्व० उस्ताद अब्दुल अजीज खाँ कहा करते थे कि अहमदजान जब छोटी उम्र मे ही तबला सीखा करते थे तो इनका हाथ तबले पर एक विचित्र प्रकार से थिरका करता था। इसलिये इनका नाम "थिरकू" पड़ गया। आज भारतवर्ष के अनेक संगीत प्रेमी आपको उस्ताद थिरकुवा के नाम से पुकारते हैं। बड़े बड़े संगीतज्ञों के साथ संगत करके आप भारत विख्यात हो चुके हैं।

मेरठ निवासी उस्ताद मुनीर खां से आपने तबला सीखा था। मुनीरखां ताल विद्या के उत्कृष्ट विद्वान हो गये हैं। इनको सैकड़ों बोल और परनें याद थीं। यद्यपि थिरकुवा के घर में भी तबले का प्रबन्ध था क्योंकि आपके चाचा उस्ताद शेर खाँ एक नामी तबलिये हो गये हैं; किन्तु तबले की नियमित शिक्षा के लिये आपको उस्ताद मुनीर खां के पास ही जाना पड़ा।

लखनऊ, मेरठ, अजराड़ा, फरुखाबाद, आदि सभी घरानों का बाज आपको याद है; किन्तु विशेष रूप से आप देहली और फरुखाबाद का बाज बजाने में सिद्धहस्त हैं। तबला बजाते समय जिन संगीत प्रेमियों ने उस्ताद थिरकुवा के मुंह के भी बोल सुने हैं, उन्हें ज्ञात होगा कि जितना सुन्दर आप बजाते हैं उतने ही सुन्दर और स्पष्ट बोल उनके मुंह से निकलते हैं। यह आपके

अन्दर एक विशेषता है, जो अन्य तबला वादकों में कम पाई जाती है। धमार जैसी कठिन तालें भी आप बड़ी सुगमता से बजाते हैं।

गवैयों के साथ संगत करने वाले ऐसे बहुत से तबलिये हैं जो संगत करते समय प्रायः होड बाजी में गर्म हो जाते हैं; किन्तु थिरकवा साहब में यह बात नहीं। वे संजीदगी के साथ सच्चा और खरा काम दिखा कर अपने गवैयों को प्रभावित कर देते हैं। स्वयं बजाने के साथ-साथ कलाकार के भावों को जाग्रत कर उसकी कला को और भी चमका देते हैं।

एक बार इलाहाबाद की एक महफिल में गाते हुए उस्ताद फैयाज खाँ साहेब के मुख से अचानक ही यह शब्द निकल पड़े कि "न हुआ थिरकवा" ! इससे यह पता चलता है कि उच्चकोटि के संगीतज्ञ आपका साथ पाने के लिये कितने बेचैन रहते थे।

यद्यपि जवानी की उम्र से ही आपका नाम प्रसिद्ध होने लगा था; किन्तु विशेष रूप से आपकी कला का उत्थान बम्बई से ही माना जायगा। वहां पर आपने बड़े बड़े धुरन्धर गायकों और तन्त्रकारों के साथ तबले पर संगत की। इधर आप रामपुर रियासत में रहते हैं और आपके रेडियो कार्यक्रम प्रायः दिल्ली केन्द्र से प्रसारित होकर जनता को तबले का रसास्वादन कराते रहते हैं।

★

आबिद हुसेन खां

आपका जन्म सन् १८६७ ई० में लखनऊ में हुआ। आपके पिता उस्ताद मुहम्मद खां स्वयं एक कुशल घरानेदार तबलिये थे, अतः इनकी शिक्षा लगभग ७ वर्ष की उम्र से इनके पिता द्वारा ही संपन्न हुई। पिता की मृत्यु के बाद इनकी तालीम का भार इनके बड़े भाई उस्ताद मुन्नेखां पर पड़ा। मुन्नेखां से १०-१२ वर्ष तक तबले की तालीम इन्होंने प्राप्त की।

इसके पश्चात् रियाज़ और परिश्रम द्वारा आपने अच्छी जानकारी और तैयारी पैदा करली। कुछ वर्षों तक लखनऊ के मैरिस म्यूजिक कालेज में तबला के अध्यापक भी रहे।

नक्करन बाज के आप खलीफा थे। इनके तबला वादन में बोलों के अक्षर इतने मीठे और स्पष्ट निकलते थे कि सुनने वाले हटना नहीं चाहते थे।

आबिद हुसेन की मृत्यु जून १९३६ ई० में लखनऊ में हुई। इनके शिष्यों में पं० बीरूमिश्र, उस्ताद जहांगीर खां, वाजिद हुसेनखां आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

★

कण्ठे महाराज

आपका जन्म काशी (बनारस) में सन् १८८० ई० के लगभग हुआ। जब आपकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी, तभी आपके पिता जी ने आपकी तबला शिक्षा वाद्यरसराज पंडित बलदेवसहाय मिश्र के द्वारा आरम्भ करादी। इनसे ३ वर्ष तक आपने तालीम ली। इसके पश्चात् आपके गुरु पं० बलदेव सहाय जी ने काशी छोड़कर नैपाल दरबार में नौकरी करली और स्थाई रूप से वहीं रहने लगे।

लगभग १ वर्ष तक आप गुरुजी के वियोग में दुखी रहे और जैसे-तैसे मन को समझा कर समय व्यतीत किया, अन्त में आपसे नहीं रहा गया, तब अपने पिता जी से अनुरोध किया कि मुझे गुरुजी के पास नैपाल भेज दीजिये। सौभाग्य से उन्हीं दिनों इनके मौहल्ले के एक सज्जन नैपाल जारहे थे, जो कि बहुत दिनों से नैपाल में नौकरी करते थे। उन्हीं के साथ आपको नैपाल भेज देने का प्रबन्ध करदिया गया। मार्ग की अनेक कठिनाइयों को झेलते हुये ५ दिन में आप नैपाल पहुँच गये। उस समय नैपाल का मार्ग ऐसा कठिन व भयानक था कि किसी यात्री का वहां सकुशल पहुँच जाना या वहां से आजाना उसका सौभाग्य समझा जाता था।

जिस समय आप नैपाल स्थित अपने गुरुवर के मकान पर पहुँचे तो मारे प्रसन्नता के गद्‌गद् होगये; परन्तु साथ ही साथ आश्चर्य भी हुआ क्योंकि घर में गुरुवर कहीं दिखाई नहीं पड़े। तब आपने अपनी गुरुमाता के चरण छूते हुए पूछा कि गुरुजी कहां हैं? उन्होंने एक कमरे की ओर संकेत करते हुए बताया कि वहां पर हैं। कण्ठे महाराज कमरे के भीतर गये तो देखते हैं कि

एक लम्बी-लम्बी दाढ़ी मूँछोंवाला दिव्य पुरुष मृगछाला पर खड़ा हुआ ध्यान मग्न है। आप चुपचाप उनके समीप खड़े होगये, और इधर-उधर गुरूजी को खोजने लगे, किन्तु वे फिर भी कहीं दिखाई न दिये। १५ मिनट तक आप मौन खड़े रहे। तब अचानक ही उन महापुरुष के नेत्र खुले, उन्होंने इनकी ओर देखा तो बड़ी नम्रता से कण्ठे महाराज ने इन्हें प्रणाम करते हुए पूछा—"मेरे भैया कहाँ हैं ?" अपने गुरु को ये भैया कहकर ही सम्बोधित करते थे, क्योंकि वे इनके सगी बूआ (फूफी) के पुत्र थे। इनका इतना पूछना ही था कि उन दाढ़ी वाले महात्मा ने इन्हें हृदय से लगालिया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोले —"अरे तुम नहीं पहचान रहे हो ? मैं ही तुम्हारा भैया हूँ।" कण्ठे जी अपने गुरु के हृदय से लगकर प्रेम विह्वल हो, रोने लगे। उन्होंने इनको सान्त्वना दी और तबसे आप वहीं रहने लगे।

गुरूजी के द्वारा आपको वहां ४ वर्ष तक जैसी शिक्षा प्राप्त हुई, उसे कोई विरला ही भाग्यशाली प्राप्त कर सकता था। उसी शिक्षा और उसी सत्संग का फल आज ७२ वर्ष की आयु तक आपको प्राप्त होरहा है।

कण्ठेमहाराज का घराना तबला सम्राट पं० रामसहाय जी मिश्र काशी का है और आपका बाज "बनारस बाज" के नाम से प्रसिद्ध है। आपको गत, परन व छन्दों में विशेष रुचि है। बनारस के तबला वादकों में तो अपना विशेष स्थान रखते ही हैं, साथ ही बाहर भी विभिन्न सङ्गीत सम्मेलनों में अपनी कला का प्रदर्शन करके आपने अच्छा नाम कमाया है।

सन् १९५४ में आपने आल इण्डिया तानसेन म्यूजिक कान्फ्रेंस के रंगमंच पर लगातार २ घण्टे २० मिनट का स्वतन्त्र तबला वादन करके एक नया रेकार्ड भारत में स्थापित किया, जैसा कि आज तक किसी तबला बादक ने नहीं किया था।

पं० कंठे महाराज का कहना है "मैं अपनी कला को पैसा कमाने का साधन न समझ कर मोक्ष प्राप्ति का साधन समझते हुए हर समय तपस्या की भाँति मनन किया करता हूँ। मेरी अगुलियाँ तबले को सुमिरनी (माला) समझकर गतिशील रहती हैं, मुझे दृढ़ विश्वास है कि मै संगीत के द्वारा अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करूँगा।"

आपके वर्तमान शिष्यों में सुप्रसिद्ध तबला वादक पं० किशन महाराज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "वाद्य शिरोमणि" कंठे महाराज की आयु इस समय लगभग ७३ वर्ष की है और आपका वर्तमान स्थायी पता २४।१० कबीर चौरा, बनारस है।

★

करामतुल्ला खां

आपका जन्म सन् १९१८ ई० के लगभग रामपुर में हुआ। फरुखाबादी बाज के प्रसिद्ध तबलिये उस्ताद मसीतखां के आप सुपुत्र हैं। लगभग छै वर्ष की अल्पायु से पिताजी द्वारा आपकी तबले की तालीम शुरू होगई और अभी तक आपको अपने पिता से ही प्रेरणा प्राप्त होती रहती है।

विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर अपने सोलो तथा सङ्गत के चमत्कारों से खां साहब श्रोताओं को चकित कर चुके हैं। आप एक होनहार तबलिये हैं, लगभग ३८ साल की उम्र में ही आप ने अच्छा यश प्राप्त कर लिया है। आकाशवाणी कलकत्ता से आपके तबले के कार्यक्रम सुने जा सकते हैं।

★

कादिरबख्श पखावजी
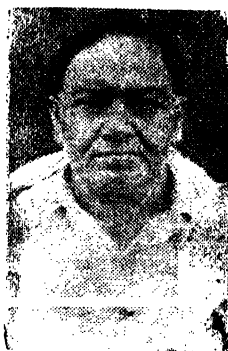
सन् १६०२ ई० के लगभग उस्ताद कादिर-बख्श पखावजी का जन्म लाहौर में हुआ। आप एक अत्यन्त प्राचीन और संभवतः सबसे अधिक ख्याति प्राप्त पखावजी घराने से सम्बन्धित हैं। पखावज भारत का एक प्राचीन वाद्य है, जो शास्त्रीय-संगीत की प्राचीनतम-शैली "ध्रुपद-गायन" में प्रयुक्त होता है।

आपके पिता मियां फकीरबख्श जो अपने समय के एक अच्छे पखावजी थे, अपने पुत्र की 'ताल' और 'लय' दोनों में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई योग्यता को देखकर बहुत प्रसन्न थे। उस्ताद कादिरबख्श ने तबला तथा पखावज की आरम्भिक शिक्षा अपने पिता ही से प्राप्त की, और ६ वर्ष की ही अल्पायु में एक कुशल-संगीतज्ञ की भाँति इन वाद्यों को बजाने लगे। आगे चलकर आप एक ख्याति प्राप्त तबला वादक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

आप इस समय ५५ वर्ष के हैं और पाकिस्तान में रहते हैं, दुर्भाग्य से इनके कोई सन्तान नहीं है। साधारणतः आप बांये हाथ से कार्य करते हैं। आप कितने ही संगीत-सम्बन्धी आयोजनों में एक प्रशंसित तबलावादक के रूप में अपने कुशल हाथ दिखा चुके हैं। अनगिनत-अवसरों पर आपने गायन में अपने ही समान योग्यता रखने वाले गायकों के साथ तबला बजाया है। अविभाजित-भारत में कितने ही अवसरों पर आपने अनेक पदक प्राप्त किये।

जिन तबलावादकों ने कादिरबख्श के घराने से शिक्षा प्राप्त की, उनकी संख्या हजारों में है, स्वयं आपके शिष्य भी अनेक हैं। आपके शिष्यों में महाराजा राजगढ़ तथा महाराजा टीकमगढ़ विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके शिष्य अल्लारक्खा इस समय अच्छे तबला वादकों में से हैं और बम्बई में संगीत निर्देशक का कार्य कर रहे हैं।

★

किशन महाराज

आपका जन्म काशी में सन् १६२३ ई० ३ सितम्बर कृष्ण अष्टमी के दिन हुआ जिसकी वजह से नामकरण भी 'किशन" हुआ था। आपने अपने ही परिवार द्वारा संगीत शिक्षा प्राप्त की। बचपन में जब आपने तबले की तालीम शुरू की तो आपकी रुचि तैयारी की ओर विशेषरूप से न रहकर लयकारी की तरफ झुकने लगी, यहां तक कि ३ वर्ष तक आपने त्रिताल, झपताल एकताल आदि जैसे मुख्य और प्राथमिक तालों को भी नहीं बजाया। इनकी बजाय आप अधिकतर ६-११-१३-१५-१७-१६ व २१ मात्राओं के टेढ़े तालों को बजाने में विशेष दिलचस्पी लेते रहे और इन्हीं को बजाने का अभ्यास भी करते रहे, इसका फल यह हुआ कि सीधी-सीधी अर्थात् बराबर मात्रा वाली तालें आपको सरल प्रतीत होने लगीं। किसी भी ताल में भिन्न-भिन्न प्रकार के टुकड़े व तिहाई लगा देना आपके लिये सरल और सुबोध मालुम होने लगा।

आपके ताल गुरू वाद्य शिरोमणि पं० कण्ठेमहाराज जी हैं और घराना तबला सम्राट पंडित रामसहाय जी मिश्र का कहा जाता है। आपका बाज "बनारस बाज" है। किशन जी का कहना है कि—"जब भी मैं एकान्त में बैठकर विभिन्न टुकड़े व तिहाइयों की कल्पना करता हूं अथवा जब उन्हें तबले पर ठीक-ठीक निकालकर अपने ही कानों से सुनता हूं तो उस समय मुझे जो आनन्द प्राप्त होता है उसे वही कलाकार अनुभव कर सकता है जो स्वयं अपनी कलाकृति को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करके परमान्द प्राप्त करता है।

पं० किशन जी की अवस्था यद्यपि अभी केवल ३० वर्ष की है तथापि इतनी अल्पायु में ही आपने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह प्रशंसनीय है। विभिन्न संगीत सम्मेलनों में आप अच्छे-अच्छे गायकों के साथ तबला संगत करके वाह-वाही ले चुके हैं। २ गत वर्ष पूर्व आप भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल के साथ रूस का भ्रमण करके आये हैं। आपका वर्तमान पता २८—१० कबीर चौरा, बनारस है।

★

कुदऊसिंह

पखावज वादकों में कुदऊसिंह का नाम आज भी बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि आप अपने समय के अद्वितीय पखावज वादक होगये हैं। इनके गुरुदेव का नाम लाला भगवान सिंह था। यह बड़ौदा के निवासी और जाति के ब्राह्मण थे।

उन दिनों उत्तर भारत का प्रमुख नगर लखनऊ तथा मध्य भारत का प्रमुख नगर ग्वालियर संगीत के केन्द्र बने हुए थे। लखनऊ के शासक नवाब वाजिद अलीशाह और ग्वालियर के महाराज जयाजीराव, दोनों ही संगीत कला के अनन्य प्रेमी थे; इसी कारण उक्त दोनों नगरों में भारतीय संगीत भलीभाँति फल-फूल रहा था। एक बार वाजिदअली साहब के दरबार में पखावज वादन के सम्बन्ध में कुछ प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होगई। इस प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करने वाले को नवाब की ओर से एक हज़ार रुपये के पुरस्कार की घोषणा करदी गई। कुदऊसिंह ने इस प्रतियोगिता में विजयी होकर कीर्ति और सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त कीं। एक बार अयोध्या नरेश भी इनके वादन से बहुत प्रसन्न हुए और कुदऊ सिंह को उन्होंने 'कुँवरदास' की उपाधि से विभूषित किया। इस क्षेत्र में पर्याप्त यश और सम्मान प्राप्त करने के पश्चात् कुदऊ सिंह जी

गवालियर दर्बार में पहुँचे। वहां पहुचकर आपने बड़े गर्व के साथ महाराज के सम्मुख अपने सर्वश्रेष्ठ पखावज वादक होने की घोषणा की और अपने लिये अविजित पत्र मांगा। परन्तु दैव का नियम है कि घमण्ड एक न एक दिन अवश्य चूर होता है। परीक्षा के लिये गवालियर दर्बार के वृद्ध ध्रुपद गायक नारायण शास्त्री की संगत के लिते कुदऊसिंह बिठाये गये। ध्रुपद शुरू हुआ, कई बार प्रयत्न करने पर भी कुदऊसिंह ठीक-ठीक सम की पहचान नहीं कर सके और इस प्रकार भरे दर्बार में इनका गर्व चूर होगया। तत्पश्चात् महाराज जयाजीराव ने इनका वादन सुना। मीठा और असीमित तैयार हाथ, स्पष्ट और नियमबद्ध बाज सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कुदऊसिंह को अपने दर्बार में रख लिया।

कुदऊसिंह के बारे में एक किंवदन्ती भी चली आती है कि इनकी 'गजपरन' के परीक्षार्थ एक बार इनके ऊपर हाथी भी छोड़ा गया और परन बजाते ही वह हाथी भयभीत होकर भाग गया। इस कहावत से यही तथ्य प्राप्त होता है कि आप उस समय के बहुत श्रेष्ठ तथा प्रभावशाली वादक थे। ऐसा सामर्थ्यवान पखावज वादक भारतीय संगीत के इतिहास में कोई विरला ही निकलेगा। इनकी शिष्य परम्परा सुदृढ़ और विशाल थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यह स्वर्गवासी होगये।

★

गणेश चतुर्वेदी

बृजभूमि के प्रसिद्ध बल्लभ कुल के मृदङ्ग और तबला वादक श्री गणेश चतुर्वेदी का जन्म, सम्वत १९२१ विक्रम को भारत की पवित्र बृजभूमि में हुआ।

मथुरा निवासी प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री चंदन जी चौबे के साथी होने के कारण मृदङ्ग और तबला वादन में आपको अद्वितीय ख्याति प्राप्त होगई थी। बल्लभ कुल के गोस्वामी संगीत-प्रेमी प्राय: आपको अपने साथ ही रखते थे।

तबला और मृदङ्ग की कला में आपने बृजभूमि के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी ख्याति प्राप्त की। स्वभाव से मधुर भाषी तथा हास्यरस के प्रेमी होने के कारण प्रसन्न मुद्रा में रहते थे। पौष सम्वत १९९६ वि० को ७६ वर्ष की अवस्था में आपका स्वर्गवास होगया। कवि दत्त जी द्वारा लिखित कवितांश जो आपके निधन पर लिखा गया था, इस प्रकार है:—

बल्लभीय बालकों के सुघर खिलौना खरे,
हावभाव भरे, हास्य-रस के अवतार थे।
दर्शनीय दिव्य अंग, मूर्ति गणनायक सी,
मधुर मृदङ्ग के 'गणेश' गतिकार थे।

★

गुरुदेव पटवर्धन

प्रसिद्ध मृदंगाचार्य पं० गुरुदेव जी पटवर्धन प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वर्गीय विष्णु-दिगम्बर पलुस्कर के साथी और मित्र थे। इनके पूर्वज पटवर्धन बन्धु मिरज के वेद-पाठी ब्राह्मण थे, अतः गुरुदेव भी बाल्यावस्था से ही संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करके वेद-अध्ययन की ओर अग्रसर हुए। कुछ समय बाद आपको तबला सीखने की इच्छा हुई, तो आपने मिरज में श्री रामभाऊ गुरव से तबले की प्रारम्भिक शिक्षा लेनी आरम्भ करदी।

जब एक दिन गुरुदेव ने श्री रामभाऊ से अपनी तालीम को आगे बढ़ाने के लिये प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे तबले में अब कुछ आगे बताइये क्योंकि मैं इस कला में प्रवीणता प्राप्त करना चाहता हूं, तो रामभाऊ ने कुछ क्रोधपूर्ण मुद्रा में ताना देते हुए कहा कि यह ऐसी कला नहीं है जिसमें चाहे जो कोई पारंगत होजाय, तुम ठहरे पंडा-पुरोहित! अपना काम करो, इस झगड़े में पड़ कर क्या लोगे? उनका यह ताना सुनकर गुरुदेव के हृदय पर एक ऐसी चोट लगी जिसने इन्हें कलाकार बनने को मजबूर कर दिया। आपने फौरन ही अपने गुरु रामभाऊ से कहा कि अच्छा अब मैं आपसे कुछ नहीं पूछूँगा, और मिरज से बाहर जाकर इस कला को प्राप्त करके ही आपको मुँह दिखाऊँगा और प्रमाणित कर दूंगा कि पुरोहित और पंडे भी परिश्रम द्वारा कलाकार हो सकते हैं।

उन दिनों श्री नाना साहेब पानसे के प्रथम शिष्य पं० वामनराव चांद-वडकर हैदराबाद दर्बार में मुलाजिम थे, जिनकी मृदङ्ग और तबला वादन में

बड़ी अच्छी तैयारी थी । गुरुदेव पटवर्धन उनके पास हैदराबाद को चल दिये और उन्हें तबला सीखने की अपनी उत्कट अभिलाषा के साथ–साथ अपनी प्रतिज्ञा भी बताई कि अब तो मैं तबला सीखकर ही उधर जाऊँगा । पं० वामनराव जी ने थोड़ी सी जांच करके यह मालूम कर लिया कि यह विद्यार्थी तबले में पारंगत हो सकता है और इनकी शिक्षा प्रारम्भ करदी । बहुत समय तक परिश्रम करते हुए और गुरु सेवा निभाते हुए आपने तबले में अच्छी उन्नति करली ।

सन् १९०१ ई० में, जब लाहौर में गान्धर्व महा विद्यालय की स्थापना हुई तो श्री विष्णुदिगम्बर जी पलुस्कर के अनुरोध से पं० गुरुदेव पटवर्धन वहां पर विद्यार्थियों को तबला शिक्षा देने लगे । इस विद्यालय में पलुस्कर जी का और इनका अति निकटतम सम्बन्ध रहा; इन्हीं दोनों विद्वानों के बल पर यह विद्यालय प्रगति करने लगा । विद्यालय के बाहर भी जब कहीं पलुस्कर जी का संगति कार्यक्रम होता तो तबले की संगत गुरुदेव पटवर्धन ही करते । यहां पर आपने बहुत से शिष्य तैयार किये जिनमें पं० बाबूराव गोखले का नाम विशेष उल्लेखनीय है; जिन्होंने इस विद्या में आगे चलकर बहुत नाम पाया । सन् १९०३ ई० में 'मृदंग तबला वादन पद्धति' आपने प्रकाशित कराई और फिर इसका दूसरा भाग भी प्रकाशित हुआ ।

सन् १९१४ के लगभग आप गांधर्व महाविद्यालय लाहौर को छोड़कर मिरज आगये और अपने घर पर ही निवास करने लगे । गुरुदेव जी बड़े सरल स्वभाव, सात्विक प्रवृत्ति के मितभाषी ब्राह्मण थे । आवश्यकता से अधिक बातें वे किसी से नहीं करते थे । अन्त में सन् १९१९ ई० में मिरज में ही आपका शरीरान्त होगया ।

★

गोविन्दराव देवराव

श्री गोविन्दरावजी बुरहानपुरकर मध्य-प्रदेश के बुरहानपुर नामक नगर के निवासी हैं। आपकी गत तीन पीढ़ी इसी नगर में रहती आयी हैं, अतः आपकी प्रसिद्धि गोविन्दराव बुरहान-पुरकर के नाम से हुई।

परिवार की गरीबी के कारण आपको स्कूली शिक्षा अधिक प्राप्त न होसकी। जैसे तैसे मराठी फाइनल करसके। किंतु संगीत के प्रति आपकी रुचि बाल्यकाल से ही थी। इनके पिता जी भी संगीतज्ञ थे, अतः ५ वर्ष की आयु से ही इन्हें संगीत सीखने का प्रोत्साहन मिला। १५ वर्ष तक आप मृदङ्ग (पखावज) का ही अभ्यास करते रहे। साथ ही इन्दौर तथा बुरहानपुर में तबले का अभ्यास भी किया। स्वर्गीय हर हर बुवा कोपरगाँवकर के पास आपने ध्रुपद—धमार आदि गायन का भी अभ्यास किया, किन्तु अधिकतर झुकाव मृदङ्ग तथा तबला वादन पर ही रहा। मध्यान्तरकाल में हैदराबाद के स्व० पं० वामनराव जी के पास भी कुछ समय तक इन्होंने तबले की शिक्षा प्राप्त की। अन्त में नाना पानसे के प्रमुख शिष्य सखारामजी के यह शिष्य होगये और उन्होंने गोविन्दराव जी को मृदंग वादन कला में पारंगत करदिया।

अब श्री गोविन्दराव एक उत्कृष्ट मृदंग तथा तबला वादक हो गये थे। इन्हीं दिनों आप आचार्य विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के सम्पर्क में आये और उनके

साथ समस्त भारत के अतिरिक्त बर्मा, सीलोन आदि देशों की यात्रा करने का इन्हें सुयोग मिला। आचार्य पलुस्कर जी से ही प्रेरणा पाकर इन्होंने "मृदंग-तबला वादन सुबोध" के तीन भाग तथा "भारतीय ताल मंजरी" पुस्तकें लिखीं, जो प्रकाशित होगईं।

सन् १९२९ में अहमदाबाद में एक संगीत सम्मेलन हुआ, उसमें स्वर्गीय सरदार बल्लभ भाई पटेल के द्वारा आपको 'मृदंगाचार्य' की उपाधि प्राप्त हुई। गांधर्व महा विद्यालय दिल्ली के सुवर्ण जयन्ती महोत्सव के अवसर पर गोविन्द-राव गुरुजी को भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने सम्मानित व पुरस्कृत किया। मार्च सन् ५५ में 'संगीत नाटक अकादमी' की ओर से पुनः आपका उच्च सम्मान समारम्भ किया गया।

गुरुजी ने प्रसिद्ध नृत्यकार श्री उदयशंकर के 'कल्पना' चित्र में तथा सरकारी फिल्मस् डिवीजन में सफल पखावज वादन किया है। इस समय आपकी आयु ७८ वर्ष की है, फिर भी पूर्णतः स्वस्थ हैं। आपका प्रिय राग तोड़ी तथा प्रिय ताल धमार है। आजकल भी आपका समय संगीत के अध्ययन, अध्यापन और संशोधन में व्यतीत होरहा है। हिज़मास्टर्स वॉयस कं० ने आपके मृदंग वादन के कुछ ग्रामोफोन रिकार्ड्स भी प्रकाशित किये हैं।

★

घनश्याम पखावजी

श्री नाथद्वारा के प्राचीन प्रसिद्ध पखावजी शंकरलाल जी के सुपुत्र श्री घनश्याम पखावजी का जन्म सम्वत् १६२६ ज्येष्ठ कृष्णा ८ को हुआ। जब आपकी अवस्था ७ वर्ष की थी, तबसे ही आप श्री नाथ जी के मन्दिर में अपने पिता जी के पास मृदंग वादन सुना करते थे। इससे वैसे ही कलापूर्ण संस्कार आपके हृदय में भी अंकुरित होगये। १३ वर्ष की आयु में आपका विवाह—संस्कार होगया और अपने पिताजी से मृदंग वादन की नियमित शिक्षा भी आपको प्राप्त होती रही। जिसके परिणामस्वरूप मृदंगवादन में आपने अच्छी ख्याति प्राप्त करली। आपके काका श्री खेमलाल जी भी मृदंग वादन कला में अत्यन्त प्रवीण थे और मात्राओं के भेद तथा तालों के विषय में अच्छी जानकारी रखते थे। इन्होंने "मृदंग सागर" नाम से एक पुस्तक लिखनी आरम्भ की, जिसमें बहुतसी तालों के चक्र एवं रेला और परन लिखे गये, किन्तु भाग्य चक्र से सम्वत् १६३४ में ही उनका शरीरान्त होगया और वह ग्रन्थ अधूरा ही रहगया। उस समय घनश्याम जी की आयु केवल ८ वर्ष की थी। खेमलाल जी के मृत्यु शोक के धक्के से घनश्याम जी के पिता जी का मस्तिष्क कुछ विकृत सा होगया, अतः वह पुस्तक ज्यों की त्यों रखी रही। ५ वर्ष तक भी जब इनके पिता जी का चित्त भ्रम दूर न हुआ, तब इनकी माता जी ने उनको सम्मति दी कि आप कुछ समय के लिये तीर्थ यात्रा करें तो सम्भव है कुछ लाभ हो। तब यात्रा का विचार निश्चित हुआ और सकुटुम्ब आप लोग यात्रा को चलदिये। इस यात्रा में स्थान—स्थान पर बड़े—बड़े गुणी और संगीत प्रेमियों से इनको सान्निध्य प्राप्त हुआ। कई जगह से भेंट में वस्त्राभूषण प्राप्त हुए और परिचय बढ़ा। इस यात्रा से

घनश्याम जी के पिता को तो लाभ हुआ ही, साथ ही आपको भी बड़े-बड़े गुणीजनों की कला सुनने और देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अन्त में सम्वत् १९५० में आपके पिता जी का भी देहावसान होगया और 'मृदंग सागर' पुस्तक को पूर्ण करने की इच्छा उनके हृदय में ही रहगई। इसके पश्चात् श्री घनश्याम जी ने अपने पूर्वजों के ज्ञान का लाभ उठाकर इस ग्रन्थ को पूर्ण करके सम्वत् १९६८ में प्रकाशित किया।

इस समय आपके सुपुत्र श्री पुरुषोत्तम पखावजी अपने पूर्वजों के मान तथा नाम की रक्षा करते हुए, श्री नाथद्वारा मन्दिर में पखावजी के रूप में सेवा कर रहे हैं।

★

इमामबख्श चूड़िया

खलीफ़ा इमामबख्श चूड़िया भी अपने समय के प्रसिद्ध पखावज वादकों में हुए हैं। आपके जन्म संवत् तथा निवास स्थान के बारे में ठीक-ठीक प्रमाण नहीं मिलते, तथापि अनुमानतः आप १९ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुए होंगे। आपका घराना 'भटोले घराने' के नाम से बताया जाता है। इनके एक प्रपौत्र (नाती) बन्देहसन खां जिला अलीगढ़ में रहते हैं, उनकी अवस्था भी इस समय काफी है तथापि वह घराने की कुछ ताल सम्पदा को सुरक्षित रखे हुए हैं और योग्य शिष्य मिलने पर उसे बखुशी दे देते हैं।

लखनऊ के उस्ताद बख्शू खां के दामाद विलायत अली हाजी अपने युग के अद्वितीय ताल विशेषज्ञ हुए हैं। इन्हीं के पास इमामबख्श चूड़िया ने बहुत दिनों तक पखावज वादन की शिक्षा प्राप्त की थी। नवीन-नवीन गत और बोल-परनों को रचने की आप में आश्चर्यजनक प्रतिभा थी। अपने उस्ताद हाजी खां साहब के समान ही इनका भी नाम रौशन हुआ।

यह स्वभाव के बड़े सरल तथा विद्वान् का आदर करने वाले थे। दीर्घ आयु भोगकर, १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आप स्वर्गवासी होगये।

★

जोधसिंह

मध्यकालीन मृदङ्ग वादकों में कुदऊसिंह एक विख्यात पखावजी होगये हैं, इनके समकालीन पखावजियों में बनारस के बाबू जोधसिंह जी का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। प्रदर्शन और प्रसिद्धि से दूर रहकर, एकांत साधना को आप विशेष महत्व देते थे, अतः इधर-उधर जाकर रईसों या राजाओं को सुनाने तथा संगीत महफिलों में जाकर प्रदर्शन करने से आप यथा-संभव बचते ही रहते थे। किन्तु नियम पूर्वक वीणापाणि सरस्वती देवी के सन्मुख मृदङ्ग परनों का दैनिक वेद पाठ किया करते थे; इस प्रकार आप एक शान्त प्रकृति के सन्त पुरुष थे। प्रसिद्ध पखावजी नाना साहब पानसे के गुरु होने का सौभाग्य आपको प्राप्त था।

श्री कुदऊसिंह जी का बाज जितना कठिन था, जोधसिंह जी का उतना ही सीधा व सरल था। इसका एक उदाहरण श्री भरत जी व्यास (जोकि महाराज कुदऊसिंह के घराने के शिष्य हैं) इस प्रकार बताया करते हैं, जैसे—कुदऊसिंह जी के बाज के कुछ बोल, धड़न्न, तड़न्न, द्धे द्धे, धिलांग, कृद्धे, धुमकिट, धिट तिट घेत्ता, तड़धा, थुङ्गा, तक्का आदि ऐसे उखाड़-पछाड़ के बोल मिलेंगे, इसके विरुद्ध बा० जोधसिंह जी के निम्नलिखित बोलों में जो कोमलता है, उस पर भी ध्यान दीजिये—किटतक, तिरकिटतका, ताधिड़नग, नकिटतगन, घातिकृधान, किटथुं, नगतिरकिटतक। गद्दी, गदिगन, धिटतिक, किडनग अथवा नगघे, धिरकिटघे, किडनाधित्ता, कृधिता आदि। इस प्रकार उक्त दोनों कलाकारों के बोलों में अलग-अलग विशेषतायें पाई जाती हैं

एक बार नाना साहब पानसे कीर्त्तन मण्डली के साथ काशी पधारे थे। एक मन्दिर में उनकी मण्डली का कीर्तन हुआ तो नाना साहब के विचित्र मृदङ्ग वादन को सुनकर नित्यप्रति श्रोताओं की भीड़ बढ़ने लगी। (उन दिनों नाना पानसे की छोटी उम्र थी, अतः इस बालक की प्रतिभा पर सभी मुग्ध थे) जब कुछ कला प्रेमियों ने बाबू जोधसिंह की बाबत भी इनसे जिक्र किया और उनके मीठे बोलों की प्रशंसा की, तो नाना साहब पानसे उत्सुकतापूर्वक बोले, ऐसे गुणी को तो मैं भी जरूर सुनना चाहता हूं। जब नाना साहब को यह बताया गया कि बाबू जी यहां आकर तो नहीं बजायेंगे क्योंकि वे एकान्त प्रिय हैं और प्रदर्शनों से दूर रहते हैं; तब नाना पानसे अपने पिताजी से आज्ञा लेकर

उनके घर जाने को तैयार होगये। उस समय जोधसिंह जी नियमानुसार सरस्वती देवी की पूजा करके मृदङ्ग वादन आरम्भ करने ही वाले थे। समस्त घर सुगन्धित द्रव्यों धूप, अगरबत्ती, चन्दन आदि से महक रहा था। ऐसे शुद्ध और स्वर्गीय वातावरण में पहुंचकर जब नाना पानसे ने अपने साथियों के साथ उनका मृदङ्ग वादन सुना तो ऐसा भास होने लगा मानो घनघोर वर्षा हो रही है। उनके बोलों में कभी बादलों की गरज मालूम होती, तो कभी बिजली की चमक। इस प्रकार कई घण्टे तक आपका विचित्र मृदंग वादन सुनकर सब लोग आनन्दविभोर होगये। तब नाना पानसे ने आत्मविभोर होकर सरल भाव से कहा—"गुरुदेव ! ऐसी पखावज मैंने आज तक नहीं सुनी, अपने भंडार से इस सेवक को भी कुछ भिक्षा प्रदान कीजिये।" यह कहते हुए नाना साहब ने बा० जोधसिंह के पैर पकड़ लिये। तब बाबूजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उन्हें अपना शिष्य बना लिया। और अपनी कला का प्रसाद देकर उन्हें आशीर्वाद दिया। बाबू जोधसिंह की प्रौढ़ और प्राचीन कला प्राप्त करके नाना साहब पानसे उस समय ऐसे चमके कि उत्तर और दक्षिण भारत में उनकी जोड़ का एक भी पखावजी नहीं हुआ। आपका शिष्य सम्प्रदाय बहुत विशाल है, जिसमें स्व० सखाराम जी, गोविन्दराव देवराव गुरूजी, मक्खन जी पखावजी, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि बा० जोधराज के शिष्य नाना साहेब पानसे के पांचसौ शिष्य थे इसीलिये उनको पानसौ कहा जाता था। वास्तव में दक्षिण में मृदंग विद्या के प्रसार का श्रेय आपको ही है।

बा० जोधसिंह के जन्म तथा मृत्यु संवत के ठीक–ठीक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु अनुमानतः आप उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए थे।

★

जोरावरसिंह

आप गवालियर दर्बार के प्रसिद्ध तबला वादक थे तथा कुदऊसिंह के समकालीन होने के साथ-साथ उनके प्रगाढ़ मित्र भी थे। यह मुख्यत: ख्याल गायकों की संगत बड़े मधुर और आकर्षक ढङ्ग से किया करते थे। इनके बोल स्पष्ट होने के साथ-साथ बड़े माधुर्य पूर्ण होते थे। ख्याल गायकों की सङ्गत करने में उस समय जोरावरसिंह की बड़ी प्रसिद्धि थी। इनका स्वभाव बड़ा सरल और विनम्र था, अतः महाराज जयाजीराव इन पर विशेष कृपा दृष्टि रखते थे। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, गवालियर में ही आपका शरीरान्त होगया।

★

नत्थू खां

दिल्ली घराने के प्रसिद्ध खलीफा खां साहब नत्थू खां एक प्रसिद्ध तबलिये होगये हैं। बम्बई के उस्ताद बौलाबख्श के यह पुत्र थे। इनके बाबा का नाम कालेखां साहेब था। इनके घराने में तबले के विद्वान थे ही, अतः इनकी तालीम पिता के द्वारा ही सम्पन्न हुई। इनके हाथ में बहुत ही खूबसूरती थी. सुनने वाले इनके तबला–वादन से मुग्ध होजाते थे।

सन् १९४० में ६५ वर्ष की आयु पाकर आप स्वर्गवासी हुए। इनका तबला–वादन सुनने का सौभाग्य ग्रामोफोन रिकार्डों द्वारा संगीत प्रेमियों को अब भी मिल जाता है।

★

नन्नूसहाय (सूर)

बनारस में अपने समय के प्रसिद्ध तबलिया भैरोंसहाय होगये हैं। उनके पुत्र बल्देवसहाय ने भी अपने पिता से ही तबला शिक्षा प्राप्त करके यश प्राप्त किया, और फिर अपने सुपुत्र नन्नूसहाय को भी इसी कला की शिक्षा उचित रूप से दी। नन्नूसहाय का जन्म सन् १८६२ ई० के लगभग हुआ। ६-१० वर्ष की अवस्था से ही इनकी तबला शिक्षा आरम्भ करदी गई। छोटी उम्र में ही आपके हाथ बहुत तैयार होकर कौशल दिखाने लगे। नन्नूसहाय को सूरदास भी कहते थे क्योंकि यह अन्धे थे। इनका एक नाम दुर्गासहाय भी था, किन्तु विशेष रूप से नन्नू (सूर) के नाम से ही प्रसिद्ध थे। इनके पास तबले के विविध बोलों का बड़ा सुन्दर संग्रह था, अतः आप तबले के नामी उस्तादों में अपना स्थान रखते थे भवानीपुर संगीत सम्मेलन कलकत्ता से इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ और महाराजा शशिकान्त आचार्य चौधरी मैमनसिंह से कई वर्ष तक १००) मासिक आप वेतन के रूप में प्राप्त करते रहे। इनके हाथ में तैयारी अद्भुत रूप से थी। इस कलाकार का ३४ वर्ष की अल्पायु में ही, ४ मार्च १९२६ ई० को देहावसान होगया।

★

नन्नेखां

उस्ताद नन्नेखां का जन्म सन् १८७२ ई० के लगभग हुआ । आपके पिता उस्ताद लँगड़े हुसेन बख्श स्वयं उच्चकोटि के तबला-वादक थे । आपका घराना "दिल्ली घराने" के नाम से प्रसिद्ध है ।

नन्ने खां के पिता का देहान्त होजाने के कारण, इनकी तालीम का भार इनके बड़े भाई उस्ताद घसीट खां पर आपड़ा । उन्होंने नन्नेखां को यथोचित रूप से तबले की तालीम दी, जिसके द्वारा कुछ ही समय में आप एक अच्छे तबलिये होगये ।

आपके जीवन का विशेष भाग बम्बई में ही व्यतीत हुआ । ६८ वर्ष की आयु (अप्रैल १९४०) में आपका देहान्त होगया । दिल्ली घराने के ये खलीफा माने जाते थे । इनके शिष्यों में उस्ताद जुगना खां का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

★

नाना पानसे

कला का अंकुर, यदि बाल्यकाल में ही किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति के हृदय में प्रकट हो जाय तो वह परिश्रम का बल पाकर अवस्थानुसार एक दिन निश्चयात्मक रूप से फल-फूल उठता है। नाना पानसे का जीवन इस सत्य के प्रगटीकरण का साक्षी है।

यह इन्दौर के निवासी थे। किशोरावस्था में एक बार इन्हें कीर्तन मंडली में अपने पिताजी के साथ काशी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां इनकी भेंट एक राजपूत ब्राह्मण से हुई, उसका नाम जोधसिंह था। देवालयों में रामचरितमानस का पाठ, भजन-कीर्तन आदि इस ब्राह्मण के जीविकोपार्जन के साधन थे। शेष समय एकान्त पखावज वादन में व्यतीत होता था। नाना साहब इस ब्राह्मण के पखावज वादन को सुनकर बड़े प्रभावित हुए और उनके हृदय में इस कला को सीखने की प्रबल उत्कंठा जागृत होगई। अपने पिताजी से विशेष आग्रह करके पानसे ने इस ब्राह्मण से पखावज वादन की शिक्षा पाने की स्वीकृति प्राप्त करली और समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके कला की आराधना में जुट गये। मौखिक शिक्षा के अतिरिक्त लगभग
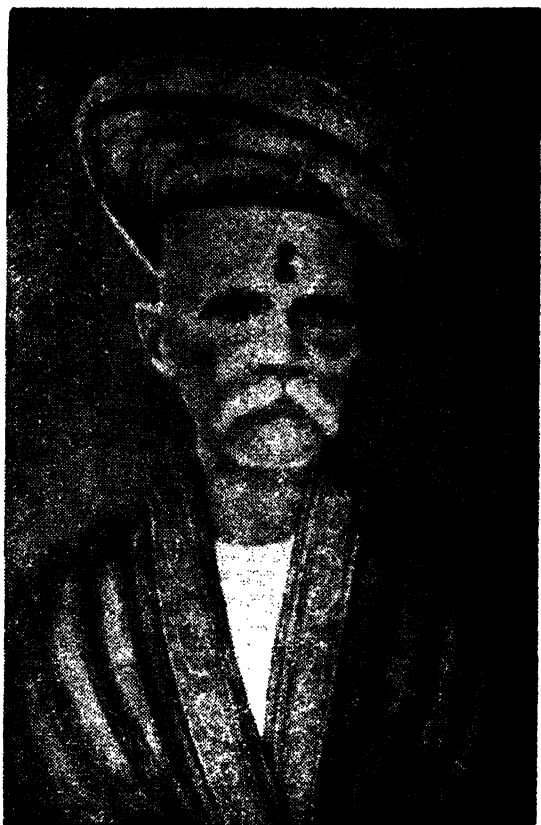
६ घंटे तक आप दैनिक क्रियात्मक अभ्यास किया करते थे। काशी में नाना साहेब का यह क्रम लगभग १२ वर्ष तक अविरल गति से चला। तपश्चर्या फलीभूत हुई और नाना साहेब पानसे पखावज वादन में पूर्णरूपेण दक्ष होकर अपने निवास स्थान को लौट पड़े।

इन्दौर आने पर नाना साहेब ने प्राप्त विद्या में अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक आवश्यक संशोधन किये। गणित की दृष्टि से जिन परन और बोलों मे कुछ न्यूनता रहगई थी उन्हें शास्त्र मर्यादानुसार शुद्ध किया। स्वयं भी बहुत से नवीन ठेके, बोल, टुकड़े, परनें आदि की रचना की और उन्हें अपने शिष्य वर्ग को सिखाया। नाना साहेब उद्‌भट और अद्वितीय वादक होने के साथ–साथ उच्चकोटि के शिक्षक भी थे। इनका शिक्षा देने का ढङ्ग बड़ा सरल और सुबोध था, इसीलिये पानसे का शिष्य सम्प्रदाय बहुत विशाल तथा विस्तृत है। यह पखावज के अतिरिक्त तबला–वादन और नृत्य कला में भी प्रवीण थे। अपने कुछ शिष्यों को इन्होंने नृत्य की शिक्षा भी दी। निज़ाम सरकार की इच्छानुसार वामनराव चाँदवड़कर को आपने तबले की शिक्षा देकर प्रवीण कर दिया। अपने एक पुत्र तथा लड़की के पुत्र, दोनों को भी अपनी कला में पारंगत करदिया था।

नाना साहेब निराभिमानी और सरल स्वभाव के व्यक्ति होने के साथ–साथ बड़े संतोषी जीव थे। आपको इन्दौर का राजाश्रय प्राप्त था। योग्यतानुसार राज्यकोष से आपको बहुत कम वेतन मिलता था, इस पर भी इन्हें असंतोष न था। एक बार ग्वालियर नरेश महाराज जयाजीराव इन्दौर आये। उन्होंने नाना साहेब का पखावज वादन सुना और अत्यन्त प्रभावित हुए। इन्दौर नरेश श्री तुकोजीराव होल्कर से उन्होंने नाना साहेब को ग्वालियर ले जाने की मांग की। इन्दौर नरेश ने यह प्रश्न नाना साहेब की मर्जी पर छोड़ दिया परन्तु नाना साहेब ने अधिकाधिक आर्थिक प्रलोभन होते हुए भी ग्वालियर जाने के लिये अपनी स्वीकृति नहीं दी। इस घटना से आपकी संतोषी प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है।

नाना साहेब ने अपने जीवन में कभी किसी कलाकार को अपमानित नहीं किया, अपितु इन्दौर में आने वाले कलाकारों की प्रशंसा करके उन्हें राज्य द्वारा सम्मानित कराया करते थे। इससे इनकी विशाल हृदयता का पता चलता है। इन्होंने तबला वादकों के सम्मान की रक्षार्थ सुदर्शन नामक एक

नवीन ठेके का निर्माण किया था। कभी-कभी बीच महफिल में किसी-किसी क्लिष्ट गायक की सम तबलिये की समझ में नहीं आती और इस प्रकार उसके अपमान का खतरा पैदा होजाता है, उससे बचने के लिये 'सुदर्शन' ठेका बड़ा उपयोगी है।

तत्कालीन विज्ञजनों के मतानुसार नाना साहेब पानसे जैसा ताल मर्मज्ञ, मधुर और तैयार वादक एवं ताल शास्त्री कोई दूसरा नहीं हुआ। आपको ताल शास्त्र का नायक कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। आप १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इन्दौर नगर में ही स्वर्गवास होगये।

★

पर्वतसिंह

सन् १८७६ के लगभग पर्वत सिंह मृदङ्गाचार्य का जन्म ग्वालियर में हुआ। आपका पूर्व वंश मृदङ्ग वादन के लिये प्रसिद्ध रहा है। आपके परदादा स्व० जोरावर सिंह जी जब ग्वालियर राज्य में आये थे, उस समय ग्वालियर में श्रीमंत जनकोजी राव शिंदे शासन कर रहे थे। ग्वालियर दरबार में जोरावरसिंह जी को आश्रय प्राप्त हो गया, अतः वे स्थाई रूप से ग्वालियर में ही निवास करने लगे।

श्रीमंत जनकोजी राव संगीत कला प्रेमी थे, अतः उन्होंने पर्वतसिंह के पिता श्री सुखदेव सिंह की नियुक्ति दरबार में पखावजी के पद पर की, और समयानुसार उनको उत्साहित करते रहे।

पर्वतसिंह की आयु पांच, छै, वर्ष की ही थी, तबसे ही उनके पिता श्री सुखदेव सिंह जी ने इनको मृदंग शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। वे जब किसी जल्से में जाते तो अपने पुत्र को भी साथ ले जाते थे। इस प्रकार

जल्सों में भाग लेने से तथा भिन्न-भिन्न कलाकारों का गायन-वादन सुनने से संगीत के प्रति इनकी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती गई और ये पखावज बजाने में प्रवीणता प्राप्त करते गये ।

जब आपकी आयु केवल नौ-दस वर्ष की थी, तब आपके पिता एक दिन दरबार में आपको अपने साथ लिवा गये । वहां पर बालक पर्वतसिंह की पखावज सुनकर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने आपको ५००) रुपये के मूल्य का एक चोगा प्रदान किया । इससे आपका उत्साह बढ़ा और ग्वालियर में लोगों की जबान पर आपका नाम भी आने लगा । आप अपने रियाज को धीरे-धीरे बढ़ाते रहे ।

जब आपकी अवस्था २५ वर्ष की थी तब आप बम्बई गये । वहां पर उस समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञों से आपने परिचय प्राप्त किया । जिनमें अल्लादिया खां साहब, पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, नजीरखां साहब, भास्कर बुवा, प्रसिद्ध सितार वादक बर्कतुल्ला खां के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । कई प्रसिद्ध सितारिये तथा ध्रुपद गायकों का साथ आपने वहां पर किया । इस प्रकार आपकी कला निखरती गई और बम्बई में आपका नाम हो गया । लगभग १५ वर्ष तक आप बम्बई रहे ।

इधर आपके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण श्रीमंत माधवराव महाराज आपको अपने साथ बम्बई से ग्वालियर ले आये और सन् १९१७ में ग्वालियर दरबार में मृदङ्ग वादक के पद पर आपकी नियुक्ति हुई । यहां भी आपका सत्संग प्रसिद्ध संगीतज्ञों से रहा, जिनमें श्री० कृष्णराव पंडित, बालाभाऊ उमडेकर, उस्ताद हाफिज अली खां तथा उमराव खां आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

सन् १९२६ में 'भारत धर्म महामण्डल' के अध्यक्ष दरभंगा महाराज ने आपकी कला से आकर्षित होकर आपको "विद्याकला विशारद" की पदवी प्रदान की । भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों से भी आपको निमन्त्रण मिले, किन्तु आप वृद्धावस्था के कारण भारत से बाहर जाने में असमर्थ रहे । दिल्ली रेडियो से आपकी पखावज के प्रोग्राम समयानुसार प्रसारित होते रहे हैं । पखावज के अतिरिक्त आप तबला भी बहुत सुन्दर बजाते थे ।

हाफिज अली खां तथा पर्वतसिंह की जोड़ी को सभी संगीत प्रेमी जानते हैं। जिस संगीत के जल्से में इन दोनों का साथ होता था, वहां पर एक विचित्र वातावरण उत्पन्न होजाता था।

प्रो० पर्वतसिंह जी का स्वभाव अत्यन्त सरल और रहन-सहन सादा था। आप कलाकारों का आदर करते थे और अभिमान से दूर रहकर विनय, शीलता को महत्व देते थे। १८ जुलाई १९५१ ई० को ग्वालियर में आपका शरीरान्त हुआ। आपके पुत्र माधवसिंह आजकल ग्वालियर दरबार में पखावज वादक तथा गोपालसिंह गिटार वादक हैं।

★

पुरुषोत्तमदास पखावजी

आपका जन्म मार्ग शीर्ष कृष्ण ६ सम्वत् १९६४ को नाथद्वारा (मेवाड़) में हुआ। आपके पिता श्री घनश्याम जी एक प्रसिद्ध पखावजी थे। बाल्य-काल से आपने अपने पिताजी से ही पखावज वादन की शिक्षा पाई। १२ वर्ष की आयु के बाद जब इनके पिताजी का स्वर्गवास होगया तो गोस्वामी श्री गोवरधनलालजी महाराज ने इनका भरण-पोषण एवं शिक्षा सम्बन्धी सहायता देकर श्री नाथ मन्दिर में कीर्तन करने के लिये रक्खा, और आज तक इसी

सेवा में आप लगे हुए हैं। पखावज के अतिरिक्त तबला बजाने में भी आपकी अच्छी तैयारी है। साथ-साथ कंठ संगीत तथा नृत्य में भी आप रुचि रखते हैं।

'मृदंग सागर' नामक प्रसिद्ध पुस्तक आपके पिताजी की ही लिखी हुई है। आपका कहना है कि मृदंग में तबले से अधिक माधुर्य और गाम्भीर्य पाया जाता है। मृदंग का प्रचार होने से ही ध्रुपद-धमार की गायकी का पुनरुत्थान होगा।

★

प्रसन्नकुमार वाणिक्य

प्रसन्न कुमार वाणिक्य का जन्म सन् १८५७ ई० में ढाका में हुआ। आप स्व० मदन मोहन वाणिक्य के सुपुत्र थे। आपकी प्रमुख जीविका तबला-वादन थी। यद्यपि आपके पिता व पितामह संगीत से प्रेम नहीं रखते थे, तथापि आप बाल्यकाल से ही उच्चकोटि के संगीत के प्रति आकर्षित होगये। उन दिनों ढाका में भारत के अनेक महान् संगीतज्ञ आया करते थे। आपका संगीत के प्रति विशेष प्रेम देखकर ढाका के सर्वश्रेष्ठ तबला-वादक व पखावजी गौर मोहन बामक ने आपको अपना शिष्य बना लिया। इस प्रकार आपने नौ-दस वर्ष की बाल-अवस्था से ही तबला वादन सीखना आरम्भ कर दिया। अपने कठोर परिश्रम के कारण प्रसन्नकुमार ढाका के सर्वश्रेष्ठ तबला-वादकों में गिने जाने लगे। विशेषतः कण्ठ तथा वाद्य संगीत की संगत करने में आप बहुत कुशल माने जाते थे। जब आपको मुर्शिदाबाद के नवाब बहादुर अमीरउल उमरा के दरबारी संगीतज्ञ अताहुसैन खाँ की तबला-वादन कला के विषय में ज्ञान हुआ, तो आप अपने गुरु की आज्ञा लेकर उनसे शिक्षा लेने मुर्शिदाबाद चले गये। अताहुसैन आपकी कला निपुणता देखकर बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने आपको बहुत प्रेम से शिक्षा दी। परन्तु आपकी तथा आपके परिवार की जीवन-निर्वाह की आवश्यकता ने आपको घर लौटने के लिये विवश कर दिया। सांसारिक झंझटों के होते हुए भी आप प्रतिदिन नियम से ८-१० घन्टे तबले का अभ्यास करते थे। इसके पश्चात् प्रसन्नकुमार ने इसे अपना व्यवसाय बना लिया। आपने बंगाल के सरदारों तथा नवाबों के यहां अपनी कला का प्रदर्शन करके बहुत धन एवं ख्याति प्राप्त की। आपकी कला-साधना एवं ख्याति के फलस्वरूप बहुत से राजा तथा ज़मींदारों द्वारा आपको पुरस्कार प्राप्त हुए। जिस समय आप कलकत्ता थे, तो कलकत्ता के संगीत विद्वान स्व० राजा सर सुरेन्द्रमोहन टैगोर से आपका परिचय हुआ, जो कि आपकी तबला वादन कला

मे बहुत सन्तुष्ट हुए । अताहुसैन के पश्चात् कलकत्ता, ढाका तथा सांगीतिक महत्व रखने वाले अन्य स्थानों के व्यक्तियों ने प्रसन्नकुमार को ही बंगाल का सर्वश्रेष्ठ तबला वादक स्वीकार किया । आपने अपने समय का विशेष भाग 'भारत संगीत समाज' की सेवा में व्यतीत किया, जो कि बंगाल की सर्वमान्य संस्था थी, जिसमें उत्तरीय तथा दक्षिणी भारत के श्रेष्ठ संगीतज्ञ आया करते थे ।

आपके बहुत से शिष्यों में मे रायबहादुर केशवचन्द्र बनर्जी, प्राणवल्लभ गोस्वामी एवं अक्षयकुमार कर्मकार ख्याति प्राप्त कर चुके हैं ।

आपके तबला वादन का ढंग बहुत मधुर था । इसमें कोई संदेह नहीं कि बंगाल के तबला वादकों में तबला के बोलों का सबसे अधिक भण्डार आपके पास ही था, जिनकी संख्या २,००० के लगभग बतायी जाती है । ये बोल इतनी सुन्दरता एवं कलात्मक ढंग मे रचे हुए हैं कि जब कभी भी कण्ठ अथवा वाद्य संगीत में उनका प्रयोग होता है तो संगीत के आकर्षण और लालित्य में चार-चांद लगजाते हैं । आपने 'तबला तरंगिणी' और 'मृदङ्ग प्रवेशिका' नामक दो पुस्तकें भी तैयार करके प्रकाशित कराई थीं ।

★

फीरोज़ खां ढाड़ी

आज से कुछ दिनों पूर्व जब कि तबला अधिक प्रचार में नहीं आया था, उस समय संगीत के क्षेत्र में पखावज (मृदंग) को विशेष सम्मान प्राप्त था। फीरोज़खां इसी वाद्य को बजाया करते थे। सुना तो यहां तक जाता है कि उस समय इनके समान तैयार और प्रभावशाली कोई अन्य पखावजी नहीं था। आप लाहौर के निवासी थे। फ़ीरोज़ खां ६७ वर्ष की उम्र पाकर स्वर्गवासी होगये।

★

बलवन्तराव पानसे

ताल शास्त्र के मर्मज्ञ, प्रसिद्ध पखावज वादक नाना पानसे के नाम से हमारे पाठक भली भांति परिचित होंगे; बलवन्तराव उन्हीं के पुत्र थे। आपने इन्दौर में अपने पिता के पास रहकर ही तबला और पखावज की शिक्षा प्राप्त की। प्रतिभावान तथा कुशाग्र बुद्धि होने के कारण बलवन्तराव अल्पकाल में ही बड़े तैयार और मधुर वादक बन गये। पिताकी आज्ञा पाकर आपने संगीत गोष्ठियों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। इस तपस्वी कलाकार को जिसने भी सुना—वाह-वाह कर उठा। थोड़े ही दिनों में इनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। इनका बाज स्पष्ट, तथा हाथ बहुत मधुर और कोमल होने के साथ—साथ रसोत्पादक था।

बलवन्तराव का व्यक्तित्व बड़ा सुन्दर और आकर्षक था। पिता के समान ही आपका स्वभाव भी बहुत सरल तथा मीठा था। दुर्भाग्य से ऐसे रत्न कलाकार की मृत्यु युवावस्था में ही होगई। इनके असामयिक निधन से संगीत संसार की एक बड़ी हानि हो गई और इनके पिता नाना साहेब के हृदय पर तो मानों आसमान टूट पड़ा, और वे इस शोक के कारण अधिक दिनों तक जीवित न रह सके।

★

बाचा मिश्र

प्रसिद्ध तबला वादक श्री सामता प्रसाद (गुदई-महाराज) के पिता महाराज हरिसुन्दर उर्फ पं० बाचा मिश्र काशी नगरी के महान् कलाकारों में से थे। आपके पितामह श्री-प्रताप महाराज की बाबत बताया जाता है कि जब उन्हें तबला वादन से तृप्ति नहीं हुई तब उन्होंने विन्ध्याचलपर्वत पर बहुत दिनों तक विंध्यवासिनी देवी के सम्मुख तपस्या की। तब देवी जी ने आपको तबला में विश्व विजयी होने का वरदान दिया। वहां से आकर उन्होंने तबला के प्रसिद्ध उस्ताद मोदू खाँ के सम्मुख लखनऊ के कैसर बाग में बड़े-बड़े ताल मर्मज्ञों तथा कलाकारों के बीच अपना तबला वादन सुनाया। वहां कलाकारों द्वारा आप बहुत प्रशंसित हुए, फिर आपने भारतवर्ष का भ्रमण करके तबला वादन का प्रचार किया। आपकी ख्याति सुनकर नैपाल के महाराजा राणा जंग बहादुर ने दर्बारी संगीतज्ञों में आपको स्थान दिया। उन दिनों वहां प्रसिद्ध गायक चांद खां--सूरज खां भी महाराजा के साथ रहते थे।
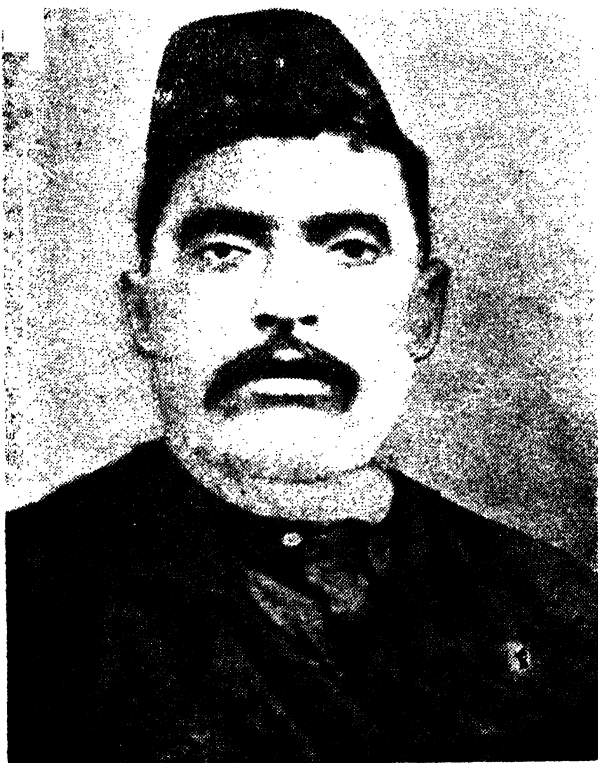
प्रताप महाराज के यशस्वी पुत्र तबला विद्वान पं० जगन्नाथ महाराज हुए। जगन्नाथ जी के बड़े लड़के श्री शिवसुन्दर तथा उनके सुपुत्र श्री

वल मोहन महाराज भी तबले के खलीफा कहे जाते थे। इन शिव सुन्दर-महाराज के छोटे भाई यह बाचा मिश्र थे।

पं० बाचा मिश्र ने भी देवी जी की उपासना करते हुए अपनी कला की प्रगति को जारी रक्खा और हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध तबला वादकों में आपकी गिनती होने लगी। प्रसिद्ध तबला वादक श्री नत्थू खां साहब दिल्ली वाले, अजीमखां बरेली वाले आपके समकालीन प्रसिद्ध तबला वादक मित्र थे और वे पं० बाचा मिश्र की प्रशंसा किया ही करते थे। लगभग ५० वर्ष की आयु में, सन् १९२६ ई० में आपका देहावसान होगया। आजकल आपके सुपुत्र श्री सामताप्रसाद मिश्र (गुदई महाराज) अपनी कला द्वारा इस घराने का नाम रौशन कर रहे हैं।

★

बाबूराव गोखले
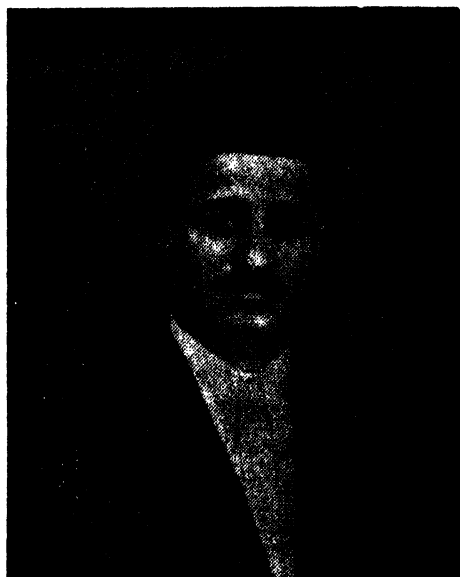
श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्य श्री गणेश रामचन्द्र उर्फ पं० बाबूराव गोखले ने पं०-जी से संगीत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मृदङ्ग और तबले की शिक्षा पं० गुरुदेव पटवर्धन से प्राप्त करके जो प्रसिद्धि प्राप्त की है उसे संगीत प्रेमी भली प्रकार जानते हैं।

बाबूराव गोखले का जन्म अक्टूबर सन् १८९३ ई० में हुआ था। आपके पिता श्री रामचंद्र गणेश गोखले कुरुंदवाड़ के निवासी थे और श्री विष्णु दिगम्बर के पड़ौस में ही रहते थे। पलुस्कर जी बाबूराव गोखले के मामा लगते थे। बाबूराव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होते ही १९०२ ई० में इनके पिता का देहान्त होगया, तब कुरुंदवाड़ रियासत के राजा अण्णा साहब पटवर्धन ने इनको हर प्रकार की सहायता दी।

अपनी आयु के बारहवें वर्ष में आप लाहौर के गांधर्व महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए। यहां श्री पलुस्कर जी तथा अन्य शिक्षकों द्वारा संगीत सीखकर सैकड़ों खानदानी चीजें आपने हस्तगत करलीं। इससे पूर्व पं० सुन्दरम् अैयर से वायलिन बजाने की शिक्षा भी आप ले चुके थे। लाहौर विद्यालय में जिन दिनों आप गायन सीख रहे थे तो पंडित पलुस्कर जी ने अनुभव किया कि गायकी के लिये जैसी आवाज़ अपेक्षित होती है वैसा कण्ठ गोखले का नहीं है, अत: प० विष्णुदिगम्बर जी ने इन्हें सम्मति दी कि तुम किसी वाद्य का अभ्यास करो तो अच्छा है। उनकी आज्ञानुसार आप हारमोनियम का रियाज़ करने लगे। उन दिनों हारमोनियम की आज के समय जैसी अप्रतिष्ठा

नहीं थी, अपितु हारमोनियम का उन दिनों अच्छा आदर था। हारमोनियम सीखने के पश्चात् आप तबला और मृदङ्ग की शिक्षा पं० गुरुदेव पटवर्धन से लेने लगे। गुरुदेव जी इन दिनों हैदराबाद से लाहौर विद्यालय में आगये थे. यह सन् १९०६ ई० की बात है। पं० बाबूराव अपने तबला गुरु श्री पटवर्धन की हर प्रकार से सेवा शुश्रुषा करके मनोयोग से उनकी कला हस्तगत करने लगे। मृदङ्ग पर इनका हाथ भी अच्छा चलता था। जब गुरुदेव पटवर्धन को अपने इस शिष्य पर पूर्ण विश्वास होगया तब उन्होंने मुक्त हृदय से मृदङ्ग तथा तबले की तालीम देकर इन्हें एक कुशल मृदङ्ग वादक बना दिया।

सन् १९०८ ई० से पं० बाबूराव अपने गुरु पटवर्धन जी के साथ संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने लगे; इस प्रकार ४ वर्ष तक उनके साथ रह कर आपकी कला और भी निखर गई। फिर तो बाबूराव के मृदङ्ग में इतना आकर्षण पैदा होगया कि बड़े-बड़े तबला वादक और पखावजी भी आपका मृदंगवादन सुनने को उत्सुक रहते थे।

सन् १९२० ई० में आपने गांधर्व महाविद्यालय छोड़ दिया, क्यों कि उन दिनों तबला सीखने वाले विद्यार्थी अधिक नहीं मिलते थे, इसलिये आप गाने के कुछ ट्यूशन करके अपना गुजारा करने लगे।

सन् १९२६ ई० में आपने बम्बई में "महाराष्ट्र संगीत विद्यालय" की स्थापना की। यहां आपने जन साधारण से उचित शुल्क लेकर शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। अनेक कठिनाइयों से संघर्ष करता हुआ यह विद्यालय अब भी बम्बई में चालू है। श्री बाबूराव जी की पत्नी भी इसी विद्यालय में महिलाओं के गायन की क्लास लेती हैं।

पं० बाबूराव गोखले का शिष्य परिवार विस्तृत रूप से फैला हुआ है। जिनमें फ़ीरोज़बाई दस्तूर, प्रभाकर परब, गोपालराव फड़के, शंकरराव मोडक तथा श्री शिवकुमार शुक्ल के नाम उल्लेखनीय हैं। शिष्यों की आपके प्रति अपार श्रद्धा रहती है। गत चार-पांच वर्ष से आपका स्वास्थ्य कुछ गिरा हुआ रहने के कारण, यद्यपि आप उतना परिश्रम नहीं कर पाते, फिर भी विद्यालय के प्रत्येक कार्य पर अनुशासन रखते हुए उसका भली भांति संचालन कर रहे हैं।

★

बीरू मिश्र

आप बनारस के पंडित भगवान प्रसाद जी के सुपुत्र थे। आपका जन्म बनारस के पियरी नामक मोहल्ले में, सन् १८९६ ई० में हुआ। प्रारम्भिक तालीम का श्रीगणेश आपके पिता द्वारा ही हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् पंडित विश्वनाथ जी से आपको शिक्षा प्राप्त हुई और फिर कुछ समय बाद लखनऊ के आबिद हुसेन खां से तालीम पाई। बरेली के उस्ताद छुन्नूखां साहब से भी कुछ समय तक आपने सीखा।

पंडित बीरू मिश्र को विभिन्न संगीत-सम्मेलनों तथा संगीत प्रेमियों से अनेक पदक भी प्राप्त हुए। संगीत क्षेत्र में आप एक चमत्कारी तबला वादक होगये हैं।

★

भैरव प्रसाद

लम्बा क़द, गठीला दोहरा शरीर, गेहुँआ रंग, पट्टादार ज़ुल्फें, घुटनों तक धोती के ऊपर सादा या रंगीन घुंडीदार कुर्त्ता, जाड़े में अचकन, आंखों में सुर्मा, सर पर दुपलिया टोपी, जेवरों से लदे हुए, हाथ में सोने का ठोस जोशन, गले में सोने का ताबीज़, पैर में सादा या काम-दार दिल्ली वाला जूता, उस समय के बनारसी ठाठ व रस रंग में डूबे, यह थे रामापुर काशी के प्रसिद्ध तबला वादक तथा श्री अनोखेलाल के गुरु स्वर्गीय श्री भैरों जी महाराज (भैरव प्रसाद) ।

श्री भैरों जी के पिता बिहार प्रान्त आरा के स्थायी निवासी थे और संगीत व्यवसाय के निमित्त पटना भी रहा करते थे। पटने में ही सन् १८४४ ई० में श्री भैरों जी का जन्म भी हुआ था। आपके पिता श्री शिव प्रसाद जी मिश्र की शादी काशी के प्रसिद्ध सारङ्गी वादक स्व० श्री बिहारी जी मिश्र की बहन सुश्री कदम्बा देवी से हुआ था। काल के कुचक्र से श्री भैरों जी को पौने दो वर्ष की अवस्था में ही पिता जी छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे। तत्पश्चात् विधवा मां के साथ भैरों जी को अपने एक पुत्र हीन मामा स्व० बिहारी जी के यहां काशी में आश्रय मिला। मामा जी ने आपका अपने बच्चे के समान ही लालन-पालन किया।

काशी के प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्व० श्री मिठाई लाल जी के पिता स्व० श्री–पयाग जी उस समय काशी नरेश राज दरबार के संगीतज्ञ व नाजिर थे, अतः भैरों जी के मामा ने इनकी रुचि गायन की ओर देखकर पयागजी के शिष्यत्व में भेज दिया। इधर तबले की शिक्षा के लिये भैरों जी, स्वर्गीय श्री भगत महाराज जो अपने समय के धुरन्धर तबला वादक थे, के पास जाने लगे। गुरु की असीम सेवा तथा कठिन परिश्रम से भैरों जी तबले के अद्वितीय विद्वान सिद्ध हुए। आपका बाज शुद्ध बनारसी व मर्दाना था। गत व फर्द के आप विशेषज्ञ थे। वादन करते समय आपके हाथों की रविश दूनी, चौगुनी होती जाती थी। चौड़े मुँह वाले उस समय के तबले व बांये पर जब आप शहजोर हाथों से "थाप, ता तथा धा" लगाते थे तो सुनने वालों के हृदय में एक दहल पैदा हो जाती थी और दुर्बल शरीर वालों का हृदय हिलने लगता था। इसके विपरीत आपकी 'तिरकिट, धिरकिट' से ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोती बिखेरे जा रहे हों।

भैरों जी को लगभग तीन–चार हजार कायदे, गत, फर्द, पेशकार रेले व टुकड़े आदि ज्ञात थे और इन पर पूर्ण अधिकार व रियाज़ था। स्व० श्री–बल्देव सहाय जी, स्व० जगन्नाथ जी (गुदई महाराज के दादा), स्व० महावीर जी, स्व० बैजूजी, स्व० गोकुल जी, स्व० विश्वानाथ जी, आदि आपके समकालीन धुरन्धर तबला वादक थे। स्व० श्री भैरों सहाय जी भी आपके शिक्षण काल में जीवित थे।

भैरों जी ने अपने समय में लगभग तीन–चार सौ शिष्य तैयार किये थे, जिनमें प्रधान पाँच शिष्यों ने अधिक ख्याति पाई; जिनके नाम हैं— सर्व श्री मौलवीराम मिश्र, स्वर्गीय महावीर भांट, महादेव जी मिश्र, श्री अनोखेलाल तथा श्री नागेश्वरप्रसाद। श्री मौलवीराम जी आपके ममेरे भाई व सर्व प्रथम शिष्य थे।

भैरों जी मुख के कठोर तथा हृदय के कोमल थे। शिष्यों को हृदय खोलकर सिखाते थे। एक–एक क़ायदे का छै–छै मास तक रियाज कराते थे। तिरकिट, धिरकिट तथा घेर घेर किटतक के बोलों का अधिक अभ्यास कराते थे। तबले के अतिरिक्त भैरों जी ध्रुपद–धमार, होली, ख्याल आदि भी खूब गाते थे और सैकड़ों चीज़ें उनको याद थीं। युवावस्था में आप डटकर भोजन और आठ–दस घंटे नित्य प्रति अभ्यास किया करते थे। गीता का पाठ आपको

अत्यन्त प्रिय था, अतः मृत्यु के समय भी गीता आपके हाथ में थी। दुर्व्यसनों से दूर, सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले भैरों जी इतने तगड़े रियाजी थे कि दो इन्च मोटी लकड़ी के तख्ते पर रियाज करते-करते लकड़ी घिसकर आध इन्च रहगई थी। एक बार मिर्गी के दौरे के कारण आप कुएं में गिर गये, लेकिन ईश्वर की कृपा से कुछ घंटों बाद जीवित निकाल लिये गये।

भैरों जी के तीन पुत्र व दो पुत्रियां हुईं, किन्तु वे सब इनके जीवन काल में ही गुजर गये। लेकिन आप ९६ वर्षों तक जीवन से संघर्ष करते हुए २१ सितम्बर सन् १९८० ई० को प्रातः स्वर्गवासी हुए।

★

भैरवसहाय

बनारस बाज के प्रवर्तक श्री रामसहाय जी ने जब साधु वेष धारण करलिया, तब उन्होंने अपने भाई गौरीसहाय जी के पुत्र श्री भैरवसहाय को अपना शिष्य बनाते हुए कहा कि यह मेरा अन्तिम शिष्य है।

बचपन से ही क्रोधी तथा तेजस्वी प्रकृति होने के कारण इनका नाम भैरव सहाय रक्खा गया। लगभग ५ वर्ष की अवस्था से ही श्री रामसहायजी से तबला वादन की शिक्षा लेनी प्रारम्भ करदी। ६ वर्ष में ही मानों रामसहाय जी ने तबले की कुंजी इनको देदी थी। आपका रियाज़ प्रतिदिन बढ़ने लगा। काशी के नीचीबाग मुहल्ले में स्थित 'आस भैरव' की मूर्ति का प्रतिदिन पूजन तथा दर्शन करना और तबले का खूब अभ्यास करना इनके जीवन का लक्ष्य ही बनगया। आपने अपने परिश्रम व रियाज के बल पर सफलता प्राप्त करते हुए अपने घराने तथा बनारस बाज का नाम उच्च शिखिर पर पहुँचाया।

भैरव सहाय जी "कायदे" के सम्राट माने जाते थे। अपनी सरलता और सहृदयता के कारण आपकी लोकप्रियता काफी बढ़गई थी।

१८ वर्ष की अवस्था में ही भैरवसहाय ने अपनी वादन शैली में वह बात पैदा करदी जिसे उनके पूर्वाधिकारी भी नहीं करसके थे। निरन्तर अभ्यास का विशेष चमत्कार २१ वर्ष की आयु में आपको ऐसा प्राप्त हुआ कि अपने तबला-वादन से आप श्रोताओं के साथ-साथ बड़े-बड़े गुणी वृद्ध तबला-वादकों को भी आश्चर्य में डाल देते थे।

गौर वर्ण कान्तिमय चेहरे पर दाढ़ी बढ़ती जारही थी, सिर के बाल भी लम्बे होगये थे, उनकी दोनों आंखें एकसी न होकर कुछ टेढ़ी तिरछी थीं, इन सब बातों के कारण आपका व्यक्तित्व कुछ भयानक तथा डरावना सा प्रतीत होता था। कुछ लोगों का विश्वास था कि भैरव सहाय जी को भैरव का इष्ट प्राप्त है।

नेपाल के राणा जंग बहादुरसिंह ने जब अपने यहां एक विशाल संगीत समारोह का आयोजन किया था तो उसमें आप भी आमन्त्रित हुए थे, वहां भारत प्रसिद्ध सरोदिये नियामतुल्ला खां के साथ जब एक दिन संगत करने का अवसर आपको प्राप्त हुआ तो गत शुरू होते ही दोनों धुरन्धर कला मर्मज्ञ एक से एक नवीन छन्द, लय तथा तोड़ों का काम दिखाने लगे। इनकी लड़न्त देखकर बड़े-बड़े गुणीजन चकित होगये थे। नियामतुल्ला खां ने तो यहां तक कहदिया कि—"यह भैरव सहाय तबलिया नहीं, फरिश्ते हैं, इनकी अँगुलियों को खुदा ने आंखें देदी हैं, इसीलिये तो साथी गवैये की सब गत-तोड़े इन्हें तत्काल साथ की साथ दिखाई देते रहते हैं।" महाराज ने प्रसन्न होकर आपको एक राइफल और तलवार भी भेंट की थी। वास्तव में भैरवसहाय जी बनारस बाज के "प्रतिनिधि कलाकार" होगये। इनकी विलक्षण सूझ-बूझ की सभी कलाकार प्रशंसा किया करते थे।

★

भृगुनाथलाल मुंशी

प्रसिद्ध मृदंग वादक मुंशी भृगुनाथलाल का जन्म गाध्यपुरी नगर के गौसपुर नामक ग्राम में, ज्येष्ठ कृष्णा दशमी संवत् १६२१ वि० को प्रतिष्ठित कायस्थ घराने में हुआ। प्रारम्भ में नौ–दस वर्ष तक इन्हें अरबी और फ़ारसी की शिक्षा मिली। इसके पश्चात् गाज़ीपुर आकर अँगरेज़ी शिक्षा प्रारम्भ की, साथ ही साथ हिन्दी, बंगला और संस्कृत का अभ्यास भी आप करते रहे।

जब आपकी आयु २० वर्ष के लगभग हुई, तब आपको संगीत कला से प्रेम होने लगा। पं० ब्रजभूषण जी से आपने मृदंग बाज की शिक्षा पाई एवं श्री मदनमोहन जी से अनेक तालों के भेद प्राप्त करके तालमंजरी पुस्तक की रचना की, जिसके तीन भाग प्रकाशित हुए। मुंशी जी ने कलकत्ते आकर जब अपने मृदङ्ग–वादन का प्रदर्शन किया तो आपकी कला से बहुत से बंगाली प्रभावित हुए और अनेक शिष्य बनगये। तत्पश्चात् आपने वंशीमंजरी नामक पुस्तक लिखी जो चार भागों में प्रकाशित हुई। इनमें ६ राग ३० रागिनी और उनके पुत्र व पुत्रबधू समस्त राग परिवार की स्वरलिपियां थीं। एक संगीतालय भी आपने स्थापित करदिया। इस विद्यालय में बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति आकर संगीत शिक्षा प्राप्त करने लगे।

अपने जीवन काल में मुंशी जी ने संगीत कला की बहुत सेवा की और नाम कमाया। अन्त में संवत् १६७३ वि० के लगभग कलकत्ते में ही आप स्वर्गवासी होगये।

★

मक्खनजी पखावजी

बृजभूमि के प्रसिद्ध पखावजी मक्खनलाल जी ने अपने कला चातुर्य द्वारा संगीत क्षेत्र में जो ख्याति प्राप्त की थी उसे संगीत प्रेमी भली प्रकार जानते हैं। आपका हाथ मक्खन जैसा मधुर और मुलायम था, इसलिये आपका मृदंग वादन आकर्षक होता था। स्व० उस्ताद फैयाज खां तो आपकी पखावज पर बहुत मुग्ध थे।

सन् १८७६ ई० के लगभग श्री मक्खनजी का जन्म हुआ था। उन्होंने बनारस बाज के विशेषज्ञ स्व० कुदऊसिंह के शिष्य मदनमोहन जी और गंगाराम जी से शिक्षा प्राप्त की। बाद में आपने पंजाब के प्रसिद्ध पखावजी भवानीशंकर से भी शिक्षा प्राप्त की थी। भवानीशंकर 'दुक्कड़ बाज' के विशेषज्ञ थे और पखावज बहुत सुन्दर बजाते थे।

मक्खन जी ने अपनी मृदंग वादन कला का प्रदर्शन अनेक देशी रियासतों एवं सङ्गीत-सम्मेलनों में करके यथेष्ट धन और यश प्राप्त किया। बड़े-बड़े कुशल ध्रुपद गायक इनकी पखावज संगत प्राप्त करने के लिये लालायित रहते थे। मक्खन जी अत्यन्त स्वाभिमानी सरल और उदार स्वभाव के व्यक्ति थे।

बम्बई के सुप्रसिद्ध संगीत प्रेमी और धनी सर गोकुलदास पासता के यहां आपने लगातार २५ वर्ष तक नौकरी की थी। सर गोकुलदास की मृत्यु के बाद बम्बई के माधव बाग मन्दिर में वर्षों तक आप सेवा करते रहे।

बाद में कुछ अस्वस्थ हो जाने के कारण आप मथुरा आ गये और २१ फरवरी सन् १९५१ को ७५ वर्ष की आयु में मथुरा में आप स्वर्गवासी होगये।

मक्खन जी अपने समय के अति लोकप्रिय एवं विद्वान पखावजी थे। अनेक संगीत सम्मेलनों में वे अपनी कला प्रदर्शन सहित बड़े-बड़े संगीतज्ञों का साथ कर चुके थे। बुढ़ापे में भी वे युवकों की सी स्फूर्ति और उत्साह के साथ पखावज बजाते थे। खेद है कि ऐसे कलाकार की धरोहर स्वरूप कोई कृति रेकर्ड के रूप में नहीं रक्खी जा सकी। आपके सुपुत्र श्री गिरजाप्रसाद मथुरा में ही रहते हैं, जो अपने पिता की कला द्वारा उनकी कीर्ति और यश को कायम रखे हुए हैं।

★

मसीत खां

उस्ताद मसीतखां के पिता नवाब वाजिदअली शाह के दरबारी तबलिये थे। मसीतखां का जन्म सन् १८६० ई० के लगभग हुआ। आपकी तबले की प्रारम्भिक तालीम अपने पिता से ही शुरू हुई। आप फरुखाबाद बाज के विशेषज्ञ माने जाते हैं, जो कि पूरब बाज का ही एक अङ्ग है। यद्यपि उस्ताद मसीतखां को रामपुर दरबार का राजाश्रय प्राप्त है, फिर भी आप अधिकतर कलकत्ते में ही निवास करते हैं।

आपके सुपुत्र प्रो० करामत हुसेन भी एक प्रसिद्ध तबलिये हैं।

महबूब खाँ मिरजकर
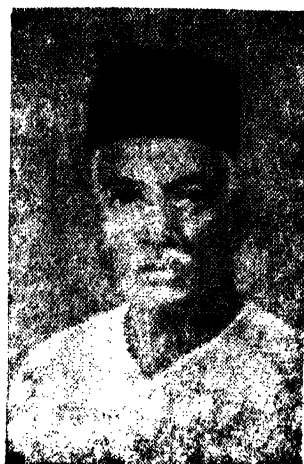
आपका जन्म १८९८ ई० में पूना में हुआ। आपके पिता अमीनखां उन दिनों मिरज की जमींदारी में रहते थे। महबूबखां को बचपन से ही संगीत में रुचि थी, अतः तबला सीखने की धुन सवार हुई तो आप घर-बार छोड़कर चल दिये।

उस्ताद जुगनाखां उन दिनों तबला के अच्छे माहिर थे। उनके पास पहुँच कर महबूब खां ने तबला सीखना आरम्भ कर दिया और १० वर्ष तक उनकी सेवा करके बराबर तालीम लेते रहे। इनके पश्चात इन्दौर के उस्ताद जहांगीर खां से भी आपने १० वर्ष के लगभग सीखा।

इनके अतिरिक्त आपके तीसरे गुरु हैं श्री बलवन्तराव वाटवे, ये प्रसिद्ध नाना पानसे के शिष्य थे। महबूबखां को इनके द्वारा भी ५-६ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त हुई। बाद में आपको उस्ताद अहमदजान थिरकवा तथा अमरावती वाले उस्ताद अल्लादिया खां से भी यथेष्ट जानकारी मिली। इस प्रकार सभी घरानों की तालीम का भण्डार आपके पास हो गया और एक अच्छे तबला-वादक के रूप में आप विख्यात हो गये।

★

मुनीर खाँ

जिला मेरठ के ललियाना नामक गांव में आपका जन्म हुआ। आपके पिता कालेखां साहेब बम्बई में ही अधिकतर रहते थे।

लगभग १५ वर्ष की उम्र से आपकी तबला शिक्षा उ० हुसेन अलीखां के द्वारा आरम्भ हुई। ८ वर्ष तक इनसे तालीम पाने के पश्चात मुनीर खां ने उस्ताद बलीबख्श से १०-१२ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। मुनीरखां बड़े परिश्रमी और लग्नशील व्यक्ति थे, अतः खूब रियाज करके इन्होंने अच्छा ताल ज्ञान

सम्पादित करलिया। जब इनके हाथ खूब तैयार होगये तब आप संगीत सम्मेलनों में भाग लेने के लिये बाहर जाने-आने लगे, जहां विभिन्न कलाकारों से संगत करके आपने अच्छा अनुभव प्राप्त किया। बहुत से तबलियों की सेवा करके उनसे नई-नई बातें और अंतरंग विशेषतायें हासिल कीं।

बम्बई तथा हैदराबाद में काफी समय तक रहने के पश्चात् मुनीर खां रायगढ़ चले आये और बहुत समय तक यहीं रायगढ़ महाराज के आश्रय में रहे। अन्त में ११ सितम्बर सन् १९३७ को आपका देहान्त होगया। आपके शागिर्दों में उस्ताद अहमदजान थिरकवा विशेष रूप से आपका नाम ऊँचा कररहे हैं। इनके अतिरिक्त अमीरहुसैन खां, गुलामहुसैन खां, शमशुद्दीन खां तथा निखिल घोष के नाम भी आपके शिष्यों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

★

मौलवीराम मिसिर

मौलवीराम जी कत्थक ब्राह्मण थे। बनारस के कबीरचौरा मुहल्ले में आपका निवास स्थान था। आपके पिता श्री बिहारीलाल जी मिश्र प्रसिद्ध सारंगी-वादक होने के साथ-साथ तबला-वादन में भी पटु थे और तत्कालीन काशी नरेश के दरबारी कलाकार थे। मौलवीराम ने तबला-वादन की कला अपने पिता जी से ही प्राप्त की।

आपने दस वर्ष की अल्पायु में ही तबला-वादन से गवालियर महाराज श्री माधोसिंह सिंधिया को मुग्ध करके पुरस्कार प्राप्त किया था। इनके अतिरिक्त भवानीपुर संगीत सम्मेलन, मारवाड़ी एसोसियेशन आदि संस्थाओं से स्वर्ण पदक प्राप्त किये। राजा जगतकिशोर जी आचार्य की सेवा में भी आप कुछ समय तक रहे। समस्त भारत में अपने कला प्रदर्शन द्वारा ख्याति प्राप्त करने के पश्चात्, आप मैमनसिंह जिले में मुक्ता गाछी के महाराज के यहां दरबारी कलाकार नियुक्त होगये।

आपके छोटे भाई मुंशीराम जी, जो कि एक सफल सारंगी वादक हैं, बनारस में रहते हुए कला की सेवा कररहे हैं। श्री मौलवीराम भी वृद्धावस्था में इन्हीं के साथ रहे और पेंशन पाते रहे।

आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री विपिनचन्द्र रॉय, रामकृष्ण कर्मकार, अमृतलाल मिसिर तथा श्री हरेन्द्र किशोर रॉय चौधरी के नाम लिये जा सकते हैं। मौलवीराम के पास तबले की पुड़ियों का एक बहुत बड़ा संग्रह रहता था, क्योंकि आप तबला निर्माण कार्य में भी अत्यन्त दक्ष थे और विशेष दिलचस्पी लेते थे। सन् १९४० ई० के लगभग, ७० वर्ष की आयु पाकर आप स्वर्गवासी हुए।

मौलाबख्श

मौलाबख्श के पिता रहीमबख्श खां और बाबा करम खां प्रसिद्ध सारंगी-वादक होगये हैं; किंतु मौलाबख्श ने अपनी ८ वर्ष की उम्र से ही तबला सीखने में रुचि दिखाई। तबले की तालीम आपने मुरादाबाद वाले उ० मोहम्मद हुसेन खां से प्राप्त की।

मौलाबख्श का जन्म सन् १८७८ ई० में हुआ। इनके तबला-वादन से प्रभावित होकर नवाब रामपुर ने इन्हें अपना दरबारी वादक नियुक्त किया और वहां आप १५ वर्ष तक अपनी सेवाएं देते रहे। इसके बाद कुछ समय तक अच्छन बाई, गौहर जान व मलकाजान के यहां भी तबला वादक रहे। इनके शिष्यों में कलकत्ते के गोपाल और कालीबाबू के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मौलाबख्श के पास तबला के बोलों का एक विशाल भंडार था; जिसके कारण उन्होंने बड़े-बड़े संगीतज्ञों तथा कला प्रेमियों से प्रतिष्ठा प्राप्त की।

★

रामसहाय

तबले के मुख्यत: ५ बाज पंजाब या दिल्ली, मेरठ, फरुखाबाद, लखनऊ और बनारस प्रसिद्ध हैं। बनारस बाज के प्रवर्तक स्वर्गीय राम-सहाय जी थे। आपके पूर्वज मूल रूप से जिला जौनपुर के अन्तर्गत गोपालापुर ग्राम के निवासी थे। बाद में इनके पिता बनारस आकर बस गये।

रामसहाय जी का जन्म बनारस में सन् १८३० ई० के लगभग हुआ। जब यह केवल २ वर्ष के शिशु थे, तब अपने चचा का रक्खा हुआ तबला घण्टों पीटते रहते और इसी छोटी सी आयु में तबले का सर्व प्रथम पाठ "धा धा तिट्टी धा धा तिन्ना" ठीक तरह से बोलने लगे थे, त्रिताल का ठेका भी इन्हें याद होगया। घर वाले इतनी छोटी अवस्था में तबले के प्रति इनकी ऐसी रुचि देखकर आश्चर्य चकित रह गये। जब यह ५ वर्ष के हुए तब अपने चाचा के शिष्य बनाये गये और तबले की शिक्षा बाकायदे प्रारम्भ होगई।

९ वर्ष की अवस्था में रामसहाय इतना अच्छा तबला बजाने लगे मानो कोई तबले का उस्ताद बजा रहा है। यह तबले के अभ्यास में ही लीन रहते थे। अपने परिश्रम और लगन के फलस्वरूप रामसहाय शीघ्र ही काशी के श्रेष्ठ तबला वादक समझे जाने लगे। लखनऊ में एकबार तबला के खलीफ़ा उस्ताद मोदू खां ने जब इनका तबला वादन सुना तो वे इनकी ओर बहुत आकर्षित हुए और रामसहाय के पिता से विशेष आग्रह करके इन्हें मांग लिया। फिर शुभ मुहूर्त देखकर उस्ताद मोदू खां ने रामसहाय को अपना शिष्य बना लिया। लखनऊ में शोर होगया कि एक हिन्दू लड़के को उस्ताद मोदू खां तबले की तालीम दे रहे हैं; इस प्रकार वर्षों बीत गये। जब उस्ताद

मोदू खां किसी कार्यवश अपनी सुसराल चले गये, तब रामसहाय अपने उस्ताद की बैठक में अकेले बैठे-बैठे रोने लगे। उस्ताद की बीबी ने उनसे रोने का कारण पूछा तो कहने लगे, अब मुझे तबला कौन सिखायेगा ? यह सुनकर वह हँसने लगीं, रामसहाय को धैर्य देते हुए उन्होंने कहा—तुम चिन्ता न करो, मेरे वालिदजान ने मुझे पांच सौ गतें बताई थीं सो मैं तुम्हें बतला दूँगी। तब चार महिने में ५०० पंजाबी गतें बीबी जी ने रामसहाय को सिखाईं। इस बीच उस्ताद मोदू खां भी पंजाब से आगये और उनका शिक्षा क्रम पुनः चालू होगया। इस प्रकार लगभग १२ वर्ष तक रामसहाय जी ने मोदू खां साहब से शिक्षा प्राप्त की। बीस-बीस घण्टे दैनिक रियाज करते रहे।

लखनऊ में नवाब शुजातुद्दौला की मृत्यु के पश्चात् वहां की नवाबी जब वाजिद अलीशाह को प्राप्त हुई, तो इस खुशी में संगीत का एक बड़ा जलसा किया गया और उसमें अनेक गायक नर्तक तथा वादक इकट्ठ हुए। इस जल्से में रामसहाय ने अपना कला कौशल दिखाकर श्रोताओं को आनन्द विभोर कर दिया। यह जल्सा सात दिन तक चला और सातों दिन रामसहाय जी का तबला वादन इसमें हुआ। मोदू खां ने नवाब साहब को सम्बोधित करते हुए कहा—"हजूर यहां जितने भी तबला या मृदङ्ग वादक मौजूद हैं, मैं उन लोगों से कोई रंजिश नहीं रखता, मगर उनके पास ईमान हो तो वे साफ-साफ बतायें कि रामसहाय के बाद कोई तबला बजा सकता है ?" नवाब साहब के कुछ उत्तर देने के पूर्व ही सब कलाकार बोल उठे कि "नहीं। खां-साहब ! हम सब लोग ईमान से कह रहे हैं कि अब रामसहाय जी के बाद तबला या मृदङ्ग बजाने का हौसला हम में से कोई नहीं रखता।" उस जल्से में प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह और भवानीसिंह भी मौजूद थे। इन दोनों ने राम सहाय जी की भुजाओं पर फूल चढ़ाकर तथा उन्हें चूमकर सीने से लगाया। बुजुर्गों ने आशीर्वाद दिये और छोटों ने इनके पैर छुए। जलसा समाप्त होने के पश्चात् नवाब साहब ने मोदू खां को दूसरे दिन रामसहाय जी को लेकर इनाम लेने के लिये आने को कहा और खुद महल के अन्दर चले गये।

दूसरे दिन दरबार में कलाकारों की भीड लग गई। सभी को यह उत्सुकता थी कि देखें नवाब साहब क्या इनाम देते हैं ? कहा जाता है कि इन्हें मोतियों की दो मालायें, ४ हाथी तथा बहुत सा रुपया पुरस्कार में मिला। दूसरे दिन रामसहाय जी मोदू खां साहब के साथ काशी के लिये रवाना होगये और हिफाजत के लिये नवाब साहब ने अपने तिलङ्ग(घुड़सवार) साथ कर दिये।

काशी की जनता को जब यह समाचार विदित हुआ तो वहां बड़ी शौहरत हुई और सब लोग इनका तबला सुनने की इच्छा करने लगे। तब एक दिन तबले का कार्यक्रम काशी में भी रक्खा गया और वहां आपने अपने कला-प्रदर्शन द्वारा कला-प्रेमियों की तृप्ति की।

रामसहाय जी ने अपने अनुज जानकी सहाय का नृत्य छुड़वाकर तबले का शिष्य बनाया तथा अन्य भी कई शिष्य बनाये एवं तबले पर एक ग्रंथ भी तैयार किया। उस ग्रन्थ का नाम उन्होंने "बनारस बाज" रक्खा। राम-सहाय जी ने अपने चाचा से कहा कि अब हमारे घराने का नया बाज बनारस बाज के नाम से प्रसिद्ध होगा। इस बाज को बजाने वाला ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी टप्पा, नृत्य, सितार आदि सबके साथ उत्तमता से संगत करने के अतिरिक्त स्वतंत्र वादन करके भी यश का भागी बनेगा। तभी से बनारस बाज की नींव पड़ी।

अपने चाचा और पिता जी की मृत्यु के उपरांत रामसहाय जी साधु वेष में रह कर शिष्यों को विद्या दान करते रहे। अपने भाई गौरीसहाय जी के पुत्र भैरव सहाय को उन्होंने ६ वर्ष तक स्वयं शिक्षा दी। लगभग ४६ वर्ष की आयु में रामसहाय जी का स्वर्गवास होगया। आपके शिष्यों में जानकीसहाय, प्रताप और भगतशरण, रघुनन्दन, यदुनन्दन और बैजू के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री रामसहाय जी को गुणी लोगों से जो अलभ्य चीजें प्राप्त हुई थीं, उनमें सिद्ध परन, गज परन, चक्करदार परन, पावस परन, कृष्ण परन, रासलीला परन, दुर्गा परन, हनूमान परन, काली परन, शंकर परन, गणेश परन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समा परन द्वारा नारियल अपने आप सम आते ही टूटकर टुकड़े-टुकड़े होजाता था। गज परन द्वारा पागल हाथी को वश में किया जा सकता था और सुलभ का टुकड़ा तो ऐसा था जो संसार की किसी लय से नहीं मिलता था। बीच में कुछ समय के लिये ऐसी स्थिति भी आगई थी जब एक तबला वादक की अनुचित आवाज कशी के कारण आपने तबला बजाना छोड़ दिया था, किन्तु लोगों के बहुत समझाने बुझाने पर आपने केवल कुछ शिष्यों को शिक्षा देना स्वीकार किया था, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वर्तमान प्रसिद्ध तबला वादक पंडित कण्ठे महाराज तथा किशन महाराज आदि इसी घराने के कलाकार हैं।

★

शम्भूप्रसाद तिवारी

शम्भूप्रसाद जी का सम्बन्ध प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह के घराने से है। आपका जन्म सन् १८८५ ई० में बांदा सिटी में हुआ। आपने पखावज की शिक्षा अपने पिता अयोध्याप्रसाद तिवारी से प्राप्त की, जोकि एक प्रसिद्ध

पखावजी थे, ये केवल पखावज में ही नहीं, अपितु गायन में भी कमाल रखते थे। कुदऊसिंह इनके चचा थे। उन्हीं से अयोध्याप्रसाद ने पखावज की तालीम प्राप्त की थी। यही कारण था कि आपने इस कला में यश प्राप्त किया और अपने पुत्र शम्भूप्रसाद को यह विद्या सिखाकर, अपने घराने का नाम अमर करगये। १९१३ ई० में अयोध्याप्रसाद स्वर्गवासी होगये।

शम्भूप्रसाद के पास बोलों का विशेष भण्डार है, अत: देश के प्रमुख संगीतज्ञ भी इनका आदर करते हैं। इनका बाज "कुदऊसिंह का बाज" के नाम से प्रसिद्ध है।

★

सखारामपन्त आगले

नाना साहेब पानसे के प्रधान शिष्य मृदङ्गाचार्य सखाराम पन्त उन इने-गिने कलाकारों में से थे जिन्होंने एक छोटे से ग्राम में जन्म लेकर अपने परिश्रम और प्रतिभा द्वारा इन्दौर दरबार में संगीत कला रत्न का रूप धारण किया।

आपका जन्म औरंगाबाद जिले के अन्तर्गत वैजापुर नामक स्थान पर सन् १८५८ ई० के लगभग हुआ। जब आपकी आयु १२-१३ वर्ष की थी, तभी से आपने मृदंग केसरी नाना साहब पानसे के पास इन्दौर में शिक्षा प्राप्त की। अपूर्व गुरु भक्ति और तीव्र कला निष्ठा द्वारा १६ वर्ष तक आपने शिक्षा ग्रहण करके इन्दौर में दरबारी मृदङ्गाचार्य का पद प्राप्त कर लिया।

उन दिनों आपके मृदंग-वादन की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी अत: आपका नाम प्रमुख वादकों में आदर के साथ लिया जाता था। भारत के प्रमुख नगरों में भ्रमण करके नेपाल और काश्मीर तक अपनी कला का चमत्कार दिखाकर आपने नाद-प्रेमियों को तृप्त किया था। अपूर्व कला सौष्ठव और उच्चतम व्यक्तित्व के अनोखे सामंजस्य के कारण उस समय के भृगन्धर्व उस्ताद रहमतखां, निसारहुसेन खां (ग्वालियर) पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, बझे बुवा जैसे महान कला मर्मज्ञ आपका अत्यन्त आदर करते थे। सन् १६१८ ई० के लगभग सतारा में आप परलोकवासी हुए। आपके शिष्यों में गोविन्दराव बुरहानपुरकर का नाम उल्लेखनीय है।

वर्तमान समय में आपके सुपुत्र श्री अम्बादास पन्त 'आगले' आपकी कला एवं नाना साहब पानसे के घराने का नाम चमत्कृत कर रहे हैं।

★

सखाराम मृदङ्गाचार्य

पं० सखाराम जी एक सुप्रसिद्ध पखावजी हैं। नाना साहब पानसे के घराने के आप शिष्य हैं। और इन्दौर के रहने वाले हैं। मृदंग की शिक्षा आपने भारत विख्यात श्री शंकर भैया पानसे से प्राप्त की, जो नाना साहब के घराने के थे और इन्दौर में रहते थे। कुछ समय तक तालीम पाने के बाद आपने "नाट्य कला प्रवर्त्तक संगीत मंडली" नामक एक नाटक कंपनी में नौकरी करली। कंपनी के साथ-साथ विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके आपने अनुभव प्राप्त किया। जब यह कम्पनी ग्वालियर पहुंची तो ग्वालियर नरेश श्री० माधवराव सिंधिया ने इनके पखावज वादन से प्रसन्न होकर इन्हें अपने यहां रख लिया। यहाँ पर आपने लगभग १६ वर्ष तक नौकरी की। यहीं पर एक बार श्री० भातखंडे जी से आपकी मुलाकात हुई थी। जब यह नौकरी छोड़कर आप इन्दौर पहुँचे तो सन् १९२१ ई० में इन्दौर में श्री० भातखंडे जी से फिर आपका सम्पर्क हुआ और मैरिस म्यूजिक कॉलेज लखनऊ में आपकी आवश्यकता का अनुभव भातखंडे जी ने किया।

सन् १९२६ ई० में मैरिस म्यूजिक कालेज लखनऊ में आपने नौकरी करली। तबसे आप वहीं हैं, बीच में किसी कारणवश आप तथा आपके सुपुत्र श्री० सदाशिव राव ने शिवगढ़ रियासत में भी मृदंग और तबले द्वारा प्रशंसात्मक सेवा की है। किन्तु असमय ही आपके श्री सदाशिव का देहावसान होजाने से आपको गंभीर आघात पहुँचा है। इस समय आपकी आयु लगभग ७४ वर्ष की होगी, फिर भी रियाज बदस्तूर है। आपने एक पुस्तक भी लिखी है जिसका नाम 'मृदंग– तबला शिक्षा" है। आकाशवाणी, लखनऊ से जब–तब आपका मृदङ्गवादन प्रसारित होता रहता है।

★

सामताप्रसाद मिश्र (गुदई महाराज)

बनारस के तबला सम्राट 'प्रतप्पू महाराज' के घराने के तबला वादकों में गुदई महाराज वर्तमान समय के प्रसिद्ध तबला वादकों में हैं। आपका जन्म सन् १९२१ के लगभग कबीर चौरा—काशी में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही आपके पिता पंडित बाचा मिश्र के द्वारा प्रारम्भ हुई। पंडित बाचा प्रसाद मिश्र स्वयं तबले के कलाकार थे, अत: ७ वर्ष की आयु तक इनके द्वारा गुदई महाराज को व्यवस्थित ढंग से शिक्षा मिलती रही। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् आपकी तालीम पं० बिक्कूजी मिश्र के द्वारा आगे बढ़ती रही। अत्यन्त रियाज और अकथ परिश्रम द्वारा आपने इसमें अच्छी सफलता प्राप्त करली, जिसके फलस्वरूप आपके पास विविध संगीत सम्मेलनों के निमन्त्रण आने लगे और इस प्रकार आपकी कला और भी परिष्कृत होगई। बिहार गवर्नर श्री अणे द्वारा आपको एक प्रमाणपत्र भी मिल चुका है।

गुदई महाराज यद्यपि तबला बजाने में यथेष्ट नाम कमा चुके हैं, फिर भी आपका कहना है कि 'अभी मैं अपनी साधना से संतुष्ट नहीं हूं और सदैव आगे बढ़ने की इच्छा रखता हूं''।

तीनताल, रूपक, धमार और सवारी यह आपकी प्रिय तालें हैं। कोडरमा के राजा साहब आपके शिष्यों में से प्रमुख हैं। इस समय आपकी आयु लगभग ३५ वर्ष की है, आगे चलकर दिनों दिन आप और भी उन्नति करेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

आपके शिष्यों में हाथरस के पं० सत्यनारायण वशिष्ठ का नाम भी उल्लेखनीय है।

★

सुखदेवसिंह

यह ग्वालियर दर्बार के प्रसिद्ध तबला—वादक श्री जोरावरसिंह के पुत्र थे। तबलावादन की शिक्षा आपको अपने पिता के द्वारा ही प्राप्त हुई थी। प्रति-भाशील बालक को, यदि घराने की विद्या अपने परम हितैषी पिता के द्वारा ही प्राप्त हो तो वह निश्चित रूप से एक न एक दिन महान् कलाकार बन जाता है, इसलिये सुखदेवसिंह अल्पकाल में ही उच्चकोटि के तबलावादक होगये।

आपका बाज यथेष्ट मधुर और स्पष्ट था। संगत बड़ी अनुकूल और मीठी करते थे। इस विषय में आपकी प्रसिद्धि अधिक थी। स्वभाव के बड़े नम्र तथा दीन श्री सुखदेव का श्री माधवराव के शासनकाल में, ग्वालियर नगर में देहान्त हुआ था।

★

हबीबुद्दीन खां

वर्तमान काल के तबलियों में आप भी अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। आपका जन्म सन् १८६६ ई० में मेरठ में हुआ था। आपके पिता उस्ताद शम्मू खां साहेब एक प्रसिद्ध तबलिये होगये हैं। इन्हीं से आपने लगभग १२ वर्ष की अल्पायु से तबले की तालीम लेनी प्रारम्भ की। बाद में आपने दिल्ली घराने के खलीफा उस्ताद नत्थू खां से भी सीखा।

अजराडा घराने की तालीम अपने पिता से और दिल्ली घराने की शिक्षा उस्ताद नत्थू खां से प्राप्त करके आप इन दोनों घरानों के तबला वादन में अत्यन्त निपुण होगये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य घरानों का तबला भी आप बजाते हैं। भारत के विभिन्न संगीत सम्मेलनों में आप आदर के साथ निमन्त्रित किये जाते हैं। लखनऊ संगीत सम्मेलन द्वारा आपको "संगत-सम्राट" की उपाधि भी प्राप्त होचुकी है। आकाशवाणी द्वारा जब-तब आपके तबला वादन का कार्यक्रम प्रसारित होता ही रहता है। आप शरीर से सुडौल और सुन्दर व्यक्तित्व के एक कुशल तबलिया हैं।

पंचम अध्याय

नृत्यकार

अच्छन महाराज

लखनऊ के प्रसिद्ध कथक नृत्यकार, महाराज बिन्दादीन का भारत के प्रसिद्ध गायक और वादक आदर करते थे। उन्होंने पिछले ५०-६० वर्षों में कथक नृत्य के आसन को सुशोभित किया। उनके कोई संतान न थी, अतः उन्होंने अपने भाई कालिकादीन के सबसे बड़े सुपुत्र अच्छन को कथक नृत्य की तालीम दी।
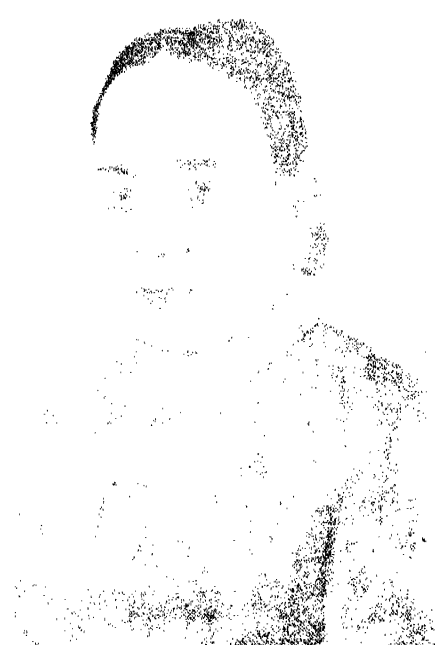
यद्यपि आज अच्छन महाराज का अस्तित्व संसार में नहीं है, फिर भी संगीत प्रेमी समय-समय पर उनकी प्रशंसा करते रहते हैं। उन्होंने अपने चचा बिन्दादीन महाराज की गद्दी अपनी योग्यता से प्राप्त की और घराने की कला अति परिश्रम से प्राप्त करके भारत में उसका नाम ऊँचा किया। बीसवीं सदी में वे कथक नृत्य के सम्राट माने जाते थे। शरीर के प्रत्येक अङ्ग के सूक्ष्म इशारों और भावों द्वारा मूक भाषा में वे बड़ी गहरी बातें कह जाते। मुख की आकृति, नेत्र संचालन तथा हाथों की मुद्राओं से विभिन्न भाव प्रदर्शन करके दर्शकों को चकित कर देते थे। भाव प्रदर्शन के गुण के अतिरिक्त अच्छन जी के अन्दर एक गुण और था, ताल और लय के वे प्रकांड पण्डित थे। घुँघुरुओं की झनकार से तबले के विभिन्न बोल इस खूबी से दिखाते थे कि तालियों की गड़-गड़ाहट से प्रदर्शन हॉल गूँज उठता। शरीर की मुद्राओं को सही रखते हुए घुंघरू का काम करना आसान नहीं है तथा लय के साथ भावों को दिखाना और भी कठिन है। कठिन से कठिन ताल पर अच्छन महाराज बड़ी आसानी से घन्टों नाच सकते थे। कथक नृत्यकार प्रायः तीनताल, दादरा और कहरवा

का ही अधिकतर प्रयोग करते हैं और मुश्किल तालों से घबराते हैं, किन्तु अच्छन महाराज मुश्किल तालों पर भी पूर्ण अधिकार रखते थे। धमार, आड़ाचौताल, सूल, ब्रह्म, झप और सवारी इत्यादि तालों पर वे घन्टों नाच सकते थे। घुंघरुओं के द्वारा ताल के बोल बांट करने में तो कमाल हासिल था। जब वे यह काम दिखाते थे तो साधारण तबलिये चक्कर में पड़ जाते और सम टटोलते हुए अच्छन जी की ओर ताकते रहते थे। यही कारण था कि कुछ खास तबलियों को छोड़कर अन्य तबलिये उनका साथ करने में घबराते थे।

कलाकार होने के साथ-साथ अच्छन महाराज अत्यन्त सभ्य और सहृदय भी थे। अभिमान की तो उन्हें गन्ध तक नहीं थी। गुणीजनों का वे आदर करते, उनकी प्रशंसा करते और कभी भी व्यङ्ग वचन कह कर किसी के हृदय को चोट नहीं पहुंचाते थे। सर्वदा प्रसन्न रहने वाले और हँसमुख थे। उनकी प्रकृति बच्चों जैसी कोमलता लिये हुए थी। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि शहरों में घूमते हुए भी वे लखनऊ को ही अधिक प्यार करते थे। कहते थेः— "यहां की बयार में नवाबी नज़ाकत बहती है, जो नाच और नचकैया के लिये उतनी ही मुफीद है जितनी कि एक तपैदिक के मरीज़ को पहाड़ की। यदि यकीन न हो तो आजाइये लखनऊ; आपकी कमर सात बल खाती होगी तो यहां सौ बल खाने लगेगी।"

आपने अपने अन्तिम दिनों में नृत्यकला पर एक वृहद् ग्रंथ भी लिखा, जिसमें कि घरानेदार चीज़ों का संग्रह था, दुर्भाग्य से इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति आपके पुत्र की अज्ञानता के दिनों में किसी संगीत चोर द्वारा चुरा ली गई अतः उसके उपयोग से जनता वंचित रह गई।

अच्छन महाराज विशेष तौर पर कृष्णलीला सम्बन्धी नृत्य दिखाते थे। कृष्ण का बांसुरी बजाना, गोपियों की व्याकुलता, किसी सखी का जमुना तट पर पानी भरने जाना, बालक कृष्ण की माखन चोरी, किसी सखी का दर्पण के सामने शृङ्गार करना और पीछे से कृष्ण का आना, दर्पण में कृष्ण का प्रतिविम्ब पड़ने से यकायक चौंक कर सखी का पीछे की ओर देखना आदि भाव वे बड़ी खूबी से दिखाते थे। श्रंगार रस के अतिरिक्त भक्ति, वात्सल्य, प्रेम, शान्ति, क्रोध और वीर रस के भाव भी वे अपने नृत्य में सफलता पूर्वक दिखाते थे। यद्यपि अच्छन जी का शरीर भारी था और भारी शरीर वाला नृत्यकला में बड़ी मुश्किल से सफलता प्राप्त करता है, किन्तु अच्छन महाराज

इसके अपवाद थे। वे बन-ठन कर जिस समय स्टेज पर आते, तो एक सच्चे कलाकार प्रतीत होते थे। स्टेज पर आते ही तालियों की गड़गड़ाहट से जनता उनका स्वागत करती।

बाहर के दौरे पर रहते हुए जब भी अच्छन महाराज को घर की याद आती, तो सब काम छोड़कर लखनऊ चले आते। गृहस्थाश्रम को वे सबसे सुखी जीवन समझते थे और यही कारण था कि अपनी सन्तान के प्रति उनका दुलार और आकर्षण अन्त समय (सन् १९४४) तक रहा।

वर्तमान समय में आपके सुपुत्र १९ वर्षीय श्री ब्रजमोहन (बिरजू महाराज) इस घराने की कला को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। श्री बिरजू महाराज अपने पिता की ऐसी सच्ची तसवीर हैं, जिन्हें देखते ही स्व० अच्छन महाराज का स्मरण हो आता है। रूप, कला, दिमाग़ बातें सभी कुछ तो अच्छन महाराज से मिलता है।

★

अमलानंदी

विश्व प्रसिद्ध नृत्यकार श्री उदय शंकर की जीवन संगिनी श्रीमती अमलानंदी को, जहाँ हम एक उच्चकोटि की कलानेत्री कहते हैं, वहां यदि हम उन्हें श्री उदयशंकर की 'पूरक शक्ति' कहकर संबोधित करें तो अतिशयोक्ति न होगी।

कलकत्ते के एक सम्पन्न जौहरी परिवार में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता श्री अक्षय कुमार नंदी इन्हें ११ वर्ष की आयु में ही योरुप की यात्रा पर ले गये थे। उन दिनों श्री उदयशंकर भी योरुप की यात्रा पर गये हुए थे। पेरिस की नुमाइश में श्री अमला तथा उदयशंकर की पहली भेंट हुई; तभी से अमला के जीवन को एक नया मोड़ प्राप्त हुआ और जौहरी अमला, नर्तकी अमला के रूप में परिवर्तित हो गयी। कुछ दिनों की कला साधना के पश्चात् अमला और उदयशंकर विवाह सूत्र में बंध गये। तभी से इस प्रतिभावान दम्पति ने भारतीय नृत्य संगीत को कितना परिवर्धित किया, अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कितना सम्मानित कराया, इस विषय पर लिखने से एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

श्री उदयशंकर की कला एवं प्रतिभा को मुखरित करने वाली महान् नर्तकी अमला भारतीय नृत्य कला के इतिहास में सदैव अमर रहेगी, इसमें संदेह नहीं।

★

उदयशङ्कर

विश्व विख्यात नृत्यकार श्री उदयशंकर का जन्म उदयपुर में होने के कारण इनके पिता डा० श्यामा शंकर चौधरी ने आपका नाम उदयशंकर रक्खा। बचपन से ही चित्र कला और संगीत के प्रति आपकी रुचि रही। उन दिनों आप दीवारों पर तरह-तरह के चित्र बनाया करते थे तथा पाठशाला से गोता लगाकर संगीत की महफिलों में पहुँच जाते। आपका जन्म उच्च वर्णीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। अतः परिवार वालों को यह सहन नहीं होता था कि हमारा बालक निम्न श्रेणी के लोगों के साथ गाने-बजाने वालों में शामिल हो।

बढ़ती आयु के साथ संगीत के प्रति उदय की रुचि और कला की प्रगति देखकर इनके पिताजी को शंका होने लगी कि मैं उदय का विरोध करने में भूल तो नहीं कर रहा हूं। उन्होंने निश्चय किया कि बालक की रुचि के साथ ही उसे आगे बढ़ने देना चाहिये, अत: उदयशंकर की इच्छानुसार उन्होंने सन् १९१७ ई० में जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स बम्बई में चित्रकला शिक्षण के लिये भेज दिया। इन्हीं दिनों उदयशकर गान्धर्व महाविद्यालय बम्बई में संगीत शिक्षा के लिये भी जाया करते थे। उदयशंकर के चित्रकला के प्रथम गुरु प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय चित्रकार रा० बा० धुरन्धर और संगीत का प्रथम ज्ञान कराने वाले श्री विनायक बुवा पटवर्धन रहे हैं। इन दोनों कलाकारों के प्रति आपके हृदय में अभी तक वही आदर भाव है।

आर्ट्स स्कूल बम्बई में तीन साल तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद आपके पिताजी ने उदयशंकर को रॉयल कालेज आफ आर्ट्स लन्दन में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया। इसी जगत प्रसिद्ध संस्था में सर विलियम रोथेन्–स्टेन नामक चित्रकार से आप चित्रकला का अध्ययन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि आपने इस संस्था की डिगरी सम्मान पूर्वक प्राप्त की। इतना ही नहीं, स्पेन्सर और 'जार्ज–क्लॉफ़ेन' नामक दो मैडिल भी आपने प्राप्त किये, इस सफलता के कारण चारों ओर आपका अभिनन्दन होने लगा।

चित्रकार होने के साथ–साथ ही कुछ दूसरे विचार भी आपके हृदय में घर कर रहे थे। आपने कुछ नाटिकायें लिखीं। गत महायुद्ध में पीड़ित भारतीयों की मदद के लिये इन नाटिकाओं का प्रयोग होने वाला था। इन प्रयोगों के यश का श्रेय श्री उदयशंकर के संगीत को प्राप्त हुआ। इसी समय आपका ध्यान संगीत और नृत्यकला की ओर विशेष रूप से झुका। मित्रों के यहां जो प्राइवेट जल्से होते थे, उनमें आप नृत्यकला का प्रदर्शन करते थे। ऐसे ही एक कार्यक्रम में जगत प्रसिद्ध नर्तकी अन्नापावलोआ भी शामिल हुई थीं। उदयशंकर के कलाकौशल को देखकर वे इनकी ओर आकर्षित हुईं और सन् १९२३ ई० में भारतीय नृत्य की शिक्षा देने के लिये उन्होंने उदय–शंकर को अपनी पार्टी में ले लिया। उदयशंकर ने राधाकृष्ण व अन्य कुछ नृत्यों के प्रकार तैयार करके पार्टी को सिखाये, साथ ही साथ आप स्वयं भी भाग लेते थे। इसी पार्टी के साथ आप अमेरिका गये, वहां भी इस भारतीय नृत्यकार का यथेष्ट स्वागत हुआ। इसके बाद कई कारणों से उक्त पार्टी से अलग होकर लन्दन–पैरिस में अपना स्वतंत्र कार्य करके जीविका चलाने लगे।

उदयशंकर के ये दिन बड़े कष्ट में बीते। कभी किसी गली के छोटे से होटल में मस्त शराबियों के मनोरंजन के लिये उन्हें नाचना पड़ा, केवल उदर निर्वाह के लिये। फिर भी आमदनी कम होने के कारण भरपेट खाना, कपड़ा उन्हें नसीब नहीं होता था। पास में पैसा नहीं, किसी का सहारा नहीं, किन्तु कला प्रेम की इच्छा बलवती थी। उसी समय भाग्यवश आपका परिचय श्री विष्णुपन्त शिराली से हुआ, ये महाराष्ट्रीय कलाकार गांधर्व महाविद्यालय से संगीत का अध्ययन कर चुके थे और उन दिनों पैरिस में रहते थे। शिराली जी के साथ परामर्श करके उदयशंकर ने निश्चय किया कि एक दिन पैरिस शहर में भारतीय–नृत्यकला का प्रदर्शन किया जाय। इस निश्चय के फल स्वरूप पैरिस के प्रसिद्ध नाटक गृह में उदयशंकर की नृत्यकला का प्रदर्शन हुआ। संगीत की बागडोर विष्णुपन्त शिराली ने सँभाली। यह कार्यक्रम इतना सफल रहा कि चारों ओर आपकी प्रशन्सा होने लगी। आपके नृत्य को देखने के लिये पैरिस का जन समुदाय उमड़ पड़ता था। इससे आपको व आपके कार्यक्रम के ठेकेदारों को काफी पैसा मिला। आपकी इस सफलता से आकर्षित होकर विभिन्न ठेकेदारों ने अपने–अपने देश में आकर नृत्यकला का प्रदर्शन करने के लिये उदयशंकर को आमन्त्रित किया, तब आप योरुप के दौरे पर निकले। जगह–जगह अपनी कला का डंका बजाते हुए आप अमेरिका पहुंचे। वहां के लोगों ने भी आपकी कला को अपनाया, इससे आपने यथेष्ट धन और यश संचय किया।

विदेशों से मान-सम्मान और काफी पैसा लेकर लौटे हुए उदयशंकर जब सन् १६२६ में भारत आये तो यहां के कला प्रेमियों ने दिल खोलकर आपका स्वागत किया।

पाश्चात्य देशों में आपने भारतीय व पाश्चात्य नृत्य साहित्य का भली प्रकार अभ्यास करके अपनी कल्पना के अनुसार कुछ नवीन नृत्य प्रकार तैयार किये। भारत आने पर जब इन नृत्यों का यहां की जनता ने स्वागत किया तो उदयशंकर का हृदय आनन्द से भर गया। और फिर आपने नृत्य के अन्य नये–नये प्रकार तैयार करके उनका उपयोग किया। आपको दिनों दिन सफलता मिलती गई।

भारतीय नृत्यकला के विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये अलमोड़ा में आपने 'उदयशंकर इण्डिया कल्चर' नामक एक संस्था खोली। जिसके द्वारा

अनेक विद्यार्थियों ने लाभ उठाया। बाद में कई कारणों से यह संस्था बन्द करनी पड़ी। "कल्पना" नामक नृत्य प्रधान एक फिल्म भी आपने बनाया, जिसका प्रदर्शन भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी सफलतापूर्वक हुआ।

अब भी आप अपनी पार्टी के साथ भारत के बड़े-बड़े नगरों में नृत्यकला का प्रदर्शन करते रहते हैं। इसके द्वारा धन संग्रह करके आपकी इच्छा बम्बई में एक ऐसी संस्था स्थापित करने की है, जिसके द्वारा उच्च स्तर पर नृत्यकला के विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा सके। आपकी पार्टी में लगभग २०-२५ कलाकार हैं। इन सबके साथ इतना प्रेम पूर्वक व्यवहार होता है कि मानो सब एक ही कुटुम्ब के हैं। प्रत्येक कलाकार उत्साह से अपना काम करता है। संगीत का दिग्दर्शन श्री० विष्णुपन्त शिराली करते हैं। उदयशंकर की पार्टी का वृन्द-वादन (Orchestra) बड़ा मनोरंजक तथा प्रभावशाली होता है।

श्री उदयशंकर स्वभाव से गर्व रहित व सादा रहन-सहन के हैं। जाति के बंगाली ब्राह्मण; उदयपुर का जन्म, बनारस में प्राथमिक शिक्षण, उसके बाद बम्बई में शिक्षण तथा विदेशों में बहुत काल तक रहने से इन्हें जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसका परिणाम इनकी बोल-चाल पर बड़ा अच्छा पड़ा है। आजकल आपकी आयु लगभग ४२ वर्ष की है, फिर भी आपसे बातचीत करने पर ऐसा मालूम होता है कि एक बालक बोल रहा है। आपकी वाणी में कोमलता है, जिससे एक प्रकार का आनन्द अनुभव होता है। आपको बंगाली, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी, फ्रेंच आदि अनेक भाषाओं का ज्ञान है। आपके एक भाई श्री राजेन्द्रशंकर पार्टी में ही कार्यक्रम इत्यादि की व्यवस्था रखते हैं और आपके एक छोटे भाई पं० रविशंकर भारत के श्रेष्ठतम सितार वादक हैं।

★

कन्हैया

लखनऊ के रंगीले नवाब वाजिद अली शाह के नाम से हमारे पाठक भलीभांति परिचित होंगे। उन दिनों लखनऊ नगर राग-रंग का केन्द्र बना हुआ था। विशेषतः नृत्य कला तो उत्कर्ष की ओर बड़ी द्रुत गति से बढ़ रही थी। नवाब साहब स्वयं भी नृत्यकला में पारंगत थे। कन्हैया ऐसे सौभाग्यवान व्यक्तियों में था, जिसे स्वयं नवाब साहब ने नृत्य की शिक्षा दी थी। नवाब का शिष्य होने के कारण, इस युवक कलाकार पर अन्य दर्बारी गुणीजन भी यथेष्ट कृपा दृष्टि रखते थे।

उचित साधन और योग्य वातावरण मिलने पर कन्हैया अल्प अवधि में ही अपने उस्ताद के अनुरूप नृत्यकार बन गये। मिलनसार तबियत, सुन्दर तथा आकर्षक व्यक्तित्व कलाकार की प्रसिद्धि में बड़े सहायक होते हैं; कन्हैया में यह सभी गुण मौजूद थे, अतः शीघ्र ही यह एक ख्याति प्राप्त कलाकार बनगये। उस समय वाजिद अली शाह के दर्बार में नर्तकी और अभिनेत्रियों के अतिरिक्त १०० से ऊपर गायक तथा विभिन्न साजों के वादक रहते थे, वे सभी कन्हैया के नृत्य की प्रशंसा किया करते थे। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, सम्भवतः लखनऊ में ही इनका स्वर्गवास होगया।

★

कमला

दक्षिण–भारत की प्रतिभावान नर्तकी कमला ने अपनी किशोरावस्था में ही नृत्य की दुनिया में जैसी प्रबल ख्याति पाई है उसे देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। मद्रास प्रान्त के 'मायरम' नगर में १६ जून सन् १६३४ ई० को एक सम्मानीय ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ था। शैशवावस्था में ही कमला के अन्दर नृत्य के संस्कार दृष्टिगोचर होने लगे थे। जब यह दो वर्ष की थीं तभी ग्रामोफोन पर बजने वाले रिकार्डों के साथ नाच किया करती थीं। उन दिनों आपके पिता जी बम्बई रहते थे, अतः कमला जी को बचपन में बम्बई के एक नृत्य विद्यालय में शिक्षार्थ भेजा गया। ५ वर्ष की आयु में ही इन्हें कत्थक तथा मनीपुरी का अच्छा अभ्यास होगया। तत्पश्चात् आपको प्रसिद्ध नर्तकी मजूरी की मंडली में दाखिल करदिया गया। यहां पर आपके नृत्य बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। थोड़ी ही अवधि में कमला की ख्याति समस्त बम्बई में फैल गई।

उन्हीं दिनों इस ख्याति प्राप्त बाल नटी पर चलचित्र निर्माताओं की दृष्टि पड़ी और कमला जी को क्रमशः अनेक फिल्मों में नृत्य की भूमिकाएँ अभिनीत करने के सुयोग प्राप्त हुए। रजतपटीय नृत्याभिनय ने आपकी प्रतिभा को और भी चमका दिया। बसंत और रामराज्य जैसे चित्रों द्वारा इन्हें बहुत ख्याति प्राप्त हुई। कुछ दिनों बाद कमला ने मद्रास के नृत्याचार्य वलहूर रामय्य पिल्लै से कर्नाटक संगीत तथा भरतनाट्यम की आवश्यक शिक्षा प्राप्त की।

इस समय आप भारत की चारों नृत्य शैलियों (कथकली, कत्थक, मनीपुरी, भरतनाट्यम) पर पूर्ण अधिकार रखती हैं। फिर भी आपको भरतनाट्यम विशेष प्रिय है और इसी नृत्य में आपको आश्चर्यजनक सफलता भी प्राप्त हुई है। आपके नृत्यों के दो विशेष कार्यक्रम 'कटनम आडीनार' तथा 'नाडर मुडिमेल' अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। कभी–कभी ५ घंटे तक आपका नृत्य कार्यक्रम होते देखा गया है, फिर भी इनके चहरे पर थकावट के चिन्ह नहीं प्रतीत होते।

सन् १९५३ में रानी एलिजा बेथ के राज्यभिषेक के अवसर पर आपको इङ्गलेंड भेजा गया। वहां इनके हृदयहारी नृत्य प्रदर्शनों ने अन्तरराष्ट्रीय–जगत में अद्वितीय सम्मान प्राप्त किया है। इनकी अवस्था को देखते हुए अनुमान किया जाता है कि अभी यह नृत्यांगना अपने क्षेत्र में और भी अधिक उन्नति करेगी।

★

कालिकाप्रसाद

काशी के निवासी कालिकाप्रसाद नृत्यकला के प्रकांड विद्वान् होगये हैं। कत्थक नृत्य पर आपको पूर्णरूपेण अधिकार था। दूसरे शब्दों में कत्थक नृत्य और भाव प्रदर्शन कला का आपको प्रवर्तक ही कहना चाहिये।

कलाकार यदि जनरंजन के साथ-साथ कला के प्रचार और प्रसार कार्य में जुट जाये तो समाज की दृष्टि में उसका मूल्य और भी अधिक हो जाता है। यही बात कालिकाप्रसाद में थी, आप जीवन भर बनारस में ही रहे और वहाँ रहकर इन्होंने अनेक शिष्यों को नृत्य की तालीम दी; विशेषतः बनारस की वेश्याओं को ठुमरी गायन के साथ-साथ भावप्रदर्शन कला की शिक्षा देने का श्रेय आपको ही है।

कालिकाप्रसाद का रहन-सहन सभ्य गृहस्थों के समान था। शिष्ट समाज के लोग इन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इनके एक भाई बिन्दादीन भी थे जो उस समय लखनऊ में निवास करते थे। नृत्य समाज कालका बिन्दादीन का लोहा मानता था।

★

गोपीकृष्ण

कुछ समय से विभिन्न सङ्गीत–सम्मेलनों में विविध शास्त्रीय-नृत्य उपस्थित करने वाले एक नवोदित नृत्य-कलाकार नटराज गोपीकृष्ण विशेष रूप से प्रकाश में आने लगे हैं। आपने अपनी कला द्वारा जन–साधारण के हृदय में समुचित स्थान बना लिया है।

गोपीकृष्ण का जन्म २२ अगस्त १६३३ ई० को कलकत्ते में हुआ। परिवार में सभी व्यक्ति संगीत प्रेमी होने के कारण इनका आकर्षण भी इस ओर होना स्वाभाविक था। आपके नाना पं० सुखदेव महाराज अत्यन्त गुणी और कला प्रेमी हैं। प्रसिद्ध नर्तकी सितारादेवी आपकी मौसी होती हैं। दूसरी मौसी अलकनन्दा देवी हैं, जो गायन तथा नृत्य की एक कुशल कलाकार हैं।

आपके जीवन के आरम्भिक दस वर्ष देखने–सुनने और इच्छानुसार अभ्यास करने में व्यतीत हुए। जब आपकी अवस्था ११ वर्ष की हुई, तब आपने अपने नाना जी पं० सुखदेव महाराज से नियमित रूप से शिक्षा लेनी आरम्भ की और फिर कुछ समय पश्चात् कत्थक नृत्य के आचार्य, नर्तक-सम्राट शंभू महाराज से दीक्षा लेकर गण्डा बँधवा लिया। इनसे आपने कत्थक नृत्य की शिक्षा कई वर्ष तक पाई। अपनी मौसी सितारादेवी से गोपीकृष्ण ने मणिपुरी, भारतनाट्यम् आदि नृत्य–शैलियों का ज्ञान प्राप्त किया।

यद्यपि आप बहुत छोटी अवस्था से ही विभिन्न सङ्गीत–सम्मेलनों में भाग लेते रहे, तथापि गत ५ वर्ष मे आप विशेष रूप से अपने कार्यक्रम देने लगे हैं। यद्यपि देखने में आपका शरीर कुछ भारी होने के कारण एक नृत्यकार के लिये उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, किन्तु मंच पर जिस फुर्ती से आप नृत्याभिनय करते हैं, उसे देखकर दर्शक चकित रह जाते हैं। बम्बई, कलकत्ता, बनारस, पटना आदि सम्मेलनों में दर्शकों ने आपके कार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की। सन् १६५३ में इन्दौर में आप केवल एक दिन के लिये बुलाये गये थे, किन्तु कला–प्रेमियों के आग्रह वश वहां आपको चार दिन रुकना पड़ा और ५०१) नकद एवं सोने–चांदी के कई पदक प्राप्त हुए।

आपकी कला को देखकर जब कुछ चल–चित्र निर्देशक भी आकर्षित हुए, तो आपको एक–दो चित्रों में काम करने का अवसर मिला। इसके पश्चात 'साक़ी', 'आंधियां', 'मधुबाला', 'परणीता', 'संग–दिल', 'बाग़ी', 'शगूफा', 'चाचा–चौधरी', चिनगारी' 'गोलकुण्डा का कैदी', 'लहरें' आदि कई फ़िल्मों में

नृत्य-निर्देशन करके ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। शीघ्र ही आप उच्चकोटि के अन्य कई फ़िल्मों में आ रहे हैं। आपके शिष्यों में मधुबाला, संध्या, शशिकला, शम्मीकपूर, इन्द्राणी रहमान, कुक्कू, मीना कुमारी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री शान्ताराम कृत चित्र 'झनक-झनक पायल बाजे' में आपका कार्य देखने योग्य है।

गोपीनाथ

भारतीय नृत्य संगीत के प्रमुख चरित्र नायक श्री गोपीनाथ दक्षिण भारत की महान विभूतियों में से एक हैं। आपका जन्म ट्रावनकोर कोचीन जिले के अन्तर्गत त्रिचूर नामक स्थान पर हुआ था। कथकली नृत्य आपके यहां वंश परम्परा से चला आया है, अतः श्री गोपीनाथ को प्रारम्भ में इसी नृत्य की शिक्षा प्राप्त हुई। अपने परम्परागत कथकली नृत्य में प्रवीण होने के पश्चात् आप श्री उदयशंकर जी के साथ—साथ योरुप की यात्रा पर चले गये। योरुप से वापिस आने के बाद आपने स्वयं एक नृत्य पार्टी का निर्माण किया और इस पार्टी के साथ समस्त भारतवर्ष की यात्रा की। अपने मोहक और कलापूर्ण कार्यक्रमों से आपने शीघ्रही जनसमुदाय के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् नायर वंश की एक सुन्दर और सुशील कन्या से आपका विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। आपकी पत्नी सुश्री 'टुङ्गा मोनी' भी प्रारम्भ से ही नृत्यकला की उपासिका थीं। इस कलाकार दम्पति ने जहां भी अपने नृत्यों का प्रदर्शन किया, वहीं की जनता ने मन्त्रमुग्ध होकर इनकी प्रशंसा की। इस समय आप मद्रास में निवास करते हैं। वहां आपने कथकली नृत्य का एक शिक्षा केन्द्र भी स्थापित कर रक्खा है।

गोपीनाथ ने नृत्यकला पर अंग्रेजी में एक पुस्तक भी लिखी है जो जनता द्वारा समादरित हुई है। ★

झण्डेखां

वैसे तो भारतवर्ष में एक से एक प्रतिभावान नृत्यकार और गायक हुए हैं, किन्तु ऐसे कलाकार जिन्हें गायकी तथा नृत्य दोनों पर समान अधिकार हो, बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं। श्री झंडे खां ऐसे ही लब्ध प्रतिष्ठ कलाकारों में से हैं। संगीत की साधना आपके यहां वंश-परंपरा से चली आरही है। आपके पिता श्री नत्थूखां सुप्रसिद्ध गायक श्री बहराम खां के शिष्य थे। झण्डेखां को शैशव काल से ही सांगीतिक वातावरण मिला। बाल्यकाल से ही आपने संगीत की साधना प्रारम्भ कर दी। अठारह वर्ष की कठिन तपश्चर्या के पश्चात् लगभग २३ वर्ष की आयु में झण्डे खां साहब रियासत रामपुर के दरबार गायक नियुक्त होगये। उस समय रामपुर भी विशेषत: संगीत कला का केन्द्र बना हुआ था। नबाव हामिद अली खां उन दिनों रामपुर की गद्दी पर आसीन थे। इसी बीच संयोग से एक बार बनारस के सुप्रसिद्ध नृत्यकार बिंदादीन और कालकाप्रसाद का दरबार रामपुर में आगमन हुआ। इन दोनों की कला-पटुता पर सारा दरबार आश्चर्य चकित रह गया। ३० वर्षीय तरुण गायक झण्डे खां इन लोगों की नृत्यकला पर आसक्त होगये और इन्होंने ग्यारह वर्ष की एक लम्बी अवधि तक कालका बिन्दादीन से कथक नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार संगीत के दोनों अंगों पर आपका अच्छा अधिकार हो गया। उस्ताद झण्डे खां सारङ्गी में भी बहुत दक्ष थे, आप लगभग ५-६ वर्ष तक नेपाल के राणा वीरचंद्र शमशेर बहादुर के दरबार में भी रहे। वहां आपको यथेष्ट सम्मान एवं कीर्ति प्राप्त हुई।

★

ठाकुरप्रसाद

कत्थक नृत्य के आचार्य ठाकुर प्रसाद का घराना मूल रूप से इलाहाबाद की हंडिया तहसील का है। नवाब आसिफुद्दौला के समय में इनके पिता प्रकाश जी लखनऊ आकर बस गये थे।

वाजिदअली शाह के पूर्व के नवाब के अंतिम समय में आप लखनऊ आये थे। आपके अन्दर नृत्यकला की कुछ ऐसी विशेषतायें थीं जिनसे आकर्षित होकर नवाब वाजिदअली शाह ने अपने दरबार में आपको सम्मानित किया और इनसे स्वयं नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। ठाकुरप्रसाद जी को अनेक नृत्य सिद्ध थे। गणेश परन नामक नृत्य जब आप नाचते थे तो दर्शक स्तब्ध रह जाते थे।

ठाकुर प्रसाद जी का एक नृत्य तो बड़ा विचित्र था। कुर्सी पर सूत के धागे से बाँधकर एक जटाधारी नारियल रक्खा जाता था। डोरे का एक सिरा ठाकुर प्रसाद जी अपने पैर के अँगूठे से लपेट लेते थे। इसके बाद वह उसी गत से नृत्य करते रहते थे, जिसमें कि विभिन्न तिहाइयां और नृत्य की गति पहले की भांति रही आती थीं। किन्तु जब सम आती थी तभी वह नारियल कुर्सी से नीचे गिरता था। लिखने में यह एक साधारण सी बात प्रतीत होती है, किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो यह कार्य कितना दुष्कर है• इसका अनुमान नृत्य मर्मज्ञ ही लगा सकते हैं। अँगूठे में डोरा बँधा हुआ होने पर भी नारियल और अँगूठे के संतुलन का ध्यान रखते हुए विभिन्न

तिहाइयां लेकर (जिसमें कि डोरा पैरों से लिपटता चला जायेगा) नृत्य करना कितना कठिन है !

प्रसिद्ध नृत्यकार महाराज बिन्दादीन आपके ही सुपुत्र थे, जिनको ९ वर्ष की अवस्था से ही नृत्य शिक्षा देकर आप एक महान नर्तक बना गये। सन्– १८५५–५६ के लगभग ठाकुरप्रसाद जी का देहावसान होगया।

★

दमयन्ती जोशी

भारतीय नृत्यांगनाओं में कुमारी दमयंती जोशी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। बम्बई के एक साधारण परिवार में जन्म लेकर दमयंती एक दिन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नर्तकी बनेगी, इसकी कल्पना भी नहीं थी।

शैशवावस्था में ही आपके पिता इस संसार को छोड़ गये, इस कारण कुमारी जोशी का बाल्यकाल अधिकांश कठिनतम परिस्थितियों में ही व्यतीत हुआ। नृत्यकला की ओर आपका स्वाभाविक झुकाव देखकर इनकी पूज्य माता ने आपके लिये एक योग्य शिक्षक का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रतिभाशील बालिका ने अपनी कुशाग्र बुद्धि, स्वाभाविक लगन और कठिन परिश्रम के बल पर अल्पकाल में ही नृत्यकला पर अच्छा अधिकार कर लिया। उस किशोरावस्था में ही इस बालिका का स्वर्णिम भविष्य देखकर स्वर्गीय लीला शोके ने इन्हें अपनी नृत्य-मण्डली में शामिल कर लिया। इस मण्डली के साथ कुमारी जोशी को समस्त भारत के अतिरिक्त बर्मा, लंका, मलाया तथा योरोपीय देशों का भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। वास्तव में आपकी प्रतिभा के सर्वोन्मुखी विकास के लिये यह यात्रा बड़ी मूल्यवान सिद्ध हुई। इस यात्रा के मध्य विभिन्न स्थानों पर आपके अनेक कार्यक्रम हुए, जिनमें कुमारी जोशी को आशातीत सफलता एवं प्रसिद्धि प्राप्त हुई। बर्लिन में आयोजित 'खेल-कूद प्रतियोगिता' में आपको नृत्याभिनय पर प्रथम पुरस्कार मिला। यह प्रतियोगिता सन् १९३६ में हुई थी।

उक्त मण्डली के भारत वापिस लौटने पर कुमारी दमंयती ने अपनी माता के संरक्षण में योग्य शिक्षकों द्वारा पुन: नृत्य कला की सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त की; इस प्रकार आपने शनैः शनैः नृत्य के चारों प्रमुख अङ्गों—कथकली, भरतनाट्यम, मनीपुरी और कत्थक पर यथेष्ट अधिकार कर लिया। कत्थक नृत्य की शिक्षा आपने स्वर्गीय अच्छन महाराज तथा लच्छू महाराज जैसे उत्कृष्ट कलाकारों से प्राप्त की, अतः इस अङ्ग की आपको विशेषाधिकारिणी कहना चाहिये। इसके अतिरिक्त आप पाश्चात्य नृत्यों का प्रदर्शन करने में भी पटु हैं।

सन् १९५४ में भारत की ओर से चीन जाने वाले सांस्कृतिक मंडल में कु० दमयंती जोशी को भेजा गया था। चीनी जनसमुदाय ने आपके मनीपुरी तथा कत्थक नृत्यों को बहुत पसन्द किया। वहां आपने मराठी भाव संगीत तथा टैगोर संगीत के आधार पर भी स्वयं रचित दो नृत्य प्रदर्शित किये, जिनका दर्शकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया।

आपके मतानुसार भारतीय चलचित्र पटल पर प्रदर्शित होने वाले नृत्य दर्शक वर्ग के लिये हानिकारक हैं। ऐसे प्रदर्शनों से लोगों की वासनात्मक प्रवृत्तियां उभरती हैं, अतः चलचित्रों में अधिक से अधिक शास्त्रीय नृत्यों का समावेश होना चाहिये।

★

नटराज वशी

भारतीय नृत्यों में मौलिक कल्पनाओं के जन्मदाता नटराज वशी ने अपने निजी परिश्रम से कई नवीन नृत्यों का सम्पादन किया है। जैसे लंका नृत्य, सर्प नृत्य, पशुपति अस्त्र नृत्य, आशापुरी, निर्वाण, शिव-ताण्डव आदि।

बड़ौदा राज्य के एक सम्मानीय कुल में आपका जन्म हुआ था। बाल्यकाल से ही ललित कलाओं की ओर आप झुकने लगे। कला के दीवाने नटराज अभी पूर्णतया वयस्क भी न हो पाये थे कि दक्षिण से लेकर उत्तर तक आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष की यात्रा कर डाली। संस्कृत की उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने भारतीय ललित कलाओं के अनुसंधान के लिए अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। इस अध्ययन काल में आप नृत्य कला की ओर पूर्णतया आकर्षित हो चुके थे। कुछ दिनों बाद इन्होंने सुदूरपूर्व की यात्रा करके भारतीय नृत्यों के विषय में बड़ा गहन और गम्भीर अध्ययन किया। सुल्तान जावा के आश्रय में पहुंच कर आपने वहां के दरबारी नृत्य एवं जावा द्वीप के लोक नृत्यों की शिक्षा भी अर्जित की। वहां के विशेष 'बाली' नृत्यों की भलीभांति शिक्षा प्राप्त करके आप सीलोन को प्रस्थान कर गए। वहां भी दीर्घ समय तक रहकर आपने सिंघली नृत्यों में प्रवीणता प्राप्त की।

सन् १९३९ की विदेश यात्रा में श्री नटराज को श्री रूपलेखा, मंजुलका-बहादुरी, श्री कुमार बरुआ जैसे ख्याति प्राप्त कलाकारों के संसर्ग में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने अनेक वर्षों तक कला की कठिन साधना करने के उपरान्त भारतीय जनता के हृदय में अपने लिए विशेष सम्मानीय स्थान प्राप्तकर लिया है।

★

बाल सरस्वती

भरतनाट्यम की ख्याति प्राप्त नर्तकी श्रीमती बाल सरस्वती दक्षिण भारत की एक महान विभूति कही जा सकती हैं। आपकी दादी दक्षिण भारत के मन्दिरों में रहने वाली एक प्रमुख देवदासी थीं। बाल सरस्वती को नृत्य की शिक्षा अपनी दादी से ही प्राप्त हुई। कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभावान होने के कारण आप अल्प आयु में ही नृत्य कला में दक्ष होगईं।

एक बार एक प्रदर्शन में बाल सरस्वती ने भरतनाट्यम के ऐसे-ऐसे अलौकिक भावप्रदर्शन तथा परिमार्जित अभिनय प्रस्तुत किये कि जनसमुदाय आश्चर्यचकित रह गया। सभी लोग आपकी प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उसके पश्चात् इलाहाबाद में होने वाले अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में इन्होंने अपने मनोहारी नृत्य संगीत से श्रोतावर्ग को मंत्रमुग्ध कर

दिया। इस सफलता ने आपकी ख्याति में चार चांद लगा दिये। बाल सरस्वती ने अब तक समय-समय पर होने वाले विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर यथेष्ट ख्याति प्राप्त की है। इस समय आपकी आयु ४५ वर्ष के लगभग है। आपने श्री 'ननजुन्दीया' नामक हवाई सर्विस के एक उच्च अधिकारी से शादी की है। यह सज्जन एक कन्नड़ ब्राह्मण हैं। दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करने के बाद भी आपकी कलासाधना पूर्ववत् चलरही है।

★

बिन्दादीन

प्रसिद्ध नृत्यकार महाराज बिन्दादीन का घराना मूल रूप से इलाहाबाद की हंडिया तहसील का है। वहीं इनके किसी पूर्वज ने कृष्ण प्रेम से प्रेरित होकर मिश्र ब्राह्मणों के घराने में नृत्य की परम्परा स्थापित की।

नवाब ग्रासफुद्दौला के समय में बिन्दादीन महाराज के पितामह बाबा प्रकाश जी लखनऊ ग्राकर बस गये। बाबा प्रकाश जी के तीन पुत्र थे–भैरोंदीन, दुर्गाप्रसाद और ठाकुरप्रसाद। तीनों ही नृत्य कला के ग्राचार्य थे। दुर्गाप्रसाद जी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे नाचते-नाचते परन मारकर हाथी को लांघ जाते थे और फिर सम पर उसी तरफ लौट ग्राते थे।

ठाकुरप्रसाद जी वाजिदग्रली शाह से पहले वाले नवाब के ग्रन्तिम दिनों में लखनऊ ग्राये थे और नवाब वाजिदग्रली शाह की नृत्यप्रियता तथा ग्रपन योग्यता के कारण दरबार में सम्मान प्राप्त किया। नवाब साहब के बराबर इन्हें ग्रासन मिलता था। नवाब ने ठाकुरप्रसाद को ग्रपना पूज्य बनाकर ग्रपने नृत्य ज्ञान में वृद्धि की। ठाकुरप्रसाद जी ने एक नृत्य ग्रन्थ भी लिखा, किन्तु दुर्भाग्यवश वह ग्राग लगने से नष्ट होगया।

इतिहास प्रसिद्ध कथक नृत्यकार बिन्दादीन महाराज के पिता और गुरु होने का गौरव इन्हीं ठाकुरप्रसाद जी को प्राप्त है। इनके यहां बिन्दादीन का जन्म सन् १८२६ ई० के लगभग हुग्रा। ठाकुरप्रसाद जी द्वारा ही नृत्य की समस्त शिक्षा श्री बिन्दादीन को मिली। नौ वर्ष की ग्रवस्था से लेकर १२ वर्ष की ग्रवस्था तक ये केवल चार बोल ग्रर्थात् "तिग, दा, दिग, दिग" ही का ग्रभ्यास कर सके थे। कहा जाता है कि १२ वें वर्ष में इन्होंने नृत्य का ग्रभ्यास बारह-बारह घण्टे तक लगातार किया था। बारह वर्ष की ही ग्रवस्था में बिन्दादीन महाराज ने भारत के प्रसिद्ध पखावजी श्री कुदऊसिंह से 'दून' फेंकने का मुकाबिला वाजिदग्रली शाह के दरबार में किया था। कुदऊसिंह पखावज से केवल धुम, किट, तक इतनी ही 'दून' फेंक सके थे, जब कि बिन्दादीन ने उतने ही समय में धुम, किट, तक, तक के बोल 'दून' में ग्रपने घुँघरुग्रों से निकाल कर दिखाये थे।

इसके कुछ समय बाद ग़दर का ज़माना ग्राया, जिसके फलस्वरूप इस परिवार पर भी ग्राफ़त ग्राई। इससे कुछ पहिले ग्रापके पिता ठाकुरप्रसाद जी का देहान्त हो चुका था। फिर ग़दर की गोलाबारी में इनके मकान पर भी गोले पड़े। सारी धन सम्पदा नष्ट हो गई और लुट गई। दोनों भाई ग्रपने परिवार को लेकर काकोरी भाग गये। शान्ति स्थापित होने पर यह ग्रपने घर ग्राये, तो इन्हें एक तिनका भी न मिला।

कुछ समय ग़रीबी में ही बीता; किन्तु बिन्दादीन महाराज का यश उन दिनों सूर्य की तरह चमक रहा था। भूपाल राज्य के नवाब साहब एक बार लखनऊ आये थे और वे इनके गुणों पर रीझ कर इन्हें अपने राज्य में ले गये। वहां आपको यथेष्ट धन और सम्मान प्राप्त हुआ। नैपाल से भी इन्हें बहुत सा रुपया मिला। नैपाल से लौटकर ये अपनी गद्दी में ही बैठे रहते और किसी राजा महाराजा के बुलाने पर ही जाते थे। यथेष्ट धन और सम्मान प्राप्त हो जाने पर भी बिन्दादीन का जीवन बहुत ही सादा था। दुपलिया टोपी और अचकन का साधारण पहनावा ही इन्हें पसन्द था।

यद्यपि मुसलमानी दरबारों में रहने के कारण इन्हें मुसलमानी भाषा और दरबारी नियमों का पालन करना पड़ता, फिर भी यह अपना व्यक्तिगत जीवन हिन्दू धर्म के अनुसार बिताते थे। बिन्दादीन महाराज श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इसीलिये इन्होंने अपने नृत्यों और ठुमरियों को कृष्ण प्रेम में शराबोर कर दिया। इनकी अनेक ठुमरियां आज भी पुरानी तवायफ़ों और गाने वालों को याद हैं। कलकत्ते की गौहर, पटने की ज़ोहरा जैसी प्रसिद्ध गायिका इनकी शिष्या थीं। दूर-दूर की वेश्यायें बिन्दादीन महाराज से शिक्षा लेने लखनऊ आतीं और केवल यह कहने के लिये कि अमुक गायिका या नर्तकी बिन्दा महाराज की शिष्या है, एक दो दिन की तालीम लेकर ही, कई सौ रुपये इनकी भेंट चढ़ाकर अपने जीवन को धन्य समझती थीं। वेश्याओं से घिरे रहने पर भी महाराज बिन्दादीन ने अपने चरित्र को ऊँचा रक्खा और अपने आदर्श से नहीं गिरे।

बिन्दादीन महाराज का स्वर्गवास सन् १९१५ ई० में हुआ, आपने ८६ वर्ष के लगभग उम्र पाई। इनके कोई सन्तान नहीं थी; किन्तु इनके छोटे भाई कालिकाप्रसाद जी की तीन सन्तानों ने अपनी कला साधना द्वारा वंश की परम्परा और कीर्त्ति को अब तक सुरक्षित रक्खा है।

कालिकाप्रसाद जी के तीन पुत्र थे—(१) अच्छन महाराज (२) बैजनाथ-प्रसाद (लच्छू महाराज) और (३) शम्भू महाराज। अच्छन महाराज ने अठारह वर्ष तक रामपुर दरबार की नौकरी करके खूब धन और यश कमाया और सन् १९४४ के लगभग उनका स्वर्गवास होगया। अच्छन महाराज के पुत्र श्री बिरजू महाराज इस समय इनकी यादगार स्वरूप हैं। लच्छू महाराज उर्फ़ बैजनाथ प्रसाद जी बम्बई में रहते हैं और फिल्मों में नृत्य निर्देशक के रूप में काम करते हैं। सबसे छोटे भाई शम्भू महाराज अपने पूर्वजों की पाई हुई निधि का सदुपयोग करते हुए दिल्ली में कुछ संगीत संस्थाओं के माध्यम से कत्थक नृत्य शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं।

★

मोहनप्रसाद शिवधर

मोहनप्रसाद राजपूताना के कत्थक परिवार से सम्बन्धित थे। आपने सन् १८९३ ई० में, जिला बीकानेर के ग्राम गोपालपुरा में जन्म लिया, किन्तु आपका

ठिकाना साजनगढ़ ही रहा। आप एक सफल नृत्यकार थे। नृत्य कला की शिक्षा आपने बीकानेर जिले के आरखा निवासी श्री जानकीप्रसाद से प्राप्त की। यद्यपि आपके नृत्यों में भाव स्पष्टीकरण का ढंग आकर्षक नहीं था, तथापि तोड़ा शैली के नृत्यों में आप विशेष रूप से दक्ष थे। आपको हजारों तोड़े याद थे। तीन वर्ष तक आप नैपाल दरबार में रहे। आपके शिष्यों में से ग्वालियर निवासी जगनप्रसाद, जयपुर के गोविन्दप्रसाद तथा मुर्लीधर और बीकानेर बिहारी श्री रामप्रताप के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने विभिन्न सम्मानीय महानुभावों से अनेक बार स्वर्णपदक प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया।

मोहनप्रसाद एक सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। आपकी व्यावसायिक माँग भी बहुत न्यायोचित रहती थी। जल से भरे हुए पात्र के चारों ओर पूरे मोड़-तोड़ से इस प्रकार नृत्य कला-प्रदर्शन करते थे, कि जल की एक भी बूंद पृथ्वी पर नहीं गिर सकती थी। नाचते समय कुशलता पूर्वक लयकारी करते हुए आप केवल एक या दो घुंघरुओं तक की ध्वनि प्रदर्शित करने की क्षमता रखते थे। सामान्य दृष्टि से आपके नाचने का ढंग रोचक था।

★

मृणालिनी

सुश्री मृणालिनीदेवी का जन्म केरल प्रान्त के एक ब्राह्मण वंश में हुआ था। यह प्रान्त कथकली नृत्य का उद्गम स्थान माना जाता है। वर्तमान नर्तकियों में आपका प्रमुख स्थान है। अन्य कलाकारों की अपेक्षा आपके अन्दर शिक्षा प्राप्त करने की अधिक लगन रहती है। बहुत कुछ सीखने और ख्याति प्राप्त करने के बाद भी अभी तक आप कुछ न कुछ सीखने में ही संलग्न रहती हैं।

सर्व प्रथम १२ वर्ष की आयु में आपकी माता जी ने आपको उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से स्विट्जरलैन्ड भेज दिया था। वहां आपने रशियन बैलेट तथा ग्रीक डांस सीखा। उसके पश्चात् आप स्वदेश लौट आयीं; यहां स्वर्गीय टैगोर के शान्ति निकेतन में लगभग ३ वर्ष तक आपने भारतीय नृत्यों की शिक्षा प्राप्त की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ-साथ आपने

भारत के सभी प्रमुख स्थानों का भ्रमण करते हुए नृत्य प्रदर्शन भी किये। इस लम्बी यात्रा से आपको उत्तम ख्याति एवं सम्मान की प्राप्ति हुई। सन् १९३९ ई० में आपने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में कुछ दिनों के लिए जावा में ठहर गईं और वहां की नृत्य कला का अध्ययन करने में संलग्न हो गईं। इसी में कई मास गुजर गए। अध्ययन की भूख बढ़ती ही चली गई। न्यूयार्क पहुँचने के पश्चात् आपने 'अमरीकन अकादमी आफ आर्ट' में प्रविष्ट होकर डिपलोमा प्राप्त किया। इसी बीच आपको अमरीका की अन्तरिम यात्राएं करने का संयोग प्राप्त हुआ। इन यात्राओं में आपको पर्याप्त ख्याति और विभिन्न अनुभव मिले। अमेरिका से भारत लौटकर आपने बंगलोर स्थित श्री रामगोपाल शिक्षणालय में प्रवेश किया, और आगामी अनेक यात्राओं में अपने नृत्यों के विद्वत्तापूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इस प्रकार इस तपस्वनी कलानेत्री ने अपने जीवन में नृत्य कला पर अद्वितीय अधिकार प्राप्त कर नृत्य जिज्ञासुओं के लिए एक ठोस और ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है।

★

रामगोपाल

वंग प्रदेश के यह प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर के प्रमुख शिष्य हैं। जिन दिनों रामगोपाल अपने नगर में ही नृत्य का प्रदर्शन कर रहे थे, तो इनकी कला से प्रभावित हो एक अमेरिकन नर्तकी (लौमेरी) इन्हें अपने साथ जापान ले गई। वहां अपनी ख्याति का सिक्का बैठाकर तथा अनुभव प्राप्त करके ये स्वदेश लौटे। फिर आप स्वतन्त्र रूप से पैरिस, लन्दन, न्यूयार्क, हॉलीवुड आदि देशों का दौरा करके सन् १९३९ ई० में भारत लौट आये। इन यात्राओं के बाद आपने अनुभवी कलाकारों की एक मण्डली बनाकर विदेशों का भ्रमण किया। भारत सरकार की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय नृत्य-महोत्सव में भाग लेने आप न्यूयार्क भी गये। वहां से लौटने पर "हमारा हिन्दुस्तान" नामक फिल्म में आपने शिव ताण्डव तथा राधा कृष्ण नृत्य का प्रदर्शन किया और भारत के प्रमुख नगरों में अपनी कला प्रदर्शित की। आपकी यह विशेषता है कि पश्चिमी एवं नवयुग की पृष्ठ भूमि में भारतीय नृत्यों का परिष्कार कर उन्हें जीवित रक्खा है, और विदेशों में भारतीय नृत्यकला का

गौरव बढ़ाया है । आपकी मण्डली में मृणालिनी और शेवन्ती जैसी कुशल नर्तकियों ने भी खूब योग दिया है।

भारत में आपने "रामगोपाल आर्ट एण्ड कल्चर सैन्टर" नामक एक कला संस्था की भी स्थापना की है। इसमें विद्यार्थियों को भरतनाट्यम् तथा कथकलि की शिक्षा विशुद्ध रूप से दी जाती है। रामगोपाल के नृत्यों में धरणी-नृत्य, शिवतांडव, मान्ध्य नृत्य, इन्द्र तथा शचि, राजपूत और प्रार्थना गोधूलिबेला आदि नृत्य विशेष आकर्षक हैं।

रामगोपाल का जन्म २० नवम्बर १९१७ ई० में हुआ। छैः वर्ष की अवस्था से ही आपकी नृत्यशिक्षा आरम्भ होगई थी। आपने दक्षिणी नृत्य, कथकलि के सर्व श्रेष्ठ आचार्य कुंजिकुरप से तथा भरतनाट्यम् आचार्य मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लई से सीखा। इनके अतिरिक्त एलप्पा मुदालियर तथा आचार्य गौरी से भी आपने तालीम पाई। कुछ समय तक रामगोपाल ने कथक नृत्य की भी शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार २० वर्ष की अवस्था में ही आप नृत्यकला में प्रवीण होकर चमकने लगे।

आजकल आपने अपना स्थायी रहन-सहन लंदन में कर रक्खा है और इङ्गलैण्ड में एक विद्यालय की भांति के सर्किल मे विदेशी छात्र-छात्राओं को भारतीय शास्त्रीय नृत्य आधुनिक ढङ्ग से सिखाते हैं। साथ ही अपने प्रदर्शनों के अतिरिक्त वहां के चल-चित्रों में भी आप कार्य करते हैं जिससे एक अच्छी आय होजाती है।

★

रुक्मणीदेवी अरुण्डेल

भरतनाट्यम् दक्षिण भारत की एक पूर्ण विकसित कला है। इस नृत्य में दक्ष श्रीमती रुक्मणी देवी अरुण्डेल नृत्य जगत में विशेष स्थान रखती हैं।

रुक्मणी का जन्म सन् १९०४ ई० में, तंजोर (द० भारत) के एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री नीलकान्त शास्त्री संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। सबसे छोटी कन्या होने के कारण रुक्मणी पर सम्पूर्ण परिवार का स्नेह और दुलार था। बाल्यकाल से ही संगीत और नृत्यकला के प्रति रुचि होने के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा जार्ज० एस० अरुण्डेल द्वारा हुई और फिर सन् १९२० ई० के लगभग इन्हीं अरुण्डेल महोदय से आपका विवाह होगया। दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होने के पश्चात् भी आपकी कला साधना पूर्ववत् जारी रही। आपके पति स्व० डा० जी० एस० अरुण्डेल थियासॉफिकल सोसाइटी के प्रधान थे।

स्वर्गीय एनीबीसेन्ट ने रुक्मणी देवी की प्रतिभा के विकास के लिये यथा शक्ति सहयोग प्रदान किया। सन् १९२६ ई० में अपनी विदेश यात्रा के समय रुक्मणी देवी का परिचय आस्ट्रेलिया में विश्व प्रसिद्ध नर्तकी अन्ना पावलोवा से हुआ।

उनसे आपको नृत्य सम्बन्धी अनुभव और प्रोत्साहन दोनों मिले; तत्पश्चात् कई देशों में भ्रमण करते हुए रुक्मणी देवी ने नृत्य और नाटक आदि ललित-कलाओं का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

सन् १९३५ ई० में जब आप नृत्यकला का पूर्ण लगन से अभ्यास कर रही थीं, दैवयोग से आपकी भेंट मदरास में श्री मीनाक्षी सुंदरम पिल्लई से होगई। वहाँ आप भरतनाट्यम के एक प्रदर्शन में भाग ले रही थीं। श्री पिल्लई की कला से प्रभावित होकर रुक्मणी देवी ने उनको अपना कलागुरु स्वीकार कर नृत्यकला की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की और शीघ्र ही जनता में अपने नृत्य प्रदर्शनों द्वारा विख्यात होगई।

कलाप्रसार के लिये रुक्मणीदेवी ने १९३६ ई० में मदरास के समीप अडियार नामक स्थान में एक अन्तरराष्ट्रीय कला केन्द्र की स्थापना 'कलाक्षेत्र' के नाम से की। इस संस्था में नृत्य, संगीत, चित्रकला और ग्रह शिल्प शिक्षा की व्यवस्था है। इस संस्था में स्वयं रुक्मणी देवी अपने सहयोगी कलाकारों के साथ कला की सेवा कर रही हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं तथा आप राज्य परिषद् की सदस्या भी हैं।

सन् १९५३ में आप अमेरिका का भ्रमण करने गई थीं, जहाँ आपने अपने कला प्रदर्शन द्वारा यथेष्ट ख्याति प्राप्त की और अपने कलाकेन्द्र के लिये पर्याप्त धन एकत्रित किया। रुक्मणीदेवी की कला साधना भारत की प्राचीन संस्कृति से ओत-प्रोत है। उनके अभिनय व प्रदर्शन में भारतीय पौराणिक गाथाऐं एवं धर्म शास्त्रों की कथाऐं पाई जाती हैं। आपके द्वारा प्रदर्शित नटराज की मुद्रा देखने योग्य ही होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका शारीरिक गठन मानो नृत्यकला के लिये ही निर्मित किया गया है। रुक्मणीदेवी की नृत्य पोशाक और अलंकार असली रत्नों के होते हैं, जिनसे वह कला-प्रदर्शन के समय दीप्तिमयी हो उठती हैं।

आपकी प्रतिभाशाली शिष्याओं में श्रीमती राधा और शारदा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनको आपने भरतनाट्यम में पूर्ण रूप से निपुण करदिया है।

✱

लच्छू महाराज

कत्थक नृत्य शैली के प्रमुख कलाकार श्री लच्छू महाराज की आयु ५५ वर्ष के लगभग है, किन्तु फिर भी आप मंच पर आते ही दर्शकों के आकर्षण केन्द्र बनजाते हैं।

श्री लच्छू महाराज का बाल्यकाल अधिकांश लखनऊ में व्यतीत हुआ और श्री बिन्दादीन महाराज के संरक्षण में इनको प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त हुई। नृत्य के संस्कार तो लच्छू महाराज में जन्मजात ही थे. उस पर एक नृत्याचार्य का शिक्षण और संरक्षण, अतः इनकी प्रतिभा को विकसित होने में देर न लगी। विशाल जनसमुदाय के समक्ष मंच पर आने का प्रथम अवसर इन्हें लखनऊ के एक जलसे में प्राप्त हुआ। इस प्रतिभाशील तरुण नृत्यकार के कलात्मक नृत्य प्रदर्शन ने दर्शक वृन्दों को सचमुच ही मोहित कर लिया और जन समाज मुक्त हृदय से इनकी प्रशंसा कर उठा। यहीं से लच्छू महाराज को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली, तत्पश्चात् इन्होंने श्री बिन्दादीन से अधिकाधिक परिश्रम और लगन के साथ नृत्य सीखना प्रारम्भ कर दिया; फलस्वरूप अल्पकाल में ही यह एक उच्चश्रेणी के नृत्यकार बन गये।

महाराज बिन्दादीन की मृत्यु के पश्चात् उनकी विशाल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी लच्छू महाराज ही बने। युवावस्था में आवश्यकता से अधिक धन सम्पत्ति और स्वतन्त्रता पाकर यह ऐश्वर्य और विलास की ओर भटक गये। कुछ दिनों पश्चात् आप नवाब रामपुर के प्रश्रय में चले गये, किन्तु यहां भी अधिक समय तक न रहकर हैदराबाद, बीकानेर आदि राजघरानों में अतिथि स्वरूप रहकर अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे। इससे लच्छू महाराज को पर्याप्त अर्थ लाभ भी हुआ, किन्तु यह क्रम थोड़े ही काल तक चल सका।

कुछ दिन पश्चात् लच्छू महाराज का रुचि प्रवाह सिने जगत की ओर मुड़ा। इस क्षेत्र में आपको नृत्य निर्देशक का कार्य बड़ी सुगमता से मिल गया। फलस्वरूप महल, काले बादल, तमाशा, घर की लाज, शिकवा आदि कई फिल्मों में आपने नृत्य संगीत का निर्देशन कर चलचित्र जगत में यथेष्ट ख्याति प्राप्त करली।

लच्छू महाराज की कुछ विशिष्ट नृत्य रचानाएं, जैसे—"भारतीय किसान", "गांधी की अमर कहानी", "मद्य निषेध" इत्यादि बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं। इन रचनाओं को आप स्वयं मंच पर प्रदर्शित किया करते हैं। कत्थक नृत्य के अतिरिक्त आप लगभग सभी नृत्य शैलियों का ज्ञान रखते हैं और वर्तमान समय में बम्बई रहकर चलचित्रों में नृत्य निर्देशन का ही कार्य करते हैं।

★

शंकरन नम्बूदरीपाद

शंकरन नम्बूदरीपाद का जन्म एक रूढ़िवादी ज़मींदार परिवार में ट्रावनकोर के अंबालपूझा नामक स्थान में हुआ था। यह स्थान भव्य मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध है। अंबालपूझा के समीप ही ठकाझी में उनका परम्परागत घर है। ठीक उसके सामने 'शष्ट' का मन्दिर है।

बचपन से ही शंकरन को धार्मिक ग्रंथों और वेदों की शिक्षा दी जाने लगी थी। अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त आपकी रुचि मलाबार के अभिनय-नृत्य कथकली की ओर आकृष्ट हुई। पिता कट्टर रूढ़िवादी थे और उन्हें अपने सबसे बड़े पुत्र की इस अभिरुचि से घोर विरोध था। इस विरोध का एक प्रमुख कारण यह भी था कि वे लोग ब्राह्मण थे और आज तक मलाबार में किसी ब्राह्मण ने कथकली सीखने का दुस्साहस न किया था। किन्तु शंकरन चोरी-चोरी सीखने लगे। दो वर्ष के बाद एक प्रसिद्ध कथकली अभिनेता ने आपके पिता से एक कथकली रिहर्सल में चलने के लिये कहा। रिहर्सल में अपने पुत्र को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और क्रोध आया। किन्तु क्रोध शीघ्र ही शान्त हो गया, क्योंकि वे स्वयं कला प्रेमी थे और उन्होंने देखा कि उनके पुत्र में प्रतिभा है। अन्त में उन्होंने अपने पुत्र को बाकायदा नृत्य सीखने की आज्ञा दे दी। फिर तो शंकरन को समस्त साधन प्राप्त हो गए। चार वर्ष तक आप एक प्रसिद्ध चिकयार के साथ अभिनय सीखते रहे, तत्पश्चात एक गुरु के बाद दूसरे गुरु से शिक्षा प्राप्त

करते हुए बढ़ने लगे। जहां भी कला और सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हुआ वहीं से आपने उसे ग्रहण किया। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष की कठिन साधना के बाद आपने मलाबार के श्रेष्ठ नर्तक दलों के साथ सारे मलाबार का दौरा किया। 'वीर श्रृंखलाओं' के रूप में आपको राजा–महाराजाओं तथा मन्दिरों से सम्मान प्राप्त हुआ।

श्री उदयशंकर की गुरु शंकरन से पहली भेंट सन् १९३४ में त्रिवेन्द्रम में हुई थी। प्रारम्भ ही से दोनों एक दूसरे की ओर आकृष्ट हो चुके थे। १९३६ ई० में कथकली अभिनेताओं के एक दल के साथ शंकरन ने उत्तर भारत— कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लाहौर, दिल्ली, जयपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा और बम्बई का दौरा किया। १९३८ ई० में जब आपके शिष्य श्री उदयशंकर ने अलमोड़ा में 'भारतीय संस्कृति केन्द्र' की स्थापना की तो आप अलमोड़ा चले आये और वहां नटराज की एक प्रतिमा स्थापित की। तब से मृत्यु पर्यन्त आप केन्द्र में कथकली तथा अभिनय की शिक्षा देते रहे।

कला और उपासना शंकरन नम्बूदरीपाद का जीवन आधार थी। उनके लिये उनकी कला ही उपासना थी और उपासना कला। कला के अभ्यास से अधिक प्रिय उन्हें कुछ न लगता। एक बार आप अपने विद्यार्थियों को 'रावण विजयम' के एक दृश्य का अभ्यास करा रहे थे, अभ्यास कराते–कराते समय का कुछ पता ही न चला। विद्यार्थियों को थकान महसूस होने लगी, किन्तु गुरु के चेहरे पर वही स्फूर्ति बनी हुई थी। विद्यार्थियों ने जब गुरु को याद दिलाया कि उनकी पूजा का समय कब का निकल चुका है तो गुरु समझ गये और मुस्कराते हुए बोले—"तुम क्या समझते हो हम क्या कर रहे हैं? यही तो हमारी पूजा है।"

अपने अभिन्न शिष्य उदयशंकर को गुरु जी–जान से चाहते थे। कई बार मलाबार में लोगों ने आपको रोकने की कोशिश की और कहा कि आपको अपने घर से इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता है, किन्तु गुरु हमेशा यही उत्तर देते कि 'यदि शंकर (उदयशंकर) मुझे समुद्र के बीच में भी बुलाये तो मैं वहां भी जाऊंगा।' मृत्यु पर्यन्त उन्होंने अपना यह वचन निभाया।

शंकरन नम्बूदरीपाद अपनी सहृदयता और निश्छलता के लिये प्रसिद्ध थे। अभिमान उनको छू तक न गया था। उनका हृदय विशाल था और कला के सामने वे धर्म, जाति, रूप-रंग के भेद को नहीं मानते थे। एकबार आप उस्ताद

अलाउद्दीनखां के सरोद-वादन से बहुत प्रभावित हुए और उस्ताद से नटराज के सामने सरोद बजाने का अनुरोध किया। उस्ताद ने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया और सरोद लेकर मन्दिर की ओर चल पड़े। वहां पहुँच कर उस्ताद बाहर देहरी पर बैठ गये। शंकरन ने उनसे भीतर आने का अनुरोध किया, किन्तु उस्ताद ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि वे मुसलमान हैं, उनके मंदिर मे प्रवेश करने से मन्दिर अपवित्र हो जायेगा। शंकरन इस पर खूब हँसे और बोले कि ये विभेद भगवान ने नहीं, मनुष्यों ने बनाये हैं। अगर नटराज आपका सङ्गीत सुनना चाहते हैं तो वे यह कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं कि उस संगीत का रचयिता अस्पृश्य की भांति बाहर रहे। बड़ी देर बाद शंकरन, उस्ताद को मना सके और हारकर उन्हें मन्दिर में प्रवेश करना ही पड़ा। उस्ताद ने सरोद पर सङ्गीत छेड़ा, मन्दिर में एक तन्मयता छा गई। जब सङ्गीत समाप्त हुआ तो लोगों ने देखा, दोनों महान कलाकारों की आंखों से आंसुओं की अविरल धार बह रही थी और मनुष्यों के रचे तमाम बन्धनों को तोड़ दोनों नटराज की भव्य मूर्ति के सामने आलिंगन में बद्ध थे।

महान कलाकार होने के बावजूद शंकरन नम्बूदरीपाद में तनिक भी अभिमान न था। आप प्रत्येक से विनम्र होकर ही बातें करते थे। कोई भी आपसे नृत्य प्रदर्शन का अनुरोध करता तो चाहे आप खाना खाकर बैठे होते, भूखे होते··· · सन्ध्या समय, दोपहर या रात को हर समय नाचने के लिये प्रस्तुत रहते। बिना वाद्यों, गीतों और भूषा के आप बैठे—बैठे ही सैकड़ों गाथाओं को अपनी मुद्राओं तथा अभिनय से व्यक्त कर देते थे। आपका अभिनय और मुद्रायें इतनी सजीव थीं कि उस समय आपका सारा व्यक्तित्व ही बदल जाता था एक बार आप रावण की भूषा में मेकअप रूम में बैठे थे। आपके एक प्रिय शिष्य पास आये और हँसते हुए कुछ कहने लगे। गुरु दीवार की ओर देखरहे थे। जब आपने अपने शिष्य की ओर गर्दन फेरी तो आपकी आंखें आग उगल रही थीं, आप उसी भीषण मुद्रा में एकदम उठ खड़े हुए। शिष्य भयभीत होकर शीघ्रता से बाहर निकल आया। गुरु उस समय गुरु न थे, उनका सारा व्यक्तित्व बदल गया था। अभिनय समाप्त होने पर जब गुरु ने मुंह धोया तो आप सदैव की भांति हँस—हँस कर बातें कर रहे थे। जब उस शिष्य ने आपको उस घटना की याद दिलाई तो गुरु को कुछ भी याद न था ! कला और कलाकार का एक तत्व ऐसे ही स्थल पर प्रगट होता है।

शंकरन के जीवन की भांति ही उनकी मृत्यु भी नाटकीय और अपूर्व थी। मृत्यु के पांच मिनट पूर्व ही आपने 'दुषाशन वाद्यम' के एक दृश्य का अभिनय

किया था। ६३ वर्ष की अवस्था में भी आपने एक युवक की भाँति ही इस नृत्य को सफलता से किया और नृत्य समाप्त होने पर आप हॉल में आकर बैठ गये तथा बालिकाओं का नृत्य देखने लगे। ज्यों ही इन्द्र आकर नृत्य करने वाला था.........आप अपनी सीट पर थोड़ा झुके और आपका सर एक ओर लुढ़क गया। शीघ्र ही आपको खुली हवा में ले जाया गया। आपके प्रियतम शिष्य उदयशंकर इन्द्र की भूषा में दौड़ते हुए आपके पास आये और गुरु को अपनी बाँहों में ले लिया। गुरु का शरीर नृत्य के कारण अब भी पसीने से भीगा हुआ था......मुख पर एक अपूर्व कान्ति छाई हुई थी, ओठों पर सरल मुस्कान थी और प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

★

शम्भू महाराज

कत्थक नृत्य के आचार्य शम्भू महाराज प्रसिद्ध नृत्यकार श्री कालका-बिन्दादीन के घराने के उत्तराधिकारी हैं। यह घराना प्रयाग

(इलाहाबाद) की हँडिया तहसील से अवध के नवाबों के जमाने में लखनऊ आकर बस गया। शम्भू महाराज के पिता श्री कालिकाप्रसाद और पितामह श्री ठाकुर प्रसाद थे।

शम्भू महाराज के परबाबा अर्थात् ठाकुर प्रसाद जी के पिता श्री बाबा प्रकाश जी नवाब आसफुद्दौला के शासन काल में लखनऊ आये थे। बाबा प्रकाश जी के ३ पुत्र थे—भैरोंदीन, दुर्गाप्रसाद और ठाकुर प्रसाद। यह तीनों ही अपने घराने की कत्थक नृत्यशैली में दक्ष थे। ठाकुर प्रसाद जी की नृत्य-कला पर मुग्ध होकर नवाब वाजिदअली शाह ने उनसे नृत्यकला की तालीम लेकर उन्हें अपना गुरू बनाया। किंवदंती है कि गुरुदक्षिणा में नवाब साहब ने छः पीनसों में भरकर रुपया ठाकुर प्रसाद जी के घर भिजवाया था।

शम्भू महाराज कुल तीन भाई थे। जगन्नाथ प्रसाद, बैजनाथ प्रसाद और शम्भू महाराज। तीनों ही अपनी घरानेदार पुश्तैनी कला में पारङ्गत थे। सबसे बड़े जगन्नाथ प्रसाद जिन्हें अच्छन महाराज के नाम से लोग जानते हैं, इनका स्वर्गवास सन् १९४४ के लगभग होगया। इनसे छोटे बैजनाथ प्रसाद जी 'लच्छू महाराज' के नाम से प्रसिद्ध हैं और फिल्मों में नृत्य निर्देशन करते हैं। सबसे छोटे प्रस्तुत चरित्रनायक शम्भू महाराज हैं जो अपने पूर्वजों की गद्दी सम्हाले हुए हैं।

शम्भू महाराज का कहना है कि नृत्य को मैं लय प्रधान की अपेक्षा भाव-प्रधान ही मानता हूँ। लय प्रधान बना देने से नृत्य तबले या पखावज का इतना आश्रित होजाता है कि उसकी अलग सत्ता नहीं रह जाती और ताल व लय का ध्यान रखने में भाव प्रदर्शन ठीक से नहीं हो पाते। जिस नृत्य में भाव प्रदर्शन नहीं, वह बेजान नृत्य है।

वास्तव में शम्भू महाराज भावों के राजा हैं। मुख की विभिन्न आकृतियों से तरह-तरह के भाव इतनी सफलता से प्रदर्शित करते हैं कि दर्शक दंग रह जाते हैं। आप अपने हाव-भाव से जिस रस की सृष्टि करना चाहते हैं उसमें पूर्णतया सफल होते हैं। कथक नृत्य प्रणाली में आपने शोक, आशा, निराशा, घृणा, प्रेम, क्रोध आदि विभिन्न भावों की अभिव्यंजना का अङ्ग जिस खूबी के साथ सम्मिलित किया है वह आपकी सूझ-बूझ का परि-चायक है। आजकल आप दिल्ली में रहकर नृत्य शिक्षक का कार्य कर रहे हैं।

कत्थक शब्द को आप गलत बताते हुए कहते हैं कि इसका वास्तविक नाम 'नटवरी नृत्य' है। यद्यपि आपका भाव-प्रदर्शन एवं ताल पर विशेष अधिकार होने के कारण कला की आभा में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु आपके जीवन में 'सुरा' का अत्यधिक बाहुल्य के होने के कारण क्रियात्मक अङ्ग शिथिल पड़ गया है। कालका-बिन्दादीन घराने के प्रतिनिधि शम्भू महाराज को आज भी सहस्रों बोल, परन और टुकड़े कण्ठस्थ हैं और इसी कारण आप 'नृत्य शिक्षक' के पद का भार 'नृत्यकार' की अपेक्षा सुयोग्य रीत से निभा सकने में समर्थ हैं।

★

शान्ता

आपकी गणना दक्षिण भारत के आदर्श कलाकारों में की जाती है। आपने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग कथकली नृत्य की साधना में व्यतीत किया है। बाल्यकाल से ही आप एक चित्रकार, गायक तथा नर्तकी बनने के स्वप्न देखा करती थीं। आपके यह स्वप्न अधिकांश पूर्ण भी होगए।

सर्व प्रथम सन् १९३९ ई० में इस प्रतिभावान तारिका ने कोचीन रियासत के 'केरल कला मंडल' में प्रवेश किया और वहीं कथकली नृत्य की शिक्षा प्राप्त की; तत्पश्चात् आपने श्री 'पानकर' से 'थिल्लाना' और 'सुरजेही' नृत्यों की

शिक्षा प्राप्त की, उसके पश्चात् पंडानलूर जाकर गुरु मीनाक्षी सुन्दरम् से भरतनाट्यम की शिक्षा प्राप्त की।

सन् १९४३–४४ के मध्य, दक्षिण भारत में विशेषत: मद्रास के म्यूजियम थियेटर तथा म्यूज़िक अकादमी द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में अपने हृदयग्राही नृत्यों का प्रदर्शन करके श्रीमती शान्ता ने दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। इन समारोहों से आपको प्रबल ख्याति प्राप्त हुई। इस प्रकार कला साधना में रत एवं कला के क्षेत्र में मौलिक कल्पनाओं को साकार करने वाले कलाकार बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं।

जहाँ तक कथकलि नृत्य का सम्बन्ध है, श्रीमती शान्ता ने इसकी चरमसीमा को छू लिया। आपका 'थोडायम' और 'अष्टकलायण' नृत्य प्रसिद्ध कवि वल्लाथोल और नाम्बूद्रि जैसे महान व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित हुआ।

★

शांतिवर्धन

भारत की प्राचीन परम्परागत नृत्य कला को अपनी सजीव और मौलिक कल्पनाओं द्वारा परिष्कृत एवं परिवर्धित करने वाले महान् नृत्यकार शांतिवर्धन का नाम भारतीय संगीत के इतिहास में अमर रहेगा।

आपका जन्म सन् १९१६ ई० के लगभग कोमिला में हुआ था। ७ वर्ष की आयु से ही आप नृत्य-कला के सम्पर्क में आये। इस प्रतिभाशील कलाकार ने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही जिस अटूट लगन और कठिन परिश्रम से नृत्याभ्यास किया वह निस्संदेह प्रशंसनीय कहना पड़ेगा।

शांतिवर्धन सन् १९४० ई० में श्री उदयशंकर की नृत्य मंडली में मनीपुरी नृत्य के प्रमुख कलाकार तथा शिक्षक थे। तत्पश्चात् बंगाल के दुर्भिक्ष काल में आप 'जन नाट्य संघ' में सम्मिलित होगये। सन् १९४७ ई० में इन्होंने स्वयं अपनी नृत्य मंडली बनाई और अनेक नृत्य–गीतों का सृजन किया। भारत के विभिन्न लोक गीतों के आधार पर आपने कुछ सामूहिक नृत्यों का सृजन भी किया। तत्पश्चात् 'रामचरित मानस' (रामायण) के आधार पर आपने कठपुतली नामक नृत्य की रचना की।

शान्तिवर्धन ने स्वतन्त्रता की प्रथमरात्रि को दिल्ली में "डिसकवरी आफ इण्डिया" नृत्य नाटिका के द्वारा स्वतन्त्रता का आह्वान किया था। जिसने आपकी प्रतिभा सुदूर प्रान्तों तक फैलादी।

दुख की बात है कि इस विभूति को विधाता ने अधिक दिन तक यहां न रहने दिया और ३ सितम्बर सन् १९५४ ई० को तपैदिक आदि भयंकर रोगों के कारण शांतिवर्धन का देहान्त होगया। किन्तु भयंकर बीमारी भी आपको

कर्मक्षेत्र से विमुख न कर सकी। जीवन के अन्तिम दिनों में भी आप पंच–तंत्र के आधार पर नवीन नृत्यों के निर्माण कार्य में संलग्न रहे और 'लिटिल बैले ट्रुप' संस्था की नींव डालदी जोकि आज भी आपकी सुयोग्य नृत्यांगना धर्मपत्नी श्रीमती गुलवर्धन द्वारा संचालित होरही है और देश–विदेशों में 'शान्ति' के इस नये प्रयास की ध्वजा फहराने में समर्थ सिद्ध हुई है। ऐसे कर्मवीर कलाकार, जिनकी कला का लक्ष्य अपनी ख्याति न होकर जनसाधारण के लिये होता है बहुत ही कम हुआ करते हैं।

हाल में ही उनके आश्रमवासियों तथा आश्रम की व्यवस्था के लिये 'शान्तिवर्धन स्मारक समिति' की स्थापना हुई है, जिसके संरक्षकों में इन्दिरागांधी राजकपूर, मुल्कराज आनन्द आदि गण्यमान्य व्यक्ति हैं।

★

साधना बोस

भारतीय रंगमंच तथा रजतपट की लोकप्रिय नर्तकी श्रीमती साधना बोस के नाम से लगभग सभी सङ्गीत प्रेमी परिचिति होंगे । आपके पिता कलकत्ते के एक ख्याति प्राप्त बैरिस्टर तथा पतिदेव श्री मधु बोस चलचित्र जगत के एक प्रसिद्ध डाइरेक्टर हैं ।
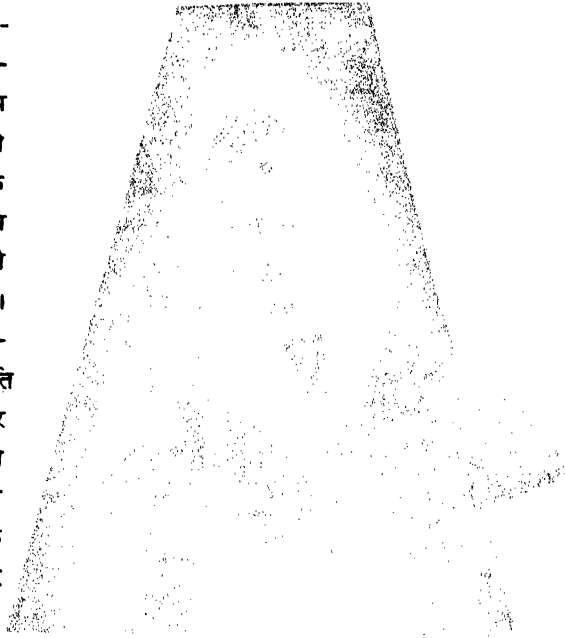
श्रीमती साधना का जन्म ३० अप्रैल सन् १९१४ को कलकत्ते में हुआ। सुशिक्षित वातावरण में आपका शैशव तथा बाल्यकाल व्यतीत हुआ। आगे चलकर आपने सीनियर केम्ब्रिज तक शिक्षा प्राप्त की। नृत्यकला से साधना जी को बचपन से ही विशेष प्रेम था। सुशिक्षित होने के पश्चात् नृत्य कला की ओर द्रुत गति से बढ़ने लगीं। श्री उदयशंकर, सुश्री अन्नापावलोवा जैसे उत्कृष्ट नृत्यकारों से प्रेरणा पाकर इन्होंने नृत्याभ्यास प्रारम्भ किया और अल्पकाल में ही एक कुशल नर्तकी के रूप में, रंगमंचीय जगत में कीर्ति अर्जित करने लगीं।

विवाह के पश्चात् आपको अधिकांश फ़िल्मी वातावरण में रहने का संयोग प्राप्त हुआ। सर्व प्रथम आपने अलीबाबा फ़िल्म में अभिनय किया। तत्पश्चात् 'कुमकुम', 'राजनर्तकी' आदि चित्रों में नृत्यप्रधान भूमिकायें अभिनीत कीं। वहीं से आपकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई और आज के सिने जगत में आप एक सम्माननीय और कुशल अभिनेत्री तथा नर्तकी के नाम से विख्यात हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीमती साधना बोस ललित कलाओं की अनन्य भक्त हैं। कलकत्ते में 'कलकत्ता आर्ट प्लेयर्स' संस्था की स्थापना करके आपने बड़ा सराहनीय कार्य किया है। इस संस्था के द्वारा बहुत से विद्यार्थियों को नृत्य की समुचित शिक्षा प्राप्त होती है।' नृत्यकला के विकास एवं प्रचार कार्य को आप अधिक महत्व दिया करती हैं।

आपका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और शरीर सुन्दर तथा सुगठित है। बंगाली ललना होते हुए भी दक्षिणी नृत्यों पर आप अच्छा अधिकार रखती हैं। वैसे मनीपुरी, कत्थक, आदि नृत्यों में भी साधना बोस को काफी ख्याति प्राप्त हो चुकी है।

★

सितारा देवी

भारतीय चलचित्र जगत की ख्याति प्राप्त कलानेत्री श्रीमती सितारा देवी कुशल अभिनेत्री होने के साथ-साथ प्रख्यात नर्तकी भी हैं। प्रारम्भ में कुछ समय तक आपकी इच्छा एक महान् अभिनेत्री बनने की रही और वह पूर्ण भी हुई, परन्तु गत ६-७ वर्षों से आपकी रुचि शास्त्रीय नृत्यों की ओर मुड़ गई है। इस अवधि में आपने भारत के विभिन्न नगरों में अपने नृत्यों के मनोरम कार्यक्रम प्रस्तुत करके दर्शकों को अनेक बार मुग्ध किया है।

सितारा के पिता श्री सुखदेव सहाय जी स्वयं कत्थक नृत्य के एक उत्कृष्ट कलाकार थे। कलकत्ते में सितारादेवी का जन्म धन-तेरस के दिन हुआ, इसलिये इनका दुलार का नाम धन्नो रक्खा गया। बचपन में ये एक बहुत शैतान और नटखट रहीं। घर के पास से जाने वाली मालगाड़ियों के डिब्बों से लटक कर कई मील तक चली जातीं और फिर कूद कर पटरियों के सहारे-सहारे घर को लौटतीं।

कलकत्ते में उन दिनों सितारा के पिता नृत्यकला का एक विद्यालय चलाते थे, उसी में सितारा की बड़ी बहिनें शिक्षा प्राप्त करती थीं, तब सितारा बहुत छोटी थीं। बाद में आप अध्ययन के लिये एक बंगाली स्कूल में जाने लगीं; स्कूल से आकर अपनी बहिनों के नृत्य की नक़ल किया करतीं; इस प्रकार नृत्य की अव्यक्त शिक्षा बचपन से ही आपको प्राप्त होती रही। जब आयु लगभग १२ वर्ष की हुई तब आपको प्रसिद्ध कत्थक नृत्यकार श्री शम्भू महाराज से नृत्य की तालीम लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दिनोंदिन सितारा नृत्यकला में आगे बढ़ती हुई प्रगति करने लगीं और शीघ्र ही इन्होंने भरतनाट्यम, कथक, मणिपुरी नृत्यों का अच्छा अभ्यास कर लिया। इनके अतिरिक्त पाश्चात्य नृत्यकला में भी आप दिलचस्पी लेती रहीं। कलकत्ते में होने वाले विभिन्न सङ्गीत सम्मेलनों में भाग लेने के कारण किशोरावस्था में ही आपकी ख्याति हो गई।

कुछ समय बाद कलकत्ता छोड़कर आप बम्बई आकर बस गईं। स्वाभाविक रुचि फ़िल्म अभिनेत्री बनने की थी, नृत्य भी जानती थीं, अतः इस क्षेत्र में आपको शीघ्र ही सफलता मिल गई। अनेक चित्रों में नृत्य तथा अभिनय के सफल प्रदर्शन करके सितारादेवी सिने-जगत की एक लोकप्रिय तारिका सिद्ध हुईं।

सन् १९४८ ई० के लगभग अपने पिता के परामर्शानुसार एवं जनता की रुचि शास्त्रीय नृत्यों की ओर आकर्षित होती देख, आप पुनः नृत्यकला की ओर अग्रसर हुईं और तभी से अटूट परिश्रम द्वारा आपने नृत्य की साधना आरम्भ करदी। आपने अभिनेता नज़ीर के साझे में एक फ़िल्म कम्पनी 'हिन्द पिक्चर्स' खोलकर कुछ फ़िल्मों का भी निर्माण किया। निर्माता आसिफ़ के साथ आपका विवाह हो गया।

अब आप संगीतमय चित्रों का निर्माण करके उनमें भारतीय शास्त्रीय नृत्य प्रस्तुत करने का विचार कर रही हैं। हाल ही में आपने लगभग समस्त यूरोपियन देशों का दौरा किया, जिसमें आपने कत्थक नृत्यों द्वारा लाखों दर्शकों को मुग्ध कर भारतीय कला की एक गहरी छाप उन पर छोड़दी। विदेश में एक खुले थियेटर हॉल में आपको इकट्ठे ७५ हजार दर्शकों के सामने अपना नृत्य प्रस्तुत करने का सौभाग्य मिला, जिसे आप सफलता का अद्वितीय अवसर समझती हैं।

★
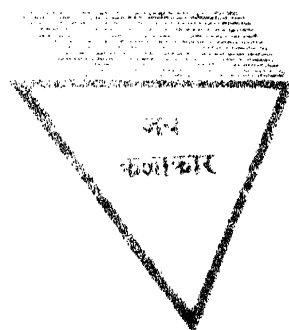
परिशिष्ट

शास्त्रकार—

कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति

सन् १९५५ के अक्टूबर मास में संगीत–जगत् को भारत के प्रमुख समाचार पत्रों ने यह महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक समाचार दिया कि सनातन–धर्म कालेज, कानपुर में धर्मशास्त्र एवं हिन्दी–साहित्य के प्रोफेसर आचार्य कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति को संगीत के ग्रन्थों में कुछ ऐसे सूत्र मिले हैं, जिनके आधार पर प्राचीन सङ्गीत को पूर्णतया स्पष्ट किया जा सकता है। संगीत से सम्बद्ध क्षेत्रों में यह समाचार अत्यन्त आश्चर्य, हर्ष एवं उत्सुकता के साथ सुना गया।

इसी वर्ष नवम्बर मास में बम्बई की 'सुर–सिंगार संसद्' द्वारा आयोजित 'सेमीनार' में प्रथम दिन आचार्य बृहस्पति ने जब गवेषणापूर्ण अध्यक्षीय भाषण दिया, तब श्रोताओं को प्रतीत हुआ कि संगीत-गगन का क्षितिज एक नवीन आलोक से जगमगा रहा है। इसी 'सेमीनार' में आचार्य ने भारतीय संगीत की विभिन्नकालीन परिवर्तित स्थितियों का सकारण विवेचन किया।

सन् १९५६ ई० के सितम्बर मास में ऑल इण्डिया रेडियो, देहली द्वारा आयोजित 'सेमीनार' में आचार्य बृहस्पति ने 'रस–सिद्धान्त' पर अपना मौलिक एवं चिन्तनयुक्त निबन्ध पढ़ा, जिसमें 'संगीत' और 'रस' के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन एवं स्पष्टीकरण किया गया था।

इसी 'सेमीनार' में आचार्य बृहस्पति का वह ऐतिहासिक भाषण हुआ, जिसमें महर्षि भरत के श्रुति–मण्डल का प्रत्यक्षीकरण 'श्रुति–दर्पण' नामक एक नवाविष्कृत वाद्य पर किया गया था। इस भाषण में आचार्य ने पं०–भीष्मदेव वेदी जैसे चतुर्मुख कलाकार से तन्त्रीवाद्य पर जाति-प्रदर्शन भी कराया, जिनमें वे 'ऋषभ' और 'गांधार' सारिकाओं पर स्थिर रूप में मिले हुए थे, जिनका अस्तित्व व्यंकटमखी के बहत्तर जनक मेलों एवं स्व० भातखण्डे

की थाट–पद्धति में नहीं । इसी 'सेमीनार' में संगीत के अनेक पक्षों पर अनुसन्धान की सम्भावना बताते हुए आचार्य ने कहा:—"प्राचीन परन्तु लुप्त ज्ञान–भण्डार को पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है । अनुसंधान एक सामूहिक कार्य है, व्यक्तिगत विषय नहीं । आज हम पर विदेशों की ओर से यह आक्षेप किया जाता है कि संगीत के संस्कृत ग्रन्थ स्पष्ट नहीं हैं, भारतीयों का श्रुति–सिद्धान्त आडम्बरमात्र है और भारतीय संगीत अवैज्ञानिक है । मैं ऐसे कथनों को प्रत्येक संस्कृतज्ञ संगीत–प्रेमी के लिये ही नहीं, राष्ट्र भर के लिये चुनौती मानता हूं । आप्त महर्षियों के वाक्य वैज्ञानिक, तर्काधारित एवं व्यवहार-सिद्ध हैं, उनकी वास्तविकता को प्रकाशित करना हमारा कर्तव्य है । यह हमारे व्यक्तिगत मानापमान का नहीं, राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न है ।"

आचार्य बृहस्पति ने महर्षि भरत के सिद्धान्तों की वैज्ञानिक परीक्षा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा:—"जहां तक श्रुतियों एवं स्वरों के परिमाणों की परीक्षा का सम्बन्ध है, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं कि 'नेशनल लेबोरेटरी' जैसी प्रयोगशाला में अधिकारी वैज्ञानिकों के द्वारा मेरे अनुसंधान के परिणामों को पाश्चात्य विज्ञान की कसौटी पर कसा जाये । यदि वह कसौटी खोटी नहीं है, तो महर्षि भरत की स्थापनाएँ अपनी सनातनता, सार्वभौमता एवं व्यवहार्य्यता को सिद्ध कर देंगी । इस वैज्ञानिक परीक्षा को शीघ्रातिशीघ्र करके अन्तिम निर्णय देना शासन का कर्तव्य है, जिससे कि इस सम्बन्ध में फैली हुई अनेक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण हो सके और उन क्षेत्रों का मुख–मुद्रण हो जाये, जो महर्षि भरत जैसे आप्त पुरुषों के वाक्यों के विषय में अश्रद्धा का निरन्तर निर्माण करते रहे हैं, कर रहे हैं ।"

इसी मास में गान्धर्व-महाविद्यालय देहली में निमन्त्रित एक प्रेस-कान्फ्रेंस में आचार्य ने पं० भीष्मदेव वेदी द्वारा 'श्रुति-दर्पण' पर श्रुति-मण्डल को मूर्त कराकर 'यमन कल्याण' एवं 'दरबारी' के पृथक-पृथक 'ऋषभ' तथा 'तोड़ी' एवं 'पीलू' के पृथक–पृथक 'गांधार' जैसे सूक्ष्म स्वरों का दर्शन महर्षि भरत के श्रुति–मण्डल में कराया । यही नहीं, महर्षि भरत की दूसरी सारणा में आचार्य बृहस्पति ने अन्तर गान्धार (तीव्र गान्धार), काकली निषाद (तीव्र निषाद) के साथ सारणा के परिणामस्वरूप स्वतः प्राप्त होने वाली उस ध्वनि का भी दिग्दर्शन कराया, जिसे 'कुम्भ' और 'श्रीकण्ठ' ने 'पतपंचम' और 'व्यंकटमखी' ने

'वराली मध्यम' कहा है और जो उत्तर भारत में 'तीव्र मध्यम' के नाम से जाना जाता है। आचार्य ने इस सम्बन्ध में विवेचन करते हुए कहा:—
"यह एक भ्रान्त धारणा है कि आधुनिक 'तीव्र मध्यम' प्राचीन 'माध्यम-ग्रामिक पंचम' से अभिन्न है। वस्तुत: 'तीव्र मध्यम' पंचम की दूसरी श्रुति पर तथा 'माध्यमग्रामिक पंचम' पंचम की तीसरी श्रुति पर है। दाक्षिणात्य विद्वान् हमारे कोमल 'ऋषभ-धैवत' को 'शुद्ध ऋषभ-धैवत' कहते हैं और इन्हीं को महर्षि भरत का 'ऋषभ' और 'धैवत' मान डालते हैं, फलत: 'कोमल ऋषभ' के साथ षड्ज-मध्यम-भाव से संवाद करने वाला 'तीव्र मध्यम' उन्हें माध्यमग्रामिक पंचम प्रतीत होता है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं। वस्तुत: कोमल 'ऋषभ' और 'धैवत' त्रिश्रुतिक स्वर नहीं हैं। 'निषाद' के पश्चात् क्रमश: 'षड्ज' की चार और 'ऋषभ' की तीन श्रुतियाँ होने के कारण 'निषाद' और 'ऋषभ' का अन्तर सप्त-श्रुतिक है, अर्थात् ठीक उतना ही है जितना 'षड्ज' और 'तीव्र गान्धार' या 'पंचम' और 'काकली निषाद' में है। इस शास्त्र सिद्ध प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला 'ऋषभ' वह 'ऋषभ' है, जिसे आज 'दरबारी' का ऋषभ' कहा जाता है। इसी प्रकार, महर्षि भरत का 'धैवत' वह है, जो शुद्ध मध्यम से सात श्रुतियों के अन्तर पर उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार 'षड्ज' की अपेक्षा 'तीव्र गान्धार' स्थित है। यह धैवत 'हमीर' जैसे रागों में प्रयोज्य 'धैवत' है, जो दरबारी में प्रयोज्य 'ऋषभ' के साथ तो षड्ज-पंचम भाव से संवाद करता है और 'एमनकल्याण' के 'ऋषभ' के साथ नहीं करता। 'कोमल ऋषभ धैवत' दाक्षिणात्यों के अपने 'शुद्ध ऋषभ धैवत' भले ही हों, महर्षि भरत के 'ऋषभ-धैवत' नहीं। महर्षि-भरत के षड्ज ग्राम में "एक स्वर की एक ही संज्ञा है, मेल पद्धति में एक स्वर की अनेक संज्ञाएँ हैं। दाक्षिणात्यों की मेल-पद्धति भरत-सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न है।"

'हिन्दुस्तान-टाइम्स' ने आचार्य के इस भाषण पर टिप्पणी करते हुए लिखा:—

"At a Press conference given on Saturday evening at the Gandharva Mahavidyalaya, Mr. K. C. D. Brahaspati of Kanpur made the startling claim that the 22 shrutis which Bharat proclaimed as the basis of Indian music can be actually isolated and identified. The claim was supported by a

demonstration on the Sitar. Difference between the last two shrutis was infinitesimal, but it was certainly perceptible. Mr. Brahaspati then proceeded to indicate the far reaching theoretical consequences of this research which, he appeared confident, can stand experimental test in a sound laboratory......

......If the validity of Mr. Brahaspati's claim comes to be confirmed, the theoretical basis of present-day musicology will undergo profound changes and it will become imperative and possible to link up present day music with ancient shastras to which we are so far indifferent. Moreover, the 72-scale scheme of the karnatic musicologist, Vyankatmakhi and the scheme of ten 'thaats' will both come to be seriously disturbed.

The claim has already created quite a stir in radio circles......"

एप्रिल, १९५७ में सूचना एवं प्रसारमन्त्री माननीय डा० बी० वी० केसकर ने अपनी गुणग्राहकता का परिचय देते हुए ऑल इण्डिया रेडियो के सेन्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड में आचार्य बृहस्पति को अवैतनिक सदस्य के रूप में नामांकित किया। 'आल इण्डिया रेडियो' से यह समाचार प्रसारित होते ही संगीत–जगत् में उल्लास व्याप्त होगया।

इसी मास में 'सुर सिंगार–संसद्', बम्बई द्वारा आयोजित सेमीनार में आचार्य बृहस्पति ने अपने नवाविष्कृत वाद्य 'बृहस्पति–वीणा' पर महर्षि भरत की चतुःसारणाओं तथा उनके द्वारा प्राप्त बाईसों श्रुतियों का स्पष्टीकरण एवं सप्रयोग प्रदर्शन किया। भारत के प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक उस्ताद रहीमुद्दीन खां डागुर तथा बड़े गुलामअली खां जैसे प्रमुख गुणियों के साक्ष्य में आचार्य ने महर्षि भरत के श्रुति-मण्डल में उन सूक्ष्म ध्वनियों का परिचय कराया, जो दरबारी तथा एमन कल्याण में पृथक्-पृथक् हैं और 'ऋषभ' कही जाती हैं। पीलू और टोड़ी में आजकल 'गान्धार' के नाम से प्रयोज्य ध्वनियां भी पृथक्–पृथक् इस श्रुति-मण्डल में स्थित थीं। मियाँ की मलार और हमीर के प्रथक्-प्रथक् 'धैवत' तथा 'मालकोष' और 'भीमपलासी' के पृथक्-प्रथक् 'निषाद' भी महर्षि भरत के श्रुति-मण्डल' में प्रत्यक्ष थे।

श्रुतिमण्डल एवं श्रुतियों के सारणासिद्ध परिमाणों का प्रदर्शन जिन दो दिनों में आचार्य बृहस्पति ने किया, उन दो दिनों का सभापतित्व संगीत-जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान्. विचारक एवं आल इन्डिया रेडियो के चीफ़ प्रोड्यूसर श्री ठाकुर जयदेवसिंह जी कर रहे थे।

इसी सेमीनार में 'बृहस्पति-किन्नरी' नामक एक और वाद्य पर आचार्य बृहस्पति के निर्देशन में पं० भीष्मदेव वेदी ने जातियों एवं ग्रामरागों का प्रदर्शन किया।

आचार्य कैलासचन्द्रदेव बृहस्पति का जन्म पौष शुक्ल अष्टमी रविवार विक्रमाब्द १९७४ को उत्तर प्रदेश के रामपुर राज्य में हुआ। इनके पिता श्री गोविन्दराम, पितामह पं० अयोध्याप्रसाद तथा प्रपितामह पं० बुद्धसेन जी उच्चकोटि के पंडित थे। अयोध्या प्रसाद जी को उनके चाचा पं० दत्तराम जी ने गोद ले लिया था। पं० दत्तराम जी न्याय, व्याकरण, कर्मकाण्ड, ज्योतिष के उद्भट विद्वान एवं सिद्ध तान्त्रिक होने के साथ सत्कवि और महान् संगीतज्ञ भी थे। वे रामपुर नरेश नवाब कल्बे अली खां की राज सभा के रत्न थे। पं० दत्तराम का शिवालय रामपुर में इस वंश की विद्या एवं कीर्ति का अमर स्तम्भ है, जिसका निर्माण तत्कालीन रामपुर नरेश ने पं० दत्तराम जी की एक चमत्कारपूर्ण भविष्यवाणी की सत्यता से प्रसन्न होकर कराया था।

बालक बृहस्पति को केवल दस वर्ष की आयु में ही पितृ-स्नेह से वंचित होजाना पड़ा, परन्तु उनकी विदुषी जननी स्व० नर्म्मदादेवी ने इस होनहार बालक का साहसपूर्वक पालन-पोषण करने के साथ ही साथ वे संस्कार भी इसके हृदय में बद्धमूल कर दिये, जिनके परिणाम-स्वरूप अपनी वंश-परम्पराओं की सुरक्षा के प्रति यह बालक जागरूक रहा।

श्री० बृहस्पति का उच्चारण साढ़े तीन वर्ष की अवस्था में पूर्णतया शुद्ध था। पांच वर्ष की आयु में 'चाणक्य नीति' एवं 'पाण्डव गीता' के श्लोकों के साथ 'दुर्गासप्तशती' के 'कवच' 'अर्गला' और 'कीलक' भी इन्हें कंठस्थ थे। ग्यारहवें वर्ष में इन्होंने 'सवैया' छंद की रचना करना आरम्भ कर दिया था और चौदह वर्ष की आयु में अयोध्या की एक पंडित परिषद ने संस्कृत में श्लोक रचना से सन्तुष्ट होकर इन्हें 'काव्य-मनीषी' एवं 'साहित्य सूरि' उपाधियों से विभूषित किया था।

श्री बृहस्पति को रेडियो-श्रोता कवि, आलोचक, गीतकार, वक्ता, हास्य लेखक एवं नाटककार के रूप में प्रायः पिछले चौदह वर्षों से जानते हैं। 'मेघ का कवि', 'विश्वामित्र', 'सागर-मन्थन', 'कलाभारती', 'जयापीड'. 'मडापण्डित', 'जीवन का सन्देश' इत्यादि श्रेष्ठ ध्वनि रूपक प्रायः हिन्दी भाषी सभी रेडियो स्टेशनों से मूल रूप में तथा विभिन्न स्टेशनों से कन्नड एवं गुजराती जैसी समृद्ध भाषाओं में प्रसारित एवं इन भाषाओं के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होकर श्रेष्ठ आलोचकों को आकृष्ट कर चुके हैं।

आचार्य बृहस्पति खड़ी बोली, ब्रजभाषा एवं संस्कृत के श्रेष्ठ कवि हैं।

आचार्य ने अलंकार-शास्त्र की शिक्षा महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री, न्याय की शिक्षा स्व० पं० हरिशंकर झा, व्याकरण की शिक्षा पं० छेदी झा, तथा प्रारम्भिक शिक्षा श्री पं० कन्हैयालाल शुक्ल, राजपंडित पं० रामचन्द्र शास्त्री तथा अपने पितृचरणों से प्राप्त की। कंठसंगीत में आप रामपुर-दरबार के स्व० मिर्जा नवाबहुसैन तथा ताल-व्यवहार में इसी दरबार के मार्दङ्गिक पं० अयोध्याप्रसाद के शिष्य हैं। मृदङ्ग, तबले के साथ-साथ प्रौढ़ स्वरज्ञान श्री बृहस्पति पर दुर्लभ गुरु कृपा का परिणाम है।

माता की प्रेरणा के परिणाम-स्वरूप इन्होंने संगीत का ज्ञान भी बाल्यावस्था से प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। छः वर्ष तक स्वरसाधना के पश्चात् १९३७ ई० से 'महर्षि भरत' एवं 'आचार्य शार्ङ्गदेव' श्री बृहस्पति के अध्ययन का विषय बने। संस्कृत के शास्त्रों से प्रगाढ़ परिचय, सूत्रशैली की मर्मज्ञता, शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय-ज्ञान, रस-सिद्धान्त पर असामान्य अधिकार एवं आधुनिक संगीत के व्यावहारिक ज्ञान ने समन्वित होकर आचार्य बृहस्पति के व्यक्तित्व का निर्माण किया है।

शिक्षण-कार्य में पिछले इक्कीस वर्षों का अनुभव आपको है, धर्मशास्त्र के तो प्रोफेसर आप हैं ही, एम०ए० कक्षा को प्रधानतया 'रस-सिद्धान्त' का अध्यापन करना भी आपका प्रमुख कार्य है। संगीतशिक्षा भी आपने अपने कुछ शिष्यों को दी है।

इन्टरनेशनल सेण्टर, कानपुर की ओर से बल्गेरियन शिष्ट-मंडल के सम्मान में दिये हुए एक डिनर के पश्चात् 'बेलेरियो होटल' में आचार्य के निर्देशन के अनुसार जब श्री भीष्मदेव वेदी ने 'बृहस्पति-किन्नरी' पर प्राचीन 'जातियों' एवं रागों का प्रदर्शन किया था, तब शिष्ट-मंडल के सभी प्रतिनिधि

राजदूत एवं विशेषतया शिष्टमण्डल में आये हुए एक प्रमुख बल्गेरियन संगीत शास्त्री अत्यन्त प्रभावित हुए थे। तत्पश्चात् बल्गेरिया की राजधानी से प्रकाशित इस शिष्ट-मण्डल की यात्रा के विवरण में आचार्य बृहस्पति के विचारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

आचार्य बृहस्पति 'दी एकेडमी ऑव म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्टस्' कानपुर के प्रवैतनिक 'डाइरेक्टर' हैं, जिसका उद्घाटन आज से प्राय: दो वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री० के० एम० मुन्शी ने किया था।

आचार्य बृहस्पति को संगीत-जगत् के समक्ष रखने का प्रमुख श्रेय उत्तर प्रदेश के वर्तमान शासन को है, जिसकी खोज के परिणामस्वरूप आचार्य बृहस्पति को 'भातखण्डे-कालेज' की पुन:संघटन समिति का सदस्य और तत्पश्चात् इसी समिति के अन्तर्गत पुनस्संघटन की रूपरेखा निश्चित् करने के लिये संघटित एक त्रिसदस्यीय उपसमिति का भी सदस्य बनाया गया।

आचार्य बृहस्पति ने संगीत के कुछ मार्मिक विद्वानों के समक्ष एकान्त में अपने विचारों का निष्कर्ष रखकर पहले उन्हें सन्तुष्ट किया, तत्पश्चात् वे विचार सर्व-साधारण के समक्ष प्रस्तुत किये गये।

आचार्य बृहस्पति का स्वभाव अत्यन्त विनोदप्रिय है, और गम्भीर चर्चा में भी विनोद के छींटे देने से आप बाज़ नहीं आते। एक बार एक सज्जन को आपके विचारों में अपने गुरु की निन्दा की गन्ध आई; उस समय बृहस्पति महर्षि भरत पर विचार करने के अधिकारी व्यक्ति की वाँछनीय योग्यता पर चर्चा कर रहे थे। सज्जन बोले, हम गुरु-निन्दा नहीं सुन सकते। आचार्य ने मुस्करा कर कहा, आपके गुरु की तो मैं चर्चा ही नहीं कर रहा। परन्तु कल्पना कीजिये कि मेरे गुरु काने है, तो मैं भले ही उन्हें 'आचार्य कमलनयन' कहूं, संसार उन्हें एकाक्ष ही कहेगा। उपस्थित सज्जनों का हँसते-हँसते बुरा हाल होगया।

आचार्य बृहस्पति का विचार है कि संगीत का विश्लेषण करना आलोचकों का कार्य है, परन्तु उसे सुनकर आनन्दित होने के लिये सहृदय होना पर्याप्त है, संगीत से खिंचकर प्राण दे देने वाला मृग 'भरतनाट्यशास्त्र' या 'संगीत रत्नाकर' का पण्डित नहीं होता।

आचार्य महोदय अपने लिये 'आचार्य' शब्द के प्रयोग मे अत्यन्त चिढ़ते हैं। एक बार जब संगीत के एक वरिष्ठ एवं वयोवृद्ध विद्वान ने उन्हें पत्र लिख कर पते में उनके लिये आचार्य शब्द का प्रयोग किया, तब उन्होंने उत्तर में लिखा—"आजकल 'आचार्य' शब्द बहुत सस्ता होगया है, उन अर्थों में आचार्य कहलाना सम्मान की बात नहीं। यदि 'आचार्य' का प्राचीन अर्थ लिया जाये तो मैं अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति हूं, शार्ङ्गदेव के द्वार का मैं अकिञ्चन भिक्षुक हूं. जो 'आचार्य' पदवी के वास्तविक अधिकारी थे।

आचार्य बृहस्पति से संगीत जगत् को अनेक आशाएँ हैं। आजकल आप 'भरत-सिद्धान्त' नामक एक ग्रन्थ के लेखन में व्यस्त हैं, परन्तु कहते हैं कि अभी यह चर्चा का विषय नहीं।

शास्त्रकार—

प्रज्ञानानन्द स्वामी

कलकत्ता से २५ मील दूर हुगली ज़िले में स्वामी प्रज्ञानानन्द का जन्म हुआ। जब आप बी. ए. कक्षा में थे, तो श्री रामकृष्ण के कार्यों से प्रभावित होकर उनकी आज्ञा का पालन करने के लिये १९२७ ई० में गृहस्थ से मुक्त होकर संस्कृत और दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने के हेतु रामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता के विद्यार्थी होगए और तब से अब तक आप वहीं शोध एवं अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

संगीत की शिक्षा आपने अपने बड़े भाई श्री पाँचकरि बनर्जी से ही अल्पायु में लेना प्रारम्भ कर दिया था। तत्पश्चात् शिवपुर के श्री निकुञ्ज बिहारीदत्त (संगीताचार्य अघोरनाथ चक्रवर्ती के शिष्य), संगीताचार्य श्री गोपेश्वर बनर्जी, स्व० हरिनारायण मुखोपाध्याय तथा स्व० ज्ञानप्रसाद गोस्वामी आदि कलाविदों से सत्रह वर्ष तक शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

जब आप बनारस में थे तब पण्डित बामाचरन भट्टाचार्य से नव्य न्याय तथा अद्वैत आश्रम के स्वामी जगदानन्द से वेदान्त की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् संगीत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का क्रमानुसार अध्ययन किया और भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनशास्त्र की उच्चतम शिक्षा श्रीमद् स्वामी अभेदानन्द जी से प्राप्त की, जिन्होंने निरन्तर २५ वर्ष तक योरुप तथा अमेरिका में अपने गुरुवर्य स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पदचिन्हों पर चलकर वेदान्त दर्शन का प्रचार किया था।

स्वामी प्रज्ञानानन्द ने धुरपद माला, राग ओ रूप, संगीत ओ संस्कृति आदि संगीत ग्रन्थ प्रणीत किये हैं, जो आपकी शोध तथा कठिन साधना के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इस समय रामकृष्ण वेदान्त मठ कलकत्ता के आप सैक्रेटरी और मठ के प्रकाशन विभाग के प्रधान सम्पादक हैं। साथ ही संगीत नाटक अकादमी पश्चिमी बंगाल तथा आकाशवाणी कलकत्ता केन्द्र की कार्यक्रम सलाहकार समिति के सदस्य भी हैं। आपका विश्वास है कि जबतक संगीत का अध्ययन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से न किया जायेगा, तबतक संगीत की यथार्थ महत्ता प्रकाश में नहीं लाई जा सकती।

★

फ़क़ीरउल्ला

यह विद्वान १७०० ई० में, औरंगज़ेब के शासनकाल में हुआ। फ़क़ीरउल्ला को भारतीय, ईरानी तथा अन्य देशों के संगीत से अत्यन्त लगाव था तथा इनकी तुलनात्मक विवेचना में उसे अपूर्व आनन्द मिलता था। हयातखानी, शेखकमाल आदि संगीतज्ञों का यह आश्रयदाता भी था।

महाराज मानसिंह की संगीत सेवाओं का फ़क़ीरउल्ला पर विशेष प्रभाव था। सन् १६६६ ई० में, मानसिंह द्वारा लिखित 'मानकुतूहल' नामक ग्रन्थ की प्रतिलिपि उसकी निगाह में आई, जो उसको गायक-वादकों के लिये अत्यन्त उपयोगी दृष्टिगोचर हुई. अतः फ़क़ीरउल्ला ने 'मानकुतूहल' ग्रन्थ का फ़ारसी भाषा में अनुवाद 'रागदर्पण' के नाम से कर डाला। साथ ही अपनी योग्यतानुसार जहां-तहां टिप्पणियां भी उसने दीं। उसका विश्वास था कि इसके प्रकाशन से भावी संगीत कलाकार को भरत नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर और संगीतदर्पण आदि ग्रन्थों को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

एक बार संयोग से नायक बख्शू, नायक पाण्डवीय, देवग्राहंग, नायक-महमूद और नायक करण मान की सभा में एकत्रित हुए। इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाकर मान ने इन संगीताचार्यों से वाद-विवाद करके भरत संगीत को पुष्ट करने के हेतु मानकुतूहल का निर्माण किया। सम्भव है फ़क़ीरउल्ला को इसकी पूरी प्रतिलिपि न मिली हो अथवा वह अनुवाद करते समय उसके कुछ शास्त्रीय जटिल अंश को न समझ पाया हो और इस प्रकार यह बात अप्रगट ही रह गई हो! अन्यथा क्रियात्मक संगीत की कुछ अलभ्य जानकारी 'मानकुतूहल' से अवश्य प्राप्त होती। फ़क़ीरुल्ला जिस स्थल अथवा अध्याय को न समझ पाया होगा, वहां उसने अपनी योग्यता से संगीत सम्बन्धी अन्य चर्चा का समावेश कर दिया है; ऐसा 'रागदर्पण' देखने से प्रतीत होता है। वैसे भी फ़क़ीरुल्लाह के पास लेखन कार्य के लिये बहुत कम समय था, इसी कारण 'मानकुतूहल' का अनुवाद वह तीन वर्ष में समाप्त कर पाया।

फ़क़ीरुल्लाह बहुत ही मौजी जीव था। भारतीय संगीत को धार्मिक दृष्टि से ही सदैव आंकता था। अपने सम्राट औरंगज़ेब के प्रति उसकी दृढ़ आस्था थी। जिन दिनों वह काश्मीर का सूबेदार था; उन दिनों रागों की फ़ारसी नग़मों से तुलना करके सामंजस्य स्थापन का संकल्प भी उसने संजोया था।

जिन मिलते हुए रागों का उसने वर्णन किया उनके नाम इस प्रकार हैं:—
'गिज़ाल' और 'षट्' राग मिलते-जुलते हैं। 'षट् राग' रामकली का उल्टा है, 'दर्गाह' 'शुद्ध टोड़ी' से मिलता है; 'नैरेज़' 'कल्याण' की तरह है; 'रास्त' राग 'नट' के समान है; 'ईराक़' 'पूरियाधनाश्री' से मिलता है। फिर भी महाराज मानसिंह की अमर कृति मानकुतूहल को जीवित रखने का श्रेय फ़क़ीरुल्ला को ही है।

फ़क़ीरुल्ला की आपबीती पढ़कर एक और तथ्य प्रकट होता है, वह यह कि औरंगजेब के काल अथवा दरबार में संगीत बहिष्कृत नहीं हुआ था। पुरुषनयन, मुखीसेन आदि संगीतज्ञ औरंगज़ेब के विशेष कृपा-पात्रों में से थे। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक गायक-वादक भी उसके दरबार में आसीन थे।

स्पष्ट है कि फ़क़ीरुल्ला द्वारा लिखित औरंगजेब कालीन ऐतिहासिक विवेचन अब तक विलुप्त रहने के कारण, औरंगजेब पर कला का कट्टर दुश्मन होने का लांछन लगाया जाता रहा। सम्भव है प्रयत्न करने पर किसी संगीत पण्डित की उस काल की ऐतिहासिक कृति मिल जाय तो निश्चय ही औरंगज़ेब कालीन संगीत और संगीतज्ञों पर काफी प्रकाश पड़ सकेगा। वैसे उस काल के अनेक गायक-वादकों का परिचय फ़क़ीरुल्ला ने 'रागदर्पण' में दिया है। जीवन में जो कुछ भी धन फ़क़ीरुल्ला ने कमाया वह सब उसने गायकों की सेवा में लगा दिया। मानकुतूहल के फ़ारसी अनुवाद में ही उसकी लाखों मुद्राएँ व्यय हो गईं।

★

शास्त्रकार—

शङ्करराव व्यास

शंकरराव का जन्म २३ जनवरी सन् १८६८ को कोल्हापुर में हुआ। आपके पिताजी संगीत में बहुत रुचि रखते थे जिनका नाम श्री गणेश पंडित था। श्री गणेश पंडित सितार और हारमोनियम के बहुत शौक़ीन थे और समय-समय पर अपने वादन द्वारा लोगों का मन रिझाते रहते थे। फलस्वरूप इनके दोनों पुत्र श्री—शंकरराव व्यास तथा श्री नारायण राव व्यास में भी सांगीतिक संस्कार विद्यमान हुए।

जब श्री शंकरराव की अवस्था सात वर्ष की थी, तभी पूज्य पिता का देहावसान होगया और आप अपने चाचा कृष्ण सरस्वती के संरक्षण में रहने लगे। एक बार स्वर्गीय विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की दृष्टि, संगीत प्रचारार्थ भ्रमण करते समय शंकरराव पर पड़ी। उन्होंने अपने संरक्षण में इन्हें संगीत शिक्षा देने के लिये मांगा। उधर शंकरराव भी अपने बराबर के अन्य

विद्यार्थियों का संगीत सुनकर रश्क किया करते थे, अतः अपने मामा की अनुमति प्राप्त कर पलुस्कर जी के साथ हो लिये। संगीत प्रवीण हो जाने पर पलुस्कर जी से शंकरराव ने पुरस्कार स्वरूप एक स्वर्ण पदक भी प्राप्त किया, जो कि अन्य किसी विद्यार्थी ने शायद ही प्राप्त किया हो।

संगीत शिक्षा के पश्चात् ग्रहस्थ का भार संभालने के लिये आपने राष्ट्रीय शाला में नौकरी करली; किन्तु पलुस्कर जी को इससे दुःख हुआ क्यों कि वे इन्हें संगीत शिक्षा का भार ही सौंपना चाहते थे। बाद में लाहौर के गांधर्व महा-विद्यालय में प्रिंसीपल के पद पर पलुस्कर जी ने शंकरराव को नियुक्त करके अपनी इच्छा पूर्ति की। बाद में जब श्री नारायण राव व्यास की संगीत शिक्षा भी पूर्ण होगई, तब इन दोनों भाइयों ने मिलकर अहमदाबाद में 'गुजरात संगीत महाविद्यालय' की स्थापना की। इस बीच श्री नारायणराव व्यास का यश भारत में विस्तरित होने लगा और श्री शंकरराव वृन्दवादन पर अपने प्रयोग करने में व्यस्त हो गये। तत्पश्चात् बम्बई के प्रकाश पिक्चर्स में संगीत निर्देशक के पद पर आसीन होने का आपको सुअवसर मिला। 'पूर्णिमा, नरसीभक्त, भरतमेट, रामराज्य तथा विक्रमादित्य आदि'' चलचित्रों में शास्त्रीय संगीत के लालित्यपूर्ण प्रयोग ने शंकरराव की ख्याति में चार चांद लगा दिये।

सन् १९३३ में श्री शंकरराव ने 'व्यास कृति' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया, तत्पश्चात् 'प्राथमिक संगीत, माध्यमिक संगीत, सितार वादन' इत्यादि पुस्तकों की रचना की, जो कि विद्यार्थी समाज के लिये अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुईं। ख्याल–गायन में शंकरराव अत्यन्त निपुण थे और उनकी गायकी पर ग्वालियर घराने की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती थी।

स्वभाव के आप अत्यन्त सरल और भावुक प्रकृति के व्यक्ति थे। संगीत-दान में विद्यार्थियों के एक मात्र आधार थे। आपकी मृत्यु १७ दिसम्बर १९५६ ई० को, अपने निवास स्थान अहमदाबाद में होगई।

★

गायक—

केशवनारायण आप्टे

भारतवर्ष के बेजोड़ गायकों में जहां तानसेन का नाम प्रसिद्ध है वहाँ बैजूबावरा के नाम से भी सभी लोग परिचित हैं। बैजू-बावरा के शिष्य के पास बनारस वाले श्री गोविन्द बुवा हरदास ने ध्रुपद गायन की शिक्षा ग्रहण की थी। इनके पुत्र श्री तातुभैया, जो कि उज्जैन में रहा करते थे, से श्री केशव नारायण आप्टे ने ध्रुपद गायन सीखा। अतः यह कहा जा सकता है कि आप ध्रुपद गायन के सम्बन्ध में इतिहास प्रसिद्ध संगीतज्ञ बैजूबावरा की शिष्य—परम्परा में आते हैं।

आपका जन्म उज्जैन में सन्—१८६२ में हुआ था। आपके पिता श्री नारायणराव जी आप्टे के तीन पुत्रों में से आप कनिष्ठ थे। १४ वर्ष की आयु से संगीत का गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। नाद ब्रह्म के उपासक होने के कारण शालेय शिक्षण में मन नहीं लगा। १२ वर्षों तक अपने गुरु के पास संगीत का अध्ययन किया। प्रतिभा और साधना के संयोग से वाणी में ऐसा ओज तथा माधुर्य का प्रादुर्भाव हुआ कि जिससे जन-मानस के हृदय को अपने सङ्गीत की स्वरलहरियों से वशीभूत कर लेने में आप समर्थ हुए। आपके ध्रुपद गायन के समय सुप्रसिद्ध मृदङ्ग वादनकार श्री नाना साहेब पानसे इन्दौर वाले मृदंग पर संगत किया करते थे। आपकी योग्यता ने बड़े—बड़े राजा-महाराजाओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। मैसूर, मद्रास, कलकत्ता, बड़ोदा आदि के नरेशों ने आपको सादर आमन्त्रित कर आपका ध्रुपद गायन श्रवण किया। इन्दौर के महाराज तुकोजीराव ने कला पर मुग्ध होकर आपको अपने दरबार में मुख्य गायक के

स्थान पर नियुक्त कर दिया। इन्दौर महाराज ने सैकड़ों रुपये पुरस्कार स्वरूप आपको दिये। सन् १६०७ ई० से १६३६ ई० तक याने लगभग ३२ वर्ष के सेवा काल के पश्चात् आपको ५० रुपया प्रति मास पेन्शन मिलने लगी। सन् १६४५ में, ८३ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

आपके तीन पुत्र गोविन्द, एकनाथ तथा शंकर हुए, इनमें से ज्येष्ठ पुत्र श्री गोविन्द आप्टे अभी जीवित हैं। इनकी उम्र ७२ साल है व इन्दौर में ही निवास कर रहे हैं तथा अपने स्वर्गीय भ्राता के सुपुत्र को ध्रुपद गायन का शिक्षण दे रहे हैं।

★

गायक—

नारायणराव पूणेकर

श्री नारायणराव का जन्म सन् १८९३ ई० के लगभग पूना में हुआ। बाल्यावस्था से ही इन्हें गायन में विशेष रुचि थी। कण्ठ अति मधुर था। सुविख्यात संगीतज्ञ स्व० मिराशी बुवा की इन पर कृपा क्या हुई, मानो सोने में सुहागा मिल गया। मिराशी बुवा के पास संगीत अध्ययन पूर्ण करने के उपरांत ये नाट्यकला प्रवर्तक श्री भाटे बुवा की नाटक कम्पनी में शरीक होगये। लगभग २५ वर्ष तक उक्त कम्पनी में गायक का कार्य करते रहे तथा उसके सहारे देशाटन करने का इन्हें अवसर मिला। इनकी आवाज़ मधुर होने के साथ ही साथ इतनी तेज और मोटी थी कि जब ये गाते थे तो थियेटर थर्राता था। ध्वनिप्रसारक यन्त्र की भी आवश्यकता नहीं रहती थी। सन् १९४१ में जब नाटक कम्पनी उज्जैन पहुंची तो वहां क्षिप्रा स्नान एवं महाकालेश्वर के दर्शन करके श्री पूणेकर ने अपने को कृतार्थ माना तथा शेष जीवन परम पुनीत सांस्कृतिक भूमि अवन्तिका में ही व्यतीत करने की ठानी।

ये "काका साहेब पूणेकर" के नाम से प्रसिद्ध थे। कार्तिक चौक, उज्जैन में इनके कारण प्राय: शास्त्रीय संगीत के आयोजन होते रहते थे। इन्हीं की प्रेरणा से "म्यूजिक क्लब" नामक एक संस्था का निर्माण भी हुआ था। उज्जैन में शास्त्रीय संगीत का वातावरण निर्माण करने का अधिकांश श्रेय इन्हीं को है। गायन प्रारम्भ करते समय आवाज़ लगाने का इनका अनोखा ढंग था। आवाज़ में माधुर्य गुण प्रचुर मात्रा में होने के कारण कोई इनके बाद गाने का साहस नहीं करता था। इनके संगीतामृत का पान करने के हेतु देश के ख्यातिप्राप्त संगीतज्ञ अवन्तिका जाते थे। इनका गायन इतना ओजपूर्ण एवं प्रभावशाली हुआ करता था कि जिन्होंने इनको सुना है उनके सामने काका साहेब का नाम लेते ही उनकी आवाज़ कानों में गूंजने लगती है। प्रकाशपुञ्ज काका साहेब पूणेकर से ज्योति पाकर अवन्तिका के अनेक नवोदित जुगनू सितारे बनकर संगीताकाश में चमकने लगे।

सांवले रंग और ठगने कद के काका साहेब काली टोपी, सफेद कुर्ता व धोती धारण किया करते थे। अत्यन्त सादगी पूर्ण इनका जीवन था। इनको दमे की शिकायत थी। अवन्तिका में संगीत सौरभ विकीर्ण कर, काका साहेब पूर्णोकर लगभग ६० वर्ष की आयु में क्षिप्रा की एक लोल लहर की भांति अपनी भी एक गाथा छोड़कर, सन् १९५३ में सदैव के लिए चल दिए।

अपना चित्र खिंचाने के लिये आप कभी तैयार न होते थे, यही कारण है कि आपका कोई चित्र आज उपलब्ध नहीं। उपरोक्त चित्र एक समय क्षौर करवाने की अवस्था में धोखे से उतारा गया था।

★

गायक—

बहाउद्दीन जकरिया

जहाँगीर कालीन शेख बहाउद्दीन जकरिया मुल्तानी श्रेष्ठ संगीतज्ञ होगये हैं। शिकार के समय आन्तरिक प्रेरणा के प्रभाव से आप २५ वर्ष की आयु में ही सन्यास लेकर देशाटन को निकल पड़े और लगातार २५ वर्ष तक विभिन्न स्थानों के भ्रमण तथा महान् व्यक्तियों के सत्संग में रहे। इसी बीच संगीत कला की ओर आपका झुकाव हुआ और दक्षिण भारत में संगीत सीखना प्रारम्भ किया।

प्राचीन संगीत में शेख साहब ने अद्भुत योग्यता प्राप्त करली थी। फकीरुल्ला कृत 'मानसिंह और मानकुतूहल' के 'रागदर्पण' नामक फ़ारसी अनुवाद में इनके बारे में लिखा है—"उनके (बहाउद्दीन के) समान मार्गी की कला में, दक्षिण में कोई भी नहीं था।" ५६ वर्ष की आयु में आप मेरठ के पास अपने गाँव बरनावा लौट आये। कवित्त, ध्रुपद, ख्याल और तराने में इन्होंने बड़ी सुन्दर रचनाएँ कीं। फ़ारसी में इन्होंने छन्द का नाम जहन्द रक्खा था।

गायन के अतिरिक्त शेख साहब वीणा, अमरती और रबाब बजाने में भी दक्ष थे। एक नवीन वाद्ययन्त्र का भी इन्होंने आविष्कार किया था; किन्तु वह शारीरिक बल के बिना बजना सम्भव नहीं था, अतः उसका अधिक प्रचार न हो सका।

अनेक महाराजे और साधु आपका अत्यन्त सम्मान करते थे। ११७ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करके आप शाहजहाँ के सिंहासनारूढ़ होने के समय, शाहजहाँनी संवत् २ में परलोक सिधारे।

मृत्यु के पश्चात् शेख साहब के प्रिय शिष्य शेख पीर मोहम्मद उनकी पवित्र गद्दी पर आसीन हुए। सदा हरे रंग के लिबास में ही रहना बहाउद्दीन को भाता था; उनका कहना था—"यह जामा हमें परमात्मा की ओर से मिला है।" संगीत क्षेत्र को उन्होंने दो गुणी शिष्य दिये।

★

गायक—

लालचद बोरल

स्वर्गीय नवीनचन्द्र बोरल के सुपुत्र श्री लालचंद बोरल का जन्म सन् १८७० ई० में एक कुलीन परिवार में हुआ। आपके पितामह स्व० राय प्रेमचंद बोरल बहादुर कलकत्ते के प्रतिष्ठित कलाप्रेमी और धनी व्यक्ति थे, जिनके नाम पर कलकत्ते के बो बाजार में एक सड़क का नाम प्रेमचंद बोरल स्ट्रीट पड़ा।

लालचंद ने सेण्ट जेवियर्स तथा डोवैस्टन कालेज में शिक्षा प्राप्त की। उस समय आप अनेक योरोपियन क्लबों और सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध थे। आपके पिता संगीत के अधिक पक्ष में नहीं थे; किन्तु लालचंद का विशेष झुकाव संगीत की ओर ही था। अतः आप अपनी माता जी से संगीत सीखने के निमित्त चुपके-चुपके यथेष्ट धन प्राप्त करते रहे और इसी साधन के सहारे साधक साधना की ओर प्रवृत्त होता चला गया।

लालचंद ने ख्यातिप्राप्त पखावजी मुरारी मोहन गुप्ता की शिष्यता में पखावज सीखना प्रारम्भ कर दिया और शीघ्र ही उसमें निपुणता प्राप्त करली। पखावज के अतिरिक्त हारमोनियम, प्यानो, जलतरंग, सुर-कानून तथा तबला का भी आपने अभ्यास किया।

अपने कालेज जीवन में लालचंद ने पाश्चात्य संगीत का भी अध्ययन किया और रैक्टर फादर लैफन से एक बार एक प्यानो पुरस्कार में जीता। आपके ध्रुपद शिक्षकों में काशीनाथ मिश्र तथा विश्वनाथ राव के नाम

नीय हैं। ख्याल की शिक्षा आपने उस समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ शिवनारायन मिश्र, नूलो गोपाल, गुरुप्रसाद मिश्र तथा नन्दे खां से पाई और टप्पा मियां रमजान से सीखा। संभवतः इसी कारण ख्याल और टप्पा के मिश्रण द्वारा आपके गायन का एक अनूठा ढंग बन गया था।

शनैः शनैः लालचंद की प्रसिद्धि भारत में बढ़ने लगी; क्योंकि अद्भुत कलाकार होने के साथ ही आप शौकिया कलाकार थे। संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर आप कुछ भी पारिश्रमिक न लेते और इसी प्रकार ग्रामोफोन कंपनी को अनेक बार अपनी निःशुल्क संगीत सेवाओं से कण्ठ संगीत के रिकार्ड भरवाकर प्रशन्सा अर्जित की। उस समय आपके रिकार्डों की बहुत बड़ी मांग थी। आपकी सौजन्यता से वशीभूत हो ग्रामोफोन कम्पनी ने इङ्गलैण्ड से आपको भेंट करने के उद्देश्य से एक कीमती मोटर कार मँगाई, किन्तु कार के भारत आने से पूर्व ही लालचंद परलोकवासी हो चुके थे।

बहुत दूर-दूर तक ख्याति हो जाने के कारण एक बार काबुल के अमीर साहब कलकत्ता आये और आपसे गायन सुनने का अनुरोध किया; किन्तु बीमारी के कारण लालचंद अमीर से भेंट न कर सके। आपके पिताजी ने अमीर साहब के सैक्रेटरी को सूचित किया कि इस समय लालचंद संगीत सुनाने में असमर्थ है, इससे न केवल अमीर साहब को ही वेदना हुई होगी, बल्कि लालचंद को भी हार्दिक खेद है। मैं विश्वास दिलाता हूं कि स्वस्थ होते ही अमीर साहब को प्रसन्न करने के लिये लालचंद को स्वतः क़ाबुल भेज दूंगा। किन्तु ३७ वर्ष की आयु में ही, सन् १६०७ में लालचंद बोरल बीमारी की अवस्था में स्वर्ग सिधार गये। अपने पीछे आपने अपने तीन पुत्र किशनचंद बोरल, बिसनचंद बोरल तथा रायचंद बोरल को छोड़ा, जोकि सभी अपने पिता के पद चिन्हों पर संगीत के क्षेत्र में अग्रसर हुए और आज भी अपने पिता की प्रतिष्ठा को क़ायम रखने में सफल हैं। बोरल परिवार से भारत के लगभग सभी प्रसिद्ध संगीतज्ञ परिचित हैं। जो भी संगीत जिज्ञासु वर्तमान समय में कलकत्ता जाता है वह बोरल भवन में टंगे सहस्रों संगीतज्ञों के विशाल तैल-चित्रों को देखने के उद्देश्य से वहाँ अवश्य जाता है, जिन्हें निर्मित कराने में हजारों रुपयों का व्यय हुआ है।

★

सुषिर वाद्य वादक—

बाबूराव देवलंकार

श्री बाबूराव देवलंकार वर्तमान शहनाई वादकों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। आपका जन्म सन् १६०४ में, पूना में हुआ था। आपके दादा श्री तुलसीराम बुवा देवलंकार तथा श्री गिथोवा देवलंकार पूना में अपने समय के प्रसिद्ध शहनाई वादक थे। उनके पश्चात् उनके सुपुत्र तथा श्री बाबूराव जी के पिता श्री मारुतराव देवलंकार भी परम्परागत गुणों से युक्त शहनाई के अद्वितीय कलाकार रहे। जिनकी शहनाई के रिकॉर्ड्स आज भी यदाकदा उपयुक्त भाव उत्पन्न करने के लिये यथा स्थान आकाशवाणी द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं। इस देवलंकार घराने में दो पीढ़ियों से शहनाई वादन कला निखरती आ रही है। प्रमाण स्वरूप बाबूराव देवलंकार इस कला को सम्मुन्नत बनाने में प्रयत्नशील हैं। आपको स्व० भास्कर बुवा बखले के यशस्वी शिष्य श्री-दत्तोपंत बागलकोटकर से शहनाई वादन की शिक्षा प्राप्त हुई थी। वादनकला में दक्ष होने के पश्चात् हिज़ मास्टर्स वॉयस तथा आकाशवाणी ने आपके अनेक रिकार्ड भरे। विभिन्न राज्यों तथा संगीत सम्मेलनों में भी आपके कार्यक्रम यथावत् चालू हैं। बिजयदशमी के विराट उत्सव पर मैसूर महाराज के दर्बार में, कई वर्षों से आपको आमंत्रित किया जाता है। आपके प्रमुख शिष्यों में नासिक के श्री मुर्लीधर राव सोनवने तथा आपके सुपुत्र वसंतराव तथा चंद्रकान्त प्रमुख हैं। सम्पूर्ण महाराष्ट्र में श्री बाबूराव की ख्याति फैली हुई है।

★

पखावज वादक—

अयोध्याप्रसाद

पखावज के धुरंधर वादक स्व० पं० गयाप्रसाद जी के सुपुत्र वर्तमान पखावजी पं० अयोध्या प्रसाद को पखावज का प्रशिक्षण अपने दादा, (जोकि कुदऊसिंह जी के अनुज थे) से प्राप्त हुआ। उनकी मृत्यु के पश्चात् पिता श्री गयाप्रसाद जी से शिक्षा मिली।

गत दस-ग्यारह वर्षों से पंडित अयोध्याप्रसाद जी का पखावज वादन दिल्ली तथा लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्रों से होता रहता है। राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी आप कई बार आचुके हैं और विभिन्न उत्कृष्ट गायक-वादकों के साथ संगत करके आपको अपूर्व ख्याति मिली है। आपकी दृष्टि में संगत की आदर्श पद्धति का निर्वाह तभी सम्भव है, जबकि दोनों कलाकार एक दूसरे के स्वभाव से परिचित हों, और यह पहचान साथ-साथ अभ्यास करने से ही उत्पन्न होती है।

पंडित अयोध्याप्रसाद जी की धारणा है कि जबतक पखावजी को सौ-दो सौ ध्रुपद याद न हों, तब तक अपने कार्य में पूर्णरूपेण पटु नहीं बन सकता। स्वर्गीय उस्ताद वज़ीर खां एवं नवाब छम्मन साहब से प्राप्त हुए अनेक ध्रुपदों का संग्रह अयोध्याप्रसाद जी के पास है तथा पूर्वजों की डायरी के रूप में प्राचीन ध्रुपदों का एक विशाल और अद्वितीय संग्रह भी आपके पास सुरक्षित है।

इस समय आपकी आयु ६१ वर्ष की है और मृदङ्ग वादन परम्परा के इतिहास में आप एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपके चार पुत्र शीतलप्रसाद, नारायणप्रसाद, कुन्दनप्रसाद और रामजीदास हुए। इनमें से नारायणप्रसाद तथा कुन्दनप्रसाद पर अयोध्याप्रसाद जी ने वर्षों परिश्रम करके उन्हें पूर्वजों की थाती सुरक्षित रखने योग्य बनाया; किन्तु काल के निर्मम प्रहार से दोनों

ही अल्पायु में दिवंगत होगये। इस कारण पण्डित जी का हृदय विदीर्ण होगया है।

आपका स्वभाव बड़ा सरल है, इसलिये विद्वता की आभा सामान्य व्यक्ति को सहज ही स्पष्ट नहीं हो पाती; किन्तु गुण ग्राहकों से आप सदैव घिरे रहते हैं। आपके वर्तमान यशस्वी शिष्यों में प्रोफेसर कैलासचन्द्र देव बृहस्पति का नाम उल्लेखनीय है।

★

ग्वारिया बाबा

[जीवनी तथा मृत्यु के समय लिया गया अस्पष्ट चित्र पृष्ठ १५७ पर देखिये]

क्षेत्रमोहन स्वामी

[जीवनी पृष्ठ ७३ पर देखिये]

गौहर जान

[जीवनी पृष्ठ १५६ पर देखिये]

कृष्णधन बनर्जी

[जीवनी पृष्ठ १० पर देखिये]

भीखन खां

[जीवनी पृष्ठ ४८४ पर देखिये]
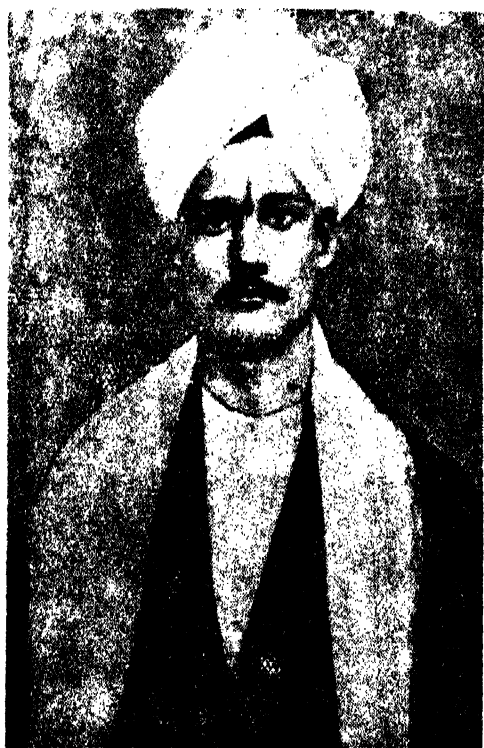
रामचन्द्र गोपाल भावे

[जीवनी पृष्ठ ३३१ पर देखिये]

मुराद खां

[जीवनी पृष्ठ ४८९ पर देखिये]

संगीत सम्बन्धी प्रकाशन

१—संगीत सागर—सङ्गीत का विशाल ग्रन्थ, इसमें गाने, हर प्रकार के साजों को बजाने तथा नाचने की विधि और ५०४० स्वरप्रस्तार दिये हैं। मूल्य ६)

२—फ़िल्म संगीत—(२६ भागों में) फ़िल्मी गायनों की पूरी-पूरी स्वरलिपियां दी गई हैं, २१ भाग तक प्रत्येक भाग का मूल्य २) भाग २२, २३,२४, २६ का मूल्य ४) प्रति भाग।

३—संगीत पारिजात—पं० अहोबल कृत प्राचीन संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद। मू० ४)

४—सङ्गीत विशारद—प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक की थ्योरी। मू० सजिल्द ५)

५—म्यूज़िक मास्टर—बिना मास्टर के हारमोनियम, तबला और बांसुरी बजाना सिखाने वाली पुस्तक, जिसके १४ संस्करण हो चुके हैं। मू० २)

६—तालअङ्क—घर बैठे तबला बजाना सीखिये। सचित्र, मूल्य ४)

७—बालसङ्गीत शिक्षा—(तीन भागों में) हाईस्कूल पाठ्यक्रम के अनुसार चौथी से आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिये। मू० २।)

८—सङ्गीतकिशोर—हाईस्कूल की ६-१० वीं कक्षाओं के लिये। मू० १।।)

९—सङ्गीतशास्त्र—इन्टरमीडियेट, हाईस्कूल, विदुषी, विद्याविनोदिनी और प्रवेशिका परीक्षाओं के लिये (सङ्गीत की थ्योरी) मू० १)

१०-सङ्गीतसीकर—सङ्गीत की थर्डईअर परीक्षाओं (१९२९ से ५२ तक) के प्रश्नोत्तर ५)

११-सङ्गीतअर्चना—क्रमिक पुस्तक भाग ३ की गायकी, संगीत की थर्डईअर (इन्टरमीडियेट) परीक्षा में आने वाले १५ रागों के तान-आलाप इत्यादि। मू० ५)

१२-सङ्गीतकादम्बिनी-सङ्गीत की बी. ए. की परीक्षा में आने वाले २० रागों के तान-आलाप (क्रमिक पुस्तक भाग४की गायकी) मू० ५)

१३-भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र—'हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति' मराठी का हिन्दी अनुवाद। प्रथम भाग ५), दूसरा भाग ६), तीसरा भाग ६), चौथा भाग १५)

१४-मारिफुन्नग़मात—(दोनों भाग) राजा नवाबअली लिखित प्रथम भाग ६) दूसरा भाग ६)

१५-बेला विज्ञान—बेला सिखाने वाली सचित्र पुस्तक, इसमें ६० गतें भी हैं। मू०४)

१६-नृत्यअङ्क—सचित्र नृत्य शिक्षक। मू० ३)

१७-सितार शिक्षा—सचित्र सितार शिक्षक मू० २।।)

१८-क्रमिक पुस्तकें—(भातखण्डे लिखित) हिन्दी में—पहिली १) दूसरी ८) तीसरी ८) चौथी ८) पांचवीं ८) और छटवीं ८)

[उपरोक्त सब पुस्तकों पर डाक व्यय अलग लगेगा—सूचीपत्र मुफ्त मंगायें]

'सङ्गीत' (मासिक पत्र) गत २३ वर्षों से बराबर निकल रहा है, वार्षिक मू० ६)

पता—संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)